इस ग्रन्थ के लेखक ने बंगला-साहित्य को टॉड के 'राजस्थान' के परिप्रेक्ष्य में नव्य भारतीय साहित्य के प्रेक्षापट पर अंकित कर यह दर्शाया है कि किस प्रकार राजस्थान की उपकथाएँ बंगला से हिन्दी और राजस्थानी साहित्य में प्रस्फुटित हुई। लेखक ने बंगला, हिन्दी और राजस्थानी साहित्य को एक सूत्र में गुम्फन कर केवल देश की राष्ट्रीय एकता को ही दृढ़-मूल नहीं किया है, अपितु कर्नल टॉड को यथायोग्य सम्मान देकर हमारी अन्तर्राष्ट्रीय भावना को भी प्रकाशित किया है।

—डॉ० सुकुमार सेन

प्रो० शिवकुमार शर्मा ने गहन परिश्रम और लगन से यह महत साहित्यिक शोध-योजना संपन्न की है, जो समान रूप से सांस्कृतिक, साहित्यिक और राष्ट्रीय महत्व की है। हिन्दी साहित्य मे ऐसे शोधकार्य अपेक्षाकृत कम हुए हैं।

—प्रो० कल्याणमल लोढ़ा

भारत-भारती की एकात्मकता को आत्मसात करने का प्रयास प्राचीन काल से हमारे यहाँ के मनीषी लेखक, समालोचक और अनुसंधाता करते आ रहे हैं। इसी सामासिक परम्परा का स्पृहणीय स्वर हमको प्रो० शिवकुमार के शोध-प्रबन्ध 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' मे मिलता है।

—डॉ० पाण्डुरंग राव

शिवकुमार री साधना, ऊँची और उदार।
बगधरा-साहित्य मे, मरु-गंगा री धार॥

—डॉ० मनोहर शर्मा

बंगला साहित्य में राजस्थान

प्रो० शिवकुमार

बंगला-साहित्य में राजस्थान

(१६वीं सदी के नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में टॉड के राजस्थान का
बंगला, हिन्दी तथा राजस्थानी पर प्रभाव)

लेखक :

प्रो० शिवकुमार
हिन्दी-विभागाध्यक्ष
महाराजा मणीन्द्र चन्द्र कॉलेज
(कलकत्ता विश्वविद्यालय)

प्रथम खण्ड

प्रकाशक :

साहित्य-निकेतन

आत्मनेपद

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि मैंने 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' शोध-प्रबन्ध लिखने का जोखिम भरा काम क्यों आरम्भ किया ? इसकी एक लम्बी कहानी है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९५७ ई० में हिन्दी में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मेरे मन में शोध के प्रति बलवती इच्छा थी, लेकिन रोजी-रोटी की समस्या मुँह बाये थी। १९५७ ई० में ही मुझे दार्जिलिंग स्थित सरकारी महाविद्यालय (रामकृष्ण बी० टी० कॉलेज) में राइटर्स बिल्डिंग (पश्चिम बंगाल सरकार का सचिवालय) से हिन्दी-प्राध्यापक का नियुक्ति-पत्र मिल गया और संघर्ष के क्षणों में थोड़ा स्थायित्व मिला। पर दार्जिलिंग की जलवायु स्वास्थ्य के लिए मुआफिक नहीं रही। फलतः वहाँ से पं० बालीराम शर्मा कॉलेज (बाँका-भागलपुर) और मारवाड़ी कॉलेज (भागलपुर) में कुछ समय अध्यापन करने के उपरान्त पुनः कलकत्ता लौटना पड़ा। दैनिक 'सन्मार्ग' में उप-सम्पादक रहते हुए महाराजा मणीन्द्र चन्द्र कॉलेज में १९६० ई० में मेरी हिन्दी-प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति हो गई। कॉलेज में अनुकूल परिवेश मिलने से मैं स्वाध्याय मे लग गया। १९६७ ई० में मैंने भागलपुर विश्वविद्यालय से बी० एल० (कानून) की परीक्षा उत्तीर्ण की। १९६८ ई० में मैंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो० कल्याणमल लोढ़ा के निर्देशन में '१९वीं शताब्दी के पुनर्जागरण का बंगला-साहित्य के परिप्रेक्ष में हिन्दी साहित्य पर प्रभाव' विषय का डी० फिल्० की उपाधि के लिए पंजीयन करा लिया। नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता विश्वविद्यालय की केन्द्रीय लाइब्रेरी और जालान स्मृति-भवन पुस्तकालय में शोध-कार्य मे जुट गया। अध्ययन के दौरान टॉड का 'राजस्थान' हाथ में आ गया। इस पर काम करने की प्रेरणा प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता और मेरे कॉलेज के प्राचार्य डॉ० अनिल चन्द्र बनर्जी, प्राचार्य डॉ० किरणचन्द्र चौधरी तथा बंगला विभागाध्यक्ष डॉ० रथिन्द्रनाथ राय से मिली। थोड़ा काम किया और पारिवारिक झंझटों तथा राजनीति मे सक्रिय हो जाने से शोध-कार्य की गति मन्द पड़ गई। इस बीच पत्र-पत्रिकाओं में लेखन-कार्य चलता रहा। दो-तीन पुस्तकें प्रकाश मे आईं, कुछ का सम्पादन किया। इसी सिलसिले में हिन्दी-राजस्थानी के विद्वान आचार्य पं० अक्षयचन्द्र शर्मा और साहित्य प्रेमी श्री गौरीशंकर कार्या से पुनः शोध-कार्य मे प्रवृत्त होने का उत्साहवर्द्धक सहयोग मिला। फिर सक्रिय रूप से काम में जुट गया और कुछ वर्षों में 'बंगीय दृष्टि में राजस्थान' शोध-प्रबन्ध कोई ५०० पृष्ठों में तैयार हो गया।

शोध-प्रबन्ध को मैंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष मित्रवर डॉ०

दयानन्द श्रीवास्तव को दिखाया। उन्होंने पाण्डुलिपि का आद्योपान्त अवलोकन किया। डॉ० श्रीवास्तव तथा डॉ० प्रबोध नारायण सिंह ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की डी० लिट० उपाधि के लिए अनुशंसित कर १९८६ ई० में 'टॉड के राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में १९वीं सदी के भारतीय नवजागरण का बंगला, हिन्दी और राजस्थानी पर प्रभाव' शीर्षक विषय पंजीयन करा दिया। चूंकि मेरा पूर्व का पंजीयन समय-सीमा की समाप्ति के कारण निरस्त हो चुका था। डॉ० श्रीवास्तव ने प्रबन्ध में हिन्दी-राजस्थानी साहित्य की रचनाओं को थोडा अधिक विस्तार से संयोजित करने का परामर्श दिया। किन्तु विधि की विडम्बना ऐसी हुई कि डॉ० दयानन्द श्रीवास्तव बीमार हुए, उनकी शल्य-चिकित्सा हुई और वे हमें रोता-विलखता छोड़कर संसार से विदा हो गए। उनकी प्रेरणा को मैंने पुन: साकार रूप दिया अर्थात कुछ और सामग्री जोड़ कर प्रबन्ध का टंकण कराया। एम० ए० के विशेष-पत्र मे मैंने अपभ्रंश और डिंगल का श्रद्धेय डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के श्रीचरणो में बैठकर अध्ययन किया था। इसलिए डिंगल और पुरानी राजस्थानी की रचनाओं को अन्तर्भुक्त करने में सहायता मिली। इस प्रकार 'बंगला-साहित्य मे राजस्थान' प्रबन्ध मे तीन भाषाओ का तुलनात्मक अध्ययन समाविष्ट हो गया।

विषय के चुनाव की तथा उसकी उपयोगिता पर अब विचार कर लेना उचित है। यह प्रश्न स्वाभाविक है कि इस विषय की आज क्या आवश्यकता है ? आवश्यकता है। आज आंचलिकता, क्षेत्रवाद, विघटनवाद राष्ट्रीय एकता के समक्ष चुनौती बना हुआ है—हिंसा और सेक्स का बोलबाला है। मानवीय मूल्य खण्डित हो रहे हैं, नैतिकता-अनैतिकता का फर्क खत्म हो गया है, रहबर और रहजन में कोई अन्तर नहीं रह गया है। तब शायद देश की अखण्डता और राष्ट्रीय एकता के लिए यह अध्ययन एक छोटा सा प्रयास बन सके और अन्धकार के धुंधलके में प्रकाश को एक किरण बन सके। वस्तुत: विभिन्न प्रदेशो की सांस्कृतिक-साहित्यिक गतिविधियो के आदान-प्रदान से ही सहिष्णुता की मानसिकता पनप सकती है।

ऐसे स्तुत्य प्रयास की शुरुआत बगाल के मनीषियो मे उस समय प्रस्फुटित हुई जब न तो आवागमन के साधन विकसित हुए थे और न दूर-संचार के उपकरण। उस समय बंगाल से हजार मील दूर स्थित राजस्थान को जानने के लिए कोई प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं था। ऐसे काल-खण्ड में राजस्थान के वीरो और वीरांगनाओ को बंगला-साहित्य में रचना-प्रक्रिया का विषय क्यों बनाया गया ? विदेशी दासता से मुक्ति पाने के लिए १९वीं शताब्दी के नवजागरण में इस विषय की आवश्यकता थी। जरूरत थी १८५७ ई० के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम की ज्वाला को तेज और प्रखर बनाने की। संयोग से ऐसी मानसिकता में बंगला भाषा के साहित्यकारों को टॉड का 'राजस्थान' ग्रन्थ मिल गया।

यह एक तथ्य है कि कुछ विदेशी सुहृद इतिहासकारों-साहित्यकारो ने हमारे साहित्य-इतिहास को आधुनिकता में परिणत करने में अथक परिश्रम किया है। महामना टॉड का 'राजस्थान' ग्रन्थ इस दिशा में एक सशक्त दस्तावेज है। टॉड ने २५ वर्षों के राजस्थान प्रवास मे जिन तथ्यो और साहित्य का संग्रह किया, उसे पुस्तकाकार दो खण्डो में प्रस्तुत कर एक प्रशंसनीय कार्य किया। आज जिस 'राजस्थान' प्रदेश को देश के एक राज्य के रूप मे देखते है, टॉड ने उसका नामकरण १८२६ ई० में ही कर दिया था जब अंग्रेजी भाषा में उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ "एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान" दो खण्डो में प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व तक यह क्षेत्र राजपूताना के नाम से जाना जाता था। स्वतन्त्र भारत में वही 'राजपूताना' टॉड के दिए 'राजस्थान' नाम से संज्ञायित हुआ जब लौहपुरुष सरदार पटेल ने देशी रियासतो का एकीकरण करने का भगीरथ प्रयत्न किया।

मजेदार बात है कि बगाल और बंगाली समाज सबसे पहले पश्चिमी सभ्यता और अंग्रेजी शिक्षा के सम्पर्क में आया। यही से १९वी शताब्दी का पुनर्जागरण आरम्भ हुआ और पश्चात् बंगाल से होता हुआ सारे देश मे विकसित हुआ। इतना ही नही टॉड के 'राजस्थान' का भी सबसे पहले प्रभाव बंगला-साहित्य पर पड़ा और उसके बाद हिन्दी, राजस्थानी साहित्य में पहुँचा। इस तथ्य को हमने स्थान-स्थान पर रेखांकित करने की चेष्टा की है! चौंकानेवाली बात यह भी है कि बगभूमि मे ही अंग्रेजी-शासन की नींव रखी गई और यहीं से उसे उखाड़ फेंकने के लिए स्वातन्त्र्य-संग्राम का शंख निनादित हुआ। आजादी की इस लड़ाई की अस्मिता को ऊर्जा देने में टॉड का 'राजस्थान' प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। किसी एक विदेशी लेखक की रचना का जितना जबरदस्त प्रभाव बंगला साहित्य पर १९वी एवं २०वीं शताब्दी मे पड़ा उतना अन्य किसी ग्रन्थ का नही। इस दिशा मे मित्रवर डॉ० वरुण कुमार चक्रवर्ती की 'टॉडेर राजस्थान उ बांग्ला साहित्य' पुस्तक ने मुझे पथ-निर्देश दिया है। मैंने उनके द्वारा किए गए कार्य को आगे बढाया है और साथ ही बंगला-साहित्य के साथ हिन्दी-राजस्थानी साहित्य का भी सामान्य रूप से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

मैं यह दावा नही करता कि मेरा कार्य सर्वथा मौलिक है, किन्तु हिन्दी संसार में यह प्रथम शोध-प्रबन्ध है, जिसका किंचित बड़े फलक पर चित्रांकन किया गया है। इसमें मेरी अल्पज्ञता के कारण कई त्रुटियाँ रह गई हैं, यह स्वाभाविक है। क्योकि मैंने महज एक पगडंडी बनाई है—अब आगे के अध्येता इसे राजमार्ग बनायेंगे। इससे देश की मनीषा को बल मिलेगा। तुलसी बाबा के शब्दों में कहना चाहूँगा "कवित्त विवेक एक नही मोरें, सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरें।". मेरा शोध-प्रबन्ध तो सुधि-विद्वानों की उच्च भाव-सामग्री का उच्छिष्ट है। 'नानापुराणनिगमागम' की भाँति मैंने विद्वानो को

सुन्दर कृतियों का मंथन कर मोती चुनने की कोशिश की है—'क्वचिदन्यतोपि' की तरह बीच-बीच में अपने गर्धव स्वर का आलप लिया है।

एक विदेशी अंग्रेज इतिहासकार के ग्रंन्थ का प्रबल प्रभाव देश की आधुनिक सभी भाषाओं पर पड़ा। इस तथ्य का अध्ययन कर राजस्थान के लोग और वहाँ के प्रवासी गौरवान्वित होंगे, ऐसा विश्वास है। इस दिशा में आगे चलकर राजस्थानी भाषा में भी बंगला-साहित्य पर शोध-कार्य होगा। यूँ राजस्थानी में बंगला भाषा और साहित्य की कई पुस्तकों का अनुवाद हुआ है तथा साहित्य अकादमियों के माध्यम से हो रहा है।

टॉड के 'राजस्थान' के द्वारा ही बंगाल और राजस्थान का सम्पर्क-सेतु बना। यही कारण है कि बंगाल से जितनी बड़ी संख्या मे पर्यटक राजस्थान जाते हैं, सम्भवत. उतनी तायदाद मे अन्य स्थानों से नही। प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक सत्यजीत रे ने 'सोनार किल्ला' चलचित्र का प्रस्तुतिकरण कर के कई फिल्म निर्माताओं के लिए 'ओएसिस' का द्वार उन्मुक्त कर दिया है। अवधूत ने भी 'मरुतीर्थ हिंगलाज' फिल्म इसी मानसिकता से बनाई थी और अभी फिल्म-निर्देशक मृणाल सेन 'ओएसिस' फिल्म बना रहे है।

मैंने प्रबन्ध को मूल रूप से पाँच अध्यायों मे विभक्त किया है। साहित्य की प्रमुख विधाएँ हैं—काव्य, नाटक, उपन्यास और गल्प। चूंकि टॉड का 'राजस्थान' इतिहास के साथ-साथ साहित्य-संस्कृति का भण्डार है और मेरे अध्ययन का विषय इतिहास की कई शताब्दियों का लेखा-जोखा है। अतः 'इतिहास का गवाक्ष' अध्याय की खिड़की से मैंने विषय-प्रवेश का कार्य किया है। इतिहास के अभाव और टॉड के इतिहास की अहमियत को मैंने बखूबी दिखाने की चेष्टा की है। इस सन्दर्भ मे टॉड साहब का जीवन-परिचय और 'राजस्थान' ग्रन्थ की विशेषताओ पर थोड़ा प्रकाश डाला है। स्वाभाविक है कि इस अध्याय मे मैंने बंगला-हिन्दी-राजस्थानी में लिखित इतिहास मूलक रचनाओं पर विचार किया है। अन्य अध्याय है 'बंगला काव्यों मे राजस्थान', 'बंगला नाटको में राजस्थान', 'बंगला उपन्यासों में राजस्थान' तथा 'बंगला कहानियो मे राजस्थान'। आरम्भ मे पुस्तक को एक ही खण्ड में प्रकाशित करने की योजना थी, किन्तु पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने से तथा मुद्रण मे काफी विलम्ब हो जाने से मित्रो का आग्रह हुआ कि इसे दो खण्डों मे प्रकाशित किया जाय। वैसे एक खण्डवाली पुस्तक की उपयोगिता अधिक रहती है। एक खण्ड के न मिलने या गुम होने से रचना खण्डित हो जाती है और अध्ययन में पाठक को व्याघात होता है। परिस्थितिवश पुस्तक के दो खण्ड करने पड़े। इससे अनजाने मे मेरी पुस्तक भी टॉड के 'राजस्थान' के अनुरूप अब दो खण्डों में आपके सम्मुख है। प्रथम खण्ड मे केवल 'इतिहास का गवाक्ष' एवं 'बंगला काव्यों मे राजस्थान' अध्याय अन्तर्भुक्त किया गया है। बाकी अन्य तीन अध्यायों का समावेश द्वितीय खण्ड में किया गया है।

मैंने इस अध्ययन में बंगला, हिन्दी और राजस्थानी साहित्य के तीन मूर्धन्य इतिहासकारों को सामने रखकर अपनी बात को पुष्ट करने की चेष्टा की है। ये पुरोधा साहित्यकार-इतिहासकार हैं—डॉ० सुकुमार सेन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं पं० मोतीलाल मेनारिया।

जिस अनुपात से टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर बंगला-साहित्य में नाटक और उपन्यास लिखे गए, उस दृष्टि से काव्य और कहानियाँ नहीं। लेकिन हिन्दी-राजस्थानी मे यह बात उल्टी रही। राजस्थान के कथानकों पर जितने काव्य रचे गये उतने नाटक-उपन्यास नही। जाहिर है काव्य, नाटक और उपन्यास के अध्याय बड़े हो गए। यहाँ एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है। आरम्भ में नाटक कविता में ही लिखे जाते थे और आचार्यों ने नाटक को दृष्य-काव्य की श्रेणी में रखा है। इस प्रकार नाट्य-कृतियां श्रव्य-काव्य का भी अंग बन गई। यही कारण है कि मुझे हिन्दी-राजस्थानी की कई काव्य कृतियों का अध्ययन प्रसंगानुसार नाटक अध्याय में करना पड़ा है। शायद इसे विषय-निर्वाचन दोष न समझा जायगा।

इस शोध-प्रबन्ध में मैंने अपनी कार्यप्रणाली का इस्तेमाल किया है अर्थात् मैंने संख्या देकर पाद् टिप्पणियाँ नहीं दी है। साधारणतः शोध-ग्रन्थों मे सन्दर्भ-ग्रन्थों और रचनाकारों के लिए संख्या सूचक पाद् टिप्पणियाँ पृष्ठ के नीचे या अध्याय के अन्त मे दी जाती है। सन्दर्भ-ग्रन्थों और उनके उद्धरणों का हवाला मैंने विषयानुक्रम में ही रखा है। मेरी ऐसी मान्यता है कि इस पद्धति से रस-भंग नहीं होता। पाठक सहज रूप से विषय को पढ़ता चला जाता है, वह अपनी रुचि से अनावश्यक उद्धरणों को उपेक्षित समझ कर विषय-वस्तु का 'विभानुभावव्यभिचारि संयोगाद् रस निष्पतिः' के मुताबिक पाठ्य-सामग्री का आनन्द-रस ले सकता है। मेरे कुछ विद्वान मित्रों ने मेरी कार्य-प्रणाली पर नाक-भौंह सिकोड़ने की अनुकम्पा दर्शाई है, पर मेरे लिए तो तुलसी की 'स्वान्तः सुखाय' की बात अधिक प्रिय है, कवि की उक्ति में कहता हूँ—'निज कवित्त केहि लाग न नीका, सरस होउ अथवा अति फीका।'

बंगला भाषा के उद्धरणो को मैंने देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया है और टॉड के वक्तव्यो को अंग्रेजी में। यूं बंगला का विकास 'भारोपीय' भाषा-समुदाय से हुआ है। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है। लिपि की भिन्नता के कारण बंगला भाषा थोड़ी कठिन है, पर देवनागरी लिपि में लिखी जाने से हिन्दी का विद्यार्थी उसे बिना किसी अड़चन के हृदयंगम कर सकता है। किन्तु भौगोलिक कारण से बंगला में उच्चारण का थोड़ा पार्थक्य है। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने अर्द्धमागधी अपभ्रंश से बिहार हिन्दी और बंगला भाषा का क्रम-विकास दिखाया है। बंगला इसी कारण ऊकार बहुला हो गई। मैंने इस उच्चारण-भेद को देवनागरी लिपि मे लिखते समय पूरा ख्याल रखा है।

जिन बंगला शब्दों का इस्तेमाल हिन्दी में धड़ल्ले से हो गया है या हो रहा है, उनको मैंने परिवर्तित नहीं किया है। जैसे इस पुस्तक का नाम है 'बंगला-साहित्य में राजस्थान'। 'बंगला' शब्द को कुछ विद्वान 'बांगला' लिखते हैं, किन्तु हिन्दी में यह 'बंगला' होना चाहिए। इस विषय पर मैंने उस समय तर्कयुक्त तरीके से अपनी बात राजनीतिक-साहित्यिक मित्रों के सामने रखी थी जब श्री अजय मुखर्जी के साथ मिलकर हमने 'बंगला कांग्रेस' दल का गठन १९६५-६६ में किया था। अजय बाबू 'बंगला कांग्रेस' के अध्यक्ष थे और मैं तथा श्री सुशील धाड़ा और श्री हरिदास मित्र पार्टी के महामन्त्री। अजयदा और मैं एक साथ सम्पूर्ण पश्चिम बंगाल का दौरा कर जनसभाओं को सम्बोधित करते। कभी-कभी श्री अजय मुखर्जी, डॉ० प्रफुलचन्द्र घोष, प्रो० हुमायू कबीर, श्री ज्योति बसु आदि से 'बंगला' और 'बांगला' शब्द को लेकर विचार-विमर्श होता। उन दिनों मेरे मत का समर्थन करने मे चौधरी चरण सिंह, श्री महामाया प्रसाद सिंह, आचार्य जे० बी० कृपलानी, डॉ० हरेकृष्ण मेहताब आदि आगे आये। अन्त में तय हुआ कि हिन्दी मे 'बंगला कांग्रेस' ही नाम रखा जाय और बगला भाषा मे 'बांगला कांग्रेस'। आकाशवाणी और दूरदर्शन ने भी श्री अजय मुखर्जी के नाम का उच्चारण बंगला बुलेटिनो में 'ओजाय मुखार्जो' और हिन्दी बुलेटिनों में 'अजय मुखर्जी' करना शुरू कर दिया। इससे 'बंगला' और 'बांगला' का विवाद आंशिक रूप से हल हो गया।

यह संयोग की बात है कि बंगला भाषा के प्रख्यात कथाकारो (श्री ताराशंकर बन्दोपाध्याय, श्री बनफूल, श्री नन्दगोपाल सेनगुप्त, श्री धीरेन्द्रलाल धर, श्री शैलजानन्द मुखर्जी; श्रीमती प्रभावती देवी सरस्वती, श्री कामाक्षी प्रसाद चट्टोपाध्याय) की कहानियों का मेरा हिन्दी अनुवाद (राही कहानी-संग्रह) का प्रकाशन १९५० ई० मे साहित्य-निकेतन के द्वारा मनोरंजन प्रेस से हुआ था और 'बंगला-साहित्य मे राजस्थान' का प्रकाशन उसी प्रकाशन संस्थान और उसी प्रेस से हो रहा है। दरअसल मनोरंजन प्रेस के संस्थापक तथा साप्ताहिक 'मनोरंजन' के प्रकाशक-सम्पादक स्व० पं० गिरीशचन्द्र त्रिपाठी के संरक्षण मे मुझे पत्रकारिता का ककहरा सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गिरीशजी दैनिक 'विश्वमित्र' के सम्पादकीय विभाग से अलग होकर 'मनोरजन' का प्रकाशन करने लगे थे और दैनिक 'सन्मार्ग' के जन्मकाल अर्थात् १९४८ ई० से उससे जुड़े थे। अनायास ही मुझे गिरीशजी के सहयोग से इन दैनिक पत्रो मे पत्रकारिता का प्रशिक्षण मिलने में सहायता मिली। मेरी प्रथम रचना 'राजस्थान तब और अब' १९४९ मे प्रकाशित हुई।

पिछले चार-पाँच वर्षों से मैं राजस्थान के वीरों और बंगला-साहित्य के रचनाधर्मियों का गुणगान करता रहा हूँ। आकाशवाणी-कलकत्ता, राटरी क्लब ऑफ बेलूर, रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, राजस्थान परिषद, मारवाड़ी युवा मंच, खण्डेला नागरिक परिषद, चैतन्य लाइब्रेरी आदि के कार्यक्रमों में मैंने बंगला-साहित्य मे राजस्थान के

प्रभाव को दर्शाने का अपने भाषणों में विनीत प्रयास किया है। पुस्तक के कुछ अंश कई पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुए हैं, जिनमें प्रमुख हैं—'दैनिक नवभारत टाइम्स (दिल्ली, जयपुर, लखनऊ, पटना संस्करणों मे), दैनिक विश्वमित्र, दैनिक सन्मार्ग, दैनिक राष्ट्र-दूत (जयपुर), 'वरदा' (बिसाऊ) 'मरुभारती' (पिलाणी), 'आर्य भारती' (कलकत्ता), 'मरु-दूत' राजस्थानी साप्ताहिक (कलकत्ता), साप्ताहिक 'सम्वाद-सूत्र' (कलकत्ता), मासिक 'प्रभात-प्रकाश' (कलकत्ता), राजस्थानी मासिक 'माणक' (जोधपुर) आदि।

इस अध्ययन को प्रस्तुत करने में जिन मित्रों, सहयोगियों और विद्वानो का सहयोग तथा परामर्श मिला, उनके प्रति में अपनी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इनमें प्रमुख हैं रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय के डॉ० रवीन्द्र गुप्त, हीरालाल पाल कॉलेज के डॉ० वरुण कुमार चक्रवर्ती, कलकत्ता विश्वविद्यालय के डॉ० प्रबोधनारायण सिंह, प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री, डॉ० रामप्रीत उपाध्याय, डॉ० शम्भुनाथ, विश्वभारती (शान्ति-निकेतन) के डॉ० रामसिंह तोमर, डॉ० भोलानाथ मिश्र, डॉ० शालिग्राम गुप्त, राजस्थान विश्वविद्यालय के डॉ० रामकुमार गुप्त, भागलपुर विश्वविद्यालय के प्रति-उप-कुलपति डॉ० बेचन, डॉ० राधाकृष्ण सहाय, डॉ० पंचानन मिश्र, डॉ० मनोहर शर्मा (बीकानेर), कवि किशोर कल्पनाकान्त (रतनगढ) आदि। मेरा सौभाग्य है कि मुझे विद्वत् प्रवर आचार्य कल्याणमल लोढ़ा, डॉ० पाण्डुरंग राव, डॉ० वरुण कुमार चक्रवर्ती, डॉ० रवीन्द्र गुप्त आदि की आशंसा प्राप्त हुई हैं।

बंगला भाषा साहित्य के शीर्षस्थ विद्वान और प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ० सुकुमार सेन ने पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे धन्य किया है। उनके आशीर्वचन से पुस्तक को अनायास ही प्रमाण-पत्र मिल गया है। डॉ० सुकुमार सेन ने नब्बे वर्ष की वृद्धावस्था में पुस्तक का आद्योपान्त अवलोकन कर, आत्मीयता और स्नेह का प्रदर्शन कर जिस महत् व्यक्तित्व का परिचय दिया है, उनके प्रति आभार प्रदर्शित करने में मेरे शब्द बेहद हल्के पड़ रहे हैं।

डॉ० सुकुमार सेन की भूमिका, डॉ० रवीन्द्र गुप्त तथा डॉ० वरुण चक्रवर्ती की आशंसा को मैंने बंगला भाषा में ही आपके सम्मुख रखा है, केवल उनकी बंगला लिपि को देवनागरी मे तब्दील कर दिया है। महात्मा गाँधी, जस्टिस शारदाचरण मित्र, ऋषि वंकिम चन्द्र चटर्जी तथा श्री भूदेव मुखोपाध्याय का मत था कि देश की सभी भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जायं। मैं इसी सिद्धान्त का पोषक हूँ और मेरी मान्यता है कि अगर देश की सभी भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जायं तो राष्ट्रभाषा हिन्दी का मुद्दा पचास फीसदी अनायास ही हल हो सकता है और इससे देश की भाषागत एकता दृढ हो सकती है। मैंने ऐसा ही प्रयास १९८५ मे कलकत्ता में हुए प्रथम हिन्दी सम्मेलन की स्मारिका का सम्पादन करके किया था। स्मारिका में पश्चिम बंग नागरी

लिपि परिषद के सचिव और नागरी लिपि आन्दोलन के प्रमुख भाई श्री विधुभूषण दासगुप्ता के "जातीय (राष्ट्रीय) संहतिर जोन्ये एक-लिपि प्रचलन" शीर्षक लेख को बंगला भाषा में तथा देवनागरी लिपि में ही प्रकाशित किया था। अखिल भारतीय पत्रकारिता विकास परिषद के तत्वावधान में दो दिवसीय हिन्दी-सम्मेलन का आयोजन दैनिक 'सन्मार्ग' सम्पादक श्री राम अवतार गुप्त, पत्रकार हरिशंकर द्विवेदी, संयोजक साहित्य सेवी श्री आत्माराम सोयलिया, सचिव श्री महावीरप्रसाद नारसरिया, पं० रामनाथ शर्मा, साहित्य-मर्मज्ञ श्री गोविन्द शर्मा आदि के सहयोग से भाषा परिषद के सभागार में सम्पन्न हुआ था, जिसमें दैनिक 'जनसत्ता' (दिल्ली) के सम्पादक श्री प्रभाष जोशी, साप्ताहिक 'रविवार' (कलकत्ता) के सम्पादक श्री उदयन शर्मा, 'विश्व हिन्दी-दर्शन' (दिल्ली) के सम्पादक श्री लल्लन प्रसाद व्यास, डॉ० प्रभाकर माचवे, दैनिक 'नई दुनिया' (इन्दौर) के सम्पादक श्री नरेन्द्र तिवारी, बंगला के प्रख्यात कथाकार श्री विमल मित्र, आचार्य कल्याणमल लोढ़ा, पं० अक्षयचन्द्र शर्मा, डॉ० विश्रान्त वशिष्ठ, कवि श्री अरुण प्रकाश अवस्थी, साहित्यकार श्री सखा बोरड़, साहित्य प्रेमी श्री रामनिवास ढंढारिया, हिन्दी के पोषक श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया, दैनिक 'आज' (बनारस) के प्रबन्ध-सम्पादक डॉ० राममोहन पाठक, दैनिक 'राजस्थान पत्रिका' (जयपुर) के सम्पादक श्री कपूरचन्द कुलिश आदि के भाषण एवं लेखों का सहयोग रहा था। इन विद्वानों से मुझे अपने शोध-प्रबन्ध में भी सहायता मिली है।

कुछ आत्मीय-बन्धुओं का इस वक्त स्मरण हो रहा है, जिन्होंने पुस्तक प्रकाशन मे सहृदयतापूर्ण उत्साह दिलाया था, किन्तु उनके जीवन काल मे पुस्तक का प्रकाशन नही हो सका। इनमे डॉ० दयानन्द श्रीवास्तव, पत्रकार श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल, मित्रवर डा० धर्मदेव प्रसाद, भाई जनार्दन मिश्र, बन्धुवर श्री रघुनन्दन शर्मा (चाईबासा), कथा-लेखिका श्रीमती कृष्णा पटेल की स्नेहिल-स्मृति बरबस मन को कचोटती रही है।

कीडी की चाल से मैंने काम किया, यह बात बिल्कुल गलत है। सचमुच कीड़ी की चाल से कार्य होता तो कुछ महीनो मे ही पूर्ण हो जाना चाहिए था। कीड़ी सृष्टि का सबसे छोटा प्राणी है। उसके पैर इतने छोटे हैं कि हम उन्हें स्थूल आँखो से नही देख सकते, खुर्दबीन से देखने पड़ते हैं या आई-ग्लास से। इस छोटे प्राणी के पैर घोड़े से भी द्रुतगति से चलते है, रेस का घोड़ा फिसड्डी हो जाता है। तब मेरे ऐसे दोपाये की बिसात ही क्या ? असल में मेरी गति कच्छप की रही, लेकिन इसका एक बड़ा लाभ हुआ। इस लम्बे अन्तराल में मित्रों और शुभ-चिन्तकों की एक जमात मेरे यज्ञ में प्रेरणा की हवि बन गई। यज्ञ किसी भाँति पूरा हुआ। प्रेरणा के स्रोत की इस शृङ्खला मे मैं आदर सहित उनका स्मरण कर आभार प्रदर्शित कर रहा हूँ, ये हैं—साहित्यकार श्री एल० एन० बिडला, साहित्य-मनीषी श्री कन्हैयालाल सेठिया, श्रीमती राधा

भालोटिया, श्री नन्दलाल टांटिया, श्री प्रभुदयाल हिम्मत सिंहका, श्री दीपचन्द नाहटा, विद्वत्वर भाई डा० कृष्णबिहारी मिश्र, डॉ० शिवमंगल राय, श्री परमानन्द चूड़ीवाल, पं० छविनाथ मिश्र, कवि शम्भू प्रसाद श्रीवास्तव, पत्रकार गीतेश शर्मा, ऋषि जेमिनी कौशिक बरुआ, श्री निर्भीक जोशी, श्री अशोक जोशी, कवि नथमल केड़िया, श्रद्धेय श्री राधाकृष्ण नेवटिया, कवि अम्बू शर्मा, साहित्यकार जयकिशनदास सादानी, साहित्य-प्रेमी गौरीशंकर मोहता, समाजसेवी नन्दकिशोर जालान, विधिवेत्ता इन्द्रचन्द संचेती, समाजसेवी रामकृष्ण सरावगी, प्रखर वक्ता रतन शाह, साहित्य-प्रेमी भाई सीताराम कानोड़िया, श्री दूलीचन्द अग्रवाल, श्री श्रीनारायण मन्त्री, कवि श्यामसुन्दर बगड़िया, साहित्यप्रेमी भँवरलाल दवे, चिन्तक पुष्करलाल केड़िया, समाजसेवी श्यामलाल जालान, पत्रकार भाई शिवनारायण शर्मा, आलोचक श्रीनिवास शर्मा, साहित्यकार कन्हैयालाल फूलफगर, विधिवेत्ता विजय सिंह कोठारी, विधिवेत्ता सुखलाल गनेरीवाल, सालीसीटर सी० के० जैन, विधिवेत्ता मदन लाल सराफ, श्री हरिप्रसाद नोपानी, श्री नन्दलाल शर्मा, साहित्य-प्रेमी भगवती प्रसाद ड्रोलिया (भागलपुर), आयकर-कानून विशेषज्ञ देवकी नन्दन शर्मा (भागलपुर), कवि-चिन्तक वासुदेव पोद्दार, पत्रकार राजकिशोर, समाज-सेवी महावीर प्रसाद अग्रवाल, धर्मानुरागी श्रीराम कानोड़िया, श्री धनराज दफ्तरी, पत्रकार ओमप्रकाश बोहरा (खण्डेला), जनसेवी सीताराम डोल्या (सीकर), श्री भानु प्रकाश खेतान, श्री वासुदेव टिकमाणी, साहित्य सेवी शिवकुमार नोपानी, श्री दुर्गादत्त रावत, समाजसेवी प्रभुदयाल खण्डेलवाल, जनसेवी केदारनाथ खण्डेलवाल, श्री बाबूलाल शर्मा (पटना) कवि मनोहरलाल गोयल (जमशेदपुर), श्री राम अवतार अग्रवाल, श्री आनन्द कुमार अग्रवाल, उर्दू साहित्यकार अनिसुर रहमान खान, पत्रकार विश्वम्भर नेवर, श्री रत्नाकर शर्मा, पत्रकार बी० एल० शाह, पत्रकार श्याम श्रेष्ठ, पत्रकार शंकर लाल हरलालका, पत्रकार ओमप्रकाश जोशी, साहित्यकार डॉ० नारायणप्रसाद श्रीवास्तव, गाँधी-चिन्तक मंगला प्रसाद, कवि हरिश्चन्द्र व्यास, डॉ० सुब्रत लाहिड़ी, डॉ० दीनानाथ शुक्ल, प्रो० अजय, प्रो० विमलेश द्विवेदी, प्रो० अवधेश राय, श्री श्रीराम तिवारी, श्री त्रिभुवन तिवारी, प्रो० सच्चिदानन्द सिंह, श्री कन्हैयालाल सिखवाल, कवि श्रीकृष्ण शर्मा, भाई पं० कामाख्या प्रसाद शर्मा, श्री घनश्याम शर्मा, श्री हनुमान प्रसाद शर्मा, श्री बनवारीलाल शर्मा, श्री जगमोहन शर्मा, वैद्य विश्वनाथ शर्मा, श्री बासुदेव शर्मा, गो-सेवक श्यामसुन्दर शर्मा, वैद्य वैद्यनाथ शर्मा, श्री सत्यनारायण असोपा, श्री चिरंजीलाल कौशिक, पत्रकार सीताराम शर्मा, कविराज रामाधीन शर्मा वशिष्ठ, श्रद्धेय पं० भगवान दत्त शास्त्री 'शाण्डिल्य', पत्रकार प० गंगाप्रसाद शास्त्री (रामगढ़), पं० मंगल त्रिपाठी, श्री विष्णु गोस्वामी, साहित्यसेवी विश्वनाथ लोहिया, प्रो० दत्तात्रेय वा० मोरे, श्रीमती मंजुरानी सिंह, साहित्यकार नवरत्न शर्मा, कलाकार विश्वनाथ चौधरी, विधिवेत्ता कमल कुमार जैन, श्री राधेश्याम खेमका, श्री जयदयाल बंका, श्री राजकुमार दसाणी, विधि-

वेत्ता रामलाल टेकड़ीवाल, समाजसेवी रघुनाथदास सोमानी, श्री बी० डी० शर्मा, नाट्य-निर्देशक शिवकुमार झुनझुनवाला, कलाकार विमल लाठ, साहित्यसेवी राम अवतार सराफ, श्री ओमप्रकाश जालान, श्री श्याम सुन्दर सिंघानिया, श्री श्याम स्वरूप शर्मा (सतना), साहित्यकार मालीराम शर्मा (बीकानेर), श्री शिव भगवान पोद्दार, श्री राधेश्याम रिणवा, कलाकार राजकुमार शर्मा, श्री सोमदेव अग्रवाल, श्री शंकरलाल टीबड़ेवाल आदि।

शोध-प्रबन्ध की सामग्री के लिये मुझे तीन बार राजस्थान को उदयपुर (वाटी) से उदयपुर (मेवाड) की यात्रा करनी पड़ी। इस यात्रा में मैंने जैसलमेर, बीकानेर, आबू; जयपुर, अजमेर; दादू आश्रम (नरायणा); सीकर; रतनगढ, रामगढ़; झूंझनूं; पिलानी; खेतड़ी, खण्डेला आदि के पुस्तकालयों-संग्रहालयों से कई ऐतिहासिक तथ्य संग्रह किए और सुधि-विद्वानों-इतिहासवेत्ताओं से परामर्श किया। इसी भांति मैंने पश्चिम बंगाल के विभिन्न पुस्तकालयों मे महीनों बैठकर अलभ्य ग्रन्थों का मूल बंगला भाषा में अध्ययन किया। सौभाग्य से मुझे कलकत्ता और उसके आस-पास ऐसे पुस्तकालयो में रखी पुस्तको का अध्ययन करना पड़ा; जिनकी स्थापना १९वी शताब्दी के आरम्भ में हुई थी। ये पुस्तकालय हैं श्रीरामपुर और हुगली के पुस्तकालय; एशियाटिक सोसाइटी पुस्तकालय; जयकृष्ण लाइब्रेरी (उत्तरपाड़ा); बेलूर मठ स्थित रामकृष्ण पुस्तकालय; बंगीय साहित्य परिषद; चैतन्य लाइब्रेरी; बाघबाजार लाईब्रेरी; राजा राममोहन लाइब्रेरी; कवितीर्थ लाइब्रेरी; शान्ति निकेतन स्थित विश्वभारती लाइब्रेरी; सलकिया का माधव पाठागार आदि। हिन्दी पुस्तकों के लिए श्री कुमार सभा पुस्तकालय; माहेश्वरी पुस्तकालय; जालान स्मृति भवन पुस्तकालय; श्री हनुमान पुस्तकालय (सलकिया; हवड़ा); राजस्थान सूचना केन्द्र पुस्तकालय; भारतीय भाषा परिषद पुस्तकालय; भारतीय संस्कृति संसद पुस्तकालय; बड़ाबाजार लाइब्रेरी आदि। इन सभी पुस्तकालयो तथा इनके कर्मचारियों से मुझे भरपूर सहायता मिली। मेरे कॉलेज महाराजा मणीन्द्र चन्द्र कॉलेज तथा महाराजा श्रीशचन्द्र कॉलेज के पुस्तकालयों से तो मैं अनवरत सहायता लेता रहा हूँ। इनके पुस्तकाध्यक्ष श्री भवरंजनदास चकलादार, श्री दिलीप चटर्जी; श्री रवीन्द्रनाथ गुइन; श्री दुलालचन्द्र धर का मैं बड़ा अभारी हूँ; जिन्होंने हमेशा मेरे लिए अलभ्य पुस्तकें उपलब्ध कराई हैं।

मेरे कॉलेज के प्राचार्य श्री अशोक चौधरी तथा कॉलेज के सहयोगी विद्वानो से समय-समय पर मुझे महत्वपूर्ण सूचनाएँ और सहयोग मिला है। अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष प्रो० शंकरकान्ति दासगुप्ता, राजनीति-शास्त्र के प्रो० विश्वनाथ मुखर्जी, बंगला-विभागाध्यक्ष डॉ० आदित्य चौधरी, डॉ० अरुण चटर्जी, प्रो० पांचूगोपाल दत्त, इतिहास-विभाग के अध्यक्ष प्रो० चन्द्रनाथ राय, डॉ० कल्याण चौधरी, अंग्रेजी विभागाध्यक्ष प्रो०

मुव्रत गोपाल भट्टाचार्य, दर्शनशास्त्र के प्रधान प्रो० सत्यव्रत दासगुप्ता, वाणिज्य विभाग के प्रो० मणीन्द्रनाथ राय आदि मेरे सहयोगी तथा अभिन्न मित्र हैं। इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर मैं इन्हें दूर नहीं करना चाहता, हाँ, इनके प्रति अपनी सौजन्यता प्रेषित करता हूँ।

साहित्य-समाज के लिए समर्पित श्री जुगल किशोर जैथलिया, कवि भगवती प्रसाद चौधरी, मित्रवर श्री महावीर प्रसाद नारसरिया, साहित्य-मर्मज्ञ गोविन्द प्रसाद शर्मा से मुझे पूर्ण सहयोग मिला है। उनका समय-समय पर आग्रह भरा तकादा न रहता तो पुस्तक का मुद्रण शायद और विलम्ब से होता।

पुस्तक की अनुक्रमणिका तैयार करने में मेरी कनिष्ट पुत्री श्रीमती भारती शर्मा तथा कनिष्ट पुत्र गिरीश ने सहायता की है, उनके लिए मेरा स्नेहाशीष है। प्रूफ संशोधन में मेरे ज्येष्ठ पुत्र कैलाश और मनोरंजन प्रेस के सत्वाधिकारी श्री सुधाकर त्रिपाठी (सुपुत्र स्व० सुरेशचन्द्र त्रिपाठी) ने सहायता की है, फिर भी अशुद्धियाँ रह गई है। इनके लिए दोषी मैं हूँ। कागजों के मूल्य में पिछले कुछ वर्षों से जो उछाल आया है, उसने इस वर्ष अपने सारे रेकार्ड ही तोड़ दिए है। मूल्यवृद्धि के कारण पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तक-प्रकाशन में संकट पैदा हो गया है। मुझे भी इस कठिनाई से गुजरना पड़ा है। पुस्तक का आवरण-चित्र कलाकार लक्ष्मणचन्द्र राय ने अंकित किया है, जिसमें कलाकार अजित जाना और कम्युनिकेशन कन्सलटेन्ट्स के प्रबन्धक श्री विश्वनाथ शर्मा का सहयोग रहा। मैं इनके प्रति आभारी हूँ।

संस्कृत के सुप्रसिद्ध टीकाकार विद्वत्वर मल्लिनाथ ने कविश्रेष्ठ कालिदास और उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में जो प्रशस्ति लिखी है वह मेरे लिए भी प्रयोज्य है। मल्लिनाथ ने लिखा है—'कालिदास की रचनाओं के तत्वों को आज तक तीन ही व्यक्ति जान सके है। एक ब्रह्मा, दूसरा वाग्देवी सरस्वती तथा तीसरे स्वयं कालिदास। मेरे समान अल्पज्ञ कालिदास को ठीक-ठीक समझने में असमर्थ है।'

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशा:॥

यही स्थिति मेरी है। राजस्थान के वीर-चरित्रों की भावभूमि को या तो महामना कर्नल टॉड ने या बंगला-साहित्य के रचनाकारों ने हृदयंगम किया है। मेरे ऐसे अल्पज्ञ के लिए यह एक दुसाध्य कार्य है। इतना ही नही टॉड की अंग्रेजी भाषा को समझने में मुझे कई बार उठक-बैठक करनी पड़ी है।

कलकत्ता की स्थापना जॉब चार्णक ने १६९० ई० में की थी। कलकत्ता महानगर अब अपने जन्म की तीसरी शताब्दी मना रहा है। यद्यपि जराजीर्ण कलकत्ता अपने विगलित अवयवों को लेकर २१वीं शताब्दी की ओर अग्रसर है, फिर भी वह अपनी ऐतिहासिक विरासत से देदिप्यमान है। खुशी है कलकत्ता महानगर की तृतीय शताब्दी महोत्सव पर मेरी पुस्तक प्रकाशित हो रही है, जिसमें उसके साहित्यिक-सांस्कृतिक अवदान का मैंने आकलन करने का विनम्र प्रयास किया है।

जिन साहित्यानुरागियों और सुहृदजनों ने अग्रिम आरक्षण की राशि दे कर हमे पुस्तक प्रकाशन में सहयोग दिया है, उनके प्रति हम आभारी हैं।

सुविज्ञ विद्वान पाठकों और सुधिआलोचकों के समक्ष मेरी यह सामान्य कृति प्रेषित है।

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।"

साहित्य-निकेतन

१०५, मटरूमल लोहिया लेन,

सलकिया, हवड़ा-७११२०६

दूरभाष : ६६-५६१५

शिवकुमार

दिनांक : स्वतन्त्रता-दिवस
१५ अगस्त, १९८६ –

प्राक्कथन

अध्यापक श्रीयुत् शिवकुमार शर्मा विरचित 'बांग्ला-साहित्य में राजस्थान' पुस्तकटिर अंश-विशेष आमि देखेछि। बईटिते बांग्ला साहित्ये राजस्थानेर भावानुप्राणित सकल प्रकार साहित्य कर्मेर विस्तारित आलोचना लेखक करेछेन। लेखक तांर वक्तव्येर समर्थने जे समस्त उद्धृति दियेछेन ता अनुसंधित्सु पाठकेर कौतुहलके वाड़िए देवे वले विश्वास करि।

बांग्ला साहित्ये राजस्थान कथांवस्तुर प्रवेश सम्भव हयेछिलो टॉडेर दौलते। इंग्राजी शिक्षित नव्य बांगाली राजस्थानेर वीरगाथाय उ काहिनीते स्वदेश प्रीति उ स्वजाति प्रीतिर अपर्याप्त उपादान संग्रह करते सक्षम होयेछिलेन।

एई ग्रन्थे लेखक बांग्ला साहित्यके नव्य भारतीय साहित्येर प्रेक्षापटे स्थापन करे बांग्ला साहित्येर माध्यमे राजस्थानेर भाववस्तु की करे हिन्दी साहित्ये विस्तारित होये राजस्थानेर साहित्ये नूतनभावे आत्मप्रकाश करेछे तारउ विस्तारित आलोचना करेछेन।

वर्तमान ग्रन्थे लेखक जे शुधुमात्र बांग्ला, हिन्दी उ राजस्थानी साहित्यके एकसूत्रे बेंधे आमादेर जातीय संहतिके दृढ़मूल करलेन ता-ई नय, एई संगे टॉड के यथायोग्य सम्मान जानिये आमादेर आन्तर्जातिकतार मनोभावटिके यथोपयुक्त भावे प्रकाश करलेन।

लेखकके आमि आमार आन्तरिक साधुवाद जानाई उ बईटिर बहुल प्रचार कामना करि।

१०, राजा राजकिशन स्ट्रीट,
ब्लाक नं० २, सूट नं० ३२,
कलकत्ता-७००००६
दिनांक : १२ जून, १९८९

डॉ० सुकुमार सेन
पूर्व अध्यक्ष,
तुलनात्मक भाषाविज्ञान विभाग,
कलकत्ता विश्वविद्यालय

आशंसा

मैंने पंडित शिवकुमार शर्मा का प्रबन्ध 'बंगला साहित्य में राजस्थान' पढ़ा। प्रो० शर्मा ने गहन परिश्रम, अध्यवसाय और लगन से यह महत साहित्यिक शोध योजना सम्पन्न की है, जो समान रूप से सांस्कृतिक, साहित्यिक और राष्ट्रीय महत्व की है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के शोध-कार्य अपेक्षाकृत कम हुए हैं। यह कार्य इस तथ्य का पुष्ट प्रमाण है कि किस प्रकार *हमारी राष्ट्रीय चेतना अपनी गत्यात्मकता से सभी भारतीय भाषाओं* को प्रभावित और प्रेरित करती रही है और भौगोलिक विस्तार बाधाहीन होकर किस प्रकार ऐतिहासिक बोध से साहित्यिक संस्कृति की जागरूकता और अर्थवत्ता में रचनात्मक उपक्रम बन जाता है। इसी जातीय संवेदना की सम्यक प्राण धारा का यह एक प्रभावी दस्तावेज है।

मध्य युग से ही राजस्थान स्वाधीनता की अमर ज्योति रहा है। यहाँ के वीरों और वीरांगनाओं ने, शौर्य और बलिदान से पूर्णतः रंगी यहाँ की माटी ने, समस्त भारतीय चिन्तकों और साहित्यकारों को उत्सर्ग और राष्ट्र प्रेम के प्रति सचेतन कर अपनी रक्तधारा से उन्हें प्रेरणा दी है। टॉड ने राजस्थान को थर्मापोली कहा है तो अनेक विद्वानों ने उसे स्वाधीनता की अदम्य आकांक्षा का धनी प्रदेश। प्रो० शर्मा ने समूचे बंगला-साहित्य का अनुशीलन कर उसकी विभिन्न विधाओं में राजस्थान के वीर पुत्रों और वीर

पुत्रियों के उन प्रसंगों को उजागर किया है, जिन्होंने इस शस्य श्यामला स्वर्ग बंग भूमि के सारस्वत-साधकों को अभिप्रेरित किया। काव्य हो या नाटक, उपन्यास हो या कहानी, सभी क्षेत्रों में राजस्थान की जीवन-ज्योति यहाँ के मानस में जगमगाती रही है। इन सबका अनुसन्धान करना एक दुष्कर कार्य था, पर प्रो० शर्मा ने इस श्रम-साध्य अनुष्ठान को भी अपने वैदुष्य और अध्यवसाय से पूरा कर अनुसंधान का एक नया धरातल प्रस्तुत किया है, जो हमारे लिए जातीय महत्व रखता है। इस बृहत् प्रबन्ध को पढ़कर मेरी ज्ञान वृद्धि हुई है। प्रो० शर्मा अनुभवी पंडित हैं एवं बंगला और हिन्दी साहित्य के विद्वान हैं। आज से लगभग दो दशक पूर्व उन्होंने '१९वीं शताब्दी का राष्ट्रीय पुनर्जागरण और हिन्दी साहित्य' पर शोध-कार्य प्रारम्भ किया था और प्रचुर सामग्री भी अभिनिविष्ट की थी। उस कार्य के मध्य ही उन्हें यह योजना सूझी, जो नवीन और महत्वपूर्ण थी। वे उसमें जुट गए और हमारे इतिहास का गहन अध्ययन कर उन्होंने ऐतिहासिक चेतना और जातीय बोध को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में साहित्य सृजन के विविध आयामों से संसिक्त कर अपनी मौलिक दृष्टि सम्पन्नता से यह कार्य प्रामाणिकता से पूरा किया। यद्यपि बंगला साहित्य में डॉ० वरुण कुमार चक्रवर्ती प्रभृति ने इस ओर (राजस्थान और बांग्ला साहित्य) कार्य किया है, पर प्रो० शर्मा का यह प्रबन्ध इन सबसे भिन्न कोटि का है। डॉ० शर्मा ने वस्तुनिष्ठ और अपनी विवेक संगति से इतिहास और साहित्य दोनों का मंथन कर उन्हें व्यापक दृष्टि से हमारी राष्ट्रीय जागरूकता, सचेतना और संवेदनशीलता से समन्वित कर, मौलिक तथ्यानुशीलन द्वारा भारतीय साहित्य की रचनात्मक समरूपता को सप्रमाण स्पष्ट किया है। यही इस कृति का वैशिष्ट्य है। मैं इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए प्रो० शर्मा का साधुवाद करता हूँ।

२ए, देशप्रिय पार्क (ईस्ट)
कलकत्ता-७०००२९
१५ अप्रैल, १९८८

प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
पूर्व उपकुलपति, जोधपुर विश्वविद्यालय, राजस्थान
पूर्व हिन्दी-विभागाध्यक्ष, कलकत्ता विश्वविद्यालय

भारत में भाषाएँ अनेक हैं, पर उन सबका भाव-पक्ष लगभग समान है, समान्तर है। कोई भी भाषा किसी भी दूसरी भाषा से पृथक नहीं है। भारत में चाहे किसी भी प्रान्त में कोई घटना घटी हो या कोई सारस्वत प्रादुर्भाव हुआ हो, उससे समस्त देश प्रभावित रहा। महाभारत, रामायण, भागवत, उपनिषद्, पुराण आदि प्राचीन गौरव-ग्रन्थ देश की समस्त भाषाओं में प्रशस्त एवं प्रसक्त हैं।

भारत-भारती की इसी एकात्मकता को आत्मसात करने का प्रयास प्राचीन काल से हमारे यहाँ के मनीषी लेखक, समालोचक और अनुसंधाता करते आ रहे हैं। इसी सामासिक परम्परा का स्पृहणीय स्वर हमको पं० शिवकुमार शर्मा के शोध-प्रबन्ध "बंगला-साहित्य में राजस्थान" में मिलता है। यह शोध-प्रबन्ध केवल सारस्वत अनुसंधान का ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक समरसता का जीता-जागता प्रमाण प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास करता है।

राजस्थान भारत के आत्म-गौरव का प्रमुख आधार रहा है और देश के कोने-कोने में राजस्थान की गाथाओं का गुणगान मिलता है। दक्षिण की भाषाओं में राजस्थान का इतिवृत्त काव्य-रचना का आधार बना है। राणा प्रताप, मेवाड़ मीरा आदि का गुणगान तेलुगु के अनेक काव्यों में और नाटकों

में मिलता है। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि प्रो० शिवकुमार शर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध में बंगला-साहित्य के अतिरिक्त भारत की अन्यान्य भाषाओं में उपलब्ध साहित्य में राजस्थान की इस रजनीगंधा की रमणीयता को देखने और दिखाने का प्रयास किया है। इसीलिए यह केवल एक शोध-प्रबन्ध नहीं है, बल्कि सारस्वत साधना के माध्यम से सांस्कृतिक समरसता का साक्षात्कार करने की स्वस्थ कामना का सुखद परिणाम है।

भारत की स्वाधीनता के पश्चात् देश में इस प्रकार की भावना और बढ़नी चाहिए थी। पर दुर्भाग्य से ऐसा बहुत कम हुआ है। इसका दायित्व साहित्य के तथाकथित उपासकों के ऊपर है। उपासना में सामीप्य की भावना होती है और होनी चाहिए। इसी प्रकार साहित्य में सहितत्व और सन्निहितत्व की भावना प्रमुख है। सामीप्य और सन्निहितत्व दोनों गुण साहित्य के उपासकों के लिए दो नयनों के समान हैं। ये दोनों नयन जब सजग हों तभी सत्साहित्य की सृष्टि होती है। सत्साहित्य की सृष्टि ही समालोचकों को सात्विक दृष्टि प्रदान करती है।

मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि प्रो० शिवकुमार शर्मा ने इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से सारस्वत जगत को एक नई दृष्टि प्रदान की है। भारत की विभिन्न भाषाओं को निकट से निकट लानेवाली यह रचना इसी सांस्कृतिक दृष्टि से परिपुष्ट है।

मुझे विश्वास है कि भारत-भारती के आराधक इस प्रयास का हार्दिक स्वागत करेंगे।

सरस्वती श्रुति महती महीयताम्।

भारतीय भाषा परिषद
३६ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता-७०००१७
दिनांक : २६ अप्रैल, १९८८

डॉ० पाण्डुरंग राव
निदेशक
भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता

अनेक दिन परे एकटि यथार्थ गवेषणा-निबन्ध पड़ार सुयोग पावा गेलो। अध्यापक शिवकुमार शर्मा बहु प्रयत्न निए लिखेछेन 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' प्रायः ८ सौ पृष्ठेर महाग्रन्थ।

बईटि पड़ले जाना जाय राजस्थानेर संगे अविभक्त बांग्लार भौगोलिक दूरत्व किभावे सामाजिक उ सांस्कृतिक सायुज्य द्वारा अतिक्रान्त होयेछिलो। ब्रिटिश आमले जखन देश स्वदेशी आन्दोलने उत्तप्त तखन प्रयोजन होये छिलो 'जातीय वीर उ वीरांगनादेर'। सेई उज्ज्वल देश प्रेमिकतार उदाहरण जूगिए छिलो राजस्थान। किम्वदन्ती आश्रित टॉडेर 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' बागाली के साहित्य सृष्टिते उद्दीप्त, अनुप्राणित करेछे।

अध्यापक शर्मा गभीर निष्ठाय उ प्रचुर परिश्रमे बांग्ला काव्य, नाटक, उपन्यासे एवं प्रबन्धावलीते राजस्थान काहिनीर प्रभाव देखिएछेन। तिनि आमादेर कौतुहल बाड़िएछेन ये राजस्थान कथा कखनो एसेछे सरासरि राजस्थान थेके, कखनो बाग्ला साहित्येर माध्यमे। विशेषतः बाग्ला ऐतिहासिक नाटके राजस्थान कथार गौरवदीप्त चित्र हिन्दी नाटके अंकित होयेछे। बांग्ला, हिन्दी उ राजस्थानी तिनटि भाषार साहित्य मन्थन करे अध्यापक शर्मा एई सम्पद सुधा परिवेषण करेछेन। एई जन्ये अकुण्ठ साधुवादई तार प्राप्य।

एइ रकम तथ्यपूर्ण सन्दर्भ बांग्ला, हिन्दी वा राजस्थानी भाषाय खूब वेशी आछे, मने होयना। सन्दर्भटि प्रकाशित हले आमि खूब खुशी होबो एवं तिनभाषारई आमही पाठक उपकृत होबेन वले आमार विश्वास।

पी ६१, कालिन्दी हाउसिंग स्कीम
कलकत्ता-७०००८६
दिनांक : २१ अप्रैल, १९८८

डॉ० रथीन्द्र गुप्त
रीडर, बांग्ला-विभाग
रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय

महाराजा मनीन्द्रचन्द्र कॉलेजेर हिन्दी विभागेर प्रधान अध्यापक श्रीयुत् शिवकुमार शर्मा 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' नामे एकटि दीर्घ गवेषणा करेछेन। आमि तांर गवेषणा कर्मेर जेटुकु परिचय पेये छि ताते विस्मित होयेछि। एकथा ठिकई जे 'टॉडेर राजस्थान उ बांग्ला साहित्य' निये आमि गवेषणा करेछि एवं सेई गवेषणा ग्रन्थ प्रकाशित होयेछे, किन्तु अध्यापक शर्मा जे काजटि करेछेन ता अत्यन्त सुदीर्घ। कारण तिनि शुधु बांग्ला साहित्ये राजस्थानेर प्रभाव सम्पर्केई तांर आलोचना के सीमाबद्ध राखेननि, सेई संगे हिन्दी, राजस्थानी एवं अन्यान्य भारतीय भाषाय रचित साहित्ये राजस्थानेर प्रभाव सम्पर्के आलोकपात करेछेन। सर्वोपरि तुलनामूलक आलोचनाय अध्यापक शर्मार गवेषणा अत्यन्त फलप्रसु होयेछे। जातीय संहतिर परिप्रेक्षितेउ एई गवेषणाटिर मूल्य अपरिसीम। अध्यापक शर्मा दीर्घ परिश्रमे जे काजटि सम्पन्न करेछेन शुधु बांगाली हिसेबेई नय, एकजन भारतीय हिसेबे तांके आमार आन्तरिक अभिनन्दन जानाई।

१६/१, मनसातल्ला लेन
कलकत्ता-७०००२३
दिनांक : २४ अप्रैल, १९८८

डॉ० वरुण कुमार चक्रवर्ती
बांग्ला-विभाग, हीरालाल पाल कॉलेज
कोणनगर, हुगली (प० बंगाल)

समर्पण

वागार्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

खण्डेला (सीकर, राजस्थान) के राजज्योतिषी
पिताश्री स्व० पं० पुष्पचन्द्र शर्मा (गुणाकरका) तथा
मातुश्री नानची देवी के श्रीचरणों में सादर समर्पित।

—शिवकुमार

बंगला-साहित्य में राजस्थान

(प्रथम खण्ड)

विषय-सूची

"१६वीं सदी के भारतीय नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में टॉड के 'राजस्थान' का बंगला, हिन्दी एवं राजस्थानी साहित्य पर प्रभाव।"

"The impact and influence of Tod's Rajasthan on Bengali, Hindi and Rajasthani literature in the Nineteenth Century Indian Renaissance."

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥

विषय-प्रवेश

प्रथम अध्याय

इतिहास का गवाक्ष

भूमिका—किसी भी राष्ट्र और जाति के लिए उसके प्राचीन इतिहास का बड़ा महत्त्व है। विश्व की प्राचीनतम संस्कृति-सभ्यता मे भारतवर्ष अग्रणी रहा, किन्तु विडम्बना है कि उसका कोई लिपिबद्ध प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नही है। आश्चर्य तब अधिक होता है कि देश मे इतिहास रचना के उपकरण प्रचुर मात्रा मे मौजूद थे, फिर भी इसकी उपेक्षा रही। भारतवर्ष का इतिहास या उसके उपकरण नही होते तो विदेशी इतिहासकारो ने हमारे प्राचीन इतिहास को कैसे लिखा? वस्तुतः हमारे पौराणिक ग्रन्थ ही इतिहास-रचना के महत्वपूर्ण स्रोत रहे है। संसार की सभी जातियो और देशो का प्राचीन इतिहास वहाँ के पौराणिक ग्रन्थो मे ही उपलब्ध होता है। पौराणिक ग्रन्थो मे इतिहास की सामग्री छिपी रहती है, उसका भली प्रकार मंथन करने मे बहुत से ऐतिहासिक तथ्य सामने आते है। इस दृष्टि से महर्षि वाल्मीकि की 'रामायण' और महर्षि वेदव्यास का 'महाभारत' पौराणिक इतिहास-ज्ञान के महत्वपूर्ण निदर्शन है। पाणिनि कृत 'अष्टाध्यायी' भारतीय साहित्य और इतिहास का अमर ग्रन्थ है। चाणक्य या कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' चन्द्रगुप्त मौर्य के काल का ऐतिहासिक दस्तावेज है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्ष-चरित' इतिहास के अच्छे ग्रन्थ है। कल्हण की 'राजतरंगिनी' मे आदि से ११५१ ई० के कोई १५०० वर्षो का कश्मीर का इतिहास है। बिल्हण के 'विक्रमांकदेव चरित' से इतिहास की अच्छी जानकारी मिलती है। ऐसे ही अन्य अनेक पौराणिक और साहित्य के अमर ग्रन्थ है, जिनमे भारत का पुराना इतिहास बिखरा पड़ा है। कितनी ही राज-प्रशस्तियो मे इतिहास की सूचनाएँ मिलती है। इनमे देवी-देवताओ और आश्रयदाताओं की कीर्ति के अतिरिक्त समाज-जीवन का बिम्ब मिलता है।

इतिहास का अभाव—फिर भी आज जिसे हम इतिहास की सज्ञा देते है, उसका भारतवर्ष मे अभाव रहा है। संभव है हमारी इस मानसिकता के पीछे जगत मिथ्या की अवधारणा रही हो? जिस देश और जाति ने अमर साहित्य की रचना की, जिसका गुणगान ससार की सभ्य जातियाँ करती है, जिस देश ने कला, सगीत और दर्शन के नए गवाक्ष उन्मुक्त किए और वह भी जब दुनिया के लोग इन बातो से नावाकिफ थे, वहाँ इतिहास रचना की ओर ध्यान नही गया, आश्चर्य और कौतूहल का विषय है। *असल मे इतिहास की सामग्री थी, लेकिन इसका आधुनिक वैज्ञानिक तरीके से इस्तेमाल* नही किया गया। मुसलमानी शासन काल मे इतिहास लिखने की थोडी प्रक्रिया शुरू हुई। अमीर खुसरो इतिहास के पंडित थे। उनके ग्रन्थ है 'मिफ्ताहुल फ्तूह' और 'खजाइनुल फ्तूह', जिनमे क्रमश: जलालुद्दीन खिलजी और अलाउद्दीन खिलजी के समय का वर्णन है। जायसी ने 'पद्मावत' की कथा अमीर खुसरो के 'खजाइनुल फ्तूह' से ही ली थी। जियाउद्दीन बरनी तुगलक काल के इतिहासकार है। इनकी रचना 'तारीखे

फीरोजशाह' इतिहास का अच्छा ग्रन्थ है। बाबर ने स्वयं 'बाबरनामा' लिखा था, जो मुगल साम्राज्य के संस्थापक का इतिहास ग्रन्थ है। अबुल फजल के इतिहास ग्रन्थ 'आईने-अकबरी' और 'अकबरनामा' में इतिहासकारों ने मुगलकाल के इतिहास की रचना की है। अब्दुल कादिर बदायूंनी का नाम निष्पक्ष इतिहासकारों में माना जाता है। बदायूंनी ने वाल्मीकि 'रामायण' तथा 'राजतरंगिनी' का भी फारसी में अनुवाद किया था। उनका 'सिंहासन बत्तीसी' का अनुवाद बड़े चाव से फारसी में पढ़ा जाता है। बदायूंनी के अतिरिक्त अन्य इतिहासकारों में निष्पक्षता का अभाव है। निष्पक्षता इतिहास की कसौटी है। इस कसौटी पर ब्रिग, जॉन मार्शल, विसेंट स्मिथ आदि विदेशी इतिहासकार भी खरे नहीं उतरते। इनके इतिहास ग्रन्थों में जिस निरपेक्षता की आवश्यकता होती है, उसका तो अभाव है ही साथ ही भारतीय समाज का समग्र जीवन भी उनमें प्रतिभासित नहीं होता। केवल कुछ घटना-प्रसंगों के आधार पर कल्पना के घोड़े दौड़ाये गये हैं।

यह एक बड़ा प्रश्न है कि जहाँ प्रथम शताब्दी के तथा बाद के साहित्य-ग्रन्थ मिलते हैं, वहीं इतिहास लेखन का कार्य १९वीं शताब्दी के पूर्व नहीं देखा गया। इस बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि इतिहास को जिस नजरिए से देखने की प्रवृत्ति पैदा हुई, उसकी रचना १९वीं शताब्दी में आरंभ हुई। इतिहास न होने की बात जैसे भारतीयों को सालती थी, वैसे ही बंगाल के लोगों को कचोटती थी। इतिहास के अभाव का एक बड़ा कारण पराधीनता को भी कहा जा सकता है। अंग्रेजों ने हमारे इतिहास को तोड़-मरोड़ कर रखने की चेष्टा की तथा अपने उपनिवेशवाद का सम्प्रसारण किया।

१९वीं शताब्दी का नवजागरण

१९वीं शताब्दी के नवजागरण ने भारतवासियों को पूरी तरह झकझोरा और उनमें नए विचारों का प्रकटीकरण हुआ। पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित भारतीयों ने जब देखा कि अंग्रेजों का इतिहास है, रोमन और ग्रीक लोगों का इतिहास है तो वे अपने अतीत के मंथन और इतिहास रचना में जुट गए। उस समय स्टुअर्ट, मार्शमैन, लेथब्रिज सरीखे अंग्रेज इतिहासकार भारतीय इतिहास को विकृत करने में लगे हुए थे। ऐसे लोगों को समुचित उत्तर देना जरूरी था। फलतः भारतीय इतिहास लेखक सामने आए। इनमें उल्लेखनीय है—बंकिमचन्द्र, यदुनाथ सरकार, राखालदास बनर्जी, रमेशचन्द्र मजुमदार, ताराचन्द, ईश्वरी प्रसाद, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, काशी प्रसाद जयसवाल, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, अनन्त सदाशिव अल्तेकर, कवलम माधव पणिकर, विनायक दामोदर सावरकर, देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर, राहुल सांकृत्यायन, शिव प्रसाद सिंह आदि।

१९वीं सदी में बंगाल में नवजागरण का सूत्रपात हुआ। इसका कारण स्पष्ट था।

यही से अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति के प्रचार-प्रसार की शुरूआत हुई थी। पश्चात पुनर्जागरण की हवा सारे देश में बहने लगी। इतिहास की यह एक विलक्षण नियति है कि बंगाल से ही अंग्रेजी शासन का आरम्भ हुआ और यही से उसको उखाड फेंकने का शंखनाद हुआ। नवजागरण के माहौल मे देशभक्ति की भावना का स्त्रोत यही से प्रवहमान हुआ और शनैः शनै उसने अंग्रेजो की दासता के विरुद्ध जेहाद का रूप धारण कर लिया। देशभक्ति की इस भावना और स्वदेशी की मानसिकता को आत्मसात करने के लिए इस काल-खण्ड के साहित्यिक, सामाजिक, अर्थनैतिक, राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलनो को समझना होगा। इन आन्दोलनो को बिना समझे हम १९वी शताब्दी के नवजागरण का मूल्यायन नही कर सकते।

पूर्व और पश्चिम का योगदान और टॉड का 'राजस्थान'

भारतीय प्राचीन साहित्य और इतिहास के अनुशीलन मे "द एशियाटिक सोसाइटी" का बडा अवदान है। सर विलियम जोन्स ने इस संस्था की १७८४ ई० मे स्थापना की थी। स्वयं विलियम जोन्स ने कालिदास के संस्कृत ग्रन्थो का अनुवाद किया। "शाकुन्तलम्" पर तो वे इतने मुग्ध हुए कि कालिदास की इस कृति पर अपने देश तक को न्यौछावर करने के लिए उद्यत हो गए। इस प्रकार अंग्रेजो के द्वारा भारतीय साहित्य की मुक्तकठ से प्रशसा होने लगी। चार्ल्स विल्किन्स ने श्रीमद्‌भागवतगीता का अनुवाद किया। मैक्समूलर ने वेदो का अध्ययन किया और भाष्य लिखा। इन सब कारणो से देश और विदेश मे एक आलोड़न की सृष्टि हो गई। अंग्रेजी पढे लोगो ने जब पाश्चात्य साहित्य पढा तो वे उसके प्रशंसक ही नहीं, अनुयायी बन गए और पाश्चात्य विद्वान भारतीय मनीषा के। इस पारस्परिक आदान-प्रदान की मानसिकता मे नवजागरण का जन्म हुआ। ईसाई धर्म और भारतीय धर्मो मे आदान-प्रदान हुआ, पूर्व और पश्चिम के संस्कारो मे संघात भी हुआ और अनुकरण की प्रवृत्ति भी बढी। आर्य समाज, ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज तथा डेरेजियो का आन्दोलन इसी मानसिकता की उपज है। इन आन्दोलनो का बड़ा प्रभाव रहा। ऐसे वातावरण में जब रोम और ग्रीक के वीरो की कीर्ति गाथा पढने का नए शिक्षित लेखको को मौका मिला तो वे अपने देश के वीरो की खोजबीन मे छटपटाने लगे। उन्होंने बंगाल और उसके आस-पास इन्हे देखने-खोजने की चेष्टा की, पर प्रभावोत्पादक कुछ हाथ नही लगा। तभी कर्नल जेम्स टॉड का इतिहास ग्रन्थ "एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान" दो खण्डो मे १८२९ ई० मे इगलैण्ड से प्रकाशित होकर सामने आ गया। अब क्या था—उन्हे अपना मनोवांछित ग्रन्थ मिल गया। इस ग्रन्थ मे देशभक्त वीर राजपूतो की कहानी से वे एकबारगी अभिभूत हो गए और साहित्य की विभिन्न विधाओ मे यथा, काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, इतिहास की रचना करने लगे।

बंगला साहित्य टॉड के राजस्थान का ऋणी है, जिसकी प्रेरणा से कोई एक शताब्दी तक अर्थात् १८५० से १९८० तक साहित्य-कृतियां बंगला में रची गईं और अब भी इस दिशा में प्रयास जारी है। आज भी उन प्राचीन साहित्य-कृतियों का पठन-पाठन होता है और बंगला साहित्य अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है। भारतीय नवजागरण में टॉड के 'राजस्थान' का यह महत्त्वपूर्ण योगदान है।

बंगला साहित्य के मूर्धन्य आलोचक डॉ० विपिन कुमार दत्त ने अपनी पुस्तक "बांग्ला साहित्ये ऐतिहासिक उपन्यास" के पृष्ठ ९ पर लिखा है—"बंगला साहित्य टॉड के 'राजस्थान' का कई दृष्टियों से ऋणी है। यदि 'राजस्थान' ग्रन्थ को यथार्थ इतिहास कहना भूल होगी। स्वयं टॉड ने भी इसे स्वीकार किया है, किन्तु इसका खेद नहीं है। जब कोई इतिहास ग्रन्थ ही मौजूद नहीं था तब टॉड ने एक ऐसे महाग्रन्थ का प्रणयन किया, जिसमें वीर राजपूतों का बड़ी श्रद्धा से वर्णन किया गया है। पुनर्जागरण के आविर्भाव में वीरता और देशभक्ति की जो ललक देशवासियों में पैदा हुई थी, उसको ऊर्जा देने में टॉड के 'राजस्थान' की अमूल्य देन है। कारण कि देश-प्रेम, सतीत्व-गौरव, वीरत्व और रोमांस से 'राजस्थान' ग्रन्थ भरा पड़ा है। इसी कारण ऐतिहासिक नाटककार, उपन्यासकार और काव्य-प्रणेता टॉड के प्रति अनुरक्त होने लगे और 'राजस्थान' ग्रन्थ का दोहन करने लगे। बंगला साहित्य में रची गई साहित्यिक कृतियां इस सत्य के पुष्ट प्रमाण हैं।"

राजस्थान का नामकरण

तपस्वी लेखक कर्नल जेम्स टॉड की जीवनी और उनके ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' पर अब हम विचार करेंगे। कितने आश्चर्य और विस्मय की बात है कि महात्मा टॉड ने नए भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में स्थित राजपूताना नामक क्षेत्र को कोई डेढ़ सौ वर्ष पूर्व 'राजस्थान' नाम से अलंकृत किया था। उस समय इसकी किसी इतिहासवेत्ता ने कल्पना तक नहीं की थी। आज भारत के मानचित्र में टॉड द्वारा दिए गए नाम से यह क्षेत्र 'राजस्थान' के नाम से जाना जाता है और देश के राज्यों में अपना वैशिष्ट्य रखता है। अंग्रेजों ने इस क्षेत्र का नाम 'राजपूताना' दिया, परन्तु अंग्रेज टॉड ने इसे 'राजस्थान' नाम से पुकारा और स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय सरकार ने टॉड के दिए नाम को ही स्वीकार किया। ऐसे महामना टॉड का नाम राजस्थान से गहरा जुड़ा हुआ है।

स्मरण रहे स्वाधीनता के पूर्व राजस्थान अनेक देशी रियासतों में बंटा हुआ था। आजादी के बाद लौहपुरुष सरदार पटेल ने इन रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया आरंभ की। ३० मार्च १९४९ ई० को कई रियासतों को मिलाकर 'राजस्थान' राज्य की स्थापना हुई।

टॉड का जीवन-परिचय

लेफ्टिनेंट कर्नल जेम्स टॉड का जन्म २० मार्च १७८२ ई० को इसलिंगटन (इंग्लैण्ड) में हुआ था। उसके पिता का नाम मिस्टर जेम्स टॉड था और माता का नाम मेरी हेटली था। पिता अंग्रेज था और स्कॉटलैण्ड का निवासी था और माता अमेरिका की थी। दोनों का विवाह ४ नवम्बर १७७९ ई० को न्यूयार्क में हुआ था। कर्नल जेम्स टॉड अपने माता-पिता की दूसरी संतान था। कहा जाता है कि टॉड उस प्राचीन वंश का था जिसके एक पूर्वज जॉन टॉड ने राबर्ट ब्रूस के बच्चों की तब रक्षा की थी जब वे इंगलैण्ड में बन्दी थे। स्वयं बादशाह ने अपने हस्ताक्षरों से उसको 'नाइट बैरोनेट' का पद और 'टॉड' का प्रतीकचिह्न (स्कॉटलैण्ड में 'टॉड' लोमड़ी को कहते हैं) तथा 'विजिलेन्टिया' का आदर्श शब्द प्रयुक्त करने की अनुमति प्रदान की थी।

कर्नल टॉड का मन बचपन से ही व्यावहारिक जीवन में निपुण था और उसकी सहज प्रवृत्ति जहाजी जीवन की ओर थी। उसके दो मामा पहले से ही ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकारी नौकरी में नियुक्त थे। फलतः कुल सोलह वर्ष की उम्र में ही वह अपने मामा पैट्रिक हेटली की प्रचेष्टा से १७९८ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेवा में नागरिक कॉलेज का कैडेट या प्रशिक्षणार्थी बन गया। वूलविच स्थित रायल मिलीटरी एकाडेमी में प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद जेम्स टॉड को १७९९ ई० में बंगाल के लिए रवाना कर दिया गया। कलकत्ता पहुँचने के बाद ९ जनवरी १८०० ई० को उसे दूसरी यूरोपियन रेजीमेंट में कमीशन याने पद दिया गया। फिर वह स्वेच्छा से मोलक्का द्वीप गया और वहां से उसका तबादला मराइन द्वीप में हुआ। मराइन में 'मारिंगटन' नामक जहाज में काम करता रहा और उसे सैनिक जीवन की सभी परिस्थितियों का अनुभव प्राप्त हो गया। २९ मई १८०० ई० को वह देशी पैदल फौज की चौदहवीं रेजीमेंट का लेफ्टिनेन्ट नियुक्त हुआ। और इसके बाद सैनिक के रूप में उसकी कलकत्ता से हरिद्वार तक की यात्रा हुई। इस बीच उसने अपनी तलवार का कमाल दिखाया। उस यात्रा-अभियान में उसके साथ लेफ्टीनेंट कर्नल विलियम निकाल था, जिसने जेम्स टॉड के बारे में कहा है—'टॉड सरल प्रकृति था और सभी अफसर उसे प्यार करते थे। उसमें उसी समय उदीयमान युवक के लक्षण दिखाई देते थे, जिनका उसके परवर्ती जीवन में प्रतिफलन हुआ और उसकी असाधारण प्रतिभा सामने आई।' वस्तुतः टॉड में ये गुण बचपन से ही दीख पड़ते थे।

कुछ समय टॉड ने नौ-सेना में भी काम किया। लार्ड वेलेसली की योजनानुसार मोलुका अभियान चलाया गया। इसी अभियान में उसे नौ-सेना के कार्य में

नियुक्त होना पड़ा। वह 'मार्निगटन' नामक जलयान में काफी समय तक रहा और इस अभियान के बाद ही उसे लेफ्टीनेन्ट से कैप्टन बनाया गया। १८०१ ई० में जब वह दिल्ली में कार्यरत था तो उसकी दक्षता के कारण उसे नगर के पास ही एक पुरानी नहर का सर्वेक्षण करने के लिए इंजीनियर के पद पर बहाल किया गया। इसके बाद वह १८०३ ई० में रेजिडेन्ट की रक्षक वाहिनी का प्रधान बना। रेजिडेन्ट रिचार्ड ग्रेचो ने उसे अपना द्वितीय प्रधान बना लिया। १८०५ ई० में मिस्टर ग्रीन मर्सर, जो उसके मामा का मित्र था, दौलतराव सिंधिया के दरबार में राजदूत और रेजिडेन्ट नियुक्त हुआ। वह जब पदभार सभालने जा रहा था तब टॉड द्वारा इच्छा प्रकट करने पर तथा उसकी बुद्धि-कौशल को देखकर, उसने उसे साथ ले लिया। सरकारी आदेश भी प्राप्त हो गया। इस यात्रा से टॉड की उन्नति का मार्ग काफी हद तक प्रशस्त हुआ।

सिंधिया महाराज के चल-दरबार के साथ टॉड १८१२ ई० तक रहा। उल्लेखनीय है कि १८१२ ई० में ही सिंधिया का दरबार स्थायी रूप से ग्वालियर में स्थापित हुआ। इस अवधि में उसने राजस्थान और मध्य भारत के इलाकों का बड़ी तत्परता और बुद्धिमानी से सर्वेक्षण किया। आगरा से चलकर जयपुर के दक्षिण भाग में होते हुए उदयपुर के मार्ग में बहुत-सा ऐसा क्षेत्र और भूभाग था, जिसकी भौगोलिक जानकारी ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों को नहीं थी। मि० मर्सर का कथन है—'टॉड ने बड़ी ईमानदारी के साथ अपने आपको इस मार्ग के सर्वेक्षण में लगा दिया और अपूर्ण यन्त्रों के द्वारा ही अपनी सहनशीलता, लगन एवं सहज सरलता के बल पर इस कार्य को दक्षता के साथ पूरा किया। इसका प्रमाण है कि परवर्ती काल में भी जब भौगोलिक सर्वेक्षण हुआ तो टॉड के तथ्यों से वह एक इंच भी इधर-उधर नहीं हुआ।' टॉड ने अपने नक्शे में मध्य भारत के इस अंचल का नाम 'सेन्ट्रल इंडिया' दिया है। वैसे टॉड की दृष्टि में कुछ देशी रियासतों के क्षेत्र का ही अर्थ सेन्ट्रल इंडिया था। १८१५ ई० में उसने तत्कालीन गवर्नर जनरल हैस्टिंग्स को अपना बनाया हुआ मानचित्र भेंट किया था। १८१७ ई० में लार्ड हैस्टिंग्स ने पिंडारियों का दमन करने का एक अभियान चलाया था। पिंडारी उन दिनों लूट-मार और आतंक फैला रहे थे। मध्य भारत में इन पिंडारियों का दमन करने में टॉड का भौगोलिक सर्वेक्षण बड़ा सहायक सिद्ध हुआ था।

टॉड द्वारा लिखित 'पश्चिमी भारत की यात्रा' पुस्तक, जो उनकी अंग्रेजी पुस्तक 'ट्रेवेल्स इन वेस्टर्न इंडिया' का हिन्दी रूपान्तर है, के अनुवादकर्त्ता श्री गोपाललाल बहुरा ने 'ग्रन्थकर्त्ता-विषयक संस्मरण' के पृष्ठ ४ पर लिखा है—'जब १८०६ ई० के बसन्त में राजदूत मर्सर सिंधिया के दरबार में पहुँचा तो उसका डेरा मेवाड़ के खण्डहरों में लगाया गया क्योंकि मराठा सरदार ने राणा की राजधानी के मार्ग पर बलात् अधिकार कर लिया था। ले० कर्नल टॉड ने तभी से इस क्षेत्र के विषय में हमारे भौगोलिक ज्ञान की कमियों को दूर करने का काम सभाल लिया और उसने जो स्पष्टोक्ति की, वह निर्विवाद

सत्य है कि 'उस समय के बाद जो भी मानचित्र छापे गए हैं, उनमें एक भी ऐसा नहीं है कि जिसमें बताई गई मध्य एवं पश्चिमी भारत की स्थिति मेरे परिश्रम पर आधारित न हो।'

इस कठिन कार्य को पूरा करने के लिए अपनाए गए तरीके का विवरण टॉड ने अपने 'राजस्थान का भूगोल' नामक शोध-पत्र मे दिया है, जो इतिहास ग्रन्थ के आरम्भ में लगाया गया है। यहां यह भी ज्ञातव्य रहे कि जब टॉड उदयपुर पहुंचा था तब कृष्णकुमारी को विषपान कराने की अमानवीय घटना मेवाड़ के राजघराने मे घट रही थी। इसी कारण चश्मदीद गवाह के रूप मे उसने अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में इस घटना पर विस्तार से प्रकाश डाला है और इसी उपाख्यान पर माइकेल मधुसूदन दत्त ने बंगला साहित्य मे प्रथम दुःखान्त नाटक 'कृष्णकुमारी' १८५८ ई० मे लिखा।

१८१८ ई० मे राजपूताना की रियासतो ने ब्रिटिश सरकार के साथ संरक्षण संधि की। इसके तहत उन्हें आन्तरिक स्वतंत्रता प्रदान की गई और बदले मे उन्होंने वार्षिक राजस्व का एक अंश अंग्रेज सरकार को देना स्वीकार किया। ये संधियां दिसम्बर १८१७ ई० एवं जनवरी १८१८ ई० मे हुई। फरवरी १८१८ ई० मे ब्रिटिश गवर्नर जनरल ने कैप्टेन टॉड को, जो उस समय ग्वालियर मे रेजिडेन्ट का राजनीतिक सहायक था, राजस्थान की रियासतों के लिए राजनीतिक प्रतिनिधि (पोलिटिकल एजेन्ट) नियुक्त किया। १८१८ ई० से १८२२ ई० तक टॉड ने इस पद पर तबतक अपनी कार्य-कुशलता का परिचय दिया जब तक १८२२ ई० मे उसने इस पद से अवसर नहीं ग्रहण किया। टॉड के जीवन के ये वर्ष बड़ी उपलब्धियों के है।

टॉड के कार्य

राजनीतिक प्रतिनिधि के विपुल अधिकार से मंडित होकर टॉड ने उस क्षेत्र की दशा सुधारने मे अपने को पूरी तरह लगा दिया। खासकर मुगल शासन के पतन से यहां की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी। उसने शान्ति और विश्वास की स्थापना की और कोई एक वर्ष की अवधि में ही टॉड ने पश्चिमी राजपूताना की प्रायः तीन सौ नगरियो और ग्रामो को फिर से बसाने का भगीरथ प्रयत्न किया। इसके पूर्व वाणिज्यिक द्रव्यो की रफ्तानी पर लगा कर-भार समाप्त हो गया था, फिर भी राजस्व के परिमाण मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई। टॉड ने राजपरिवारो का उद्धार किया, उनके आपसी झगडों को मिटाया और सौहार्द्रपूर्ण वातावरण की सृष्टि की। मराठों के आक्रमण मे उदयपुर के राणा संत्रस्त थे। उसने मराठो का कड़ा प्रतिकार किया।

विशपहरबर ने १८२५ ई० मे राजपूताना का भ्रमण किया था। उसे पता चला कि टॉड के आगमन के पूर्व यह क्षेत्र काफी पिछड़ा था। ठगो और पिण्डारियो के आक्रमण होते थे। टॉड ने इन सबको खत्म कर पूरे इलाके को खुशहाल बनाया। देशी

राजाओ और प्रजा के साथ उसकी आत्मीयता थी। टॉड की इस जन-प्रसिद्धि का ऐसा प्रभाव पडा कि कलकत्ते के सरकारी अफसरो मे उसके प्रति संदेह होने लगा।

इतिहास प्रेमी टॉड

कर्नल जेम्स टॉड इतिहास का अद्भुत प्रेमी था। उदयपुर मे रहते हुए उसको अपने प्रिय विषय इतिहास की प्रचुर सामग्री एकत्रित करने का अवसर मिला। इसके लिए उसने बहुत-सा धन व्यय किया और शारीरिक श्रम भी उठाया। उसने यहाँ की भाषाओ को अच्छी तरह सीखने की कोशिश की। संस्कृत, प्राकृत, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के पंडितो को वह अपने पास रखकर, द्रव्य खर्च कर साहित्यिक अनुसंधान और संकलन कराता। प्राचीन ताम्रपत्र, शिलालेख, पट्टो आदि का उसने संग्रह किया। भाट, बारहट, चारण, राव आदि जन-कवियों से मुखजवानी जो कुछ कथा-कहानी वह सुनता, उनको नोट करता। टॉड के इस अनुसधान-कार्य मे जैन-विद्वान यती ज्ञानचन्द्र का बड़ा सहयोग रहा। टॉड ज्ञानचन्द्र जी से बहुत-सी जानकारी हासिल करता। वे प्राचीन शिलालेख पढने मे पारंगत थे।

टॉड पर राजस्थान का प्रभाव

इस प्रकार राजपूत राज्यो के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालने वाली विशाल सामग्री उसने इकट्ठी की। उस सामग्री के अध्ययन से और तत्कालीन राजपूताना के प्रमुख निवासियो के सहानुभूतिपूर्ण सम्पर्क से उसके मन पर प्रदेश की समग्र संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। तत्कालीन अन्यान्य अंग्रेजो की अपेक्षा वह यहाँ के लोगो का बड़ा हितैषी बन गया और अपने अधिकार का प्रयोग सबलोगो के हित की दृष्टि से करने लगा। राजाओ और जागीरदारो को भी वह जनहितकारी न्यायप्रिय बातें बताता रहता। उसके इस सोच के पीछे शायद यह मानसिकता रही कि जो जाति इतनी वीर और सत्यनिष्ठ है, उसकी उन्नति करना उसका धर्म है। अंग्रेजो की स्वार्थी शासन प्रणाली का कभी-कभी वह मुखर आलोचक हो जाता। इस तरह लगता था कि वह राजपूत संस्कृति से पूरा प्रभावित था। स्वाभाविक है कि उसके इस प्रकार के जनहितकारी व्यवहार और उदार विचारो की गन्ध कलकत्ता के उच्च सत्ताधारी अंग्रेज शासको तक पहुँची। उसकी गतिविधियो को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा और उसके अधिकारो मे कटौती कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि कर्नल टॉड को अपने पद से १८२२ ई० मे त्यागपत्र देना पडा।

टॉड बड़ा स्वाभिमानी, न्यायप्रिय, निष्पक्ष, निःस्वार्थी और सच्चा साहित्योपासक था। उसे जब भान हुआ कि उसके सत्कार्य को कुत्सित संदेह की दृष्टि से देखा जाता है तो उसने पद से त्यागपत्र दे दिया और अपने देश इंगलैंड जाने की तैयारी करने लगा। उसने संकल्प किया कि इगलैण्ड मे बैठकर वह राजपूताने के प्राचीन

इतिहास की बहुमूल्य सामग्री को सुव्यवस्थित रूप से सजाकर पुस्तकाकार रूप देगा।

कलकत्ता के उच्चाधिकारी अंग्रेजों ने टॉड पर भ्रष्टाचार के जो मनगढंत आरोप लगाये थे, वे बेबुनियाद और द्वेषपूर्ण थे। विशपहरबर ने इन आरोपों को मनगढंत और बेबुनियाद बताया है। टॉड ने कुल २४ वर्ष भारत मे कम्पनी की नौकरी की। वह १६ वर्ष की उम्र में भारत आया था और ४० वर्ष की उम्र में यहाँ से स्वदेश लौटा। उसने अपने त्याग-पत्र मे यद्यपि अपने गिरते स्वास्थ्य का कारण बताया था, पर हम देखते हैं कि १८२२ ई० मे अवसर ग्रहण करने के बाद उसने पश्चिम भारत की यात्रा की। वह इसी टेढ़े-मेढे रास्ते से बम्बई गया। असल मे उसकी इतिहास शोध की बलवती इच्छा अभी समाप्त नहीं हुई थी और वह राजपूत जाति के उत्स स्थानों का निरीक्षण करना चाहता था। इसलिए आबू से सौराष्ट्र के मार्ग से होता हुआ वह बम्बई पहुँचा और वहाँ से इंगलैण्ड लौट गया। उसकी 'पश्चिमी भारत की यात्रा' नामक अंग्रेजी पुस्तक का उसकी मृत्यु के बाद १८३६ ई० में प्रकाशन हुआ।

भारत से इंगलैण्ड लौटने के बाद टॉड ने अपना शेष जीवन इंगलेण्ड मे अतिवाहित किया। १ मई १८२४ को उसकी पदोन्नति मेजर के रूप में हुई और १ जून १८२६ को वह लेफ्टीनेन्ट कर्नल बना। १६ नवम्बर १८२६ को टॉड ने लंदन के एक चिकित्सक क्लटरबक की पुत्री से विवाह किया। उसके दो पुत्र एवं एक कन्या उत्पन्न हुई। १८२७ मे उसने काउन्ट डे बोइगने का भ्रमण किया और १६ नवम्बर १८३५ को लौम्बार्ड स्ट्रीट मे व्यापारिक काम से गया जहाँ १७ नवम्बर १८३५ को उसकी रोगाक्रान्त होने से मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उसकी उम्र ५३ वर्ष की थी।

लन्दन मे रहते हुए टॉड का सम्पर्क इगलैण्ड की रायल एशियाटिक सोसाइटी से था। कुछ समय उसने यहाँ के पुस्तकाध्यक्ष के रूप में कार्य किया था। उसने कई प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ, सिक्के और ऐतिहासिक दस्तावेज एशियाटिक सोसाइटी को प्रदान किए। टॉड की प्रसिद्ध पुस्तक 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' दो भागों में विभक्त है। इस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड १८२६ ई० मे तथा द्वितीय खण्ड १८३२ ई० मे इंगलैण्ड से प्रकाशित हुआ। पहला खण्ड इंगलैण्ड के सम्राट चतुर्थ जार्ज को और दूसरा खण्ड सम्राट चतुर्थ विलियम को समर्पित किया गया है।

राजस्थान की माटी और वहाँ के लोगों के साथ टॉड का कैसा लगाव था यह उनके शब्दों में देखिए—

"हमलोग मेवाड़ की सीमा पर पहुँच गए। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है। मैंने जब वहाँ पहुँच कर सुना कि राजपूतो की इस भूमि पर आजकल मराठों और पठानों का अधिकार है तो मुझे दुःख हुआ। मैं उसी समय सोचने लगा कि जिनके पूर्वज इतने साहसी और शूरवीर थे कि उनके सामने युद्ध मे आने के लिए कोई साहस नही कर

सकता था, उनके वंशजो की यह दशा थी कि आज उनकी भूमि पर दूसरो का अधिकार है। इसमे कोई सन्देह नही कि आज वे राजपूत अयोग्य दिखाई देते है। परन्तु उनकी सामर्थ्य का अभी लोप नही हुआ है।

किसी भी दशा मे मेवाड़ के साथ मेरा वही सम्बन्ध है, जो सम्बन्ध गोद लिए जाने के बाद किसी भूमि पर किसी का हो जाता है। मेवाड के साथ मेरा गभीर सम्बन्ध है। यहाँ के प्रत्येक मनुष्य को, प्रत्येक बच्चे को और यहाँ की मिट्टी को मैं स्नेह के साथ देखता हूँ। मेवाड के साथ मेरे जीवन का यह अटूट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध के कारण मेरे मुख से निकलता है—'मेवाड़! सभी प्रकार की कमजोरियो के होने पर भी मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।'

'Mewar, with all thy faults, I love thee still'

मेवाड़ से ही नही, मैं सम्पूर्ण राजस्थान के साथ प्रेम करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि राजपूतो की कमजोरियाँ दूर हो जायें। अफीम और मदिरा के सेवन ने इन राजपूतो को अयोग्य और अकर्मण्य बना दिया है। मैं आशा करता हूँ कि इन राजपूतो के वंशज अपने पूर्वजों के अवगुणो को न अपना कर उनके सद्गुणो को अपनायेंगे।" (टॉड लिखित 'राजस्थान का इतिहास'—अनुवादक-केशव कुमार ठाकुर, पृष्ठ ६६८)। इस प्रकार के आत्मीय लगाव से लिखा गया टॉड का 'राजस्थान' भारतवासियो के गले का कण्ठहार बन गया।

डॉ० अनिल बनर्जी का अभिमत

कर्नल टॉड ने अपनी पुस्तक का नाम दिया है 'एनाल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान।' प्रश्न है, उन्होने इसका नाम 'हिस्ट्री ऑफ राजस्थान' क्यों नही दिया? उसी काल-खड मे इतिहास की और दो पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुई थी—"एक थी हिस्ट्री ऑफ महाराष्ट्र" (History of Maharastra) जिसे ग्रान्ट डफ (Grant Duff) ने लिखा था और दूसरी पुस्तक है, "हिस्ट्री ऑफ बँगाल" (History of Bengal) जिसे चार्ल्स स्टुअर्ट ने लिखा था। प्रश्न है, टॉड साहब ने अपनी इतिहास पुस्तक का यह नाम क्यों दिया? असल में वे राजस्थान का एक ऐसा ऐतिहासिक वृतान्त देना चाहते थे, जिसमें प्राचीनकाल की रीति-नीति का एक सांगोपांग इतिवृत्त हो। इस दृष्टि से टॉड का 'राजस्थान' केवल इतिहास की ही पुस्तक नही है, अपितु इसमे पौराणिक काल से लेकर अंग्रेजी शासन काल तक की राजस्थान तथा भारत की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक परंपरा का विवरण है। साथ ही भौगोलिक, प्राकृतिक और रीति-रिवाजो का भी उसमें विवरण है। वास्तव मे किसी जाति के इतिहास को पूरी तरह जानने के लिए इन बातों का विशेष महत्व है। केवल इतिहास की तिथि दे देना ही इतिहास नहीं है। इतिहास तो किसी जाति या राष्ट्र को जानने का एक

साधन है—एक जरिया है। उसे पूर्ण रूप से हम तभी जान सकते है जब इन तमाम दृष्टियों से इतिहास मे हमें जानकारी मिले। हम अपनी बात की पुष्टि के लिये प्रसिद्ध इतिहासकार तथा हमारे कॉलेज (महाराजा मणीन्द्र चन्द्र कॉलेज) के पूर्व प्राचार्य डॉ० अनिल चन्द्र बनर्जी के वक्तव्य को यहाँ उद्धृत करना चाहेंगे। डॉ० अनिल चन्द्र बनर्जी ने दिसम्बर १९६१ ई० मे स्व० रघुनाथ प्रसाद नोपानी व्याख्यानमाला के अन्तर्गत 'राजपूत इतिहास' (Lectures on Rajpoot History) पर कलकत्ता विश्वविद्यालय मे सात व्याख्यान दिए थे। आपके इन व्याख्यानो का सकलन 'लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री' पुस्तक के रूप मे कलकत्ता से १९६२ ई० मे प्रकाशित हुआ है।

वस्तुत. किसी भी जाति को उसके भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश के द्वारा ही समझा जा सकता है। इसी तथ्य को टॉड ने राजस्थान मे दिखाया है। इतने बडे फलक पर रचा गया 'राजस्थान' ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। डॉ० अनिल चन्द्र बनर्जी ने पुस्तक के पृष्ठ १८५ पर लिखा है—

"We must remember that Tod was the only British historical writer of those days who did not confine his attention to princely battles and oligarchical squabbles He tried to put his facts in wider perspective of history; ..."

आपने आगे पृष्ठ १८६ पर लिखा है—

"Perhaps Tod himself was conscious that he was not fulfilling the rigorous demands of history. He called his book "Annals and Antiquities of Rajasthan"; he did not call it 'History of Rajasthan' There is a clear distinction between the work of Tod and the works of Grant Duff and Cunnigham although the three writers deal with three Indian groups linked together by some common historical peculiarities Tod's canvas was larger even if his utilisation of sources was less critical. But the writing of annals is an art which serves the cause of history and cannot, therefore, be ignored by the most discerning and fastidious historians." [Lectures on Rajpoot History, By Dr. Anil Chandra Banarjee, Page 185 and 186.]

राजस्थान का भूगोल

टॉड ने अपने राजस्थान ग्रन्थ के आरम्भ मे भूगोल सम्बन्धी परिचय लिखा है— "भारतवर्ष मे राजपूत राजाओं के रहने वाला क्षेत्र राजस्थान के नाम से जाना जाता है। इसको रजवाड़ा, रायथाना और राजपूताना भी कहा जाता है। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के पहले राजस्थान का विस्तार कहाँ तक था यह नही कहा जा सकता। संभव

है उस समय उसकी सीमा गंगा, यमुना को पार कर हिमालय के करीब तक पहुँच गई हो। इस समय हमारे सामने उतना ही राजस्थान है, जिसके अन्तर्गत अनेक जातियाँ रहती हैं और जिसे राजस्थान अथवा राजपूताना कहा जाता है। इसका क्षेत्र गुजरात की राजधानी अहमदाबाद और मालवा की राजधानी मांडू तक फैला है। राजस्थान की चौहद्दी इस प्रकार है—इसके पश्चिम में सिंधु नदी का कछार, पूर्व में बुंदेलखण्ड, उत्तर मे सतलज के दक्षिण का मरुस्थल भाग, जो जगल्देश कहलाता है और दक्षिण मे विन्ध्याचल पर्वत है। इसका क्षेत्रफल कोई तीन लाख पचास हजार वर्गमील है।"

[Tod's Annals and Antiquities of Rajasthan, Geography of Rajasthan or Rajpootana, Vol I, Page I]

टॉड साहब ने १८१५ ई० मे राजस्थान का एक नक्शा बनाया था, जिसका उल्लेख हमने पूर्व मे किया है। आपका यह मानचित्र पुस्तक के आरम्भ मे पूरी भव्यता के साथ प्रकाशित हुआ है, जिसमे राजस्थान का अक्षांश और देशान्तर तथा उसके नदी, पहाड़ और क्षेत्रो का पूरा विवरण है, उस समय जब भूगोल जानने के साधन नही के बराबर थे, टॉड ने राजस्थान का मानचित्र बनाकर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। वस्तुतः आज भौगोलिक आधार पर जिस क्षेत्र को हरियाणा और मध्यप्रदेश के चम्बल इलाके का क्षेत्र कहा जाता है, वह राजस्थान की सीमा में ही था। मध्यप्रदेश के इन्दौर और हरियाणा की संस्कृति राजस्थान की ही संस्कृति है। मालवा राजस्थान का अग था। आबू पहाड़ के पास का क्षेत्र जो गुजरात और सौराष्ट्र के नाम से जाना जाता है, राजस्थान के क्षेत्र का एक भाग था।

टॉड ने अपने "राजस्थान का इतिहास" ग्रन्थ मे राजस्थान के जिन राज्यो का इतिहास लिखा है उनका क्रम इस प्रकार है—(१) मेवाड़ अथवा उदयपुर (२) मारवाड़ अथवा जोधपुर (३) बीकानेर और कृष्णगढ़ (४) कोटा (५) बूंदी (६) आम्बेर अथवा जयपुर या ढूंढाड़-शेखावाटी (७) जैसलमेर (८) हिन्दुस्तान का मरुस्थल भाग, जो सिन्धु नदी के कछार तक चला गया है।

राजपूतों का ऐतिहासिक परिचय—

टॉड के 'राजस्थान' में राजपूत जातियों की उत्पत्ति का इतिहास ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में दिया गया है। इस अनुसंधान और खोजबीन में लेखक ने पौराणिक ग्रन्थों का सहारा लिया है। पुराणो में भारत के ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णन पाये जाते हैं। टॉड ने लिखा है—ऐतिहासिक और भौगोलिक सामग्री जुटाने में भागवत, स्कन्द, अग्नि और भविष्य-पुराण अधिक सहायता करते हैं।

[Being desirous of epitomising the chronicles of the martial races of Central and Western India, it was 'essential to

ascertain the sources whence they draw, or claim to draw, their lineage. For this purpose I obtained from the library of the Rana of Oodipoor their sacred volumes, the Poorans and laid them before a body or pundhits, ovar whom presided the learned Jetty Gyanchandra. From these extracts were made of all the genealogies of the great races of Soorya and Chandra and of facts historical and geographical—[Ibid page 17]

इस प्रकार इतिहासकार टॉड ने मध्य और पश्चिमी भारत की वीर राजपूत जातियो का इतिहास लिखने मे पौराणिक ग्रन्थों की भरपूर सहायता ली। पुराणो मे छिपे इतिहास और भूगोल को खोजना बड़ा कठिन काम है, किन्तु पुराणों मे अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन के साथ कई तथ्य एक दूसरे के विरोधी भी हैं। अति मानवीय पुरुषो के जीवन चरित्र से वे जुड़े हैं। कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भारतीय धर्म मे वर्णित बातें बहुत कुछ उसी प्रकार है, जिस प्रकार संसार की अन्य जातियों और उनके धर्म-ग्रन्थों में है, प्रायः सभी जातियो के प्राचीन ग्रन्थो के अनुसार, सृष्टि की उत्पत्ति महाप्रलय के बाद से आरम्भ होती है। अग्नि-पुराण मे इसका वर्णन है। ब्रह्मा की आज्ञा से समुद्र ने समस्त संसार को नष्ट कर दिया। उस समय वैवस्वतमनु (नूह या नोहा), जो हिमालय के पास रहता था, उसने मछली और नौका की सहायता से अपनी और अन्य जीवधारियों की रक्षा की। इसी मनु से संसार के सभी मनुष्यो की उत्पत्ति हुई। प्राचीन ग्रन्थो मे वैवस्वतमनु को सूर्यपुत्र माना जाता है और ईसाई उसको नूह या नोहा के नाम से मानते हैं। ईसाइयो का विश्वास है कि महाप्रलय मे नूह बच गया था और उसके बाद से संसार के मनुष्यो की उत्पत्ति हुई। इस तरह पुराणो से लेखक ने काफी सामग्री ली है। सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं की वंशावली टॉड ने भागवतपुराण और अग्निपुराण से संग्रह की है। उल्लेखनीय है कि इन वंशावलियो का कुछ हिस्सा सर विलियम जोन्स, मिस्ट बेंटले और कर्नल विलफर्ड के द्वारा ऐशियाटिक सोसाइटी की पुस्तकों मे प्रकाशित हो चुका है।

टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ लिखकर जहाँ साहित्य की सेवा की, वहीं उन्होंने भावी इतिहासकारों के लिए एक राजमार्ग प्रस्तुत कर दिया। दूरदर्शी और दुराराध्य इतिहास वेत्ताओं के लिए भी 'राजस्थान' प्रकाश-स्तम्भ बन गया। कॉलेज मे डॉ० बनर्जी से जब कभी इतिहास पर बातें हुआ करती तो घूम-फिरकर टॉड का उल्लेख हो जाता और तभी से अर्थात् छठे दशक से 'राजस्थान' पर शोध-कार्य करने का मेरा मानस बना। बाद मे इस विषय पर मुझे हमारे बंगला विभाग के अध्यक्ष स्व० डॉ० रथिन्द्र-नाथ राय से प्रेरणा मिली। उन दिनो उन्होंने नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय पर अपना

शोध-ग्रन्थ पूरा किया था। आपने द्विजेन्द्रलाल राय और हिन्दी नाटककार जयशंकर प्रसाद पर भी अपने शोध-ग्रन्थ मे चर्चा की है। इस तुलनात्मक अध्ययन के विचार-विमर्श मे टॉड का नाम अक्सर आ जाता और बंगला साहित्य में 'राजस्थान' मे ली गई उप-कथाओं की जानकारी मिल जाती। द्विजेन्द्रलाल राय के चार नाटक 'ताराबाई', 'मेवाड़ पतन', 'दुर्गादास' तथा 'राणा प्रताप' टॉड के 'राजस्थान' की उपकथाओ पर आधारित हैं।

टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ की भूमिका

महामना टॉड के ग्रन्थ को तथा हमारे देश के इतिहास को समझने के लिए 'राजस्थान' ग्रथ में टॉड द्वारा लिखी गई भूमिका महत्वपूर्ण है। हम यहाँ उसका विस्तार से उल्लेख करेंगे, जिससे लेखक के विचारो को पूरी तरह हृदयंगम किया जा सके। कर्नल जेम्स टॉड लिखित भूमिका इस प्रकार है—

"यूरोप मे इस बात पर बड़ी गहराई से निराशा प्रकट की गई है कि भारतवर्ष मे ऐतिहासिक चिन्तन का अभाव है। जब सर विलियम जोन्स ने सर्वप्रथम संस्कृत साहित्य के विपुल भण्डार की खोज शुरू की तब यह आशा जगी थी कि इस कार्य से विश्व-इतिहास को नई उपलब्धि होगी। किन्तु आशा पूरी नही हुई। आमतौर पर अब लोग इस बात को मानते हैं कि भारत का कोई इतिहास नही है। लेकिन फ्रांस के एक प्रसिद्ध प्राच्य-विद्या-विशारद ने उपरोक्त धारणा के विरुद्ध यह प्रश्न उठाया है कि अगर भारत का कोई इतिहास नहीं था तो अबुल फज़ल को प्राचीन हिन्दू इतिहास को लिपिबद्ध करने के लिये सामग्री कहाँ से मिली? वास्तव मे कश्मीर के इतिहास सम्बन्धी पुस्तक 'राजतरंगिणी' का अनुवाद विलसन ने प्रस्तुत करके इस भ्रम को आंशिक रूप मे दूर कर दिया। इससे यह प्रमाणित होता है कि भारत में इतिहास लिखने की परिपाटी का अभाव नही था। ['राजतरंगिणी' की रचना महाकवि कल्हण ने १२ वी शताब्दी में की थी। उसमें कुल ७८२६ श्लोक हैं, जिसमे सिलसिलेवार वर्ष, मास और तिथि देकर पौराणिक काल से लेकर १२ वी सदी तक अर्थात डेढ हजार वर्ष का इतिहास है।] इसी भाँति खोज करने से और भी इतिहास ग्रथ मिल सकते है। वैसे फ्रांस और जर्मनी के विद्वानो के अलावा कोल ब्रुक, विलकिन्स, विलसन तथा अंग्रेज विद्वानो ने भारत के ऐतिहासिक साहित्य को प्रकाश मे लाने का प्रयत्न किया है, किन्तु इतने पर भी यही कहा जा सकता है कि हम अब तक भारतीय इतिहास-ज्ञान के दरवाजे तक ही पहुँच पाये है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे बड़े-बड़े पुस्तकालय अब भी मौजूद है, जो इस्लाम-धर्म के आक्रमणकारियो के विध्वंस से बच गए है। उदाहरणार्थ जैसलमेर और पट्टन में ऐसे पुस्तकालय विद्यमान हैं,

जो अलाउद्दीन की ध्वंसलीला से बच गए। इन दोनों राज्यों को अलाउद्दीन ने जीता था और कदाचित् वह इन पुस्तकालयों को देख लेता तो उनकी वैसी ही दुर्दशा करता जो उमर ने सिकंदरिया के पुस्तकालयों की की थी। [खलीफा उमर के सेनापति उम्र इब्न लआस ने सन् ६४० ई० में मिश्र के प्रसिद्ध नगर सिकंदरिया को जीत कर वहां के पुस्तकालय को जलाकर खाक कर दिया था। कहते हैं पुस्तकों का संग्रह कई महीनों तक जलता रहा और शहर के हम्मामों में जल गरम होता रहा।] भारत के मध्य एवं पश्चिमी क्षेत्रो मे अब भी कई छोटे-बड़े पुस्तकालय है, जिनमे हजारो की सख्या मे ग्रन्थ है। यदि हम भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का अवलोकन करें, बाहरी आक्रान्ताओ की उथल-पुथल को देखें, जो महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद लगातार भारत मे होते रहे है, तो इतिहास के अभाव के कारण को समझ सकते है। इसमे आक्रमणकारियो की असह्य धार्मिक कट्टरता भी एक कारण है। यह एक मान्य सत्य है कि प्राचीन काल मे हिन्दू एक सभ्य और शिक्षित जाति थी—यहाँ की संस्कृति-सभ्यता उन्नत थी। उसने साहित्य संगीत, शिल्प और अनेक दूसरी कलाओ मे बड़ी योग्यता प्राप्त की थी। तब यह कैसे माना जा सकता है कि भारत के लोग अपने इतिहास की घटनाओ को क्रमबद्ध रूप से लिखने की कला से अनभिज्ञ थे?

हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, अणहिलवाड़, सोमनाथ जैसे शहर, दिल्ली एवं चित्तौड़ के विजय-स्तम्भ, आबू और गिरनार के मन्दिर, एलिफेण्टा और एलोरा के गुफा-मन्दिर—ये सब उच्च और भव्य-सभ्यता के निदर्शन हैं, इन्हें देखकर यह सोचा भी नहीं जा सकता कि उस युग में जहाँ ऐसी उच्च स्थापत्यकला, ललितकला के कार्य हुए, उस समय कोई इतिहासकार नहीं रहा होगा। इतना होने पर भी महाभारत के युद्ध से लेकर सिकंदर के आक्रमण तक और उस महायुद्ध से लेकर महमूद गजनवी के आक्रमण काल तक विशुद्ध हिन्दू-इतिहास का एक भी पृष्ठ पश्चिमी विद्वानो के समक्ष नही खोला जा सका है। भाट-कवि चन्द द्वारा 'पृथ्वीराज रासो' मे, जो दिल्ली के अन्तिम हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज के वीरतापूर्ण कारनामो का वृहद्-ग्रन्थ है, ऐसे कई संकेत मिलते हैं कि उस काल मे अन्य कई ग्रन्थ थे, पर काल के गाल में वे विलीन हो गए।

महमूद गजनवी के आक्रमण से लेकर आठ सौ वर्षों तक भारत की अव्यवस्था जिस संकट मे रही तथा इस देश की प्राचीन संस्कृत भाषा का बिलकुल ज्ञान न रखनेवाले उन असभ्य, कट्टर और अत्यन्त क्रुद्ध शत्रुओ द्वारा इस देश के प्रत्येक प्रधान नगर को बार-बार लूटने और विनष्ट करने के बाद, जिस प्रकार उसके साहित्य की होलियाँ जलाई

गईं, उन बातों पर एक बार नजर डालने से यह स्वतः ही प्रकट हो जाता है कि जब इस देश के राजा-महाराजा अपनी राजधानियों से भगाये जाते थे और वे असुरक्षित अवस्था में एक दुर्ग से दूसरे दुर्ग में जाकर सांस लेते थे, पहाड़ों की कन्दराओं में रहने के लिए मजबूर होते थे और हमेशा यह आशंका रहती थी कि सामने परोसी हुई भोजन की थाली को भी न छोड़ना पड़े, तब क्या ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक घटनाओ को लेखबद्ध करने का विचार दिमाग मे आ सकता था ? मुझे रजवाड़े के इतिहास की अपूर्ण अवस्था पर ये अकाट्य तर्क सुनने को मिलते थे ।

जो लोग हिन्दुओ से उसी प्रकार के ग्रन्थो की रचना की आशा रखते हैं, जिस प्रकार कि ग्रीस और रोम के ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गए हैं, तो वे एक बड़ी भारी भूल करते हैं । ऐसे लोग भारतवासियो की इन विशेषताओ पर ध्यान नहीं देते, जो उन्हें अन्य देशो की जातियों से पृथक करती है और जो उनकी बौद्धिक रचनाओ को पश्चिम की रचनाओ से भिन्न रूप मे विकसित करती हैं । उनके दर्शन, उनके काव्य, उनकी शिल्पकला सभी में एक अनोखी मौलिकता के गुण विद्यमान हैं, तो उनके इतिहास में भी उन गुणों की अनुपस्थिति नहीं माननी चाहिए । उनकी उपरोक्त समस्त कलाओं की भाँति, उनके इतिहास का स्वरूप भी देशवासियों के धर्म के साथ उनके घने सम्बन्ध से निश्चित हुआ है । साथ ही इस बात का भी स्मरण रखना चाहिए कि जब तक यूरोप के पुरातन साहित्य-ग्रन्थो की शैलियो का अध्ययन करके उसके आधार पर इंगलैण्ड और फ्रांस के साहित्य की शैली ठीक नहीं की गई थी तब तक इन देशों का इतिहास ही नही वरन यूरोप की सम्पूर्ण श्रेष्ठ जातियो के इतिहास भी उसी प्रकार अनघड़, अव्यवस्थित एवं शुष्क भाषा में लिखे जाते थे जैसे कि प्राचीन राजपूतों के इतिहास रहे हैं ।

यद्यपि नियमबद्ध वास्तविक इतिहास के लेखकों का अभाव है तथापि दूसरे कई देशीय ग्रन्थ उपलब्ध है (जो वास्तव में बड़ी भारी संख्या में मिलते हैं) यदि कोई चतुर, दृढ़, साहसी व्यक्ति उनका शोध करे तो वह उनसे भारत के इतिहास के लिये यथेष्ट मात्रा में सामग्री प्राप्त कर सकता है । इन ग्रन्थों में सर्वप्रथम पुराण और राजाओं के वंशवर्णन सम्बन्धी कथाएँ हैं, जो धर्म सम्बन्धी कहानियों, रूपकों और असंभव चमत्कारी वृत्तान्तों से मिल जाने के कारण गड्ड-मड्ड हो गई हैं, फिर भी उनमें ऐसे तथ्य हैं, जो इतिहास-शोध के लिए मार्ग-दर्शक का काम देते हैं । विद्वान ह्यूम ने सेक्सन जाति के सात राज्यो के इतिहास और इतिहासकारो के सम्बन्ध में जो बातें कही हैं, वे राजपूतो के सात राज्यों के बारे में भी सही है । [जब रोमन लोग इंगलैण्ड छोड़ कर चले गए तो उनके पीछे ऐंग्लो-सेक्सन जाति ने उस देश को जीत कर सात राज्य कायम किए थे । ये राज्य सन् ४५७ से

८२७ ई० तक कायम रहे।—इसी भाँति राजपूतों के सात राज्य हैं—मेवाड़, मारवाड़, आमेर, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा, और बूंदी] कहने का तात्पर्य यह है कि उनमे नामों की बहुतायत है, किन्तु घटनाओ का अत्यन्त अभाव है अथवा यूं कहा जा सकता है कि परिस्थितियो और कारणो के बिना वे परस्पर इस प्रकार उलझे हुए हैं कि परम मेधावी लेखक भी उनको पाठको के लिए रुचिप्रद या शिक्षाप्रद बनाने में असफल होगा। ईसाई साधु (जैसे राजस्थान मे ब्राह्मण) जो सांसारिक कार्यो से पृथक् रहते थे, लौकिक कार्यों को पारलौकिक कार्यों से भिन्न समझते थे, उन पर सहज रूप से विश्वास करने, आश्चर्यपूर्ण घटनाओ के प्रति प्रेम रखने और छल-प्रपंच करने का स्वभाव पड़ गया था।

भारत की ऐतिहासिक सामग्री के लिए यहाँ के युद्ध सम्बन्धी काव्य भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। लेकिन कविता और इतिहास दो जुदा-जुदा चीजें हैं। साहित्य में दोनों की शैली अलग-अलग है। जब तक साहित्य में इतिहास लेखन की परंपरा शुरू नहीं हुई तब तक तत्कालीन कविजन ही वास्तविक घटनाओं को लेखबद्ध या कविताबद्ध करने और अपने युग के प्रसिद्ध व्यक्तियों की स्मृति को अमरत्व प्रदान करने का कार्य करते थे। जॉब एक ईश्वर-भक्त थे, जो ईसा के बहुत पहले हुए थे। जॉब के समकालीन भारत मे 'महाभारत' के रचयिता व्यास थे। व्यास जो के समय से चली आनेवाली 'केलिओपी' अर्थात् सरस्वती की पूजा वर्तमान इतिहास-लेखक चेनीदास के समय में भी मेवाड़ में होती है। (यूनान मे वीररसात्मक काव्य की अधिष्ठात्री देवी का नाम केलिओपी था, जिसे भारत मे सरस्वती देवी समझा जाता है। इस केलिओपी की पूजा जॉब के समय यूनान मे होती थी।)

असल में राजा और कवि के बीच स्वार्थ का एक समझौता रहता है (यह प्रवृत्ति आज भी वर्तमान है), इस समझौते के फलस्वरूप कवि राजा की प्रशंसा करने के लिए पुरस्कार में धन, मान और पदवी पाता है और कवि के ऐसा करने से इतिहास तत्वों की ईमानदारी में अन्तर आ जाता है। कवि का पक्षपात और विद्रोह दोनों ही इतिहास के लिए घातक हैं। दोनों ही स्थितियों में कवि सत्य से काफी दूर चला जाता है। युद्ध सम्बन्धी काव्यों में ऐसे दोष स्वाभाविक रूप से देखे जाते हैं। काव्य-ग्रन्थों में राजपूतों के इतिहास को इन दोषों से मुक्त नहीं समझा जा सकता। इसलिए ऐसे ग्रन्थों के मंथन और संशोधन की आवश्यकता है। अस्तु, इस प्रकार के दोषों के होने पर भी भाटों की पुस्तकों से इतिहास की बहुत सी सामग्री प्राप्त की जा

सकती है।

इतिहास जानने के अन्य साधनों में मंदिरों के दान, भेंट और उनके निर्माण-मरम्मत होने आदि के विषय में जो लेख या शिलालेख मिलते हैं, उनमें भी इतिहास की बहुत सी सामग्री मिलती है। इसी प्रकार की खोज करने पर धार्मिक स्थानों और धार्मिक कथाओं में भी बहुत सी चीजें मिलती हैं, जो इतिहास लेखन में सहायक होती हैं। जैनियों की धार्मिक पुस्तकों में कुछ ऐतिहासिक तथ्य पाये जाते हैं। इस देश की धार्मिक पुस्तकों में आडम्बर अधिक है, लेकिन एक चतुर अन्वेषक अपने गंभीर मंथन से अमूल्य रत्न प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार की कई पुस्तकों का विद्यमान होना मुझे ज्ञात है, जो ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दोनों प्रकार के वृतान्तों से परिपूर्ण हैं। उनमें 'रास' अथवा राजाओं की छन्दोबद्ध कथाएँ बहुत ही सामान्य रूप में मिलती हैं, स्थानीय पुराण, धार्मिक लेख और जनश्रुतियों के दोहे भी मिलते हैं। शिलालेख, सिक्के, ताम्रपत्र, अधिकार की सनदें, जिनमें कई प्रकार के अधिकारों और देश की शासन-व्यवस्था का उल्लेख होता है, आदि से इतिहास की सामग्री जुटाई जा सकती है। इनके अतिरिक्त इतिहासकार को उस समय के दूसरे वृतान्तों से सहायता मिल सकती है, जिनकी पुष्टि प्राचीन मूर्तिपूजकों और विदेशी मूर्तिभंजकों की भूमिका से की जा सकती है।

कवि मनुष्य जाति के प्राचीन इतिहासकार माने जाते हैं। पश्चिमी भारत में अन्य लेखकों के साथ-साथ कवि इतिहास के प्रधान लेखक रहे हैं। लेकिन इनकी कविता की भाषा एक अजीब विशिष्ट भाषा है, (यहाँ टॉड का आशय राजस्थान की प्राचीन डिंगल भाषा से है) जब तक इस भाषा का गंभीर भाषा में अनुवाद नहीं होता है या कोई जानकार उसे समझता नहीं है तब तक उन कविताओं का अर्थ समझना कठिन है। उनमें अतिशयोक्तियाँ अधिक रहती हैं, जिनसे इतिहास का सही अंश नष्ट हो जाता है। इस दशा में प्राचीन काल में जिन कवियों ने ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख अपने काव्यों में किया है, उनके ग्रन्थों से ऐतिहासिक सामग्री लेने का कार्य बड़ी सावधानी का होता है। अगर ऐसा न किया गया तो इतिहास इतिहास न होकर, मात्र कविता या कहानी बन कर रह जाता है।

जब से इस मनोरम देश से मेरा राजकीय सम्बन्ध प्रारम्भ हुआ, तब से मैंने स्वयं को उसके प्राचीन ऐतिहासिक लेखों की खोज और संग्रह में लगाया। इस कार्य को करने का मेरा उद्देश्य था कि इस देश के लोगों के इतिहास पर कुछ प्रकाश डाला जाय, जिनके बारे में यूरोप के लोगों को बहुत कम जानकारी है। पाठकों के लिए यह बात

अरुचिकर होगी यदि मैं इसका विस्तृत वर्णन करने लगूँ कि मैंने किस प्रकार राजपूत इतिहास के छिन्न-भिन्न अवशेषो का संग्रह किया और किस प्रकार उनका सार निकाल कर उसको वर्तमान स्वरूप देकर पुस्तकाकार बनाया। यह कार्य मैंने पुराणों की पवित्र वंशावलियों से आरम्भ किया, महाभारत का अध्ययन किया और चन्द की कविताओं (जो पूरी तरह तत्कालीन ऐतिहासिक विवरण से युक्त है), जैसलमेर, मारवाड़ और मेवाड़ की अनगिनत ऐतिहासिक कविताओं, खींची राजपूतों और कोटा-बूंदी के हाड़ा राजपूतों आदि के इतिहासों को उनके अपने-अपने भाटों से सुना। ['मारवाड़' के इतिहास सम्बन्धी काव्यों मे 'सूरज-प्रकाश', 'विजय-विलास' और ख्यातो अथवा आख्यायिकाओं मे शासनकालों के कुछ वर्णन भी मिलते है। मेवाड़ के इतिहास विषयक ग्रन्थ 'खुमान रासो' एक नवीन ग्रन्थ है, जो लुप्त हो गई प्राचीन सामग्रियों के आधार पर बनाया गया है। इसमे महमूद की चितौड़ पर की गई चढ़ाई से वर्णन आरम्भ किया गया है। यह महमूद सम्भवतः इस्लाम के बहुत प्रारंभिक काल के सिन्ध निवासी किसी कासिम का लड़का था। इसके सिवाय दूसरे 'जय विलास', 'राजप्रकाश' तथा 'जगत् विलास' काव्य है, जो अपने नाम के प्रसिद्ध राजाओ के समय में निर्मित हुए हैं। परन्तु इनमें पुराने ऐतिहासिक वृतान्त बहुत सक्षेप मे हैं। इसके सिवाय जयपुर के इतिहास-संग्रहालयो मे जयपुर-राजवंश से सम्बन्धित वर्णन भी हैं और 'मानचरित्र' में राजा मान का इतिहास है।] आमेर या जयपुर के राजा जयसिंह (जो वर्तमान काल के हिन्दू राजाओ में विज्ञान के सबसे बडे संरक्षक है) द्वारा संकलित सामग्री का कुछ भाग मेरे हाथों पड़ गया, जिसमे उनके वंश का इतिहास वर्णित किया गया है।

[लगभग दस वर्ष तक एक जैन विद्वान (यति ज्ञानचन्द्र) की सहायता से मैं ऐसे प्रत्येक ग्रन्थ की खोज में रहा, जो राजपूतो के इतिहास के बारे मे किसी भी प्रकार के तथ्यो अथवा घटनाओं पर प्रकाश डालता हो या उनके आचार-व्यवहार एवं चरित्र सम्बन्धी बातों का उल्लेख करता हो। यह कार्य कोई साधारण नहीं था और उसके लिये अधिक से अधिक परिश्रम की आवश्यकता थी। इस कार्य और परिश्रम में मुझे सुख मिलता था। लेकिन मेरे स्वास्थ्य ने अधिक साथ नहीं दिया और रुग्णावस्था ने इस देश से लौट जाने के लिए मुझे मजबूर किया। प्राचीन संस्कृत और देशी भाषा के हस्तलिखित ग्रंथ जो मैं भारत से इंगलैण्ड लाया था, मैंने उनको रायल एशियाटिक सोसाइटी, इंगलैण्ड मे दे दिया। वैसे अभी तक इन हस्तलिखित ग्रन्थो पर काम नहीं हुआ है, सम्भव है जाँच करने पर उनमें से इतिहास के कई नए दिगंत उद्घाटित होंगे। इस कार्य में मुझे केवल इतने ही यश का भागी बनना है कि मैं उन्हें यूरोपीय विद्वानो की जानकारी में ले आया हूँ।

यदि यह स्वीकार करना पड़े कि कवियो ने अपने वर्णन में अतिशयोक्ति से काम लिया है तो उसके साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उस समय राजपूत जाति का वैभव निश्चित रूप से तरक्की पर रहा होगा। अनेक शताब्दियो तक एक वीर जाति का अपनी स्वतन्त्रता के लिए लगातार युद्ध करते रहना, अपने पूर्वजों के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करना और अपनी मान-मर्यादा के लिए बलिदान हो जाने की भावना रखना, मनुष्य के जीवन की एक ऐसी अवस्था है, जिसको देखकर और सुनकर शरीर रोमांचित हो जाता है। इस देश के ऐतिहासिक स्थानो में पहुँच कर जो कुछ मैंने सुना ओर समझा है, यदि उसका सही-सही चित्र खींचकर मैं अपने पाठकों के सामने ला सकूँ, तो मुझे विश्वास है कि मैं अपने देशवालों की उदासीनता को दूर कर सकूँगा, जिसके कारण वे इस देश के इतिहास को जानने और खोजने की चेष्टा नहीं करते। राजस्थान में एक भी ऐसा छोटा राज्य नहीं है जिसमें थर्मोपली (उत्तर और पश्चिम यूनान के मध्य एक तंग घाटी और रणक्षेत्र) के सामान रणभूमि न हो और एक भी ऐसा शहर नहीं है, जिसमें लियोनिदास जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो। [ई० पूर्व ४८० में ईरान के बादशाह जर्कसीज ने २६,४१,४६० सैनिकों के साथ यूनान पर आक्रमण किया था। उस समय वहाँ के छोटे-छोटे राजाओं ने मिल-कर स्पार्टा के वीर राजा लियोनिदास को थर्मोपली की घाटी में आठ हजार सेना के साथ ईरानियों से युद्ध करने भेजा था। ईरानियो ने कई बार इस घाटी पर आक्रमण किया, किन्तु लियोनिदास की बहादुरी से हर बार हारकर उन्हें पीछे लौटना पड़ा। अंत मे एक विश्वासघाती मनुष्य की सहायता से ईरानी सैनिक पहाड़ी पर चढ़ आये। लियोनिदास को अपनी सेना के बहुत से लोगों के ईरानियों से मिल जाने का संदेह हुआ। उसने अपने साथ केवल १००० विश्वासपात्र सैनिकों को रखा और बड़ी वीरता से युद्ध करता रहा तथा अपनी अद्भुत वीरता का प्रदर्शन कर वीरगति को प्राप्त हुआ।] किन्तु काल के आवरण ने राजस्थान की वीरतापूर्ण घटनाओ को ढक दिया है, जिन्हें इतिहास-कार की जादू भरी लेखनी अत्यन्त प्रशंसा का पात्र बनाती। सोमनाथ की तुलना डेल्फस (यूनान देश के एडलफी नगर का प्रसिद्ध 'एपोलो' अर्थात सूर्य मंदिर) से करता, भारत की लूट का माल लीबिया के राजा की अतुल सम्पत्ति के बराबर ठहरता और पाण्डवों की सेना के सम्मुख जर्कसीज की सेना महत्वहीन मालूम पड़ती। परन्तु हिन्दुओ के यहाँ या तो हेरोडोटस (यूनान का विख्यात इतिहास लेखक—जो ई० पूर्व ४८४-४२४ के काल मे हुआ था) और जीनोफन (यह भी यूनान का इतिहासकार और सुकरात का मित्र था—जो ई० पूर्व ४४४ से ३५६ मे हुआ था) के समान इतिहास लेखक हुए ही नहीं अथवा हुए भी तो दुर्भाग्यवश उनके ग्रन्थ लुप्त हो गए।

इस देश के प्राचीन नगरों के खंडहरो के बीच बैठकर मैंने उनके विध्वंस होने की कहानियाँ ध्यान देकर सुनी हैं और उनकी रक्षा करने के लिए इस देश के जिन राजपूत

वीरो ने अपने जीवन की आहुतियाँ दी हैं, उनको सुनकर मैं अवाक् होकर रह गया हूँ। इस देश के इतिहास को समझने के लिए मैंने यहाँ के उन स्थानों को स्वयं जाकर देखा है, जहाँ पर युद्ध हुए हैं अथवा किसी विदेशी शत्रु ने यहाँ पर आक्रमण किया है। घटनास्थलो को देखकर और उस समय की बहुत सी बातों को सुनकर भी मैंने इतिहास की सामग्री जुटाने का काम किया है। इस बात से मुझे शंका नहीं है कि भारतीय नामों के उच्चारण से, जो यद्यपि एक हिन्दू के लिए संगीतमय और अर्थपूर्ण हैं, किन्तु *एक यूरोपियन के लिए कर्णकटु एवं अर्थविहीन हैं, किसी प्रकार का कुप्रभाव पड़ेगा;* क्योंकि यह बात स्मरण करने योग्य है कि पूरब का प्रत्येक नाम किसी न किसी शारीरिक अथवा मानसिक गुण का बोधक होता है।

राजस्थान का इतिहास लिखते हुए मैंने इस बात को स्वीकार किया है कि राजस्थान और यूरोप की वीरजातियो का जन्मस्थान एक ही था। मैंने भारत में जागीरदारी की प्रथा को ठीक वैसे ही पाया है, जैसा कि प्राचीन यूरोप मे प्रचलित थी और उसके टूटे-फूटे अश आज भी हमारे देश के राज्य-शासन मे पाये जाते हैं। अपने जीवन मे मैंने जो ऐतिहासिक खोज की है, वह मुझे इस सत्य को स्वीकार करने के लिये बाध्य करती है। लेकिन सभी मेरी इस विचारधारा के साथ सहमत नही भी हो सकते है। अब पुराना संसार बदल चुका है और लोग नई ऐतिहासिक खोजो पर अधिक विश्वास करने लगे हैं। फिर भी मैं अपने प्रमाण विश्व के निष्पक्ष निर्णय के लिए प्रस्तुत करता हूं। ऐसा करने पर ही पाठक ग्रन्थकार के अनुसंधान और परिश्रम की प्रशंसा करेंगे।

इस इतिहास में अनेक कमजोरियाँ और त्रुटियाँ है, उन्हें मैं जानता हूँ। उनके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ। इन त्रुटियों के लिए मैं अपने गिरे हुए स्वास्थ्य को दोषी मानता हूँ फिर भी किसी प्रकार मैं इसे किसी भाँति पूरा कर सका हूँ। यहाँ यह भी कह देना चाहूँगा कि प्रस्तुत विषय को इतिहास की कठिन शैली मे गठित करने की मेरी इच्छा कभी नहीं थी, जिसका परिणाम यह होता कि ऐसी बहुत सी बातें मुझे निकाल देनी पड़ती जो राजनीतिज्ञो अथवा जिज्ञासु विद्यार्थियो के उपयोग की होती। मैं इस ऐतिहासिक ग्रन्थ को परिपूर्ण नही मानता। इसलिए भविष्य में जो विद्वान इस इतिहास को लिखने का काम करेंगे, मैं उनको अपने इस इतिहास की सामग्री भेंट करता हूँ। मुझे इस बात की चिन्ता नही है कि मैंने ग्रन्थ के आकार को अत्यधिक बढा दिया है, किन्तु मुझे इस बात की अवश्य चिन्ता रही है कि कोई उपयोगी सामग्री एकत्रित करने में रह तो नहीं गई।" [Introduction by Jams Tod, Annals & Antiquities of Rajasthan, Page XIII to XX, Oriental Reprint, New Delhi 1983.]

चूंकि टॉड के 'राजस्थान' को हमने १९वी शताब्दी के पुनर्जागरण के परिप्रेक्ष्य

में अध्ययन के रूप में प्रस्तुत किया है—अतः उनकी भूमिका को यथासंभव अविकल रूप से प्रस्तुत करना अत्यावश्यक था। इससे हम न केवल लेखक के विचारों को ही समझ सकेंगे, अपितु 'राजस्थान' मे प्रतिपाद्य विषय-सामग्री को भी समझ सकेंगे। एक विदेशी इतिहासकार ने कितने श्रम और लगन से राजस्थान की वीर प्रसविनी मरुधरा के सपूतों के लुप्त-विलुप्त इतिहास को प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयत्न किया, यह कम महत्व की बात नही है। एक ग्रन्थ नवजागरण में कितना सहायक सिद्ध हुआ और उससे समस्त भारतीय मनीषा को जबरदस्त रूप से प्रभावित किया, यह दिखाना ही हमारा इस पुस्तक में अभिप्रेत विषय रहा है।

कर्नल जेम्स टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ मे मरुधरा के वीर-साहित्य का पूरी तरह उपयोग किया गया है—प्राचीन ग्रन्थो-प्रशस्तियो और ऐतिहासिक दस्तावेजो से सहायता ली गई है। इसलिए हमने बंगला साहित्य मे 'राजस्थान' के प्रभाव को दर्शाने के साथ-साथ हिन्दी और राजस्थानी के उन अमर ग्रन्थों पर भी सम्यक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इससे अवश्य ही पुस्तक का कलेवर बढ़ गया है, पर महामना टॉड के शब्दों में ही कहना पड़ता है कि "कोई उपयोगी सामग्री एकत्रित करने में रह तो नहीं गई है।" यह बात हमे प्रेरित करती रही है। सच पूछा जाय तो हमने अपनी अल्पबुद्धि से केवल थोड़ी सी सूचनाएँ दी है—जो भविष्य मे इस विषय के अध्येताओ के लिए पगडंडियाँ खोजने मे सहायक सिद्ध हो सकें तो हम अपने श्रम को सार्थक समझेंगे। जैसे टॉड ने यूरोप और विश्व के लोगों के सामने राजस्थान को उजागर किया है, वैसे ही हमने भी देश के चिन्तकों, विचारकों, लेखकों, समालोचकों, सुधि विद्वानों के सामने एक छोटा सा प्रयास किया है, जिससे देश की सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं भावनात्मक एकता को बल मिले और हमारा स्वर्णिम भारत पुनः नई पीढ़ी को प्रेरणा दे सके, जो पश्चिमी विचारों से दिग्भ्रमित है।

कितनी बड़ी विडम्बना है कि स्वतंत्रता के पश्चात देश में पश्चिम की जीवन-पद्धति के प्रति रुझान बढ़ा है। हर स्वतंत्र राष्ट्र का अपना गौरव, अपनी भाषा, अपना जीवन-दर्शन होता है, किन्तु बढ़ती भोगवाद की अंधी नकल एक बड़ा प्रश्नवाचक चिह्न लगा रही है। जैसे भोग और त्याग दोनो का जीवन में महत्व है, वहीं आदर्श और यथार्थ का भी। हमारे यहाँ इन दोनों का समन्वय था। इसी तथ्य को हमने इतिहास के माध्यम से प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। नीर-क्षीर विवेचन का कार्य सुधि विद्वान करेंगे।

टॉड का 'राजस्थान' : विद्वानों की सम्मतियाँ

"टॉड का राजस्थान" कर्नल जेम्स टॉड के २५ वर्षों तक भारत मे रहने का श्रम है। उसने अपने अध्यव्यवसाय और परिश्रम तथा पाण्डित्य से एक ऐसा इतिहास ग्रन्थ लिखा, जिसकी यूरोप और भारत मे धूम मच गई। यद्यपि उसने चारण और भाटों से सुनी गाथाओं को पुस्तक में स्थान दिया है, जिससे परवर्ती काल में वे ऐतिहासिक संदिग्धता से देखी जाती हैं, पर चूँकि उस समय राजस्थान के इतिहास पर इससे प्रामाणिक कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं था, अतः उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई और बंगाल मे उसकी ख्याति फैल गई। "टॉड के राजस्थान" का बंगला साहित्यकारो पर इतना जबरदस्त प्रभाव पड़ा कि वे उसकी उपकथाओ से साहित्य-भण्डार को भरने लगे। देश की स्वाधीनता और वीर-चरित्रो के निर्माण में राजस्थान की स्तुत्य भूमिका रही है। इस सराहनीय ग्रन्थ और ग्रन्थकार का श्रम इसी से प्रकट होता है कि बंगला भाषा ही नहीं, वल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य-वाङ्मय मे टॉड के 'राजस्थान' को श्रद्धा से देखा जाने लगा। टॉड के ऋण से बंगला-साहित्य और भारतीय-साहित्य उऋण नही हो सकता है। इसी का अध्ययन हमने इस पुस्तक मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। यह कार्य कितना ठीक-ठाक बन पड़ा है यह सुधि पाठकों पर निर्भर है।

डॉ० वरुण कुमार चक्रवर्ती ने अपनी पुस्तक "टाडेर राजस्थान उ वांग्ला साहित्य" के १४वें पृष्ठ पर लिखा है—"टॉड के 'राजस्थान' का गुरुत्व अपरिसीम है। जिस समय इस ग्रन्थ की रचना हुई, उस समय भारतवर्ष के इतिहास, पुरातत्व, समाजतत्व एवं भूगोल के सम्बन्ध में चर्चा आरम्भ हुई थी। अतः स्वाभाविक है कि ग्रन्थ में इतिहास सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं, जिन पर बाद की खोजों से नए तथ्य उद्‌घाटित हुए हैं। कुछ इतिहासकारो ने इसकी समालोचना की है, किन्तु इतना तो स्वीकारना पड़ेगा कि राजस्थान के इतिहास के अध्ययन मे टॉड का ग्रन्थ अपरिहार्य है।"

'टॉड के राजस्थान' ग्रन्थ की भूमिका मे सी० एच० पी० वोगेल ने लिखा है—"टॉड राजपूत जाति के शौर्य, पराक्रम और वीरता से प्रभावित होकर इतने मुग्ध हो गए थे कि उन्होने अपने आपको एक राजपूत के रूप में ढाल लिया—

"He not only knew them thorough and thorough their manners, their tradition their character and their ideals, but so great was his admiration for their many noble qualities, and so completely did he identify himself with their interests, that by the time he left India he had almost become a Rajpoot himself." Preface by C. H. P. Vogel [Annals and Antiquities of Rajasthan, Oxford University Press, 1920]

टॉड ने राजस्थान के इतिहास की जो आधारशिला रखी, उसमें संभव है पच्चीकारी, मीनाकारी और सफेदी में थोड़ी-घनी खामी रह गई हो, पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि बाद के तमाम इतिहासकारों को टॉड के इस भित्ति-स्थापन के गलियारे से ही गुजरना पड़ा, उनके लिए अलग कोई पगडंडी नहीं थी। हर आरम्भ के पुरस्कर्त्ता को झाड़-झंखाड़ साफ कर राजमार्ग बनाना पड़ता है और टॉड ने ऐसा महनीय कार्य किया। हम अपनी इस बात को सी० एच० पी० वोगेल के सुर से जोड़ने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं—

"Not withstanding its author's occasional inaccuracies and the somewhat glaring defects of his style, the 'Annals and Antiquities of Rajasthan' still holds its place as the standard authority on the history of Rajasthan States of subsequent writers of Indian history, it would be difficult to point to a single one who has not been benefited directly or indirectly by Tod's labours.". [Ibid-Preface by Vogel]

महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने टॉड की जीवनी में लिखा है—

"टॉड साहब का जीवन-चरित्र बहुत बड़ा है और वह पढ़ने ही नहीं समझने के योग्य है। उन्होंने इतिहास लिखने के साथ-साथ अपनी मनुष्यता का परिचय दिया, वह संसार में बहुत कम मिलता है। टॉड साहब भारत में राजस्थान का इतिहास लिखने के लिए नहीं आये थे। लेकिन उन्होंने यहाँ आकर जो कुछ देखा, उससे उन्हें मालूम हुआ कि योरप के लोगों को भारतवर्ष के सम्बन्ध मे और विशेषकर इस देश के राजपूतों के सम्बन्ध में बहुत गलतफहमी है। इस गलतफहमी के कारण योरप के लोगों ने इस देश की उपेक्षा कर रखी है। उसको दूर करने के लिए टॉड साहब ने इतिहास का यह महान ग्रन्थ लिखा और लिखा इतिहास की बहुत बड़ी योग्यता के साथ ही नहीं, बल्कि उस मनुष्यता के साथ जो आराधना के योग्य है। उनकी यह योग्यता इस ऐतिहासिक ग्रन्थ के प्रत्येक पन्ने मे है।

वे गरीबों से प्रेम करते थे। पीड़ितों के साथ बैठकर अपनी सहानुभूति प्रकट करते थे। राजपूतों की कमजोरियों पर अफसोस करते थे और उनको समझा-बुझाकर अच्छी जिन्दगी बनाने के लिए आदेश करते थे। राजपूत अफीम का सेवन करते थे। उससे उनकी शक्ति नष्ट हो रही थी। इसलिए अफीम का सेवन छोड़ने के लिए वे राजपूतों से प्रतिज्ञाएँ कराते थे। टॉड साहब की मनुष्यता और कर्त्तव्यपरायणता की प्रशंसा नहीं की जा सकती। वे कहा करते थे—

"मैं इस देश के महलों से नहीं मिट्टी से प्रेम करता हूँ, वृक्षों और उनकी शाखाओं से स्नेह रखता हूँ। इस देश के स्त्री-पुरुषों के साथ में अपना आत्मिक सम्बन्ध रखता हूँ।" टॉड साहब की इन बातों ने उनको इस देश के रहनेवालों के साथ सदा के लिए स्नेह की मजबूत जंजीर में बांध दिया था। संसार में इतिहासकार बहुत मिलेंगे, लेकिन किसी विद्वान इतिहासकार में यह मनुष्यता नहीं मिलेगी।" (टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास, अनुवादक—केशव कुमार ठाकुर, पृष्ठ १२)।

पुरातत्वाचार्य मुनि जिनविजय ने टॉड के 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इंडिया' का हिन्दी रूपान्तर 'पश्चिमी भारत की यात्रा' के अनुवाद और प्रकाशन मे बेजोड़ भूमिका निभाई है। आपने ग्रन्थ के "संचालकीय वक्तव्य" में 'राजस्थान ग्रन्थ' पर अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—

"टॉड का लिखा हुआ महान ग्रन्थ 'राजस्थान का इतिहास' संसार में सुप्रसिद्ध है। जबसे यह ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ तभी से यह भारत के कोने-कोने में पढ़ा जाने लगा और भारत की प्रसिद्ध भाषाओं मे उसके अनुवाद, सार, समुद्धार आदि प्रकाशित होते रहे हैं। बंगाल में तो वह इतना लोकप्रिय और प्रेरणादायी हुआ कि उसकी अनेक सस्ती आवृत्तियां निकल चुकी है। बंगाल के अनेक उपन्यासकार, नाटककार और कथाकार लेखकों के लिए तो यह राष्ट्र-प्रेम, धर्म-प्रेम और वीर्य-शौर्य के भावों से भरा हुआ एक महान निधि-रूप ग्रन्थ है।"

"इस ग्रन्थ में उल्लिखित तथा प्रतिपादित ऐतिहासिक तथ्यों के बारे में इसके प्रकाशन के प्रारम्भकाल से लेकर आज तक अनेकानेक विद्वानों, शोधकों, आलोचकों आदि ने भिन्न-भिन्न प्रकार के मत व्यक्त किये हैं, नाना प्रकार की टिप्पणियाँ लिखी हैं और आज भी वह क्रम चालू है। बस यही एक बात इस ग्रन्थ की विशिष्टता, लोकप्रियता और प्रेरणात्मकता सिद्ध करने मे पर्याप्त है। इतिहास लेखन में उपयुक्त जिस प्रकार की साधना-सामग्री और शास्त्रीय पद्धति का अवलम्बन आज लिया जाता है, वह उस समय ज्ञात नही थी।"

स्वामी विवेकानन्द की उक्ति

बंगला साहित्य मे 'राजस्थान' ग्रन्थ का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है। स्वामी विवेकानन्द ने 'वाणी उ रचना' के नवम खंड के पृष्ठ ३२४ पर अपने विचार इन शब्दों मे व्यक्त किए हैं—

'बांग्लार आधुनिक जातीय भाव समूहेर दूई-तृतियांश एई वईखानी होइते गृहीत।'

बंगाल के आधुनिक जातीय भाव समूह का दो-तिहाई हिस्सा टॉड के 'राजस्थान' से संगृहीत है।

स्वामी विवेकानन्द के विचारों और उनकी रचनाओं को "स्वामी विवेकानन्देर वाणी उ रचना" ग्रन्थ मे उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता की ओर से १३५६ बंगाब्द (१९५२ ई०) मे प्रकाशित किया गया है। यह ग्रन्थ दस खण्डों में है, जिसके नवम खण्ड में 'स्वामीजीर सहित हिमालये' नामक बंगानुवाद है—यह अनुवाद सिस्टर निवेदिता की अंग्रेजी पुस्तक "Notes of some wandering with the Swami Vivekananda' का बंगला अनुवाद है—"स्वामी जी के साथ हिमालय में।" 'वाणी और रचना' के दस खण्ड हिन्दी में भी प्रकाशित हुए हैं। "स्वामीजीर सहित हिमालये" ग्रंथ के पृष्ठ ३२४ पर लिखा है —"श्रीनगर की चेनार डल छावनी में १४ अगस्त, १८९८ ई० से २० सितम्बर, १८९८ ई० तक स्वामीजी वहाँ रहे। उनके साथ सिस्टर निवेदिता थी।"

आगे लिखा है—"१६ सितम्बर, मंगलवार की बात है। स्वामीजी हमारी छावनी में मध्याह्न-भोजन पर पधारे। अपराह्न में जोरों की वृष्टि होने लगी। अतः उनका वापस लौटना रुक गया। वहां पास मे ही टॉड का 'राजस्थान' ग्रन्थ रखा हुआ था। उस ग्रन्थ को हाथ मे लेकर अपनी बातचीत के सिलसिले में स्वामीजी ने मीराबाई के सम्बन्ध मे कुछ बातें बताई—फिर टॉड के 'राजस्थान' को दिखाकर बोले—"बांग्लार आधुनिक जातीय भावसमूहेर दुई-तृतियांश एई बोईखानि होइते गृहीत।" स्वामीजी ने कहा—इस पुस्तक के सभी अंश उत्तम है—मीराबाई का आख्यान बड़ा मधुर है। राजरानी होकर मीरा कृष्ण-प्रेम की दीवानी हो गई। उसने राजपाट छोड़ दिया। इसके बाद स्वामीजी ने मीरा का एक गीत सुनाया—

हरि से लागि रहो रे भाई,
तेरा जनम सुफल हो जाई।
अंका तारे, बंका तारे, तारे सुजन कसाई
सुगा पढ़ाय के गणिका तारे, तारे मीराबाई।

('वाणी उ रचना', पृ० ३२४)

पुनः स्वामी विवेकानन्द ने अपनी बात को आगे बढाते हुए पृ० ३२६ पर हमारे राष्ट्रीय वीरों के बारे मे विचार व्यक्त करते हुए कहा है—"महाराणा प्रताप सिंह वीर योद्धा थे—स्वतन्त्रता-प्रेमी थे। कभी किसी ने उस वीर को नत नहीं किया। उन्होने किसी की वश्यता स्वीकार नहीं की। हाँ, एक बार क्षणिक दुःख के कारण उन्हें ऐसा करना पड़ा जब वन-बिलाव बच्चों की रोटी छीन कर भाग गया। उस समय मेवाड़-केसरी बच्चो को क्षुधा से छटपटाते हुए देख कर आत्मविह्वल हो गया—उनका हृदय

क्रन्दन करने लगा। ऐसी मार्मिक स्थिति मे क्षणमात्र के लिए उन्होने अकबर से संधि करने की बात सोची। तभी भगवत् कृपा से वहाँ एक राजपूत पत्र लेकर हाजिर हो गया। पत्र में लिखा था—"विधर्मी के संस्पर्श से जिसका रक्त कलुषित नही हुआ है—ऐसा हमारे बीच एक ही वीर है—उन्होंने भी माथा नत किया है—यह बात कोई नहीं कहे।" इस पत्र को पढ़ते ही राणा प्रताप का हृदय साहस और आत्मज्योति से चमत्कृत हो गया। उन्होने पुनः वीरव्रत में रत होकर शत्रुपक्ष का संहार किया और उदयपुर को पुनः प्राप्त कर लिया।" (वही पृ० ३२६)

तत्पश्चात् इसी पृष्ठ पर कृष्णकुमारी के विषपान की कथा का उल्लेख है। स्वामीजी ने कहा—"कृष्णा का पाणिग्रहण करने के लिए तीन सेनावाहिनी मेवाड़ के दुर्ग पर आ डटी थी। कृष्णा के पिता (राणा भीम सिंह) को बाध्य होकर अपनी कन्या को विषपान कराने के लिए विवश होना पड़ा। कृष्णा के चचेरे भाई को विषपान कराने का दायित्व दिया गया। वह सोई हुई कृष्णा के रूप-सौंदर्य और कोमल अंग देख कर लौट आया। कृष्णा जग गई—उसने स्वयं विषपान किया।" (वही पृ० ३२६)

"ऐसी अनेक रोमांचक कहानियाँ स्वामीजी ने सुनाईं—क्योंकि टॉड के 'राजस्थान' में ऐसे असंख्य वीर-चरित्रो के आख्यान है।" (वही, पृ० ३२७)

स्वामी विवेकानन्द के ये विचार महात्मा टॉड के 'राजस्थान' की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं, जिसने १९वी शताब्दी के बंगला साहित्य को जबरदस्त रूप से प्रभावित किया था। उस समय शायद ही ऐसा कोई बंगला भाषा का साहित्यकार था—जिसने 'राजस्थान' से उपकथा लेकर बंगला-साहित्य-भंडार को न भरा हो। यही वजह है कि आधुनिक युग का बंगला साहित्य राजस्थान की वीर-गाथाओ से भरा पड़ा है। स्वामी विवेकानन्द की उक्ति इस कथन की पुष्टि करती है। वे स्वयं भी टॉड के ग्रन्थ से प्रभावित थे। जब वे खेतड़ी (राजस्थान) के महाराजा अजीत सिंह के यहां गए तो उन्हें स्वयं राजस्थान के वीरों की धरती को देखने का अवसर मिला। अमेरिका जाने के पूर्व उन पर राजस्थान का पूरा प्रभाव था। दरअसल उनके अमेरिका जाने मे तथा आर्थिक सहायता में खेतड़ी-नरेश का बड़ा योगदान था।

खेतड़ी-नरेश और विवेकानन्द

पं० भावरमल शर्मा ने १९८४ वि० सं० मे 'खेतड़ी-नरेश और विवेकानन्द' पुस्तक का प्रकाशन किया है।

पं० भावरमल शर्मा ने पुस्तक की भूमिका में पृष्ठ ६ पर लिखा है—"४ जून १८९१ ई० को राजस्थान के आबू पहाड़ पर 'खेतड़ी हाउस' में स्वामी विवेकानन्द और खेतड़ी-नरेश अजीत सिंह की प्रथम भेंट हुई। पहली भेंट में ही दोनो एक दूसरे के प्रति

आकर्षित हो गए।" खेतड़ी-नरेश गुण ग्राहक थे और स्वयं चिन्तनशील थे। उन्हें स्वामीजी में तेजस्विता और पाण्डित्य की छवि दिखाई दी। फलतः स्वामी विवेकानन्द खेतड़ी पधारे और वहाँ काफी दिनों तक रहे। खेतड़ी में रहते हुए स्वामी विवेकानन्द ने राज-पंडित नारायणदास शास्त्री से 'अष्टाध्यायी' एवं 'महाभाष्य' का अध्ययन किया। स्वामीजी ने खेतड़ी-नरेश को कई नए विषयों का ज्ञान कराया, जिनमें पदार्थ-विज्ञान और कानून के विषय हैं।

पं० झाबरमल शर्मा ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १० पर लिखा है कि स्वामी विवेकानन्द ने 'विविदिषानन्द' से 'विवेकानन्द' नाम खेतड़ी-नरेश अजीत सिंह के अनुरोध से धारण किया। राजा साहब ने स्वामीजी से कहा कि अब उनका विविदिषा-काल अर्थात् जानने की इच्छा का समय बीत गया है—वे विवेक के ज्ञानी बन गए हैं। अतः स्वामीजी ने राजा साहब की बात मान ली और 'विविदिषानन्द' से 'विवेकानन्द' हो गए।

जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिका में होनेवाले 'विश्व सर्वधर्म सम्मेलन' में हिन्दू प्रतिनिधि के रूप में शिकागो (अमेरिका) गए थे तो खेतड़ी-नरेश ने उनके अमेरिका जाने में आर्थिक मदद की थी। उन्होंने अपने सचिव मुंशी जगमोहन लाल को स्वामीजी को बम्बई से जहाज (जलयान) से बिदा करने के लिए भेजा था। स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो के लिए ३१ मई, १८६३ ई० को यात्रा की थी।

पं० झाबरमल जी ने पुस्तक के पृष्ठ ७ पर स्वामीजी की उस उक्ति का उल्लेख किया है, जिसमें स्वामी विवेकानन्द ने खेतड़ी-नरेश के प्रति अपना आभार व्यक्त किया है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—What little I have done for the improvement of India would not have been done if the Rajaji of Khetari had not met me." अर्थात्—"भारतवर्ष की उन्नति के लिए जो थोड़ा बहुत मैंने किया है वह खेतड़ी-नरेश के न मिलने से न होता।"

पं० बेणी शंकर शर्मा ने अंग्रेजी में पुस्तक लिखी है "स्वामी विवेकानन्द : ए फारगोटेन चेप्टर ऑफ हिज लाइफ" (*Swami Vivekananda : A forgotten chapter of hislife.*) यह पुस्तक कलकत्ता के आक्सफोर्ड बुक हाउस से विवेकानन्द शताब्दी वर्ष १९६३ ई० में प्रकाशित हुई है, जिसमें स्वामी विवेकानन्द के खेतड़ी में निवास का वर्णन है। स्वामीजी के कई अलभ्य पत्रों का भी पुस्तक में प्रकाशन किया गया है। पं० बेणीशंकर शर्मा स्वयं खेतड़ी के हैं। आपने यह पुस्तक पं० झाबरमल शर्मा को समर्पित की है। इस पुस्तक का प्राक्कथन भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा है। पं० बेणी शंकरजी ने विवेकानन्द के पत्रों का संकलन पुस्तकाकार रूप से बंगला और अंग्रेजी में भी कराया है। पश्चात्

पं० वेणीशंकरजी के सुपुत्र श्री रत्नाकर शर्मा ने १९८४ ई० में मूल अंग्रेजी पुस्तक का "स्वामी विवेकानन्द : उनके जीवन का एक विस्मृत अध्याय" नाम से हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर उसे प्रकाशित कराया है।

मनुष्य का खान-पान एवं उसकी वेश-भूषा पर भौगोलिक स्थिति का प्रभाव पड़ता है। जो स्थान समुद्र से जितना नजदीक होता है वहाँ कम गर्मी और कम जाड़ा पड़ता है। इसीलिए बंगाल की जलवायु आर्द्रतापूर्ण नम है। यहाँ न अधिक गर्मी और न अधिक जाड़ा पड़ता है। अतः सिर पर टोपी, पगड़ी या साफा (मुरेठा) लगाने की आवश्यकता नही होती, किन्तु राजस्थान में भयंकर गर्मी और सर्दी पडती है। इस कारण गर्मी के दिनों में लू से बचने के लिए लोग सिर को ढकते हैं और जाड़े मे सिर ही नहीं ढकते, मनटोप भी लगाते हैं। स्वामी विवेकानन्द के सिर पर बंधा साफा या मुरेठा राजस्थान की जलवायु की देन है। स्वामीजी को बाद में यह साफा इतना प्रिय हो गया कि अमेरिका के शिकागो की सर्वधर्म परिषद् में भी आपने अपने प्रसिद्ध काषायवस्त्रो और गैरिक साफा मे ओजस्वी भाषण दिया और अमेरिकी जनता को मंत्रमुग्ध कर दिया।

पं० वेणीशंकर शर्मा ने अपनी पुस्तक के "एक परिवर्तनकारी घटनाचक्र" अध्याय में पृष्ठ ५७ पर लिखा है—"बहुत कम लोग ही जानते हैं कि स्वामी, जो साफा सदा बांधते थे और जिसे रामकृष्ण के अनुयायियों ने अपनी वेशभूषा के एक विशेष अंग के रूप में ग्रहण कर लिया है, उसे उन्होंने महाराजा अजीत सिंह के सुझाव पर पहनना शुरू किया था। जब स्वामी विवेकानन्द ने स्वामी विविदिषानन्द के रूप में पहली बार खेतड़ी को देखा तब ये महीने गर्मी एवं लू के थे। स्वामीजी के पत्रो से पता चलता है कि लू से उनके प्राण कांपते थे। जब महाराजा ने उनकी असुविधा को देखा तब उन्होंने उनको साफा यानी मुरेठा बांधने की सलाह दी। स्वामीजी ने इस सुझाव को आनन-फानन मंजूर कर लिया। महाराजा ने ही, वास्तव में उनको साफा बांधना सिखाया था।"

उल्लेखनीय है कि आज भी खेतड़ी की डूंगरी (पहाड़ी) पर खेतड़ी महाराज के पुराने महल में 'रामकृष्ण मिशन' का विवेकानन्द स्मृति मन्दिर है। इन पंक्तियो का लेखक जब १९८० ई० में राजस्थान की यात्रा पर गया था तो उसने विवेकानन्द-आश्रम का परिदर्शन किया था और स्वामी विवेकानन्द के कई संस्मरण वहाँ के निवासियो से सुने थे। इस यात्रा में खेतड़ी कॉपर संस्थान के हिन्दी-अधिकारी श्री रामकुमार शर्मा का बड़ा सहयोग रहा।

वस्तुतः स्वामी विवेकानन्द ने अपने परिव्राजक जीवन मे राजस्थान के कई स्थानो का भ्रमण किया था। वे खेतड़ी-नरेश से मिलने के पूर्व फरवरी १८९१ ई० में अलवर गए

थे। अलवर में वे राज्य के दीवान के यहाँ अतिथि रूप में रहे। स्वामी विवेकानन्द का संस्कृत भाषा और अंग्रेजी में धाराप्रवाह भाषण सुनकर वहाँ उनके कई शिष्य हो गए। स्वयं अलवर के महाराजा मंगल सिंह को स्वामीजी से मिलकर मूर्तिपूजा में आस्था हुई। जयपुर के राजघराने मे भी स्वामी जी का आतिथ्य सत्कार हुआ। जयपुर दरबार के सभा पंडित से, जो व्याकरणवेत्ता थे, आपने पाणिनी रचित अष्टाध्यायी का अध्ययन किया। जयपुर के प्रधान सेनापति सरदार हरि सिंह से स्वामी जी का घनिष्ट परिचय हो गया था।

श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार ने "विवेकानन्द चरित" पुस्तक का प्रकाशन श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर से १६५१ ई० में कराया है। 'विवेकानन्द-चरित' पुस्तक का मूल बंगला से हिन्दी मे रूपान्तर पं० मोहिनीमोहन स्वामी ने किया है। श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार ने पुस्तक के पृष्ठ १५० लिखा है—"जयपुर से विदा होकर स्वामीजी अजमेर पहुँचे और फिर आबू पहाड़ की गुफा मे रहने लगे। कोटा दरबार के एक मुसलमान वकील (जनाब फैज अली खाँ फैज) ने स्वामीजी को जब गुफा में देखा तो वे उन्हें अपने घर ले आये। खेतड़ी-नरेश के सेक्रेटरी मुंशी जगमोहन लाल मुसलमान वकील के दोस्त थे। वे जब स्वामी जी के दर्शन करने मुसलमान वकील के यहाँ आये तो स्वामीजी उस समय एक खटिया पर लेटे आँखें बन्द किए विश्राम कर रहे थे। मुंशीजी मन ही मन सोचने लगे—"यह तो ऐसे ही साधारण भटकनेवाले साधु दिखते है। साधु के भेष मे चोर या गिरहकट भी होते है।" इतने मे स्वामीजी उठ बैठे। बातचीत आरम्भ हुई। जगमोहन ने पूछा—"स्वामीजी! आप हिन्दू संन्यासी होकर मुसलमान के घर पर हैं, आपके भोजन आदि को मुसलमान छू सकते हैं।" स्वामीजी ने उत्तर दिया—"महाशय! आपका ऐसा कहने का मतलब क्या है? मैं संन्यासी हूँ, मैं सभी सामाजिक आचार-व्यवहार से परे हूँ। मैं एक मेहतर के साथ भी बैठ कर भोजन कर सकता हूँ। यह तो ईश्वर का निर्देश है—अतः मैं निर्भय हूँ, शास्त्र का भी मुझे डर नहीं है, क्योंकि शास्त्र तो इसका समर्थन करते हैं। परन्तु हाँ, मुझे भय है आप जैसे सब कुछ जाननेवाले अंग्रेजी वालों से। आपलोग शास्त्र व भगवान की परवाह नहीं करते। मैं सर्वभूतों में ब्रह्म का ज्ञान रखता हूँ। फिर मेरे लिए ऊँच-नीच या स्पृश्य-अस्पृश्य क्या है? "शिव"......"शिव" कहते स्वामीजी तन्मय हो गये। उनका मुख मंडल स्वर्गीय आभा से उद्भासित हो गया। इस थोड़ी देर के वार्तालाप से ही मुंशी जगमोहन मुग्ध हो गए। खेतड़ी के महाराज अजीत सिंह ने अपने सेक्रेटरी मुंशी जगमोहन लाल से स्वामीजी की बात सुनी तो उन्हें भी उनके दर्शन करने की बड़ी लालसा उत्पन्न हुई।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने गीता के "सर्वभूतात्म भूतात्मा"

और "सर्वभूत हितेरता:" को जीवन में उतार लिया था। स्वामी विवेकानन्द के राजस्थान से गहरे लगाव को दर्शान के लिए हमने यहाँ थोड़ा विस्तार से वर्णन किया है और उनके तेजोमय व्यक्तित्व की एक झांकी प्रस्तुत की है।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के विचार

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने ऐतिहासिक निवन्ध 'वृहत्तर भारत' में टॉड के 'राजस्थान' को "मरुभूमि की हरियाली" की आख्या दी है और कहा है कि जब-जब वे भारत के इतिहास का पाठ करते थे, उन्हें देशवासियों की पराजय की कहानी पढ़ने को मिलती, पर राजस्थान के वीरों की कहानी और स्वातंत्र-प्रियता से उनका मस्तक गौरव से ऊँचा हो जाता था। कवि ने अपनी काव्यमयी भाषा में अपनी बात इस प्रकार कही है—

"उस समय गौरव-इतिहास-मेरू से राजपूत-वीरत्व-कहानी के ओएसिस (Oasis) से जो कुछ संग्रह करना संभव था, उसी को लेकर स्वजाति के महत्व की क्षुधा को शान्त करने के लिए दोहन करने की चेष्टा की जाती थी—उस समय के वंगला काव्य, नाटक, उपन्यास में किस व्यग्रता से टॉड के 'राजस्थान' से प्रभाव ग्रहण किया जाता था, वह बड़े मार्के की बात है।"

"वृहत्तर भारत" निवन्ध मे विश्वकवि रवीन्द्र की स्वीकारोक्ति इन शब्दो मे है—

"बचपन मे भारत का इतिहास पढना प्रारम्भ किया था। मुझे प्रतिदिन युद्धो मे सिकन्दर से क्लाइव तक लगातार भारत की पराजय तथा अपमान की कथाओ के नाम और तिथियाँ याद करनी पड़ती थीं। राष्ट्रीय लज्जा के इस ऐतिहासिक रेगिस्तान मे यदि कोई ओएसिस (Oasis), कोई हरियाली थी तो वे राजपूतों के कार्य....।"

राजस्थानी भाषा अपने वीर काव्यों के लिए प्रसिद्ध है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने कहा है—"राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया, उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया जाता।"

उल्लेखनीय है कि वृहत्तर भारत परिषद द्वारा विश्वकवि की जावाद्वीप यात्रा के अवसर पर एक विदाई समारोह का आयोजन किया गया था। कवि रवीन्द्रनाथ ने अपने विदाई भाषण में जो भाव व्यक्त किए थे उनको "वृहत्तर भारत" शीर्षक निवन्ध के रूप में 'कालान्तर' ग्रन्थ में संकलित किया गया। 'वृहत्तर भारत' निवन्ध की रचना १३३४ बंगाब्द (१९२७ ई०) में हुई थी। विश्वकवि (१८६१-१९४१ ई०) की जन्म-शताब्दी के अवसर पर उनकी समस्त रचनाओं का प्रकाशन 'रवीन्द्र रचनावली' के

रूप में १९६३ ई० में विश्व भारती, कलकत्ता से हुआ। "रवीन्द्र रचनावली" के २४वें खंड मे 'कालान्तर' ग्रन्थ के अन्तर्गत 'वृहत्तर भारत' निबन्ध प्रकाशित हुआ है। उसी निबन्ध के पृष्ट ३६८-३६९ पर कवि के 'राजस्थान' सम्बन्धी विचार इन शब्दों में व्यक्त हुए है—

"तार पर अल्प वयसे भारतवर्षेर इतिहास पड़ते शुरू करलाम। तखन आलेकजान्दर थेके आरम्भ करे क्लाइभेर आमल पर्यन्त राष्ट्रीय प्रतिद्वन्दिताय भारतवर्ष बारबार किरकम परास्त अपमानित होय ऐसे छे एई काहिनीई दिन-क्षण तारिख उ नाममाला समेत प्रत्यह कन्ठस्थ करे छि। एई अगौरबेर इतिहासमरुते राजपूतदेर वीरत्ववाहिनीर ओएसिस थेके जेटुकु फसल संग्रह करा संभव ताई निये स्वजातिर महत्व-परिचय दारुन क्षुधा मेटाबार चेष्टा करा होतो। सकलेई जानेन से समयकार बांग्ला-काव्य, नाटक, उपन्यास किरकम दु सह व्यग्रताय 'टॉडेर राजस्थान' दोहन करते बसे छिलो। एर थेके स्पष्ट बोभा जाय, देशेर मध्ये आमादेर परिचय कामना उपवासी होये छिलो। देश बोल्ते तो माटिर देश नय, से मानव-चरित्रेर देश थेके ई प्रेरणा पेये आमादेर दीन बले जानि ताहोले विदेशी वीरजातिर इतिहास पड़े आमादेर दीनभाव के ताड़बार शक्ति अन्तरेर मध्ये पाई ने।"

रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि केवल मिट्टी और भौगोलिक सीमा से ही देश का निर्माण नहीं होता है—उसमें आवश्यकता होती है मानवीय उदात्त चरित्रों की, जिनकी प्रेरणा से जाति और राष्ट्र का निर्माण होता है। ऐसे मानव-चरित्र राजस्थान में विद्यमान थे। इन वीर चरित्रों की प्रेरणा से ही विदेशी प्रबल-शक्ति का मुकाबला किया जा सकता है—दीन-भाव दूर हो सकता है और हृदय में अपराजेय शक्ति का संचार हो सकता है। इसीलिए विश्वकवि ने राजस्थान के वीरों के इतिहास को 'मरुभूमि की हरियाली' से अभिहित किया है।

डॉ० सुकुमार सेन के विचार

अब हम बंगला साहित्य के मूर्धन्य विद्वान और "बंगला साहित्य-इतिहास" के प्रणेता डॉ० सुकुमार सेन के वक्तव्य को उद्धृत करना चाहेंगे। डॉ० सेन ने कलकत्ता स्थित राजस्थान सरकार के सूचना केन्द्र के सभागार मे "साहित्य सम्पर्क मे राजस्थान और बंगाल" विषय पर गत १० दिसम्बर, १९७५ ई० को प्रबन्ध-पाठ प्रस्तुत करते हुए कहा था—"टॉड के राजस्थान ने आधुनिक बंगला साहित्य में नए गवाक्षों और दिगंतो का विमोचन किया है।"

"The beginning of nineteenth century introduced English language and European thought in Bengal. Bengali, which never had any pure literature now began to develop. The concept of

literature was to some extent changed. The writers, who had English models before them had nothing to do with religion, although they did not shake off the Puranic tradition of religion and morality. To these new writers Tod's Annals of Rajasthan opened rich field of new and delectable subject matter for their literary creation."

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने "टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास" ग्रन्थ की भूमिका लिखी है। पं० गिरिधर शुक्ल ने १९६२ में टॉड के अंग्रेजी 'राजस्थान' का हिन्दी संस्करण प्रकाशित किया था। इसके अनुवादक हैं इतिहासकार केशव कुमार ठाकुर। डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने ग्रन्थ की भूमिका मे पृ० ७ पर लिखा है—

"कौन ऐसा भारतीय इतिहास का विद्वान है जो टॉड के अनुपम ग्रन्थ के महत्व को नही स्वीकार करता। आधुनिक दृष्टि से यह वैज्ञानिक रूपेण लिखित इतिहास का ग्रन्थ न हो, परन्तु इसमें जरा भी संदेह नही कि यह ऐतिहासिक सामग्री का अपूर्व भण्डार है। आधुनिक काल में प्रशस्तियो, साहित्यिक ग्रन्थो, प्राचीन लेखो तथा भग्नावशेषों के आधार पर जो अन्वेषण हुए है, उन्होने ऐतिहासिक घटनाओ पर नूतन प्रकाश डाला है और अशुद्धियो को दूर करने में हमारी सहायता की है। जिस समय कर्नल टॉड ने अपना ग्रन्थ लिखा था, इतनी सामग्री उपलब्ध नहीं थी। वे राजस्थान मे एक उच्च पद पर थे, उनकी लेखनी में ओज था, शक्ति थी, अपनी भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था, राज्यो से उन्हें सहायता मिलती थी। इसलिए इस ग्रन्थ की तैयारी करने मे उन्हें सफलता प्राप्त हुई। चारणो से उन्हे बहुत सी सामग्री उपलब्ध हुई। जनश्रुति का भी, जो इतिहास का एक अमूल्य साधन है, उन्होने उपयोग किया।"

इसी भाँति राजस्थानी साहित्य के मर्मज्ञ तथा राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता के सभापति रायबहादुर रामदेव चोखानी ने 'राजस्थानी साहित्य का महत्व' नामक पुस्तक का सम्पादन सं० २००० ई० में किया, जिसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से हुआ है। इस पुस्तक के पृ० ६६ पर काशी विश्वविद्यालय के उपकुलपति और संस्थापक पं० मदन मोहन मालवीय ने 'राजस्थानी साहित्य' पर इन शब्दों में विचार प्रकट किए हैं—'राजस्थानी वीरों की भाषा है। राजस्थानी का साहित्य वीर-साहित्य है। संसार के साहित्यों में उसका निराला स्थान है। वर्तमान काल के युवकों के लिए तो उसका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए। इस प्राण भरे साहित्य और उसकी भाषा के उद्धार का कार्य आवश्यक है। टॉड ने यह कार्य बड़े मनोयोग से अपने इतिहास ग्रन्थ में किया है।""मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब हिन्दू विश्वविद्यालय में

राजस्थानी का सर्वांगपूर्ण विभाग स्थापित हो जाएगा, जिसमें राजस्थानी भाषा और साहित्य की खोज तथा अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध होगा।" (उल्लेखनीय है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के एम० ए० पाठ्यक्रम में डिंगल और अपभ्रंश पर एक विशेष अध्ययन की व्यवस्था है। इन पंक्तियों के लेखक ने डिंगल और अपभ्रंश पर विशेष पत्र एम० ए० में निर्वाचित किया था।)

श्री रामदेव चोखानी ने ग्रियर्सन, टैसीटरी आदि विद्वानों के साथ विश्वकवि रवीन्द्र के विचारों को इन्हीं पृष्ठों में इस प्रकार प्रकाशित किया है—

"कुछ समय पहले कलकत्ते में मेरे कुछ राजस्थानी मित्रों ने रण सम्बन्धी कुछ राजस्थानी गीत सुनाए थे। मैं तो उनको सुनकर मुग्ध हो गया। उन गीतों में कितनी सरसता, सहृदयता और भावुकता है। वे लोगों के स्वाभाविक उद्‌गार हैं। मैं तो उनको संत-साहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूँ। क्या ही अच्छा हो अगर वे गीत प्रकाशित किए जायें। वे गीत संसार के किसी भी साहित्य और भाषा का गौरव बढ़ा सकते हैं। ईश्वर ने चाहा तो मैं उनको शान्तिनिकेतन के हिन्दी-भवन द्वारा प्रकाशित कराऊँगा। राजस्थानी-साहित्य को जनता के सामने लाने की मैं हिन्दी-भवन द्वारा पूर्ण कोशिश करूँगा।" यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि हलवासिया ट्रस्ट के न्यासी श्री पुरुषोत्तम हलवासिया की प्रेरणा से हिन्दी भवन (शान्ति निकेतन) में डॉ० रामसिंह तोमर के निर्देशन में राजस्थानी साहित्य के प्रकाशन का कार्य कई वर्षों से होता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने डिंगल भाषा और साहित्य के पठन-पाठन के लिए १९४० से ही उत्तमा या साहित्यरत्न की परीक्षा में व्यवस्था कर रखी है। इस पाठ्यक्रम में राजस्थानी भाषा और साहित्य के प्रकाण्ड पंडित मोतीलाल मेनारिया ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' (१९४८ ई०) तथा 'डिंगल में वीररस' (१९४० ई०) नामक दो पुस्तकें लिखकर बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य किया है।

'डिंगल में वीररस' नामक पुस्तक की भूमिका में हिन्दी साहित्य के साहित्य-मंत्री ने लिखा है—"हिन्दी साहित्य के इतिहास में वीरभूमि राजस्थान के डिंगल साहित्य का गौरवपूर्ण स्थान है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदिकाल में डिंगल भाषा के कवियों ने अपनी ओजपूर्ण और वीरवाणी द्वारा जिस प्रकार की वीरगाथाओं और काव्यों का सृजन किया है उससे हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में अभूतपूर्व उन्नति हुई, इसमें संदेह नहीं। कुछ कवियों की रचनाएँ तो स्वाभाविक और मौलिकता में अपनी समता नहीं रखती। श्रीयुत मोतीलाल मेनारिया ने डिंगल साहित्य के पाँच श्रेष्ठ कवि-रत्नों पर प्रकाश डालते हुए उनके काव्यों की आलोचना की है। ये कवि

है—महाकवि चन्दवरदाई, पृथ्वीराज, दुरसाजी, बांकीदास एवं कविराजा सूर्यमल। श्री मेनारियाजी की इस पुस्तक 'डिंगल में वीररस' को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'साहित्यरत्न' की परीक्षा में पाठ्यक्रम के अन्तर्गत स्वीकृत किया है।"

श्री मोतीलाल मेनारिया ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है—'राजस्थान के कवियो ने अपनी कविताएँ दो प्रकार की भाषाओं में लिखी हैं डिंगल और पिंगल में। चन्दवरदाई, दुरसाजी, पृथ्वीराज आदि की गणना यहाँ डिंगल के कवियों में तथा मीरा, वृन्द, बिहारी आदि की पिंगल के कवियो में की जाती है। डिंगल राजस्थान की बोलचाल की भाषा राजस्थानी का साहित्य रूप है और पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन, अधिक साहित्य सम्पन्न तथा अधिक ओजगुण-विशिष्ट है। इसकी उत्पत्ति अपभ्रंश से हुई है।"

चन्दबरदाई का "पृथ्वीराज रासो" हिन्दी के वीरगाथाकाल का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। ऐतिहासिक विवाद के बावजूद इसका अपना स्थान है। पृथ्वीराज अकबर के दरबारी कवि थे। इनकी चर्चा नाभादास ने 'भक्तमाल' में की है। पृथ्वीराज की श्रेष्ठ कृति 'वेलिकिसन रुकमिणी री कही' प्रसिद्ध काव्य पुस्तक है।

कहा जाता है कि जिस समय अकबर के दरबार मे महाराणा प्रताप की मृत्यु का समाचार पहुँचा उस समय दुरसाजी वहाँ उपस्थित थे। अकबर प्रताप का शत्रु अवश्य था, पर साथ ही वह वीर पुरुष के प्रति सच्ची आस्था रखता था। प्रताप ऐसे वीर के निधन से उसे भारी दुख हुआ और एक लम्बी सांस खीचकर डबडबाई आँखो से वह पृथ्वी की ओर देखने लगा। बादशाह की विचारवेदना को दुरसाजी ताड़ गए और उन्होंने अकबर के मनोभावो को व्यक्त करने के लिए निम्न छप्पय कहा—

अस लेगौ अणदाग, पाघ लेगौ अणनामी।
गौ आड़ा गवडाय, जिको वहतौ धुर वामी॥
नवरोजे नहँ गयौ, न गौ आतसाँ नवल्ली।
न गौ झरोखाँ हेठ, जेथ दुनियाँण दहल्ली॥
गहलोत राण जीती गयौ, दसण मूँद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह प्रतापसी॥

अर्थात् हे गुहिलोत राणा प्रताप सिंह! तेरी मृत्यु पर बादशाह ने दाँतों के बीच जीभ दबाई और विश्वास के साथ आँसू टपकाये, क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी दूसरे के सामने नहीं झुकाया, तू अपने यश के गीत गवा गया, तू अपने राज्य के धुरे को बांयें कंधे से चलाता रहा। नौरोज में नहीं गया, न शाही डेरे मे गया, कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा न रहा और तेरा रौब दुनिया पर गालिब था। अतएव तू सब तरह से विजयी रहा।

इस छप्पय को सुनकर दरबारियों ने अनुमान किया कि बादशाह दुरसाजी पर अवश्य क्रुद्ध होगा। परन्तु अकबर ने उल्टे कवि को इनाम दिया और कहा कि इसी ने मेरे मन के भाव को ठीक समझा है। दुरसा आढा ने महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में 'विरुद छिहत्तरी' काव्य की रचना डिंगल भाषा में की है।

बांकीदास ने वीररस में 'भुरजाल भूषण' की रचना की, जिसमें चित्तौड़ का मार्मिक वर्णन है। कविराजा सूर्यमल के दोहे डिंगल भाषा में बड़े प्रसिद्ध हैं—देखिए—

सहणी सवरी हूँ सखी, दो उर उल्टी दाह।
दूध लजाणे पूत सम, वलय लजाणे नाह ॥ (डिंगल में वीर-रस, पृ० १०२)

हे सखि! और सब बातें मुझे सह्य हो सकती हैं, किन्तु यदि प्राणनाथ मेरे वलय को अर्थात् चूड़ियों को लजा दें और पुत्र दूध को तो ये दोनों बातें मेरे लिए समान रूप से दाहकारी हैं, हृदय को कष्ट देनेवाली हैं।

हथलेवे ही मूठ किण, हाथ विलग्गा माय।
लाखाँ वाताँ हेकलो, चूड़ो मो न लजाय॥ (डिंगल में वीर-रस, पृ० १०३)

पाणिग्रहण के अवसर पर हथेली पर बने आरण (दाग) अर्थात् तलवार की मूठ के निशान मेरे हाथ में चुभने से हे माता! मैं समझ गई कि युद्ध मे अकेले हो जाने पर भी वे (मेरे पति) मेरे चूड़े को नहीं लजायेंगे—वीरता दिखायेंगे।

उल्लेखनीय है कि डॉ० टीकमसिंह तोमर ने १९५४ ई० में 'हिन्दी वीर रस' नाम से एक शोध-प्रबन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रस्तुत किया। डॉ० तोमर ने डिंगल और पिंगल वीर-काव्यों मे से केवल पिंगल काव्यों का ही अध्ययन प्रस्तुत किया है।

कलकत्ता में गत १ दिसम्बर, १९८० को राजस्थानी साहित्य के मर्मज्ञ स्व० रायबहादुर रामदेव चोखानी की स्मृति में आयोजित प्रथम व्याख्यानमाला में इतिहास-वेत्ता डॉ० निहाररंजन राय ने अपने भाषण मे टॉड के 'राजस्थान' को रेखांकित करते हुए बताया था कि इस ग्रन्थ का उनके जीवन पर प्रभाव पड़ा। बंगला-साहित्य तो इससे प्रचुर मात्रा में लाभान्वित हुआ। डॉ० राय के शब्दों मे—

"Our novelists more than once wrote novels, historical novels on events of Rajasthan's glory. Ramesh Ch. Dutta's "Rajput Jiban Sandhya" was a classic in itself and we used to read it with respect. Beside Bankim Chandra also wrote quite a few number of books on Rajasthan and last but not the least Tagore himself composed quite a number of lyrics on Rajasthan and also couple of book reviews.

"...As a student of history, we grew up in the shadow of Colonel Tod's Annals and Antiquities of Rajasthan and we imagined in our vision Rajasthan as a land of Chivalry and Freedom, a land of love and romance of heroes, saints and saties."

डॉ० राय की भाँति श्री कल्याण कुमार गांगुली ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कल्चरल हिस्ट्री ऑफ राजस्थान' मे बड़े विस्तार से राजस्थान के प्रभाव को बंगाल मे प्रतिपादित किया है।

टॉड का अमर ग्रन्थ और डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या

प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने २८ एवं २९ जनवरी, १९४७ को राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर मे तीन व्याख्यान दिए थे। उनमे आपने राजस्थानी भाषा और साहित्य के बारे मे कहा है—

"राजस्थानी भाषा के नाम से हमारे प्रान्त के लोग ज्यादातर परिचित नही हैं, यद्यपि इस प्रान्त से व्यापार के लिए आये हुए और यहाँ बसे हुए मारवाड़ी सेठ-साहूकारो के कारण 'मारवाड़ी बोली' या 'मारवाड़ी हिन्दी' का नाम सबको विदित है पर अंग्रेजी तथा देश भाषा में लिखी हुई भूगोल-इतिहास की पुस्तको में उपलब्ध नहीं होते हुए भी, प्रान्तवाचक 'राजस्थान' का नाम एक विशेष मर्यादा के साथ हम सब स्मरण करते हैं, खास करके हिन्दुओ में और शिक्षित लोगों में। मुख्यतया एक विदेशी की राजस्थान पर प्रीति के कारण ऐसा हो पाया। सन् १८२९ ई० मे कर्नल जेम्स टॉड ने लन्दन से अपना महत्वपूर्ण ग्रन्थ—इसे अमर ग्रन्थ भी कह सकते हैं—'एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' दो खण्डो में प्रकाशित किया था। निकलते ही इस ग्रन्थ ने भारत के जन-मानस और पुनर्जागृति के क्षेत्र में अपना निराला स्थान बना लिया। टॉड का 'राजस्थान' भारतीय भाषाओ में अनुदित होने लगा। बंगला में ईस्वी सन् १८४० से लेकर इसके कई अनुवाद है। इसका एक पद्यमय अनुवाद भी है।

राजपूताने के वीर महाराणाओ और अन्य राजाओ की शूरता और देश-प्रेम की अमर कहानी से परिचित होने का शुभ अवसर दूसरे प्रान्तो के लोगों को मिला। राजपूत देशात्मबोध तथा राजपूती शौर्य तब से निखिल भारत के गर्व की वस्तु बना। हिन्दू जाति को टॉड के 'राजस्थान' द्वारा एक नया 'महाभारत' मिला। रामायण, महाभारत और पुराणो के प्राचीन और अपूर्व उपाख्यानों के साथ राजस्थान के वीरों और वीरांगनाओ की अनोखी कथाओं ने हिन्दू संसार की रसानुभूति और स्वजात्यभिमान को और भी बढ़ाया। प्राचीन पौराणिक समय के सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी क्षत्रिय राजाओं के साथी बने राठौर, हाडा, कछवाहा, पंवार, तोमर आदि। इन कुलो के राजा और वीर लोग, जिनमे उल्लेखनीय है शिलादित्य, बप्पा रावल, पृथ्वीराज चौहान,

हम्मीर, राणा भीमसिंह, राणा सांगा, राणा प्रताप, वीर दुर्गादास, राणा राजसिंह आदि। ये निखिल भारत के वीरत्व के आदर्श माने गए। सावित्री, सीता, दमयन्ती, सुभद्रा, उत्तरा आदि पुण्यश्लोक पौराणिक नारियों के पास पुष्पवती, संयोगिता, पद्मिनी, कर्मदेवी, ताराबाई प्रभृति को आसन मिले। आधुनिक भारत की भाषाओं में काव्य, नाटक और उपन्यास लिखे गए हैं, उनमें एक बड़ा अंश राजस्थान के वीरों और वीर नारियों के ही प्रसाद का फल है। इस प्रकार 'राजस्थान' शब्द समग्र भारत के लिए खास करके हमारे बंगाल के और पूर्वी प्रान्तो के लिए a household word अर्थात् 'अपने घर की बात' हो गया है।

कलकत्ते में राजस्थानी भाषा बचपन में हमारे कानो में पड़ती आती है, पर टॉड के 'राजस्थान' के कुछ अंश पढ़ने के पहले इसके सम्बन्ध मे मेरे मन में कौतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हुई। टॉड ने अपनी पुस्तक के जिस स्थान पर अति रोचक भाव से हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन किया है, उसके बाद चेतक घोड़े पर सवार होकर राणा प्रताप के युद्ध क्षेत्र से आत्मरक्षा के लिए निकल जाने का भी बयान है। किशोर अवस्था में रोमांचित होकर जब मैं पढ़ता था, कैसे हमारे प्रणम्य वीर प्रताप के पीछे खुरासानी और मुल्तानी दो मुगल सवारों ने धावा किया और अपने भाई की शूरता से मुग्ध होकर अनुतप्त छोटे भाई शक्ति सिंह ने कैसे उन्हें बचाने के लिए मुगल सैनिकों का पीछा किया और कैसे सैनिकों को मारा। फिर शक्ति सिंह ने कैसे मेवाड़ की बोली में भाई को पुकारा—'ओ, नीला घोड़ा रा असवार!' तब उस समय मेरा चित्त अनुभूत-पूर्ण किसी अद्भुत रस में था रोमांस से और साहित्यास्वादन के आनन्द से भर गया। पूरी तरह तब मैं उस मेवाड़ी बोली से परिचित नहीं हो पाया था। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इस राजस्थानी और बंगला में बड़ा साम्य है। राजस्थानी का सम्बन्धवाचक परसर्ग 'का' या 'के' के स्थान पर 'रा' या 'री' का व्यवहार नया लगते हुए भी मेरी मातृभाषा बंगला के 'एर्' या 'र्' प्रत्यय से सम्पर्कित ही है। इसके बाद टॉड के दिए हुए राजस्थानी बोली के कुछ और निदर्शन मेरी नजर में आये—जैसे—'आक रा झोंपड़ा, फोक री बार, बाजरा री रोटी, देखा ही राजा थारी मारवाड़।' सच पूछा जाय तो टॉड के द्वारा राजस्थान की बोली से मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ और फिर भारतीय भाषाओ के इतिहास की ओर

आकर्पित होने के बाद भापातात्विक अवलोकन के फलस्वरूप राजस्थानी से कुछ परिचय किए बिना कार्य नहीं चल सका। बंगला की उत्पत्ति तथा विकास पर विचार करने के समय राजस्थानी की कुछ विशिष्टताओं के साथ बगला का अनपेक्षित सादृश्य नजर आया, एक से दूसरे की कुछ समस्याओ के समाधान मे सहायता मिलती है।"

आधुनिक भारतीय भापाओं में 'राजस्थान'

असमिया भापा के विद्वान प्रो० सुधांशु एस० टुंगा ने असमिया भापा में टॉड के राजस्थान का प्रभाव दर्शाते हुए लिखा है कि राजस्थान के वीरो की कहानियो का प्रचार इस प्रदेश मे काफी बाद मे हुआ। बंगला साहित्य के माध्यम से असमिया भापा में कई ग्रन्थ लिखे गए। १६२३ ई० मे अतुलचन्द्र हजारिका ने पृथ्वीराज और जयचन्द की उपकथा को लेकर 'कनौज कुमार' नाटक लिखा। माइकेल के नाटक 'कृष्णकुमारी' का तथा रमेशचन्द्र के उपन्यास 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' का असमिया भापा मे अनुवाद हुआ। १६३५ ई० में प्रभातचन्द्र अधिकारी ने मेवाड़ की राजकुमारी 'कृष्णा' पर एक नाटक लिखा, जिस पर माइकेल के 'कृष्णकुमारी' नाटक की छाया है। १६३७ ई० मे विपिनचन्द्र बरुआ ने 'मेवाड़ संध्या' नाटक लिखा। इसमे महाराणी पद्मिनी के जौहर का वर्णन है। डी० एल० राय के बंगला नाटक 'मेवाड पतन' का भी इसी समय अनुवाद हुआ।

देश की अन्य भापाओं मे भी टॉड के राजस्थान से प्रभावित होकर साहित्य रचा गया। ओड़िया भापा मे श्रीमती गीतारानी कर ने १६५३ ई० में राणा प्रताप की जीवनी लिखी। इसी प्रकार गोडवरीश महापात्र एवं दयानिधि मिश्र ने भी राणा प्रताप पर साहित्य रचा। १६१६ ई० मे राणा प्रताप पर राधामोहन राजेन्द्रदेव का लिखा नाटक ओड़िया भापा मे काफी प्रसिद्ध है। कन्नड़ भापा मे एस० ए० कुलकर्णी ने १६११ ई० मे राणा प्रताप की जीवनी लिखी एवं १६३० ई० में सोशाले अय्या शास्त्री ने 'प्रताप सिंह चरित्र नाटकम्' लिखा। डॉ० शि० मरुया का 'राणा' नाटक कन्नड़ मे काफी प्रसिद्ध है। गुजराती भापा में अरदेशर फरामजी खबरदार ने 'पुरोहित नी राजभक्ति' तथा 'हल्दीघाटी नुं युद्ध' नाम से दो काव्य-ग्रन्थ रचे। १८८३ ई० मे गनपतराम राजा राम भट्ट ने 'प्रताप नाटक' की रचना की। गोपालजी वीरमजी तथा छगनलाल अमयाराम द्वारा लिखित दो उपन्यास भी इसी समय काफी चर्चित रहे। झवेरचन्द मेघाणी का 'राणा प्रताप' नाटक, जयन्तीलाल मेहता का 'मेवाड़ना सिंह अने बीजी वातों' नाटक, ना० वि० ठक्कर का 'हल्दीघाटी नुं युद्ध' उपन्यास, डाह्या धोलसाजी भवेरी का 'अश्रु-मती' नाटक, डाह्याभाई रामचन्द्र मेहता का उपन्यास 'उदयपुर नां वीर श्रेष्ठ महाराणा प्रताप', वसंत भाई का उपन्यास 'मेवाड़ नी संध्या' तथा रमणलाल वसन्तलाल देसाई का उपन्यास 'शौर्य तर्पण' गुजराती साहित्य की श्रेष्ठ कृतियाँ मानी जाती हैं।

तेलुगु साहित्य में भी टॉड के राजस्थान से राणा प्रताप पर आई० यज्ञनारायण ने 'राणा प्रताप सिंह' नाटक लिखा तथा वेंकट शेषा शास्त्री ने 'राणा प्रताप सिंह चरितम्' काव्य की रचना की एवं वेठूला सत्यनारायणदु ने 'राणा प्रताप सिंह' नाटक लिखा। इसी प्रकार मराठी साहित्य में कृति साहित्यकारों की जो रचनाएँ मिलती हैं, वे इस प्रकार हैं— श्री० मा० ओटी—'वीर प्रताप' (बाल साहित्य), ह० कृ० कुलकर्णी—'प्रतापी प्रताप सिंह' (नाटक), वा० शि० कोल्हटकर—'महाराणा प्रताप व त्यांचे पूर्वज' (जीवनी), ना० कृ० गर्दे 'श्रीमत् प्रताप सिंह' (काव्य), ना० वि० गणपुले—महाराणा प्रताप सिंह जी (उपन्यास), शा० गो० गुप्ते—रक्तध्वज (नाटक), शि० व० मुचाटे—'राणा प्रताप सिंह चा पोवाड़ा' (काव्य), स० वि० वर्ते—हल्दीघाटी चे युद्ध (उपन्यास), भा० स० साठे—स्वधर्मनिष्ठ वीर राणा प्रताप सिंह (काव्य) तथा सोपान देव का 'प्रताप सिंह' (काव्य)।

संस्कृत भाषा में मूलशंकर माणिक्यलाल ने 'प्रताप विजयम्' नाटक लिखा है तथा अंग्रेजी में ई० एल० टर्नबुल ने 'राणा प्रताप' ड्रामा लिखा है। एन० जी० मुखर्जी का नाटक 'दिल्ली एण्ड हल्दीघाटी' अच्छा ड्रामा है। १९३७ ई० में उदयपुर से एच० एस० मोरिदा ने 'प्रताप द ग्रेट' नामक काव्य-पुस्तक की रचना की, जिसकी भूमिका डॉ० अमरनाथ झा द्वारा लिखी गई है। जी० वी० सुब्बाराव ने राणा प्रताप को लेकर 'द लाइफ आफ राजस्थान' पुस्तक में राजस्थान के वीरों की कई जीवनियाँ लिखी हैं।

बंगला भाषा में राजस्थान पर इतिहासमूलक रचनाएँ

टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ को अवलम्ब बनाकर बंगला साहित्य में नाटक, उपन्यास, काव्य, कहानी आदि के साथ ऐतिहासिक प्रवन्ध, जीवनियाँ भी लिखी गईं। सच पूछा जाय तो इस ग्रन्थ का इतना अधिक प्रभाव बंगला साहित्य पर पड़ा कि उसकी शायद ही कोई विधा इससे अछूती रही हो। इसका कारण स्पष्ट था कि उस समय इस ग्रन्थ के अतिरिक्त राजस्थान के इतिहास सम्बन्धी कोई दूसरा ग्रन्थ उपलब्ध नही था।

रजनीकान्त गुप्त की 'आर्य कीर्ति'

प्रसिद्ध इतिहासकार रजनीकान्त गुप्त ने इतिहास की कई पुस्तकें लिखी, जिनमें 'आर्य कीर्ति' और 'वीर महिमा' का बंगला साहित्य में आदर-सम्मान हुआ। 'आर्य कीर्ति' को पाठ्यक्रम मे सम्मिलित किया गया और हिन्दी में भी 'आर्य कीर्ति' तथा 'वीर-महिमा' का अनुवाद हुआ। 'आर्य कीर्ति' के प्रचार का यह प्रभाव है कि इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। आरम्भ में 'आर्य कीर्ति' अलग-अलग पांच खण्डों में प्रकाशित हुई, पश्चात उसको एक ही पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया।

रजनीकान्त गुप्त ने 'आर्य कीर्ति' की रचना श्रावण १२९० बंगाब्द (१८८२ ई०) मे की थी। आपको देश के युवको मे फैलती हुई पश्चिमी सभ्यता के कुप्रभाव से बड़ी चिन्ता थी। वे आर्य संस्कृति और सभ्यता के कट्टर उपासक थे। वे युवकों में देश के वीर चरित्रनायकों के गुणो को भर कर उन्हें देशभक्त और स्वतन्त्रता-प्रेमी बनाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने टॉड के 'राजस्थान' से देशभक्त वीरों और वीरांगनाओ के चरित्रो का संकलन कर 'आर्य कीर्ति' और 'वीर महिमा' पुस्तकों की रचना की। रजनीकान्त गुप्त ने 'कार्य कीर्ति' की भूमिका में लिखा है—

"विदेशी सभ्यता के इस स्रोत में हमारा भारतीय समाज बह रहा है। पश्चिमी सभ्यता का कुप्रभाव युवकों पर पड़ रहा है—उनमें विकृतियाँ आ रही हैं। वे स्वजाति के बारे में उदासीन हो रहे हैं। हमारे देश में भी बड़े-बड़े वीर, परोपकारी, देशभक्त और आत्मत्यागी हो गए हैं। इनके बारे में जानने और पढ़ने से हममें देशाभिमान जगेगा। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर आर्य वीरों का बखान किया गया है...."

'आर्य कीर्ति' के प्रथम परिच्छेद में राणा कुंभा की वीर-प्रशस्ति के संदर्भ में

लेखक ने परोक्ष रूप से विदेशी आक्रान्ताओं पर अपने विचार व्यक्त किए हैं तथा मेवाड़ के राजपूत वीरों की प्रशंसा की है। देखिए—

"शत्रु के राज्य में जिस किसी प्रकार से विजय पताका फहरा देना ही सच्ची वीरता नही है। देश-काल का विचार बिना किए जहाँ-तहाँ तलवार का पराक्रम दिखाना भी वीरता मे शामिल नही है। जब हम देखते हैं कि कोई बलिष्ठ व्यक्ति किसी बलिष्ठ सम्प्रदाय का नेता बन कर गुप्त रूप से निहत्थे प्रतिद्वन्द्वी का संहार करता है, चोर-डकैत की तरह आक्रमण करता है, निरीह व्यक्तियो पर धनलोलुपता या साम्राज्यवादी प्रवृत्ति से मदमत्त होकर अत्याचार कर उत्पीड़न करता है, हमेशा भय और आतंक से साम्राज्य विस्तार में उद्यत होता है, न्याय और नीति का विसर्जन कर मानवता की हत्या कर खून की नदी बहाता है तब हम उसे वीरपुरुष न कह कर लुटेरा, क्रूर और अत्याचारी हिंस्र-पशु की संज्ञा देते हैं। सच्चा वीर ऐसा कपटतापूर्ण आचरण कदापि नहीं करता। वीर पुरुष का हृदय उदात्त भावो से आपूरित रहता है। ऐसा वीर जिस प्रकार युद्ध मे पराक्रम और वीरता का प्रदर्शन करता है, तदनुरूप शान्ति-काल मे कोमलता और उदारता की महिमा प्रदर्शित करता है। ऐसे वीर की शौर्य-साधना अन्याय और अधर्म के कुमार्ग से कलंकित नही होती। घोर विपत्ति और संकट-काल मे भी सच्चा वीर न्यायपथ का परित्याग नहीं करता। सच्चा वीर तो सदैव ही संयत मनोबल से अपने पवित्र शुद्ध-धर्म की रक्षा करने में तत्पर होता है। मेवाड़ के वीर ऐसी ही सच्ची वीरता से संपुष्ट थे। उन्होने इतिहास मे जिस वीरता और मनस्विता का अद्भुत प्रदर्शन किया है, दुर्दान्त पठान, तातार, मुगल या राज्यलोलुप अंग्रेजों के सेनापति उसे दिखा नही पाये। शहाबुद्दीन गोरी अगर छल-प्रपंच न करता तो सम्भव था हिन्दूपति पृथ्वीराज की पराजय नही होती और क्षत्रियो के शोणित-सागर मे भारत का सौभाग्य-सूर्य डूबता नही। अकबर शाह गहरी अंधेरी रात मे चोर-उचक्के की तरह जयमल की हत्या न करता तो आनन-फानन मे चित्तौड़ राज्य मुगलों को हस्तगत नही होता और न ही चित्तौड़ की सहस्रो ललनाओं को जौहर की आग मे प्राणाहुति देनी पड़ती। लार्ड क्लाइव भी बिना मीरजाफर और जगत सेठ को 'घर का भेदी विभीषण' बनाये पलासी की लड़ाई में विजयी नही होता और न ही सम्पूर्ण बंगाल, बिहार और उड़ीसा ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा पदाक्रान्त होता। कैप्टेन निकल्सन और कैप्टेन लारेंस अगर षड्यन्त्र नही करते, तो अनायास ही महाराणा रणजीत सिंह का राज्य ब्रिटिश पताका के नीचे न आता। इतिहास साक्षी है कि भारत मे ऐसे तथाकथित वीरों ने वीरता को कलंकित किया है, लेकिन राजपूतों के शौर्य पर आप कहीं भी ऐसा दोषारोपण नहीं कर सकते। राजपूतों ने सर्वदा अकलंकित रूप से अपनी अतुल वीरत्व-कीर्ति की रक्षा और स्थापना की है। (आर्य कीर्ति, पृ० २-३)

'आर्य कीर्ति' के लेखक श्री रजनीकान्त गुप्त ने राजपूत आर्यवीरों का गुणगान

ओजस्वी भाषा में किया है, जिनमें प्रमुख है राणा कुंभा, राणा रायमल, जयमल, पत्ता, पत्ता की माँ कर्मदेवी, पत्ता की प्रियतमा कलावती और बहन कर्णवती। वीर पत्ता के परिवार ने १६६८ ई० में चित्तौड़ पर हुए अकबर के आक्रमण में जिस साहसिक वीरता का प्रदर्शन किया, उसका लेखक ने वीररससिक्त भाषा में वर्णन किया है।

आपने लिखा है—"एक तरफ अकबर की विशाल सेना और एक तरफ मेवाड़ की मुट्ठी भर सेना का नेतृत्व कर रहे ये जयमल और १६ वर्षीय वीर पत्ता। साथ में घोड़े पर तलवार लेकर थी पत्ता की वीर माता कर्मदेवी, अल्प वयसी प्रियतमा और सहोदरा बहन कर्णवती। ये वीर अकबर की सेना के लिए अरावली का अडिग पहाड़ बन गए। क्योंकि राणा उदय सिंह कापुरुष की भांति पलायन कर गया था। ऐसी स्थिति मे मेवाड़ और वहाँ के वीर सामन्तो ने युद्ध का मोर्चा सम्भाला था। जब मेवाड़ के ये वीर अकबर की सेना को तलवार की भनकार से गाजर-मूली की तरह काट रहे थे तो वीरत्व का एक अद्भुत रोमांचकारी नजारा उपस्थित हो गया था। इस अपूर्व दृश्य की अनन्य महिमा को आज कौन समझेगा? भारत आज निर्जीव है—भारत आज वीरत्व रहित है, भारत आज अंग्रेजों द्वारा पराधीन है। आज भारत में इन वीरो और वीरांगनाओं की पूजा कौन करेगा? ('आर्य कीर्ति', पृष्ठ १४)

लेखक ने वीर धात्री पन्ना की त्याग की कहानी मे लिखा है—"राजपूत कुल गौरव संग्राम सिंह का स्वर्गवास हो गया है। वे साहस मे अविचल और वीरत्व में अतुलनीय थे। उनके शरीर के अस्सी घाव उनकी वीरता को अलकृत करते थे। उन्होंने विधर्मी यवनों से एक हाथ, एक पैर और एक आँख से अपूर्व वीरता के साथ युद्ध किया, यवनो को पदाक्रान्त किया—पानीपत की बाबर के साथ हुई उनकी लड़ाई इसे पुकार-पुकार कर बता रही है। अन्ततः शत्रुओ के दुष्चक्र के कारण उनकी मृत्यु हुई। उनके स्वर्गारोहण से मेवाड़ का चमकता सूर्य अस्तमित हो गया। उनके बाद उनके शिशु पुत्र के संरक्षण का भार दासी पुत्र बनवीर के हाथ में आया, पर कपटचारी बनवीर, जो बालक उदय सिंह का रक्षक था, उसका भक्षक बनने पर आमादा हो गया—उदय सिंह की हत्या के लिए उद्यत हो गया।

ऐसे संकट मे बप्पा रावल के वंश की रक्षा कौन करे? यह बड़ा प्रश्न था। बालक उदय की धात्री पन्ना ने उस समय अपने पुत्र का बलिदान देकर उदय की रक्षा की। बारी (नाई) की जूठी पत्तलों की टोकरी में उदय को सुलाकर पन्ना ने उसे सुरक्षित स्थान में भेज दिया और कुमार उदय के स्थान पर अपने सुकुमार पुत्र को सुला दिया। मदोन्मत्त बनवीर ने धात्री पन्ना के पुत्र की उदय के धोखे में हत्या कर दी। धात्री पन्ना का यह त्याग विश्व-इतिहास में एक बेजोड़ उदाहरण है। (वही पृ० १६-१७)

लेखक रजनीकान्त ने धात्री पन्ना के इस अनोखे त्याग पर अपने विचार 'आर्य कीर्ति' के १८ पृष्ठ पर इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—"आज एई महान स्वार्थ त्याग उ महीयसी तेजस्वितार गौरव बुझिबे के ? बांगाली ! तुमी भीरू ! प्रकृत तेजस्विता आजऊ तोमार हृदये प्रवेश करे नाई। तुमी पान्ना के दासी बोलिया घृना करते पारो, किन्तु यथार्थ तेजस्वी उ यथार्थ हितैषी पुरुष एई असामान्य धात्री के आर, एक भावे चाहिया देखिबे।" अर्थात् आज इस महान स्वार्थ-त्याग और तेजस्विता को कौन समझेगा ? बंगाली ! तुम भीरू हो ! प्रकृत तेजस्विता ने आज भी तुम्हारे हृदय में प्रवेश नहीं किया है। तुम आज भी स्वदेश-प्रेम के महान व्रत की बात नहीं समझ पा रहे हो। इसे समझने के लिए तुम्हें वीर राजपूतों के चरित्र का अध्ययन और मनन करना होगा। (वही पृ० १८)

इसी आख्यान के उपसंहार में लेखक ने लिखा है—"भारत आज निर्जीव और निश्चेष्ट है। भारत आज शीत-संकुचित वृद्ध अथवा कछुए की भाँति अपना मुँह अपने शरीर में छिपाए किंकर्तव्यविमूढ़ है। इस प्रश्न का उत्तर कौन देगा ? इस जड़-अवस्था का त्याग कैसे होगा ? प्रतिध्वनि पुनः प्रश्न करती है—इस घोर निद्रा से जगाने का शंखनाद कौन करेगा ? कौन पराधीनता की बेड़ियाँ काटेगा ?" (वही पृ० १८)

इस प्रकार १९वी शताब्दी के बंगाली लेखक राजपूत वीर चरित्रों से ऊर्जा लेकर सोये हुए देशवासियों को जगा रहे थे। उन्होने टॉड के 'राजस्थान' से इन वीर राजपूतों के चरित्र लिए थे। रजनीकान्त अंग्रेजों की पराधीनता में सोये हुए देशवासियों को ललकार-ललकार कर जगा रहे थे। उनके जोश भरे शब्दों से युवको में देश-प्रेम और स्वाधीनता के प्रति ललक पैदा होती थी। नवजागरण का उद्दीप्त दीपक पूरी प्रखरता से जल उठता था। कदाचित् इन्ही कारणो से रजनीकान्त की रचनाओं की बंगला भाषा और देश की अन्य भाषाओ में चर्चा हुई। पराधीन देशवासियो को उद्‌बुद्ध करने के लिए रजनीकान्त गुप्त के रूप मे एक ऐसा चारण मिल गया था, जो देश के आर्य वीरो की कीर्ति का अपनी ओजस्वी भाषा में निर्भीकता से गुणानुवाद कर रहा था।

'प्रताप सिंहेर वीरत्व' निबन्ध मे रजनीकान्त ने राणा प्रताप की देशभक्ति और आत्मत्याग का ओजस्वी भाषा मे बखान किया है। हल्दीघाटी के महासमर को वीर-रस मे प्रस्तुत किया है। जब घास के बीजो की रोटी को वनबिलाव ले भागता है और प्रताप की बच्ची क्रन्दन करती है तो गुहा के पास अर्द्ध निद्रा में सोये प्रताप जग जाते हैं और बच्ची के करुण-क्रन्दन पर आत्म-विह्वल हो जाते हैं। लेखक ने पृ० २४ पर लिखा है—

"प्रताप अदूरे अर्द्धशयान थाकिया आपनार शोचनीय अवस्थार विषय भाविते छिलेन, दुहितार रोदने चमकित होइया देखेन रुटिखानी अपहृत होइयाछे। बालिका कांदिते छे।"

राणा प्रताप ने हल्दीघाटी के युद्ध मे मेवाड़ के हजारो वीरो को मृत्यु से लड़ते देखा था—उन्होने स्वयं भीषण युद्ध कर मेवाड़ के वीरों को उत्साहित किया था। अरावली पर्वत के जंगलो मे भटक कर कष्ट सहे थे। पर वह हिमालय के समान अचल वीर कन्या के रुदन से अनुशोचन करने लगा। वे व्यथित हो गए और उन्होने अकबर को आत्मसमर्पण करने की बात सोची। प्रताप की इस मनोदशा से अकबर के दरबार में प्रसन्नता छा गई, पर बीकानेर के अधिपति के छोटे भाई पृथ्वीराज ने, जो कवि भी थे, एक वीरोत्तेजक कविता लिखकर राणा के पास भेजी, जिसे पढ़कर प्रताप का सोया शौर्य पुनः जग गया और वे अकबर से जीवन पर्यन्त युद्ध करने के लिए कटिबद्ध हो गए। लेखक की प्रताप के प्रति श्रद्धा पृष्ठ ३० पर इन शब्दों मे व्यक्त हुई है—"राणा प्रताप ने स्वदेश की स्वाधीनता के लिए यवनों से युद्ध किया और आत्मत्याग दिखाया, वह राजस्थान के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।" 'आर्य कीर्ति' मे अहरिया प्रसग में राणा प्रताप और शक्ति सिंह के बीच हुए बराह-शिकार के विवाद को 'आत्मत्याग' लेख में लिपिबद्ध किया गया है और दिखाया गया है कि कुल-पुरोहित ने किस प्रकार दो भाइयो के असि-समर को अपने प्राणों की आहुति देकर रोका।

'वीरबाला' कहानी में कर्मादेवी की वीरता का बखान रजनीकान्त ने किया है। जब साधू (शार्दुल सिंह) कर्मादेवी (कोड़मदे) से विवाह कर पुंगल लौट रहा था तो रास्ते मे राठौर कुमार अरण्यकमल (अरडकमल) की सेना ने उसे आ घेरा—दोनो ओर से युद्ध हुआ। साधू की मृत्यु के बाद वीर कर्मादेवी ने अपने दोनो हाथों को काटकर एक स्वसुर के यहाँ और एक कुल-कवि के यहाँ भिजवाया और स्वयं पति के शव के साथ सती हो गई।

रजनीकान्त गुप्त की दूसरी पुस्तक "वीर महिमा" का १९०१ ई० मे प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक में राजस्थान की वीरांगनाओं का विशेष रूप से चित्रण किया गया है, जिन्होने देश की माटी को अपने वीरोचित बलिदान से गौरवान्वित किया। असल में इस पुस्तक में लेखक ने 'आर्य कीर्ति' की कई कहानियों का संकलन कर उन्हें संशोधित भाषा मे प्रस्तुत किया है।

रजनीकान्त गुप्त की 'आर्य कीर्ति' का हिन्दी मे अनुवाद प० प्रतापनारायन मिश्र ने १९०८ ई० में किया। यह पुस्तक दो खण्डो मे बांकीपुर (पटना) के खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुई।

योगेन्द्रनाथ वन्दोपाध्याय विद्याभूषण

पबना (अब बंगलादेश) निवासी श्री योगेन्द्रनाथ वन्दोपाध्याय विद्याभूषण ने "कीर्ति मन्दिर या राजपूत-वीरकीर्ति" पुस्तक की रचना १८८६ ई० (२८ आश्विन १८११ शकाब्द) में की। इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर लिखा है—"महात्मा टॉड के राजस्थान ग्रन्थ पर अवलम्बित पुस्तक।" पबना में लिखी इस पुस्तक का प्रकाशन कलकत्ता से १२९६ बंगाब्द (१८८९ ई०) में हुआ।

श्री योगेन्द्रनाथ वन्दोपाध्याय ने 'कीर्ति मन्दिर' की भूमिका में लिखा है—"वीर प्रसविनी राजस्थान की मरुधरा के वीरों की कहानी कभी पुरानी नहीं होगी। रामायण-महाभारत की भांति राजपूताना के इतिहास का जितनी बार पाठ किया जाय, उतनी ही बार अमृत-रस से हृदय आप्लावित हो जाता है। आत्मविसर्जन का अनन्त-ज्वलंत दृष्टान्त अत्यन्त कापुरुष के हृदय में भी स्वदेश और स्वजाति के लिए प्राणोत्सर्ग करने की प्रेरणा जुटाता है। स्पार्टा की रानी अपने प्राणप्यारे पुत्र को रण में जाने के समय उसे ढाल देती हुई कहती है—"बेटा! रण में विजयी होकर इस ढाल को विजयोत्सव मनाते हुए माता के पास आना, लेकिन कभी भी युद्ध में पराजित होकर या रण-विमुख होकर मेरे पास मत आना।" स्पार्टा की रानी के ये वाक्य आज भी संसार में पूजित हैं। लेकिन राजपूत रमणी पुत्र को या पति को युद्धक्षेत्र में भेजकर स्वयं विलास भवन में सुखभोग नहीं करती, वह स्वयं भी वीरवेश धारणकर हाथ में तलवार लेकर पुत्र या पति के पास युद्धस्थल में खड़ी होती और देश-जाति के लिए, अमूल्य स्वतन्त्रता के लिए, प्राणाहुति देती है। राजस्थान की वीर रमणियाँ जब स्वदेश रक्षा की आशा त्याग देती तो बड़ी संख्या में एकत्रित होकर हँसती-हँसती "जौहर-व्रत" का पालन करतीं। इस तरह से कहा जा सकता कि राजस्थान की वीर नारियाँ स्पार्टा की नारियों से शतसहस्रगुना अधिक पूज्य हैं।

राजपूत रमणियों की भांति राजस्थान के वीर भी वीरता और आत्मोत्सर्ग में अतुलनीय हैं। एक लियोनिदास की वीरता की कहानी पर ग्रीस मुग्ध है। लेकिन राजस्थान में कितने सैकड़ों लियोनिदासों ने देश की स्वाधीनता के लिए प्राण दिए हैं, उनकी गिनती ही नहीं है। महात्मा टॉड ने ठीक ही कहा है कि राजस्थान की प्रत्येक पहाड़ी घाटी यूरोप की थर्मोपली है और वहाँ प्रत्येक शहर में लियोनिदास के समान वीर हैं। वस्तुतः एक अद्‌भुत वीरत्व का ऐसा धारावाहिक कार्य अन्य किसी देश में हुआ है या नहीं, और इतने वीर पुरुष और वीर नारियाँ एक साथ आविर्भूत हुए या नहीं, इसमें संदेह है।"

ग्रन्थकार योगेन्द्रनाथ ने भूमिका के उपसंहार में मुसलमान भाइयों से क्षमा

याचना की है कि भावावेश में अगर ग्रन्थ में कोई कटुक्ति लिखी गई है, तो उसे इतिहासकर्त्ता की विवशता मानकर क्षमा किया जाय। यद्यपि उस काल के यवनो ने हमारे पूर्व पुरुषो पर अत्याचार किये थे—यह इतिहास की सत्यता है, किन्तु आज हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्वर साहित्य में फूटता दिखाई देता है। श्री योगेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय की भूमिका इसका प्रमाण है।

"वीर-कीर्ति या राजपूत-वीरकीर्ति" पुस्तक मे लेखक ने बप्पा रावल से लेकर राणा प्रताप के पुत्र अमर के राजत्व काल का पूरा इतिहास 'टॉड के राजस्थान' के आधार पर लिखा है और महात्मा टॉड के प्रति अपनी श्रद्धा ज्ञापित की है।

योगेन्द्रनाथ ने राजस्थान के दो वीर चरित्रो पर वड़ी ही सहृदयता से अपने भाव व्यक्त किए है—ये दो वीर चरित्र है महाराणी पद्मिनी और वीर केसरी राणा प्रताप। लेखक पुस्तक में विवरणात्मक शैली में पाठकों से वात करता है और घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी की भाँति वर्णन करता है। यहाँ चित्तौड़ के "जौहर-व्रत" के एक दृश्य का अंकन देखिए—

"यह देखो! इस असूर्यस्पर्श-गृह में अग्निकुण्ड प्रज्ज्वलित है। इस अग्निकुण्ड में जौहर-व्रत का पालन करती हुई चित्तौड़ की वीर नारियों ने प्रवेश किया। इनमें देखो! सबसे आगे राजमहिषी हैं—राणा लक्ष्मण सिंह की सहधर्मिणी और यह देखो! अपने रूप से जगत को आलोकित करनेवाली रानी पद्मिनी हैं, जिसकी रूपराशि से पागल होकर यवन सम्राट अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। संसार में जो कुछ रमणीय है, जो कुछ कमनीय, जो कुछ अतुलनीय है, जो कुछ माधुर्यमय है, वह सब कुछ इन चित्तौड़ की वीर नारियों में समाया हुआ है। आत्मरक्षा के लिए, सतीत्व की रक्षा के लिए, इन वीरांगनाओं ने अग्निकुण्ड में प्रसन्नमुख प्रवेश किया और क्षण मात्र में ही वहाँ राख की ढेर लग गई। देखो अलाउद्दीन! तुम जिसके सौंदर्य के पीछे अंधे हो गए थे और तुमने जिस अमरावती समान चित्तौड़ नगरी को श्मशान में परिणत कर दिया—देखो! वह सौंदर्य की अधिष्ठात्री देवी पद्मिनी वैकुण्ठ जा रही है। स्वर्ग का रथ उस सती-साध्वी और उसकी सखियों को स्वर्ग ले जा रहा है और यह सुनो! उनके स्वागत-सत्कार में दुन्दुभी-नगाड़ वज रहे हैं। ('वीरकीर्ति' पृ० ५०)

'हल्दीघाटी का महासमर' अध्याय मे पृष्ठ २१७ पर लेखक ने लिखा है —

"शायद राणा प्रताप की अक्षय कीर्ति को अजर-अमर करने के लिए ही राजस्थान की थर्मोपली याने हल्दीघाटी में अकबर की मुगलिया सेना के साथ उनका महासमर हुआ था। हल्दीघाटी आज देशवासियों के लिए पवित्र तीर्थ-स्थली बन गई है। प्रत्येक देश-भक्त और देशानुरागी को इस तीर्थ-स्थल में जाना चाहिए और यहाँ की माटी में लोटपोट होकर उस पवित्र मिट्टी को अपने अंगों में लगाकर अपने को धन्य करना चाहिए। उस तीर्थस्थल में जाकर राणा प्रताप की पूजा करनी चाहिए—जब तक उस स्वाधीनता-संग्रामी की पूजा नहीं होगी तब तक भारत की स्वाधीनता की कोई आशा नहीं।"

आगे देखिए योगेन्द्रनाथ ने हल्दीघाटी युद्ध का कैसा रोमांचकारी चित्र ओजस्वी भाषा में प्रस्तुत किया है—

"पाठक! चलो एक बार कल्पना के पंखों पर सवार होकर उस वीर प्रसू राजस्थान मे चलिए, उस पुण्यभूमि राजपूताना के दर्शन करें, जहाँ वीरो की कीर्ति रश्मियाँ चतुर्दिक विकीर्ण हो रही हैं। एक बार चलें उस पुण्यतीर्थ भूमि हल्दीघाटी मे; जो भारत की थर्मोपली है, जहाँ स्वाधीनता की रक्षा में वीर केसरी राणा प्रताप अरावली की पहाड़ियो में आजादी का शंख निनादित कर रहा है। वीर राजपूतों की छोटी सी सेना लेकर वह वीर मुगलो की अपार सेना से लोहा ले रहा है, उस सेना से जिसकी रक्षा क्षत्रिय कुलांगार मानसिंह कर रहा है—अकबर का पुत्र सलीम हाथी के ओहदे पर सवार है। चलिए! उस महासमर को देखें—किस प्रकार समुद्र के समान गर्जन करती मुगल सेना का मुकाबला राणा प्रताप चट्टान बनकर करता है। देखिए! देखिए! किस प्रकार देश की आजादी के लिए राजपूत अपनी धमनियों से उष्ण रक्त प्रवाहित कर रहे हैं और देश की पताका को अरावली शिखर से भी उन्नत, बहुत उन्नत कर रहे हैं। वीरता का ऐसा नमूना, त्याग का उदाहरण आपको कहाँ मिलेगा? कहीं नहीं, सिर्फ हल्दीघाटी में—भारत की थर्मोपली में ...। पाठक! चलो जहाँ राणा प्रताप स्वजाति के लिए, स्वदेश के लिए अतिमानवीय वीरता का दृष्टान्त उपस्थित कर रहे हैं। उनके पार्श्व में खड़े होकर उनकी कीर्ति को अपनी आँखो से देख सकते है—यह देखो! राणा अपने घोड़े चेतक पर सवार होकर कैसे भाला निक्षेप कर रहा है, उसकी तलवार बिजली के समान कौंध रही है—वह देश की आजादी के लिए अपना शोणित बहा रहा है—मुगल सेना का दलन कर रहा है....।"

ऐसी प्रभावशाली भाषा में लेखक ने सम्पूर्ण अध्याय को अपनी कल्पना-शक्ति से

पाठकों को दिखाने का अभिनव प्रयास किया है। तब तक कमेन्ट्री का युग आरम्भ नहीं हुआ था—अगर ऐसा होता तो योगेन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय विद्याभूषण एक अच्छे कमेन्ट्रेटर की श्रेणी में शुमार होते। महासमर का यह वृतान्त 'कीर्ति मन्दिर' पुस्तक के पृष्ठ २१७ से २२७ पृष्ठ तक वर्णित है।

लेखक की पुस्तक 'कीर्तिमन्दिर' की उस समय बहुमुखी प्रशंसा हुई। अंग्रेजी 'हिन्दू पेट्रियाट' ने २७ जनवरी १८९० ई० को तथा अंग्रेजी 'बेंगाली' ने १७ अप्रैल १८९० ई० को, 'द इंडियन मिरर' ने ३० अप्रैल, १८९० ई० को तथा 'हृदयोच्छवास' बंगला पत्र ने अपने इसी तिथि के संस्करण में 'कीर्तिमन्दिर' की भूयषी प्रशंसा की थी। कहने का तात्पर्य उस काल खण्ड मे बंगाली लेखक राजपूत वीरो पर निरन्तर कलम चला रहे थे और बंगाल के पत्र भी उनपर प्रशस्तियाँ, सम्वाद और अग्रलेख प्रकाशित कर रहे थे।

सतीशचन्द्र मित्र

दौलतपुर कॉलेज, खुलना (अब बंगलादेश) के प्रोफेसर सतीशचन्द्र मित्र ने १३११ बंगाब्द (१९०४ ई०) मे 'प्रतापसिंह' नामक गवेषणात्मक पुस्तक का प्रकाशन किया। यह पुस्तक शोधकर्त्ताओं के लिए विशेष उपयोगी है, जिसमे राणा प्रताप की जीवनी पर अंग्रेजी, अरबी, फारसी तथा अन्य भाषाओं की पुस्तकों से तथ्य संग्रह करके एक प्रामाणिक शोध-कार्य किया गया है। आपने अबुल फजल का 'अकबरनामा', 'आइने अकबरी', आसाद बेग कृत 'हालात', निजामुद्दीन अहमद कृत 'तबकाते अकबरी' बदायूँनी कृत 'मुसतखाबात-तबारिखी' एवं फरिश्ता के इतिहास से भी सहायता ली है। जगह-जगह अंग्रेजी मे इन ग्रन्थों के उद्धरण दिए गए है। एलफिन्स्टन एवं ईलियट के अंग्रेजी इतिहास का भी लेखक ने उपयोग किया है, किन्तु मूलतः पुस्तक टॉड के 'राजस्थान' पर आधारित है। सजग लेखक ने आँख बन्द कर टॉड का अनुसरण नही किया है। स्थान-स्थान पर अपना मन्तव्य दिया है। आपने टॉड के बारे मे अपनी भूमिका मे लिखा है—टॉड का 'राजस्थान' विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ है। टॉड ने राजस्थान की प्राचीन पुस्तकों तथा चारण-भाटों से सुनी हुई तथ्यपूर्ण बातों को संकलित कर 'राजस्थान' की रचना की है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि टॉड साहब के ग्रन्थ में त्रुटि नहीं है—अनैतिहासिक्ता नही है, ऐसे दृष्टान्त हैं, जो इतिहास से मेल नही खाते। उन पर खोज-छानबीन जारी है। इन खोजों और अनुसन्धान के बाद भ्रम का निवारण हो जाएगा। फिर भी टॉड के ग्रन्थ का अत्यधिक मूल्य है। असल मे जिस देश मे इतिहास की रचना के प्रति उत्साह नही था, ऐतिहासिक घटनाओं के संकलन के प्रति रुचि नही थी। केवल प्राचीन पौराणिक पुस्तकों के आख्यानों पर निर्भर रहना पड़ता था। ऐसी स्थिति मे त्रुटि-मुक्त पुस्तक का प्रणयन करना एक कठिन काम था, लेकिन टॉड महोदय ने सैन्य परि-

चालना, प्रशासन और राजनीतिक कामों में लिप्त रहते हुए भी इस महत् कार्य को अर्थात् इतिहास लेखन के कार्य को बड़ी दक्षता, विदग्धता और पाण्डित्य के साथ पूरा किया। यह भारतवासियों के लिए एक अमूल्य सम्पत्ति है। भारत का बच्चा-बच्चा टॉड साहब का ऋणी रहेगा। सच पूछा जाय तो टॉड हमारे लिए जेनोफेन हैं या थुकीदिदिस हैं। बंगाल और बंगला-साहित्य ऐसे महान इतिहासकार टॉड के प्रति ऋणी है। बंगाल की आज जो भाव-सम्पत्ति है, वर्तमान बंगला-साहित्य का जो भण्डार है, उसका एक चतुर्थांश टॉड के 'राजस्थान' का ऋणी है। किसी विदेशी लेखक की कृति ने, किसी भाषा में इतना प्रभाव डाला हो, ऐसा उदाहरण शायद ही कहीं मिले।"

प्रो० सतीशचन्द्र मित्र की पुस्तक 'प्रताप सिंह' का प्रथम संस्करण १९०४ ई० मे कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। पुनः १९०६ ई० मे द्वितीय संस्करण। इसी वर्ष हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ। तृतीय सस्करण १९१७ ई० एवं चतुर्थ संस्करण १९२८ ई० में प्रकाशित हुआ। तृतीय एवं चतुर्थ संस्करण में कलकत्ता विश्वविद्यालय के उप-कुलपति सर यदुनाथ सरकार की भूमिका है। प्रो० यदुनाथ सरकार ने लिखा है—"पहले प्रताप की गाथा चारण-भाटों से सुनी जाती थी, जब से टॉड का ग्रन्थ प्रकाश में आया है, राजस्थान की कथा और विशेषकर राणा प्रताप की कहानी सर्वजनीन एवं सर्वदेशीय हो गई है। इन वीर-चरित्रों की कहानियों ने राष्ट्र गठन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।"

'प्रताप सिंह' पुस्तक के पृष्ठ १४२ पर रहीम खानखाना के दोहों का बंगानुवाद है, जिससे प्रतीत होता है कि सतीशचन्द्र ने हिन्दी पुस्तकों का भी अध्ययन किया था। देखिए—

आमादेर ए जगते क्षणस्थायी सब
राज्यधन सब जाय, किछुई ना पड़े रय,
रहे शुधु महत्तेर नामेर गौरव
वीरेन्द्र प्रताप सिंह अटल सतत,
गेछे राज्य, गेछे धन, गेछे जाति अगणन,
शत्रु पदे शिर किन्तु होय नाई नत
भारतेर नृपकुले प्रताप अतुल
स्वाधीनता स्वदेशेर, जातिधर्म स्वजातिर—

रक्षा करि धन्य प्रताप केवल।

(सतीशचन्द्र कृत—'प्रताप सिंह', पृ० १४२)

रहीम खानखाना के इन दोहों का उल्लेख टॉड के 'राजस्थान' (अं०) के प्रथम खण्ड के पृ० २७२ पर तथा इसके हिन्दी अनुवाद ग्रन्थ "राजस्थान का इतिहास" (अनुवादक पं० बलदेव प्रसाद मिश्र) के प्रथम खण्ड, पृ० ३३८-३३९ पर इस प्रकार है—

"इस जगत में समस्त वस्तुएँ अनित्य और चंचल हैं, राज्य और धन समस्त ही लोप हो जायगा। परन्तु एक महापुरुष की असीम कीर्ति सदा ही अमर रहेगी। प्रताप ने अपने राज्य, धन इत्यादि समस्त पदार्थों को छोड़ा, परन्तु कभी किसी के सामने सिर को नहीं झुकाया। भारतवर्ष के समस्त राजकुमारों के बीच में केवल वही अपने पवित्र क्षत्रिय कुल के गौरव की रक्षा कर सके हैं।"

इसी प्रकार सतीशचन्द्र की 'प्रताप सिंह' पुस्तक में बीकानेर के कवि पृथ्वीराज के उस कवितामय पत्र का पद्यमय बंगानुवाद पृ० १४७-१४८ पर दिया गया है, जो उन्होंने राणा प्रताप को लिखा था—

हिन्दूर आशा, भरसा सकल,
निर्भर करिछे हिन्दूर 'परे।
हिन्दूर आश्रय महाराणा आजि
त्यजिलेन ताहा किसेर तरे?....

यह लम्बी कविता ४८ पंक्तियों की है। राणा प्रताप पृथ्वीराज के पत्र को पढ़ कर उत्साहित हुए और पुनः अकबर से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुए।

सतीशचन्द्र मिश्र ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३ पर राजस्थान की महिमा का बखान इन शब्दों में किया है—

"राजपूताना को भारत का हृदय कहा जा सकता है। मनुष्य का हृदय जैसे शरीर के मध्य भाग में जरा ऊँचे स्थान पर संस्थित रहता है, राजपूताना भी उसी भाँति कई राज्यों से घिरा भारत के मध्य भाग में स्थित है। मनुष्य का हृदय जैसे अस्थि-पंजर के अंतराल में संस्थित है—राजपूताना तदनुरूप पर्वतमाला एवं मरुभूमि के बीच स्थित है। मनुष्य की प्रधान शक्ति है हृदय—इस हृदय से ही मनुष्य को मनुष्यता और उसकी शक्ति का परिचय मिलता है—वैसे ही राजपूताना भारतभूमि का प्रधान शक्ति-केन्द्र है। इसी

राजपूताना की महाशक्ति ने ही एक समय भारत के गौरव को सुप्रतिष्ठित किया था।"

पुस्तक के पृष्ठ २४ पर राणा प्रताप के वंश का परिचय दिया गया है, जिसमें बताया गया है कि राणा उदय सिंह के २४ पुत्र हुए, इनमें प्रताप ज्येष्ठ पुत्र थे, शक्ति सिंह द्वितीय पुत्र था।

राणा प्रताप की सेना में मुसलमान पठान सैनिक थे। उनका प्रधान हाकिम खाँ सूर था। इसी हाकिम खाँ सूर ने हल्दीघाटी के युद्ध में सर्वप्रथम युद्धारम्भ का श्रीगणेश किया था। लेखक ने हल्दीघाटी युद्ध की व्यूह-रचना का विस्तार से पुस्तक के पृष्ठ ६८ पर वर्णन किया है तथा दोनों पक्षों के वीर सैनिकों के नाम गिनाये है और बताया है कि कौन वीर किस तरफ तथा किस सेना का संचालन कर रहा था। लेखक ने अपनी बात को चित्र द्वारा प्रदर्शित किया है। यह चित्र उन्होंने स्वयं बनाया था। पुस्तक में और भी कई चित्र हैं, जो इसकी भव्यता और प्रामाणिकता को दर्शाते हैं। पुस्तक मे महाराणा प्रताप, राजपूताने का मानचित्र, चित्तौड़ का विजय स्तम्भ, चित्तौड़ दुर्ग, हल्दीघाटी का युद्ध क्षेत्र, कमलमीर दुर्ग, उदयपुर उपत्यका, उदयपुर नगरी एवं पेशोला झील के चित्र प्रकाशित किए गए है।

'प्रताप सिंह' पुस्तक २२ परिच्छेदों में विभक्त है। इसमें राणा प्रताप के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं का खोजी दृष्टि से आकलन हुआ है। पुस्तक को देखने से लेखक का श्रम अनायास ही सामने आ जाता है। कई दृष्टियों से यह पुस्तक बंगला-साहित्य की अमूल्य निधि है। इसकी अत्यधिक ख्याति होने के कारण ही प्रो० सतीशचन्द्र मित्र ने इसका अंग्रेजी में रूपान्तर कर प्रकाशन किया।

पुस्तक के पृष्ठ १७३-१७४ पर लिखा गया है—"मंत्रेर साधन किंवा शरीर पातन" याने या तो मेवाड़ को स्वाधीन करने की प्रतिज्ञा पूरी करूँगा या शरीर का त्याग करूँगा। राणा प्रताप ने अपने जीवन में इस कठोर प्रतिज्ञा का पालन करके दिखा दिया। राजसी सुख भोग को छोड़कर देश की स्वाधीनता के लिए प्रताप ने एक ऊँचा और बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत किया। जैसे उनकी प्रतिज्ञा कठोर थी वैसे ही उसके पालन की प्रणाली भी कठोर थी। धर्म या मोक्ष के लिए लोग तपस्या करते हैं—लेकिन प्रताप की तपस्या थी स्वाधीनता के लिए, देश की आजादी के लिए, राजपूत जाति की गौरव रक्षा के लिए। प्रताप की राजनीतिक-तपस्या ने उन्हें वीर-श्रेष्ठ पुरुषों में वरेण्य बना दिया।"

"प्रताप के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी स्वदेश-भक्ति, उनकी मातृ-भूमि की पूजा। वास्तव में उन्होंने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' को

जीवन के आचरण में उतार लिया है—यह उनकी वाणी और कर्म में विद्यमान है। माँ की मृत्यु पर सन्तान को शोकातुर होते हम अक्सर देखते हैं—स्वयं अनुभव भी करते हैं, किन्तु जन्मभूमि चित्तौड़ की ध्वंसलीला देख कर तथा उसे विधर्मियों के कब्जे में देखकर प्रताप के हृदय में जो पीड़ा, कष्ट और टीस थी, उसे हम अनुभव भी नहीं कर सकते। स्वदेश को, जन्मभूमि को किस भाँति माता के रूप में पूजा और समझा जाता है, यह जानना हो तो हमें प्रताप के समान जन्मभूमि की भक्ति का आदर्श अपनाना होगा। जन्मभूमि को माता के समान, देवता के समान पूजने की शिक्षा हमें प्रताप से मिलती है। उनके लिए नदी-नालों, पहाड़ों-कन्दराओं की मरुभूमि मानवीय रूप में देवी हो गई थी। जैसे देवता की, देवी की पूजा-अर्चना की जाती है—वैसे ही प्रताप ने जन्मभूमि की समस्त लोकाचार, धर्माचार और अन्य विधियों से पूजा की। प्रताप के जीवन की घटना और उनके चरित्र से ये बातें स्वतः ही प्रकट होती हैं। वस्तुतः प्रताप के प्रताप का इतिहास आरम्भ से अन्त तक मातृ-पूजा का वन्दनीय इतिहास है—असाधारण आत्मोत्सर्ग का इतिहास है और है आजादी के लिए मरने का, प्राण देने का ज्वलन्त इतिहास। ऐसे देश-भक्तों में, महापुरुषों में प्रताप सिंह एक जाज्वल्यमान नक्षत्र ही नहीं मार्तण्ड है।" (वही, पृ० १७३-१७४)

प्रो० सतीशचन्द्र मित्र ने 'प्रताप सिंह' पुस्तक में बार-बार देशवासियों और खासकर युवकों से राणा प्रताप के जीवन का अनुकरण करने और देश की आजादी के लिए मरमिटने का आह्वान किया है।

बंगला भाषा की इन ऐतिहासिक पुस्तकों से ज्ञात होता है कि उस समय टॉड के 'राजस्थान' का साहित्य-जगत में जबरदस्त प्रभाव था और सभी रचनाकार राजस्थान के वीर-चरित्रों को लेकर रचना-प्रक्रिया में संलग्न थे। राजस्थान के वीरों के उपाख्यान को वे बड़ी प्रभावशाली भाषा में प्रस्तुत कर रहे थे।

श्री व्रजेन्द्रनारायण चन्दोपाध्याय ने १३४६ बंगाब्द (१६४५ ई०) में 'महाराणा प्रताप सिंह' की जीवनी का प्रकाशन किया। यह पुस्तक कलकत्ता से प्रकाशित हुई। लेखक ने राणा प्रताप की जीवनी के उपसंहार में प्रो० सतीशचन्द्र मित्र की पुस्तक 'प्रताप सिंह' में लिखित सर यदुनाथ सरकार के कथन को उद्धृत किया है—"इतिहास तो एक बड़ी वस्तु है, घटना की शेष परिणति देखकर इतिहास पर विचार नहीं किया जा सकता। कोई भी जाति अपने दृढ़ चरित्र और शक्ति से चिरकाल तक जीवित रहती है। जिसकी कीर्ति जीवित है, वह अमर है, जीवित है, कीर्तिर्यस्य सः जीवति—

उदयेर पथे शुनि कार वाणी—

भय नाई उरे भय नाई
निःशेषे प्राण जे करिबे दान
क्षय नाई तार क्षय नाई। (पृ० १६)

राजस्थान के वीरों की अक्षय कीर्ति अमर है। उनके महत् चरित्र की कहानी भारत की कहानी बन गई है—जो इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अंकित है। त्याग का इतना बड़ा उज्ज्वल दृष्टान्त और स्वतन्त्रता के लिए मरने वाले प्रताप के समान और कौन वीर मिलेगा?

टॉड के 'राजस्थान' से अनुप्रेरित होकर बंगला साहित्य में केवल काव्य, नाटक, उपन्यास आदि ही नहीं लिखे गए। कई लेखकों ने 'राजस्थान' ग्रन्थ के आधार पर ऐतिहासिक लेख और जीवनियाँ भी लिखीं। डॉ० वरुण कुमार चक्रवर्ती ने "टॉडेर राजस्थान उ वांग्ला साहित्य" नामक गवेषणात्मक पुस्तक के पृष्ठ २०५ पर अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—"राजस्थान ग्रन्थ का प्रभाव बंगाल की भावना-चेतना पर इस कदर व्याप गया था कि बंगला-साहित्य की सभी विधाओं में उससे उपाख्यान लेकर कोई न कोई रचना लिखी गई। वस्तुतः टॉड के राजस्थान से बंगला-साहित्य का कोई अंश अछूता नहीं रहा। इसका बड़ा कारण था कि इस ग्रन्थ ने बंगला साहित्यकारों के मानस पर अपनी गहरी छाप डाल दी थी। इसमें स्वदेश-प्रेम की जो सरिता प्रवाहित हुई है—उसमें अवगाहन करके कवियों, नाटककारों, औपन्यासिकों, गल्प-लेखकों और इतिहास के रचयिताओं को अमूल्य रत्न-भण्डार मिला। चूंकि उस काल में राजस्थान को जानने का एक ही साधन था "टॉड का राजस्थान।" फलतः उसमें जो कमियाँ और त्रुटियाँ हैं, वे बंगला-साहित्य की इतिहासमूलक-रचनाओं में भी हैं।"

मनमोहन राय

इसी प्रकार मनमोहन राय ने 'ऐतिहासिक प्रबन्ध' का प्रथम खण्ड १८८५ ई० में प्रकाशित किया। इसमें छात्रों के लिए लेखक ने राणा प्रताप की देश-भक्ति का बखान किया है।

पुस्तक के आमुख में लेखक ने अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—

'स्वाधीनता के पवित्र मंत्र और देश-प्रेम से अनुप्राणित होकर हिन्दू आर्य जाति ने जैसे उज्ज्वल-तेजस्वी चरित्रों की अवतारणा की है, वह अन्य किसी जाति में विरल है। आधुनिक युग में भी उनके वंशधरों ने इस पतित जाति के उद्धार के लिए जैसे वीर-कार्य किए हैं, वे वन्दनीय हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर हमने सूर्यवंश में सूर्य के समान चमकने वाले एक वीरश्रेष्ठ का चरित्र प्रस्तुत करने की विनीत चेष्टा की है। यह वीर पुंगव और कोई नहीं—राणा प्रताप है।"

कालीप्रसन्न दासगुप्त द्वारा लिखित 'राजपूत कहानी' १९१३ ई० मे प्रकाशित हुई। इसमें इतिहासमूलक कई रचनाएँ है। इसमे बहुत से राजपूत वीरो की जीवनियो का संग्रह है।

'पृथ्वी के इतिहास चित्र मे और कहानियो में' इस अवधारणा को लेकर विजयरत्न मजुमदार की पुस्तक १९२४ ई० मे प्रकाश मे आई। इसमे भी राजस्थान की वीर कहानियाँ संकलित है।

योगेन्द्र नाथ गुप्त ने १९२५ ई० मे 'पद्मिनी' ग्रन्थ की रचना की। इस पुस्तक में वीर रमणी पद्मिनी के जौहर व्रत का मार्मिक चित्रण हुआ है।

१९२६ ई० में चन्द्रकान्त सरस्वती विद्याभूषण ने 'मेवाड़ कहानी' पुस्तक लिखी। बारह अध्याय में विभक्त इस पुस्तक मे राजपूताना का संक्षिप्त इतिहास है। पुस्तक मे प्रसिद्ध चित्रकार फणीभूषण गुप्त के चित्रो के समायोजन से इस ग्रन्थ का गौरव बढ़ गया है।

डॉ० कालिका रंजन कानूनगो

डॉ० कालिका रंजन कानूनगो ने १९६५ ई० में 'राजस्थान काहिनी' की बंगला भाषा में रचना की। यह पुस्तक इतिहासमूलक निबन्धो का संग्रह है जिनमें विद्वान इतिहासकार ने इतिहास के कई प्रसंगों पर नई दृष्टि से प्रकाश डाला है। इसमें टॉड के 'राजस्थान' की ऐतिहासिक विसंगतियो पर भी लेखनी चलाई गई है। १९६५ ई० में डॉ० कानूनगो को इस पुस्तक पर 'रवीन्द्र पुरस्कार' प्राप्त हुआ। बंगला भाषा में यह पुस्तक काफी चर्चित है। पुस्तक में महाराणा प्रताप, हल्दीघाटी युद्ध, राजा मानसिंह महाराज छत्रसाल बुन्देला, महाराणा राजसिंह, मरुबधू (ढोला मारू) चारण और क्षत्री, राजपूताना की चारण जाति, राजपूतो का वैर, मुसलमान सम्यता की धारा और प्राचीन ज्ञान चर्चा, खलीफा अब्दुल्ला अलमामून, पद्मावती काव्य और पद्मिनी की अनैतिहासिकता, बादशाही युग की कहानी, मातुल और भागनेय, चित्रावली, इतिहास का इन्द्रप्रस्थ आदि निबन्ध संकलित है। लेखक राजस्थानी, हिन्दी और फारसी का विद्वान है। लेखो में मूल राजस्थानी के प्राचीन उद्धरण देकर तर्कसम्मत तथ्य उपस्थित किए गए हैं। डॉ० कानूनगो इतिहास के जाने-माने लेखक है।

हिन्दी और राजस्थानी में इतिहासमूलक रचनाएँ

यह सच है कि १९वीं शताब्दी के पूर्व आजकल की भांति क्रमबद्ध तरीके से लिखे इतिहास ग्रन्थ नहीं मिलते हैं, किन्तु टॉड के 'राजस्थान' के पूर्व राजस्थान में ही इतिहास लिखने की गौरवपूर्ण परम्परा रही है। जैसे भारत में इतिहास न लिखने की बात कई विद्वानों ने कही है, वहीं फ्रांस के एक प्रसिद्ध प्राच्य विद्या-विशारद ने एक प्रश्न उठाया है कि यदि भारतवर्ष का कोई इतिहास नहीं था तो अबुल फजल को प्राचीन हिन्दू इतिहास की सामग्री कहाँ से मिली? यही बात टॉड के 'राजस्थान' के बारे में भी प्रयोज्य है। अक्सर यह कहा जाता है कि टॉड के इतिहास ग्रन्थ के पूर्व राजस्थान का कोई इतिहास नहीं था। यह धारणा भ्रामक है। अगर राजस्थान का कोई इतिहास या ऐतिहासिक सामग्री न होती तो टॉड साहब इतना बड़ा इतिहास ग्रन्थ कैसे लिख पाते? असल में चारण-भाटों के डिंगल-साहित्य में तथा राज-प्रशस्तियों और रासो-ग्रन्थों में जो इतिहास की सामग्री थी, उसीको टॉड साहब ने क्रमबद्ध कर उसे आधुनिक इतिहास का रूप दिया। चूंकि इन ग्रन्थों में जो अनैतिहासिक तत्व थे, वे भी टॉड के ग्रन्थ में आ गए, इसीलिए परवर्ती काल में जो नए अनुसन्धान हुए, उनके आधार पर 'राजस्थान' ग्रन्थ की कई अनैतिहासिक बातों पर नए सिरे से रोशनी पड़ी।

वस्तुतः हमारे यहाँ इतिहास का उद्देश्य तिथियों तथा घटनावलियों का वर्णन करना मात्र नहीं रहा है, प्रत्युत मानव-जीवन के शाश्वत सिद्धान्तों को महापुरुषों के जीवन-वृत्तों में घटित करते हुए राष्ट्र के स्वरूप को दर्शाना रहा है। इसलिए रासो या इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों में इतिहास गौण हो गया और ये कृतियाँ साहित्य-ग्रन्थों के रूप में स्वीकृत हो गईं। हमारे पौराणिक ग्रन्थ भी इतिहास नहीं महाकाव्य माने जाते हैं। डॉ० शुकदेव दुबे ने अपनी पुस्तक "हमारे इतिहासकार" में इस तथ्य का समर्थन किया है। *यह पुस्तक इलाहाबाद से १९७३ ई० में प्रकाशित हुई है।* भारत में उपलब्ध पुराणों में धार्मिक एवं सामाजिक विषयों की प्रचुर सामग्री के साथ-साथ वंशावलियों के रचयिता तथा राज-सभाओं के कवियों का भी उल्लेख है। ऐसा प्राचीन साहित्य भारतीय वाङ्मय में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, परन्तु शुद्ध-इतिहास विषयक ग्रन्थों तथा लेखकों का अभाव-सा ही है। यह अवधारणा इसलिए भी बनती है कि जिन पाश्चात्य या भारतीय इतिहासकारों ने भारत का इतिहास रचा, उन्होंने इन ग्रन्थों का गहराई से अध्ययन नहीं किया। इसके दो कारण थे। एक तो आंचलिक क्षेत्रों में या प्रदेश

विशेष की भाषाओं में ऐसा साहित्य रचा गया था। दूसरा कारण यातायात या दूर-संचार के साधनों का अभाव था। यही वजह है कि जब टॉड का राजस्थान अंग्रेजी भाषा में लन्दन से प्रकाशित होकर प्रचारित हुआ तो उसकी ख्याति सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं में ही नहीं, अपितु विश्व की भाषाओं में भी हो गई। जबकि वास्तविकता यह है कि राजस्थान मे टॉड के 'राजस्थान' के पूर्व और पश्चात प्रचुर मात्रा मे हमे इतिहास-ग्रन्थ गद्य और पद्य दोनों मे मिलते है। टॉड ने इन ग्रन्थो मे से कई को अपने इतिहास का आधार बनाया है, जिसमे 'खुमाण रासो' और 'पृथ्वीराज रासो' आदि काव्य-ग्रन्थ प्रमुख हैं।

डिंगल भाषा में इतिहास-ग्रन्थ

"साहित्य किसी देश या जाति के काल विशेष के विचारों और भावों का प्रतिबिम्ब होता है।" यह उक्ति राजस्थान के डिंगल-साहित्य पर भी लागू होती है। डिंगल-साहित्य में राजस्थान के सैकड़ो वर्षों के संस्कार, उसका संघर्षमय लोक-जीवन तथा उसका इतिहास प्रतिबिंबित है और उसमें समाज की भावनाएँ व्यक्त हुई है। देश-प्रेम, जातीय-गौरव और स्वाधीनता-संघर्षों से यह लबालब भरा हुआ है। डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने "राजस्थानी भाषा और साहित्य" पुस्तक के पृष्ठ ४८ पर अपने भाव इन शब्दों मे व्यक्त किए है—राजस्थान के डिंगल-साहित्य में रणोन्मत्त राजपूत वीरों, मरणातुर राजपूत महिलाओं और रणांगण की रक्त-रंजित हाय-हत्या का भावमय चित्रण है। यह साहित्य जीवन का साहित्य है और सदा जीवन को लेकर आगे बढ़ा है। यह ऐसे लोगों का साहित्य है और ऐसे लोगों द्वारा रचा गया है, जिन्होंने तलवार की चोटें अपने मस्तक पर झेली हैं, जीवन-संग्राम में जूझकर प्राण दिए हैं।"

आपने आगे इसी पृष्ठ पर लिखा है—"साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ यह साहित्य इतिहास की दृष्टि से परम उपयोगी है। पाश्चात्य विद्वानो ने भारतीय साहित्य मे यह कमी बतलाई है कि इसमे इतिहास विषयक सामग्री का एक तरह से अभाव है। परन्तु उनका यह आक्षेप डिंगल-साहित्य पर लागू नही होता।" डिंगल-साहित्य मे इतिहास-विषय की सामग्री प्रचुर मात्रा मे मिलती है। दूसरे शब्दो में कहा जाय तो कह सकते है कि इस साहित्य मे इहिास सम्बन्धी सामग्री की ही प्रधानता है।

पन्द्रहवी शताब्दी से १६वीं शताब्दी के मध्य तक के लगभग चार सौ वर्षो का पूरा इतिहास राजस्थान के डिंगल-साहित्य मे मिलता है। किन्तु जैसा कि हमने पूर्व मे कहा है प्रचार के अभाव में यह साहित्य उपेक्षित रहा। इसका कारण यह भी है कि

भारत के मुसलमान कालीन इतिहास पर जितने ग्रन्थ देशी या विदेशी विद्वानों के द्वारा रचे गए हैं—उनमें मुसलमान इतिहासकारों के ग्रन्थों से तो तवारीखें और उद्धरण लिए गए हैं, पर डिंगल-साहित्य कदाचित् भाषा की दुरुहता या अनभिज्ञता के कारण छूट गया है। अगर इनका उपयोग सही रूप से होता तो सम्भव है भारतीय इतिहास का स्वरूप कुछ दूसरा ही होता और नए तथ्य सामने आते।

हमने पूर्व में कहा है डिंगल में इतिहास की सामग्री गद्य-पद्य दोनों में मिलती है। गद्यात्मक सामग्री अधिकतर ख्यात, बात, विगत और वंशावलियों में मिलती है। यह मार्के की बात है कि राजस्थान मे तीन-चार सौ वर्ष पूर्व से गद्य लेखन मिलता है—जबकि खड़ी बोली हिन्दी मे गद्य लेखन का कार्य बहुत बाद मे शुरू हुआ। १९वीं शताब्दी में गद्य का हिन्दी में आरम्भ होने के कारण ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल (संवत् १९०० से अवतक) को 'गद्यकाल' की संज्ञा दी है !

मुहणोत नैणसी की ख्यात

मुहणोत नैणसी ओसवाल बनिया थे। इनका जन्म सं० १६६७ मे हुआ था। जोधपुर के महाराजा यशवन्त सिंह ने इन्हें अपने राज्य का दीवान बनाया था। राजस्थान के इतिहासकार मुशी देवीप्रसाद ने इन्हें राजपूताने का अबुलफजल कहा है। इसका कारण है कि नैणसी ने राजस्थानी गद्य भाषा में "मूता नैणसी री ख्यात" नाम से एक वृहद् ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है। यह रायल अठपेजी साईज के एक हजार से अधिक पृष्ठों का बड़ा ग्रन्थ है। इसमें राजस्थान के विभिन्न राज्यो के इतिहास के अतिरिक्त गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, बघेलखण्ड, बुन्देलखण्ड और मध्य भारत के इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। इनका दूसरा ग्रन्थ है—"जोधपुर राज्य का गजेटियर" ये दोनो ग्रन्थ इतिहास के अमूल्य रत्न हैं और टॉड के 'राजस्थान' से बहुत पहले से उपलब्ध हैं।

"मुहणोत नैणसी की ख्यात" को दो भागो मे [सम्वत् १९८२ (१९२५ ई०) मे प्रथम भाग और १९९१ वि० स० में दूसरा भाग] काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित किया गया है। जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासकार देवीप्रसाद मुंशिफ ने सभा को दस हजार रुपए का अनुदान दिया था—उसी से राजस्थान के कई ग्रन्थ काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुए है। इस पुस्तक की भूमिका प० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने लिखी है। खड़ी बोली हिन्दी मे इसका अनुवाद किया है श्री रामनारायण दूगड ने।

उच्च कोटि के इतिहासज्ञ होने के साथ-साथ नैणसी डिंगल भाषा के सिद्धहस्त गद्य-लेखक भी थे। इनकी भाषा सरल, परिमार्जित और सुबोध है। वर्णन शैली सुगठित एवं रोचक है। नैणसी की ख्यात का नमूना देखिए—

"डूंगरपुर सहर, ता उगवाण नै दिषण वेउ तरफ भाखर छै। खोहल माहें सहर मगरा री खम्भ बसीयो छै। छोटो-सो कोट छै। उठे रावल रा घर छै। गांव माहें देहुरा घणा छै।"

अर्थात् डूंगरपुर शहर के पूर्व और दक्षिण में पहाड़ है। बीच में पर्वत खम्भे के समान दीख पड़ता है। छोटा सा किला है। वहीं रावल (राजा) का महल है। गाँव में कई मन्दिर या घर है।

वंश भास्कर

महाकवि सूर्यमल मिश्रण ने बूंदी के राजा की आज्ञा से सं० १८९७ में 'वंश भास्कर' की रचना की। यह राजस्थान का पद्यात्मक इतिहास है, जो टॉड के 'राजस्थान' का समकालीन कहा जा सकता है। 'वंश भास्कर' मे बूंदी के अतिरिक्त अन्य रियासतो का भी इतिहास पद्यबद्ध भाषा मे किया गया है। जोधपुर के प्रताप प्रेस से इसका प्रकाशन सं० १९५६ मे सात खण्डो मे (रायल अठ पेजी साईज) में ४३६८ पृष्ठों मे हुआ है। इसके टीकाकार है बारहठ कृष्ण सिंह। सम्पादन के कार्य में महाकवि सूर्यमल के दत्तक पुत्र और कवि मुरारीदीन ने सहयोग दिया है। इसके प्रकाशन में पं० रामकर्ण श्यामकरण आसोपा का पूरा सहयोग रहा है। पं० रामकर्ण प्राचीन शिलालेखो के अद्भुत पाठक थे। उन्हें विभिन्न लिपियो का ज्ञान था। आप दो वर्ष तक कलकत्ता विश्वविद्यालय मे राजपूत इतिहास के प्रोफेसर रहे तथा बंगाल की ऐशियाटिक सोसाइटी में कार्य किया। आपने डॉ० टैसीटरी को डिंगल भाषा के शोध मे सहायता की।

महाकवि सूर्यमल राजस्थान के वीर-रस के सर्वश्रेष्ठ कवि और इतिहासकार माने जाते है। इनकी 'वीर सतसई' के दोहे आज भी राजस्थान में जन-जन की जुबान पर हैं। हमने 'वीर सतसई' पर 'काव्य अध्याय' में चर्चा की है। 'वंश-भास्कर' का बड़ा मूल्य है। इसकी ऐतिहासिकता की सभी ने प्रशंसा की है। इसमे वर्णित घटनाएँ और विवरण सत्यता और वास्तविकता के अधिक नजदीक है। कवि सूर्यमल टॉड साहब के ही समसामयिक नही हैं—आधुनिक बंगला भाषा के प्रथम काव्य प्रणेता रंगलाल बन्दोपाध्याय के भी आप समकालीन है। १८५७ के प्रथम स्वातंत्र्य-संग्राम मे रंगलाल और सूर्यमल के काव्य-ग्रन्थो का बड़ा महत्व रहा है—इसका उल्लेख हमने पुस्तक मे यथास्थान किया है।

वीर विनोद

राजस्थान के इतिहासकारो में कविराज श्यामलदास के 'वीर विनोद' की बड़ी ख्याति है। यह राजस्थान का उर्दू-मिश्रित हिन्दी गद्य मे लिखा गया बेजोड़ ग्रन्थ

है। कविराज श्यामलदास का जन्म सं० १८९३ में हुआ था। श्यामलदास सभा-चतुर, नीति-निपुण एवं स्पष्टभाषी पुरुष थे और मेवाड़ के महाराणा सज्जन सिंह के कृपापात्र थे। राणा सज्जन सिंह के शासनकाल में ही श्यामलदास ने 'वीर विनोद' इतिहास ग्रन्थ की रचना की। यह बृहद् इतिहास दो भागों में विभक्त है और रायल चौपेजी साईज के कोई २७०० पृष्ठों में लिखा गया है। कहा जाता है कि इसके लेखन में मेवाड़ राज्य का कोई एक लाख रुपया खर्च हुआ। 'वीर विनोद' का लेखन कार्य सं० १९२८ में आरम्भ हुआ और सं० १९४९ में पूरा हुआ। यह ग्रन्थ छप तो गया पर मेवाड़ के राणा फतह सिंह की आज्ञा से इसका प्रचार रोक दिया गया। इसलिए छप जाने पर भी यह सर्वसाधारण के काम में न आ सका। बाद में इसका प्रचार सर्वसाधारण में हुआ। 'वीर विनोद' इतिहास का एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। वैसे इसमें मुख्य रूप से मेवाड़ का इतिहास है, पर प्रसंगवश जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर आदि रियासतों का भी इसमें वृतान्त है। इस ग्रन्थ में मुसलमान बादशाहों के विवरण भी प्रमाण सहित आ गए है, जिससे इसकी प्रामाणिकता और उपयोगिता बढ़ जाती है। प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों, बादशाही फरमानों तथा अन्य दस्तावेजों का इसमें अपूर्व संकलन हुआ है।

भाषा पर श्यामलदास का असाधारण अधिकार है। इनकी भाषा चुस्त और मुहावरेदार है। भाषा में अरबी-फारसी के शब्द प्रचुर मात्रा में आये हैं। अगर इसे अरबी लिपि में लिख दिया जाय तो यह ग्रन्थ उर्दू का महाग्रन्थ समझा जायगा। चूंकि देवनागरी लिपि में यह लिखा गया है और हिन्दी के प्राचीन गद्य का यह श्रेष्ठ नमूना है। पता नहीं आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में रामप्रसाद 'निरंजनी' के 'भाषा योग वाशिष्ट', पं० दौलत राम के 'पद्मपुराण', इंशाउल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी', लल्लूलाल जी के 'प्रेमसागर' आदि के तो गद्य के उद्धरण प्रस्तुत किए, किन्तु 'वीर विनोद' के गद्य का कोई नमूना नहीं दिया। यहाँ 'वीर विनोद' के गद्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"बादशाह ने उन लोगों की सलाह पर बिल्कुल खयाल न किया और यही जवाब दिया कि राणा के आये बगैर इस लड़ाई से हाथ उठाने में मुझे शर्म आती है, और उन दोनों सरदारों से फर्माया कि राणा के हाजिर हुए बिना यह अर्ज मंजूर नहीं हो सकती। तब झोडिया सांडा ने अर्ज की कि हमारे मालिक तो पहाड़ी मुल्क के राजा हैं और पहाड़ी लोगों में जिहालत (असभ्यता) ज्यादा होती है, वे इस वक्त मौजूद नहीं हैं। इसलिए उनके हाजिर होने का इकरार हमलोग नहीं कर सकते। हमलोगों को, जो पेशकश देकर लाचारी करते हैं, जबरदस्ती मारना बादशाही कायदे के खिलाफ है, इस पर जयपुर के राजा भगवानदास ने बादशाह के कान में झुककर अर्ज की कि देखिए यह

कैसा गुस्ताख आदमी है कि शाहनशाही दरबार में सख्त कलामी से पेश आता है। अकबर शाह तो बड़ा कदरदान था। उसने फरमाया, कि यह शख्स जो अपने मालिक की खैरख्वाही पर मुस्तैद होकर सवालों के जवाब बेधड़क दे रहा है, इनाम के लायक है। इससे राजा भगवानदास को, जिसने अदावत से चुगली खाई थी, शर्मिन्दा होना पड़ा।"

अब पुनः 'वीर विनोद-मेवाड़ का इतिहास' चार जिल्दों में दिल्ली से १९८६ ई० में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक का प्राक्कथन प्रो० थियोडोर रिकार्डी (जूनियर) ने लिखा है, जो न्यूयार्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा के प्रोफेसर है। इस प्रकार १८८६ ई० के बाद पुनः एक सौ वर्ष बाद "वीर विनोद" का वृहदाकार रूप में प्रकाशन हुआ है। यूं छोटे रूप मे इसका प्रकाशन पहले भी हुआ है।

प्रो० थियोडोर ने अपने प्राक्कथन (foreword) में लिखा है—

The Vir Vinod of Shyamaldas, one of the earliest Indian historical works written in Hindi, has long been inaccessible to scholars and the general public. Printed in folio size in Udaipur in 1893, it was never distributed widely and only a few copies found their way outside of Rajasthan.

The work was first brought to my attention many years ago by Professor S. Rudolph of the University of Chicago. At that time I was searching for Indian texts dealing with Nepal, and was happy to find that Shyamaldas had included an account of that country in his work.

—Theodore Riccardi (Jr.), Professor of Indian Studies, Columbia University, New York.

'हिस्टोरियन्स ऑफ मिडयेवेल इण्डिया' (मेरठ—१९६८) पुस्तक में इतिहासकार मोहिबुल हसन ने पृ० २०० पर लिखा है—

"After Tod, the pioneer work in this field was done by Kaviraj Shyamaldas, Court-poet of Maharana Sajjan Singh—(1874-1884) of Mewar. Kaviraj Shyamaldas in his monumental history entitled 'Vir Vinod' which runs to nearly 2800 pages has covered a very wide field of the history and geography of the whole of Rajasthan. The author has also brought together a large amount of statistical material on the political, economic and administrative aspect of Rajasthan. He has also given copies of many inscriptions as well as Farmans etc. of the Mughal Kings. Thus this great work will ever remain a standard work of reference on political history of Rajasthan." [—Historians of Medieval India, By Mohibul Hassan, Meerut, 1968, Page 200]

दरअसल व्यापक रूप से प्रचलित मौखिक काव्यों और कथाओं द्वारा प्राचीन परम्पराओं को सुरक्षित रखने का श्रेय राजस्थान के चारण और कवियों को है। इन सभी सामग्रियो का संकलन कर टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ लिखा। इसके प्रकाशन से मेवाड़ ही नहीं सम्पूर्ण राजस्थान की प्रतिष्ठा विश्व में उजागर हुई। इसी परम्परा मे कविराज श्यामलदास का 'वीर विनोद' है। 'वीर विनोद' राजस्थान के इतिहास का एक विशालकाय और चिरस्मरणीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ ने अपनी स्पष्टोक्तिपूर्ण निराली शैली में हिन्दी गद्य-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। अब चार जिल्दों मे और २७१६ पृष्ठों में 'वीर विनोद' पुनः प्रकाशित हुआ है। 'वीर विनोद' में राजस्थान का इतिहास सम्पूर्ण विश्व के परिप्रेक्ष्य मे रचा गया है। जिसमें यूरोप, अफ्रीका, उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका, अस्ट्रेलिया तथा एशिया महाद्वीप का सामान्य सर्वेक्षण भी है।

परवर्ती काल में राजस्थान के सम्बन्ध में जितनी ऐतिहासिक पुस्तकें लिखी गई, उनमे 'वीर विनोद' का जिक्र लेखकों ने किया है तथा अपनी बात की पुष्टि में कविराज श्यामलदास के 'वीर विनोद' को उद्धृत किया है। इन सब कारणो से 'वीर विनोद' की ख्याति और उसकी ऐतिहासिक मान्यता का प्रमाण मिलता है।

राजपूताने का इतिहास

टॉड के 'राजस्थान' के प्रकाशन के बाद नई-नई ऐतिहासिक खोज शुरू हुई। इन अनुसन्धानकर्त्ताओं मे महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का नाम आदर से लिया जा सकता है। आरम्भ मे ओझाजी ने टॉड की ऐतिहासिक त्रुटियो को दुरुस्त कर उसे प्रामाणिक बनाने की दिशा में चेष्टा की। किन्तु पश्चात उन्होंने ही अपने ऐतिहासिक ज्ञान से "राजपूताने का इतिहास" चार खण्डों मे १९२७ ई० मे प्रकाशित किया। टॉड के 'राजस्थान' के बाद राजस्थान का इतिहास जानने के लिए इतिहास लिखने वाले ओझाजी के ग्रन्थ का इस्तेमाल करते हैं।

पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का जन्म सिरोही राज के रोहेड़ नामक गाँव में सं० १९२० में हुआ था। इनके पिता का नाम हीराचन्द था। इसीलिए इन्होंने गुजरातवासियो की भाँति अपना नाम भी पिता के नाम के साथ जोड़ लिया। सिरोही गुजरात के निकट का राज्य है। वैसे ओझाजी के वंशज मेवाड़ के रहनेवाले थे, किन्तु बाद में वे सिरोही में जाकर बस गए। शिक्षा प्राप्त करने के बाद ओझाजी बम्बई गए और वहाँ आपने रोम, ग्रीक तथा यूरोप के इतिहास का अध्ययन किया। आपने टॉड के 'राजस्थान' को भी आलोचक की दृष्टि से पढ़ा। पुनः वे उदयपुर चले आये और कविराज श्यामलदास के सहायक नियुक्त हुए। ओझाजी के इतिहास ज्ञान के कारण उन्हें उदयपुर म्यूजियम का अध्यक्ष नियुक्त किया गया और तदन्तर आप १९६५ वि० सं० मे राजपूताना, अजमेर के क्यूरेटर नियुक्त हुए। अजमेर में रहकर आपने इतिहास के

शोध का काम दत्तचित्त होकर किया।

ओझाजी को राजस्थान के इतिहास का असाधारण ज्ञान था और आप इसके अधिकारी पंडित समझे जाते थे। हमारे देश में ऐसे इतिहासकारों का बड़ा अभाव है, जो इतिहासवेत्ता होने के साथ-साथ पुरातत्ववेत्ता और मुद्रा-विज्ञानवेत्ता भी हों। ओझाजी में ये तीनों गुण विद्यमान थे। ये प्राचीन लिपि-विज्ञान-विशेषज्ञ भी थे। इनका "प्राचीन लिपि माला" ग्रन्थ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का है। आपने कई ग्रन्थ लिखे तथा सम्पादित किए। पं० ओझा का राजपूताने का इतिहास वि० सं० १९८३ (१९२७ ई०) में वैदिक यंत्रालय, अजमेर से चार खण्डों में प्रकाशित हुआ है। आपने दो खण्डों में 'उदयपुर राज्य का इतिहास' लिखा है तथा कर्नल जेम्स टॉड की जीवनी लिखी है।

महामहोपाध्याय पं० ओझा ने "राजपूताने का इतिहास" की भूमिका मे पृष्ठ ३ पर लिखा है—

"अत्यन्त प्राचीन काल मे भारतवर्ष संसार की सभ्यता का आदि स्रोत था। यहीं से संसार के भिन्न-भिन्न भागों मे धर्म, सभ्यता, संस्कृति, विद्या और विज्ञान का प्रचार हुआ, परन्तु भारतवर्ष का मुसलमानो के इस देश में आने के पूर्व का शृंखलाबद्ध लिखित इतिहास नही मिलता।"

महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के इतिहास-पाण्डित्य से राजस्थान गौरवान्वित हुआ है और इसी कारण इनको राजस्थान का 'गिबन' कहा जाता है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

१९२४ ई० मे पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रचना "महाराणा प्रताप" का द्वितीय संस्करण कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। छायावादी कवि निराला ने महाराणा प्रताप की जीवनी औपन्यासिक ढंग से लिखी है। जब निरालाजी कलकत्ता प्रवास में थे तभी उन्होने इस पुस्तक की रचना की थी। उस समय उनकी कविताओं की हिन्दी साप्ताहिक 'मतवाला' मे धूम मची रहती थी।

मेवाड़ का इतिहास

इस पुस्तक के लेखक है कुंवर हनुमन्त सिंह तथा ठाकुर पूर्णसिंह वर्मा। इसका द्वितीय संस्करण १९१२ ई० में आगरा से प्रकाशित हुआ। पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर चार पंक्तियाँ छपी है—

वन्दनीय है जहाँ के पूर्व गौरव की कथा।
प्राण देकर भी विमल निज मान रखने की प्रथा।
देश-गौरव-रक्षणार्थ सचेष्ट रहते हैं सभी।
नाम फिर उनका कलंकित क्या कभी होगा कभी ?

उक्त कविता से स्पष्ट है कि "मेवाड़ का इतिहास" पुस्तक राजस्थान के मेवाड़ी वीरो की यशोगाथा का वर्णन करने के लिए लिखी गई है। लेखक द्वय ने इस बात पर जोर दिया है कि मेवाड़ के वीरों का इतिहास पढ़ने से भारतीय. युवकों को स्वातंत्र्य-संग्राम मे प्रवृत्त होने और देश-प्रेम की शिक्षा लेने में सहायता मिलेगी। भूमिका मे कर्नल वाल्टर की उक्ति पृ० २ पर इस प्रकार उद्धृत है—"राजपूतों को और खास कर भारत के लोगों को अपनी वीरता पर गर्व होगा, यह ठीक है। क्योंकि संसार के किसी देश के इतिहास में ऐसी वीरता और अभिमान के योग्य चरित्र नहीं मिलते जैसे राजस्थानी वीरों में पाये जाते हैं। इन वीरों ने अपने देश की प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता के स्वाभिमान की रक्षा के लिए युद्ध किये थे।"

यह पुस्तक टॉड के 'राजस्थान' तथा गुजराती पुस्तक "मेवाड़नी जाहो जलाली" की सहायता से लिखी गई है। टॉड के 'राजस्थान' का हिन्दी अनुवाद पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने किया था और वह १९०७ ई० मे प्रकाशित हुआ था। उस अनुवाद मे 'मेवाड़ का इतिहास' के कई अश उद्धृत किए गए हैं, जिससे मालूम होता है कि इसका प्रथम संस्करण १९०७ ई० के पूर्व ही प्रकाश मे आ गया था। यूं हमे इसके दो-तीन संस्करण देखने का अवसर मिला है।

शायद जयशंकर प्रसाद को 'महाराणा का महत्व' काव्य (१९१४ ई०) लिखने की प्रेरणा भी इसी पुस्तक से मिली हो—क्योंकि पुस्तक के पृ० २०० पर राणा प्रताप के पुत्र कुंवर अमर सिंह की उस घटना का वर्णन है, जिसमें अमर ने रहीम खान-खाना की बेगम को बन्दी बनाया था और राणा प्रताप ने अमर को ससम्मान बेगम को वापस लौटाने का आदेश दिया था। यह 'राज प्रशस्ति' उदयपुर के राजसमुद सरोवर के शिलापट्ट में उत्कीर्ण है। इसकी रचना कवि रणछोड़ भट्ट ने संस्कृत भाषा में की थी। रहीम खान-खाना ने प्रताप की प्रशंसा में इसी घटना के कारण कई दोहे बनाये—जिनमे से एक इस प्रकार है—

ध्रम रहसी, रहसी धरा, खिस जासी खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरे, रखियो नहचो राण॥

भूमिका के पृष्ठ ३ पर लार्ड मेकाले के कथन का उल्लेख है, जिसमें कहा गया है—"जो जाति अपने पूर्वजों के श्रेष्ठ कार्यों का अभिमान नहीं करती, वह कोई ऐसी बात ग्रहण नहीं करेगी जो कि बहुत पीढ़ी पीछे उनकी सन्तान से सगर्व करने योग्य हो।"

"A people which takes no pride in the noble achievements of remote ancestors will never achieve anything worthy to be remembered with pride by remote descendents."

राजपूताने का इतिहास

उक्त पुस्तक की रचना श्री जगदीश सिंह गहलोत ने १६६६ ई० मे की। आप जोधपुर-बीकानेर के पुरातत्व-विभाग व संग्रहालय के अधीक्षक रह चुके है। आपने संस्कृत पुस्तको, फारसी तवारीखो, ताम्रपत्रों, सिक्को, ख्यातो आदि के आधार पर प्राचीन समय से वर्तमान काल तक का समस्त राजस्थान प्रान्त का सचित्र इतिहास पाँच भागो में प्रकाशित किया है। पं० गौरी शंकर ओझा के 'वृहद् राजपूताना का इतिहास' के बाद राजस्थान का यह बड़ा इतिहास ग्रन्थ है।

चित्तौड़ की चढ़ाइयाँ

'चित्तौड़ की चढ़ाइयाँ' पुस्तक के लेखक श्री गौरीशंकरलाल अख्तर है आपकी यह कृति लखनऊ से १६१८ ई० में प्रकाशित हुई है, जिसमें चित्तौड़ पर हुई कई चढ़ाइयों का वर्णन है। श्री अख्तर ने इस पुस्तक की रचना टॉड के 'राजस्थान' के आधार पर की है। आपने पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है—"भारत के इतिहास मे राजपूताना एक मुख्य प्रदेश है, उसमें मेवाड़ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यही वह प्रदेश है, जिसे अपने असली राजपूत होने का अभिमान है, जिसकी रगो में सोलहों आने राजपूती रक्त विद्यमान है। इसी प्रदेश के कारण राजपूताने का मस्तक अब तक पृथ्वी तल पर ऊँचा है। इसी प्रदेश ने उन कर्मवीर राजपूतो और धर्मवीर राजपूतनियो को जन्म दिया था, जिन्होने देश-प्रेम और जातीय अभिमान के अर्थ अपने प्राणों तक को न्यौछावर कर दिया।"

भारतीय वीरता

इस पुस्तक के मूल लेखक बंगला भाषा के रजनीकान्त गुप्त है और अनुवादक हैं श्री वैद्यनाथ सहाय। हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता के सत्वाधिकारी श्री बैजनाथ केडिया ने रजनीकान्त गुप्त की 'आर्यकीर्ति' पुस्तक के आधार पर 'भारतीय वीरता' का प्रणयन श्री वैद्यनाथ सहाय से कराकर उसे श्रावण, १६८० वि० स० मे प्रकाशित किया। प्रकाशकीय वक्तव्य मे श्री केडिया ने लिखा है—'प्रायः हजार वर्षों से भारत विदेशियों के द्वारा दासता की कठिन बेड़ी में जकड़ा हुआ है। इसका मूल कारण है कि हमने अपनी सभ्यता, प्रतिष्ठा, गौरव, धैर्य और बाहुबल खो दिया है। आज हम पराधीनता के वायुमण्डल में सांस लेते हैं। ऐसे अंधकार में पड़े हैं कि आत्म-सम्मान का गौरव लेशमात्र भी नहीं रहा। हम विदेशी सभ्यता, विदेशी भाषा, विदेशी रहन-सहन और विदेशी वीरता को बड़े गौरव की दृष्टि से देखते हैं, परन्तु अपनी जन्मभूमि की कीर्ति-कथा, अपने देश के उत्थान और पतन का मर्मभेदी हाल, अपने यहाँ के प्राचीन गौरव की कथा सुनने और

जानने की चेष्टा नहीं करते। भारतीय' गौरव की वृद्धि हो इसलिए हमने श्रीयुत् रजनीकान्त गुप्त कृत 'आर्य कीर्ति' - नामक बंगला पुस्तक का अनुवाद कराया है और हिन्दी पाठकों को भेंट किया है। बंगला भाषा में इस पुस्तक का बड़ा आदर है। इसकी प्रायः १६-१७ आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। इस पुस्तक की रचना लेखक ने टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ की सहायता से की है।"

मेवाड़ के महावीर

इन पुस्तक के रचयिता हैं श्री भ्रमरलाल सोनी। यह पुस्तक १९२७ ई० में इन्दौर से प्रकाशित हुई है, जिसमें मेवाड़ के वीरों की गाथा गाई गई है। 'मेवाड़ के महावीर' पुस्तक की भूमिका में प्रसिद्ध विद्वान श्री चन्द्रराज भंडारी ने मेवाड़ की प्रशस्ति में अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—"जिस भूमि की मिट्टी का सिंचन वीरों के रक्त से होता रहता है, जिस भूमि पर माता के लाल प्यारी स्वाधीनता की रक्षा के निमित्त अपने प्राणों का बलिदान करते हैं। जो भूमि अत्याचार के मर्दन में, दुष्टों के दमन में, पीड़ितों की रक्षा में और स्वाधीनता की पूजा में संसार की 'मार्ग-प्रदर्शक' होती है। ऐसी भूमि केवल एक ही देश के लिए नहीं सारे विश्व के लिए 'तीर्थ-स्थान' के रूप में समझी जाती है। हमारे देश के अन्दर मेवाड़ की भूमि स्वाधीनता के आलोक से आलोकित रही है। यही वह भूमि है, जिस देश की स्त्रियों ने अपने जीवन-सर्वस्व पति और पुत्रों को देश की स्वाधीनता के निमित्त हँसते-हँसते न्यौछावर कर दिया था। यही वह भूमि है जिस देश के पुरुष दुनिया भर के ऐश-आराम को लात मारकर आजादी के लिए जंगल-जंगल की खाक छानते फिरे थे। यूरोप के अन्तर्गत जो स्थान 'थर्मोपली' को प्राप्त है, वही स्थान इस देश में मेवाड़ भूमि को है। थर्मोपली पर स्पार्टा के लोग एक ही बार मरे-कटे, मगर इस प्रान्त का सारा इतिहास वीरों के रक्त से रंजित और स्वाधीनता के दुःख से बार-बार आप्लावित हुआ है।"

'मेवाड़ के महावीर' पुस्तक में टॉड के 'राजस्थान' से सहायता लेकर बप्पा रावल से महाराणा राजसिंह तक के मेवाड़ के राणाओं की वीरता का बखान किया गया है।

हमने कुछ पुस्तकों से उद्धरण देकर इस बात को पाठकों के सामने रखने की चेष्टा की है कि १९वीं शताब्दी में टॉड के 'राजस्थान' का जो प्रभाव बंगला-साहित्य में

देखा गया—वह किस प्रकार हिन्दी और देश की अन्य भाषाओं मे प्रचारित हुआ तथा उसने देश की आजादी को किस प्रकार प्रभावित किया।

'राजपूत वीरता' के लेखक है श्री वैद्यनाथ त्रिपाठी। आपने इस पुस्तक में दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज की जीवनी पर कलम चलाई है। आपने चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' से तथ्य संकलन कर इसकी रचना की है, जिसका प्रकाशन बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस से सं० १९६९ मे हुआ है।

१९०९ ई० में वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से मलसीसर के ठाकुर भूरसिंह शेखावत ने 'महाराणा यशप्रकाश' पुस्तक का प्रकाशन किया। इस पुस्तक में राजस्थान के महाराणाओ का वंशानुगत वृतान्त है। लेखक ने डिंगल भाषा मे रचे गए काव्य-ग्रन्थो के आधार पर तथा उनका उद्धरण देकर 'महाराणा यशप्रकाश' ग्रन्थ की रचना की है। इसमें कविराज सूर्यमल मिश्रण के 'वंशभास्कर' काव्य-इतिहास से बहुत से पद दिए गए है।

श्री देवबली सिंह ने 'सती पद्मिनी' पुस्तक की रचना १९२५ ई० मे की थी। जिसका प्रकाशन कलकत्ता के प्रकाशन संस्थान पाठक एण्ड सन्स से हुआ है। इस पुस्तक में महारानी पद्मिनी का सचित्र जीवन-वृतान्त है, जिसमे वीर राजपूत रमणियों के जौहर-व्रत को ओजपूर्ण भाषा में दिखाया गया है।

श्री भगवान दास केला ('माहेश्वरी) ने 'भारतीय जागृति' पुस्तक का प्रणयन किया। इस पुस्तक का प्रकाशन अलीगढ़ से १९२० ई० में हुआ। 'भारतीय जागृति' में भारत के इतिहास की झांकी दर्शायी गई है तथा भारतीय नवजागरण के इतिहास को लिपिबद्ध किया गया है। पुस्तक के हर अध्याय में श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' काव्य-पुस्तक की कविताओ को उद्धृत किया गया है। श्री भगवान-दास केला ने देश के लोगो को जगाने के लिए तथा विदेशी दासता से मुक्ति पाने के लिए प्रोत्साहित किया है। आपने भारतमाता का इन शब्दो मे स्मरण किया है—

मोहनसिन है, मेहरबाँ है, सारे जहाँ की माँ है।
आओ• झुकायें सिर को, भारत हमारी माँ है॥

१९३१ ई० में बनारस से श्री कृष्ण रमाकान्त गोखले की पुस्तक 'राठौर वीर दुर्गादास' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक मे मारवाड़ के वीर दुर्गादास की पूरी जीवनी है। इसी प्रकार वि० स० १९७१ में कलकत्ता के भारत मित्र प्रेस लि० से मुरादाबाद निवासी पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'पृथ्वीराज चौहान' की जीवनी का प्रकाशन कराया।

मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो० जहूर बख्श ने सं० १९८२ में 'भारत

के सपूत' पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक में पृथ्वीराज, हुमायूं, अकबर, शक्ति सिंह, महाराणा प्रताप आदि की जीवनी हैं।

वि० सं० १९९१ में आगरा से 'मेवाड़ महिमा' का प्रकाशन हुआ। इसके लेखक हैं पं० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न'।

लेखक हरिशंकर ने अपने 'निवेदन' में लिखा है—"मेवाड़ वीर-भूमि है, जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति, जिसे वीरता से कुछ भी प्रेम है, अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है। प्रश्न जीत-हार का नही, प्रत्युत् वीरता और स्वदेश-भक्ति का है। जननी जन्मभूमि की रक्षा के लिए वीर राजपूतों और वीरांगनाओं ने अपने प्रबल पराक्रम और साहस का किस प्रकार परिचय दिया है, इसका विस्तृत वर्णन कुछ पृष्ठों में नहीं किया जा सकता; उसके लिए तो वृहदाकार पोथो की आवश्यकता है।"

'मेवाड महिमा' में पद्मिनी, हम्मीर, कुंभा, सांगा, उदय सिंह, प्रताप सिंह आदि का वर्णन है।

पं० मातासेवक पाठक की पुस्तक 'महाराणा प्रताप' का प्रकाशन कानपुर से १९३२ ई० में हुआ। आपने राणा प्रताप की जीवनी को बड़ी ही सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया है।

प्रेमचन्द

हिन्दी के उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द की कृति "कलम, तलवार और त्याग" का प्रकाशन सरस्वती प्रेस, बनारस से १९३९ ई० में हुआ। इस पुस्तक में हिन्दी कथाकार प्रेमचन्द ने राणा प्रताप, राजा मानसिंह, राजा टोडरमल आदि इतिहास के वीर पुरुषों की जीवनियाँ लिखी हैं और उनके कार्यों पर प्रकाश डाला है।

राणा प्रताप के बारे में प्रेमचन्द जी ने लिखा है—"राजस्थान के इतिहास का एक-एक पृष्ठ साहस, मर्दानगी और वीरोचित प्राणोत्सर्ग के कारनामों से जगमगा रहा है। बप्पारावल, राणा सांगा और राणा प्रताप आदि के ऐसे-ऐसे उज्ज्वल रत्न नाम हैं। यद्यपि काल के प्रखर प्रवाह ने इनको बहाने में कोई कसर नहीं उठा रखी, फिर भी अभी तक जीवित हैं और ये वीर सदा जीते तथा चमकते रहेंगे। आजादी के लिए जीनेवाला राणा प्रताप क्या कभी मर सकता है?" इस भाँति प्रेमचन्द जी ने लगभग २३ पृष्ठो में राणा प्रताप की जीवनी लिखी है।

सं० १९८५ में पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भी 'वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप' की जीवनी लिखी है, जिसका प्रकाशन अजमेर से हुआ है। इसी

प्रकार पं० जे० पी० चौधरी ने बनारस से १९३५ ई० में "वीर केसरी राणा प्रताप" के चतुर्थ संस्करण का प्रकाशन किया। 'आर्य चरितामृत' पुस्तक भी हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार बाबू राधाकृष्ण दास ने बप्पा रावल की जीवनी लिखी, जिसका प्रकाशन दूसरी बार १९१५ ई० में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने किया। अजमेर से श्री जगदीश प्रसाद माथुर 'दीपक' ने "राजस्थान के रमणी रत्न" का प्रकाशन इसी समय किया। श्री प्रयासीलाल मालवीय द्वारा बनारस से 'राजपूत नन्दिनी' का चौथा संस्करण प्रकाशित हुआ। यह कहानी राजस्थान की वीरांगना कर्मादेवी (कोडमदे) की है, जिस पर बंगला के कवि रंगलाल बन्द्योपाध्याय ने 'कर्मादेवी' काव्य की रचना की है। लेखक ने भूमिका में लिखा है कि उन्हें रंगलाल के 'कर्मादेवी' काव्य से पुस्तक लिखने की प्रेरणा मिली। लक्ष्मीचन्द्र द्वारा लिखित 'महाराणा प्रताप' पुस्तक भी इसी कालखण्ड में प्रकाशित हुई। व्यथित हृदय द्वारा लिखित "भारत की वीर नारियाँ" पुस्तक का तृतीय संस्करण १९४२ ई० मे हिन्दी-भवन, लाहौर से प्रकाशित हुआ। इसमें पद्मिनी, ताराबाई, करुणावती, पन्ना धाय, किरणदेवी, हाडारानी, कृष्ण-कुमारी आदि की जीवनियाँ हैं।

टॉड के 'राजस्थान' के प्रकाशन के बाद राजस्थान के अलग-अलग जनपदो और रियासतों का इतिहास लिखने की प्रक्रिया आरम्भ हुई। पं० झावरमल शर्मा ने 'सीकर का इतिहास' सं० १९७९ में तथा "खेतड़ी का इतिहास" १९८४ वि० सं० मे कलकत्ता से प्रकाशित किया। इस परम्परा मे "खंडेला का इतिहास" (लेखक पं० सूर्यनारायण शर्मा), "कोटपूतली उपखण्ड का इतिहास" (डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा १९८० ई०), "चुरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास" (श्री गोविन्द अग्रवाल), "शेखावाटी प्रकाश" (पं० रामचन्द्र शास्त्री), "तोरावाटी का इतिहास" (डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा) आदि क्षेत्रीय इतिहास उल्लेखनीय हैं।

पं० झावरमल शर्मा

असल मे राजस्थान के क्षेत्रीय अंचलो का इतिहास लिखने की परम्परा का सूत्र-पात जसरापुर (खेतड़ी) निवासी प० झाबरमल शर्मा ने किया। आप हिन्दी के उन्नायक तथा पत्रकारिता के स्तम्भ समझे जाते है। आपने कलकत्ता मे सन् १९१४ से सन् १९२० ई० तक 'कलकत्ता समाचार' का सम्पादन-प्रकाशन किया। बाद मे १९२५ ई० से 'कलकत्ता समाचार' दिल्ली से 'हिन्दू-संसार' के रूप मे प्रकाशित होने लगा। पण्डितजी ने 'खेतड़ी-नरेश और विवेकानन्द' पुस्तक का प्रकाशन वि० सं० १९८४ मे किया, जिसका उल्लेख हमने पूर्व मे किया है। आपके सत् प्रयास से १९५८ ई० मे खेतड़ी मे 'रामकृष्ण मिशन' की शाखा की स्थापना हुई। पं० झाबरमल शर्मा कलकत्ता मे थे तब वे वहाँ के प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ताओ मे गिने जाते थे। बाद मे वे दिल्ली

चले गए और वहाँ से खेतड़ी। आपने खेतड़ी में रहते हुए हिन्दी-साहित्य, लोक-साहित्य और इतिहास विषयक शोध का बड़ा काम किया। आपके लिखे कई ग्रन्थ हिन्दी-संसार मे बड़े चाव से पढ़े जाते है।

तोरावाटी का इतिहास

असल मे 'कोटपूतली उपखण्ड के इतिहास' का ही परिवर्द्धित रूप "तोरावाटी का इतिहास" है, जिसको डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा ने १९८१ ई० मे कोटपूतली (राजस्थान) से प्रकाशित किया। इस पुस्तक का प्राक्कथन राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० रघुवीर सिंह ने लिखा है। डॉ० सिंह ने प्राक्कथन मे लिखा है—"राजस्थान के इतिहास-लेखक की जो परम्परा कर्नल जेम्स टॉड ने अपने प्रसिद्ध 'ग्रन्थ-राजस्थान' मे की थी, वह तदन्तर सवा सौ वर्षो से अधिक काल तक निरन्तर चलती रही और तदनुसार स्वतन्त्र इकाई के रूप में राजस्थान के प्रत्येक राज्य का इतिहास बराबर लिखा जाता रहा। वैसे श्यामलदास, रामकरण आसोपा, गौरीशंकर ओझा, विश्वेश्वर नाथ रेऊ, जगदीश सिंह गहलोत आदि ने राजस्थान के अनेक राज्यों के इतिहास ग्रन्थो की रचना की है। विभिन्न राज्यो के किसी काल विशेष अथवा वहाँ के राजकीय सम्बन्धों के विशिष्ट पहलुओं के स्वतन्त्र अध्ययन और विश्लेषण की प्रवृत्ति अब भी चल रही है।"

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब विभिन्न राज्यो का विलय भारत संघ में हो गया और राजस्थान भारत की संघीय इकाई का अभिन्न अंग बन गया तब १९४९ ई० से इस दिशा में नवीन शोध-कार्य आरम्भ हुए। आंचलिक क्षेत्रों की सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक गतिविधियों की ओर लेखको का ध्यान गया और नए सिरे से रचनाएँ लिखी जाने लगी। इस रचना-प्रक्रिया से लोगो में नए उत्साह का उद्दीपन हुआ और सभी अपने क्षेत्र की सामूहिक प्रगति के लिए चेष्टारत हो गए। प्रकारान्तर इस कार्य को सम्पूर्ण राजस्थान का ही नहीं भारत मे नवीनीकरण का इतिहास भी कहा जा सकता है। इससे भारत के सभी प्रान्तो से भाषा और भाव का आदान-प्रदान होने लगा और भावनात्मक एकता प्रस्फुटित होने लगी। इसी भावनात्मक एकता को दर्शाने के लिए हमने बंगला, हिन्दी और राजस्थानी में रचित ऐतिहासिक ग्रन्थों, इतिहासो और जीवनियों का यहाँ उल्लेख किया है। इन ग्रन्थो से यह बात सिद्ध होती है कि टॉड के 'राजस्थान' के बाद राजस्थान को जानने और समझने का द्वार उन्मुक्त हुआ। राजस्थान के वीरों की कहानी जहाँ एक ओर ढाका, इसलामपुर, कलकत्ता में लिखी जा रही थी, वहीं यह रचना लाहौर, इन्दौर, भोपाल, लखनऊ, इलाहाबाद, पटना, बनारस, आगरा, जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, बम्बई, पूना, नागपुर, झाँसी, अलीगढ़, लहरियासराय, दिल्ली आदि शहरो मे भी लिखी जा रही थी। १९वी शताब्दी का नवजागरण बीसवीं शताब्दी में प्रखरता के साथ उद्‌भासित हो रहा था और स्वातंत्र्य-संग्राम को नई ऊर्जा, नया स्वर और नया तेवर दे रहा था।

मनु शर्मा की पुस्तक "राणा सांगा" का प्रकाशन बनारस से हुआ। 'वीर-भूमि' शीर्षक में लेखक ने अपनी भूमिका मे लिखा है—"यह मेवाड़ है—वीरो, त्यागियों और शूरो की जन्मभूमि! मेवाड़ राजपूतो की वीर लीला का कर्मक्षेत्र है। यहाँ के कण-कण में वीरता की उद्दात्त भावनाएँ भरी है। यहाँ के वातावरण मे वीर-हुँकार की बिजलियाँ सोयी है। यहाँ की मिट्टी ने तलवार का पानी पीया है। ....।" इस पुस्तक की रचना टॉड के 'राजस्थान' के आधार पर की गई है। 'राजपूतों की वीरता' पुस्तक के पहले भाग का प्रकाशन काशी से १९१३ ई० में हुआ था। इसके लेखक है प्रोफेसर कालिदास माणिक। श्री पद्मराज जैन ने "मेवाड़ गौरव" पुस्तक बीसवी शताब्दी के आरम्भ में लिखी, जिसकी काफी चर्चा रही।

देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान

देश की आजादी के सधिकाल मे कलकत्ता से तीन पुस्तकें राजस्थानी समाज के बारे में प्रकाशित हुई। इनमें श्री बालचन्द मोदी की ऐतिहासिक पुस्तक "देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान" काफी प्रसिद्ध हुई। राजस्थानी भाषा और साहित्य के विद्वान श्री रघुनाथ प्रसाद सिंघानियाँ ने इस पुस्तक का प्रकाशन कलकत्ता से संवत १९९६ में किया। "देश के इतिहास मे मारवाड़ी जाति का स्थान" पुस्तक एक खोजपूर्ण वृहद् इतिहास है, जिसमे दिखाया गया है कि राजस्थान के प्रवासी किस भाँति बंगाल मे तथा कलकत्ता मे आये। आरम्भ मे राजस्थान के इतिहास का वर्णन लेखक ने टॉड के 'राजस्थान के आधार पर किया है, किन्तु जहाँ लेखक को अनैतिहासिक घटनाएँ दीख पड़ी हैं—उन पर आपने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर तथ्य पेश किए है। इस पुस्तक मे बताया गया है कि जब अकबर के सेनापति राजा मानसिंह तथा राजा टोडरमल बंगाल विजय के लिए आए तभी से राजस्थान के लोग बंगाल मे आकर बसने लगे। आपने कलकत्ता के अधिकांश व्यापारिक फर्मों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है तथा समाज-सुधार आन्दोलन पर प्रकाश डाला है। लगभग ८०० पृष्ठों मे लिखा यह ग्रन्थ प्रवासी राजस्थानियो के लिए सन्दर्भ ग्रन्थ है।

राधाकृष्ण नेवटिया

"राजनीति के क्षेत्र में मारवाड़ी समाज की आहुतियाँ" पुस्तक के प्रणेता हैं कलकत्ता के साहित्य-सेवी और राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री राधाकृष्ण नेवटिया। इस पुस्तक का प्रकाशन अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन, कलकत्ता मे १९४८ ई० मे हुआ है। पुस्तक मे देश के स्वातंत्र्य-संग्राम मे भाग लेने वाले प्रवासी राजस्थानियो के कार्यकलापो का बड़ा संकलन है। इस संकलन मे बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, असम, मध्य प्रदेश के उन प्रवासी राजस्थानी देश-प्रेमियो का विवरण है, जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए त्याग और बलिदान स्वीकार किया।

भारत में मारवाड़ी समाज

श्री भीमसेन केडिया ने १९४७ ई० में "भारत में मारवाड़ी समाज" इतिहास पुस्तक का प्रकाशन कलकत्ता से किया। इसकी भूमिका श्री रामकृष्ण नेवटिया ने लिखी है। 'भारत में मारवाड़ी समाज' पुस्तक के आरम्भ में राजस्थान की सभी रियासतों का इतिहास दिया गया है। साथ ही राजस्थान की स्थापत्यकला और चित्रकला पर भी अध्याय लिखे गए हैं। "राजस्थानी साहित्य अध्याय" में डिंगल-साहित्य के अतिरिक्त हिन्दी और राजस्थानी में लिखे गए साहित्य का ब्योरा है। लेखक भीमसेन केडिया ने राजस्थान के प्रवासी साहित्यकारों, लेखकों, कवियों और पत्रकारों का परिचय देकर उनकी रचनाओं को पुस्तक में उद्धृत किया है। जब स्व० भीमसेन केडिया इस पुस्तक की रचना कर रहे थे तो इन पंक्तियों का लेखक कवि-कलाकार सूरज के साथ उनके निवास स्थान पर घण्टों मिला करता था और साहित्य-इतिहास पर चर्चा होती थी।

पं० रामशंकर त्रिपाठी

कलकत्ता के दैनिक 'लोकमान्य' के संचालक पं० रामशंकर त्रिपाठी की पुस्तक "सम्राट पृथ्वीराज या पृथ्वीराज-संयोगिता" का प्रकाशन १९५० ई० में हुआ। इसमें विद्वान लेखक ने चन्दवरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर सम्राट पृथ्वीराज की अद्भुत कथा का वर्णन किया है। पुस्तक में 'पृथ्वीराज रासो' की अनैतिहासिकता पर भूमिका में सुन्दर प्रकाश डाला गया है और रासो की परम्परा का वर्णन किया गया है। पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में रासो के उद्धरण हैं, जिससे पुस्तक रोचक हो गई है। इन पंक्तियों के लेखक ने १९५० ई० में स्व० पं० गिरीशचन्द्र त्रिपाठी के सम्पादन में सलकिया (हवड़ा) से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक 'मनोरंजन' के दीपावली विशेषांक में पं० रामशंकर त्रिपाठी की पुस्तक 'सम्राट पृथ्वीराज' पर एक समीक्षात्मक लेख लिखा था। यह पुस्तक अपने समय में चर्चित रही।

महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यह रचना-प्रक्रिया मन्द नहीं पड़ी है। इस सिलसिले में यहाँ हम "महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ" की चर्चा करना चाहेंगे। इस ग्रन्थ का सम्पादन राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के डॉ० देवीलाल पालीवाल ने किया है और इसका प्रकाशन १९६९ ई० में हुआ है। इस ग्रन्थ में राणा प्रताप के सम्बन्ध में लिखित देश की विभिन्न भाषाओं में रचे गए साहित्य की वैविध्यपूर्ण झाँकी प्रस्तुत की गई है। मराठी, कन्नड, बंगला, तमिल, तेलुगु, उड़िया, पंजाबी आदि भाषाओं में राजस्थान एवं प्रताप सम्बन्धी जो साहित्य पिछली दो शताब्दियों से लिखा जा रहा है, उसका विभिन्न लेखों में उल्लेख है। "मराठी साहित्य में राजपूतों का इतिहास" निबन्ध

में श्री एम० ए० कान्डे ने पृष्ठ ७६ पर लिखा है—"मराठी साहित्य के तिलक-युग में नई जागृति पैदा हुई और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जाने लगे। मराठी के उपन्यास-सम्राट श्री हरिनारायण आप्टे ने 'राज सिंह' उपन्यास लिखा। आपका १८६२ ई० में लिखा गया उपन्यास "रूपनगर ची राजकन्या" अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ।"

पृ० १५३ पर प्रो० के० वी० आर० नरसिंहमा ने अपने निबन्ध "राणाप्रताप एण्ड आन्ध्र प्रदेश" में लिखा है—

"Rana Pratap's untiring efforts for the Swarajya were first known to the people of Andhra through the Annals of Rajasthan written by Tod. Kala Prapurana Chilakamarti Lakshminarayan Yansimham known as Andhra's Scott, was inspired by Tod's work. He wrote the Rajasthan Kathawali, a translation of Tod's Rajasthan."

इसी भाँति पृ० १६४ पर 'उड़िया-साहित्य' लेख मे डॉ० गोपालचन्द्र मिश्र ने लिखा है—

"The glorious life of Rana Pratap and his lineage has been sung in Oriya literature including the translation of the Tod's Annals of Rajasthan."

"Impact of Maharana Pratap and Rajasthani heroes on the literature & movement of Bengal." निबन्ध मे लेखक श्री सुखमय मुखोपाध्याय ने दिखाया है कि राजस्थान के वीरों और वीरांगनाओं का बंगला-साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। बंगाल के नवजागरण तथा स्वातंत्र्य-संग्राम में इन वीरों के देश-प्रेम से बड़ी प्रेरणा मिली। बंगाल और राजस्थान की सांस्कृतिक-साहित्यिक तथा भावनात्मक एकता का प्रगाढ़ सूत्र स्थापित हुआ। यह प्रभाव इतना गहरा और मजबूत हुआ कि आज भी बंगला-साहित्य के मनीषी राजस्थान की धरती को अपना घर अर्थात second home मानते हैं। इसका प्रमाण है कि राजस्थान के ऐतिहासिक स्थलों का परिभ्रमण करने बंगाल से जितने लोग राजस्थान जाते हैं—शायद ही दूसरे प्रदेशों से इतनी बड़ी संख्या में सैलानी जाते होंगे। इसका कारण रहा है कि टॉड के 'राजस्थान' से बंगला-साहित्य के साथ राजस्थान का जो भावनात्मक लगाव हुआ, वह आज भी ज्यों का त्यों वर्तमान है, बल्कि कहा जाय उसमे और भी वृद्धि हुई है।"

हल्दीघाटी चतुःशती समारोह-ग्रन्थ

कलकत्ता के श्री बड़ाबाजार कुमार सभा पुस्तकालय द्वारा १६ जून, १६७६ को हल्दीघाटी चतुःशती समारोह मनाया गया था, उसी अवसर पर "हल्दीघाटी चतुःशती समारोह-ग्रन्थ" का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादक मण्डल में जिनके नाम हैं, वे हैं—सर्वश्री राधाकृष्ण नेवटिया, विमल कुमार लाठ, नन्दलाल जैन, शिवरतन जासू एवं जुगलकिशोर जैथलिया। इस ग्रन्थ में हल्दीघाटी तथा राणा प्रताप के विषय में हिन्दी और राजस्थानी में जो साहित्य रचा गया है, उसका सार-संक्षेप प्रकाशित किया गया है। पृ० ९३ पर इस ग्रन्थ में प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री का गवेषणात्मक लेख "महाराणा प्रताप" प्रकाशित हुआ है, जिसमें आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि में राणा प्रताप के शौर्य-वीरत्व को दर्शाया गया है। हमने शास्त्रीजी के इस लेख का जिक्र पुस्तक के अन्य पृष्ठों में किया है। पृष्ठ ५५ पर "चित्तौड़ का तीसरा साका" में श्री रामेश्वर टांटिया ने लिखा है—"सन् १९६४ में भारत के विभिन्न प्रदेशों से हम पचास संसद-सदस्य चित्तौड़ गए थे। वैसे तो सारा चित्तौड़गढ़ ही अनूठा है, किन्तु सूरजपोल और भीतरी आंगन विशेष रूप से पवित्र है, क्योंकि यहाँ तीन बार जौहर हुआ, इन्हें देखकर मन में एक सिहरन सी हो उठती है। चित्तौड़गढ़ अपने आप में गौरवमय इतिहास की परतों को समेटे हुए है। सूरजपोल इसका मुख्य दरवाजा है। पिछले आठ सौ वर्षों में इसने बहुत सी लड़ाइयाँ और प्रसिद्ध तीन 'साके' देखे है।" श्री रामेश्वर टांटिया ने अपने लेख में १५५० ई० में होनेवाले अकबर के आक्रमण का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। यह चित्तौड़ का 'तीसरा साका' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें वीरवर जयमल और पत्ता ने अपनी वीरता और देश-भक्ति का परिचय दिया था।

पृष्ठ ६५ पर शहीद भगत सिंह के राणा प्रताप सम्बन्धी विचारों को इन शब्दों में प्रकाशित किया गया है—"इतिहास में राणा प्रताप ने मरण की साधना की थी। एक तरफ थी दिल्ली के महाप्रतापी सम्राट अकबर की महाशक्ति जिसके साथ वे भी थे जिन्हें उनके साथ होना था और वे भी थे जिन्हें प्रताप के साथ होना था। बुद्धि कहती थी टक्कर असम्भव है। गणित कहता था विजय असम्भव है, लेकिन राणा प्रताप कहते थे—जब मनुष्य की तरह सम्मान के साथ जीना असम्भव हो, तब हम मनुष्य की तरह सम्मान के साथ मर तो सकते हैं।"

इस ग्रन्थ में पृ० ११७ पर प्रसिद्ध कथा-शिल्पी हर्षनाथ का "हल्दीघाटी का युद्ध : राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक", प्रो० श्रीनिवास शास्त्री का लेख "भामाशाह का देश-प्रेम" (पृ० १६३), प्रो० इन्द्रजीत पाण्डेय का लेख "कर्मयोगी वीर

प्रताप : एक विवेचन' (पृ० १७३), हिन्दी-राजस्थानी के साहित्यकार आचार्य पं० अक्षयचन्द्र शर्मा का लेख "विश्व का पावन स्वातंत्र्य तीर्थ : हल्दीघाटी" (पृ० १८१), हिन्दी-संस्कृत के विद्वान कविराज श्रीनिवास शास्त्री का लेख "भगवान राम के वंशज मेवाड़ियों की गौरवपूर्ण वंशावली" (पृ० १८३) तथा नेशनल लाइब्रेरी के हिन्दी-विभाग के डॉ० शिवनारायण खन्ना का लेख "मिर्जा खाँ और महाराणा प्रताप" (पृ० १९९) आदि निबन्ध बड़े ही गहन अध्ययन और गम्भीर शोध के परिचायक हैं।

१९७६ ई० में श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट का महाराणा प्रताप पर शोध-ग्रन्थ जयपुर से प्रकाशित हुआ। श्री भट्ट ने अपने शोध-ग्रन्थ "मेवाड़ के महाराणा और शाहंशाह अकबर" में कई नए तथ्यों का उद्घाटन किया है।

"चित्तौड़ के जौहर व साके" पुस्तक का प्रकाशन जयपुर से १९६८ ई० में हुआ। इसके लेखक है श्री सवाई सिंह धमोरा। पुस्तक मे चित्तौड़ के तीन प्रसिद्ध 'साकों' का वर्णन किया गया है और साथ में इस सम्बन्ध मे राजस्थान के प्रख्यात कवियो की रचनाओ को प्रकाशित किया गया है।

श्री यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र' की 'राजस्थान' पुस्तक का तीसरा संस्करण दिल्ली से १९७२ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमे राजस्थान की गौरव गाथा गाई गई है।

'राजस्थान' पुस्तक के पहले निबन्ध "धरती है बलिदान की" मे लेखक 'चन्द्र' ने राजस्थान के प्रति अपने भाव इन शब्दो में व्यक्त किए है—

"धरती है बलिदान की—प्रणाम करो ! यह बलिदान, वीरता, भक्ति और भाई-चारे की धरती राजस्थान है ! राणा प्रताप, हम्मीर चौहान, चंदबरदाई, मीरा की जन्मभूमि है ! केसरिया बानों के मतवालो और जौहर की ज्वालाओ में मरनेवाली नारियो की पुण्यभूमि है ! मन्दिर, मस्जिद और गिर्जाघर का यह प्रान्त संगम है ! इतिहासकार कर्नल टॉड ने जिसकी प्रशंसा में अपने को डुबो दिया, उस भूमि को प्रणाम करो !....."

कथा-शिल्पी यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र' की इन पंक्तियो को पढ़ कर अनायास 'जागृति' फिल्म का यह गीत स्मरण हो आता है—

आओ बच्चो ! तुम्हें दिखायें झाँकी हिन्दुस्तान की,
इस मिट्टी से तिलक करो यह मिट्टी है बलिदान की।
यह है अपना राजपुताना..... ....

मारवाड़ी समाज : व्यवसाय से उद्योग में

अमेरिकी विद्वान टामस ए० टिम्बर्ग ने १९६९ ई० मे "The Mar-

waris : From Traders to Industrialists" नामक अंग्रेजी पुस्तक का प्रकाशन किया, जिसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार मारवाड़ी समाज व्यवसाय से भारत के औद्योगिक मानचित्र में प्रथम पंक्ति में चमक रहा है। श्री टिम्बर्ग ने यह शोध-ग्रन्थ हारवर्ड विश्वविद्यालय मे १९६७ ई० में प्रस्तुत किया था। उसीके आधार पर इस ग्रन्थ की रचना हुई है। भारत मे इस पुस्तक का प्रकाशन विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा० लि०, नई दिल्ली से हुआ है और पश्चात हिन्दी अनुवाद राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से १९७८ ई० में हुआ। हिन्दी अनुवादिका है श्रीमती देवलीना। यह पुस्तक काफी चर्चित रही है और इसे लोगो ने बड़े चाव से पढ़ा और सराहा है।

'उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में : समृद्ध भारतीय बीमा पद्धति'- पुस्तक के रचयिता हैं राजस्थानी-हिन्दी के चर्चित लेखक श्री गोविन्द अग्रवाल। आपकी यह पुस्तक लोक-संस्कृति शोध-संस्थान, चुरू से १९७० ई० में प्रकाशित हुई। इसमें विद्वान लेखक ने मारवाड़ी समाज द्वारा १९वी शताब्दी मे बीमा-व्यवसाय आरम्भ करने का इतिहास प्रस्तुत किया है। पुस्तक शोधपूर्ण चर्चित कृति है। श्री गोविन्द अग्रवाल ने साहित्य और इतिहास की पुस्तकें भी लिखी हैं।

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के प्रधान सचिव श्री रतन शाह ने 'समाज विकास' के जुलाई-अगस्त, १९८८ के अंक के पृष्ठ ३ पर 'बीमा पुस्तक' के बारे में लिखा है—"राजस्थान के सुदूर चुरू में बैठे हुए मनीषी एवं शोधकर्त्ता श्री गोविन्द अग्रवाल ने उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 'समृद्ध भारतीय पद्धति' पुस्तक लिख कर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। १२० पृष्ठों में लिखी यह पुस्तक जोखिम उठाकर व्यवसाय करनेवाली जाति का गौरव-ग्रन्थ है।"

डॉ० दशरथ कुमार टकनेत ने 'द क्रिटिकल स्टडीज ऑफ शेखावाटी मारवाड़ीज एन्टरप्रेन्यौरशिप' विषय पर १९८४ ई० में राजस्थान विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० उपाधि के लिए अंग्रेजी मे शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया था। उनकी शोध कृति 'इण्डस्ट्रियल एन्टरप्रेन्यौरशिप ऑफ शेखावाटी मारवाड़ीज' काफी चर्चित रही है, जिसमे राजस्थान के शेखावाटी प्रदेश के साहसिक उद्योगपतियो तथा व्यापारियो की कार्यकुशलता का ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है। डॉ० टकनेत के इस शोध कार्य पर १० अप्रैल, १९८८ को दिल्ली मे आयोजित अखिल भारतीय मारवाड़ी युवा मंच के द्वितीय अधिवेशन पर 'स्व० भँवरमल सिंघी स्मृति-पुरस्कार' के रूप मे ग्यारह हजार रुपए की धनराशि दी गई। डॉ० दशरथ कुमार टकनेत की इस शोध-कृति का अल्प समय मे ही दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है। डॉ० टकनेत का जन्म १९५८ ई० में राजस्थान मे हुआ है। सम्प्रति आप राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में वाणिज्य-विभाग में सहयोगी प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।

ऋषि जेमिनी कौशिक 'बरुआ'

ऋषि जेमिनी कौशिक 'बरुआ' हिन्दी और राजस्थानी के विद्वान है। आपने १९४५ ई० से 'राजस्थानी क्षितिज' मासिक पत्रिका का अलवर से प्रकाशन आरम्भ किया और साहित्य-रचना में जुट गए। आपने एक दर्जन से अधिक पुस्तकों का कलात्मक ढंग से प्रकाशन किया, जिनमें आपकी प्रसिद्ध कृति है "मैं अपने मारवाड़ी समाज को प्यार करता हूँ"। यह पुस्तक तीन खण्डो में १९६७ ई० मे कलकत्ता से प्रकाशित हुई है। आपने अपनी कृतियो के माध्यम से राजस्थान के इतिहास को अनुसन्धानकर्त्ता की पैनी दृष्टि से उजागर किया है। श्री बरुआ की पुस्तकों की सबसे बड़ी विशेषता है साज-सज्जापूर्ण छपाई, जिसमे राजस्थान की चित्रकला, वास्तुकला और ललितकलाओं का नयनाभिराम चित्रण रहता है।

पत्र-पत्रिकाओं में राजस्थान

यूं तो देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में राजस्थान के गौरवमय इतिहास का बखान रहता है, किन्तु कुछ पत्रो ने विशेषांक प्रकाशित कर राजस्थान को महिमा-मण्डित किया है। इनमें उल्लेखनीय है कलकत्ता से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक पत्र Economic Times का विशेषांक 'The Marwaris of Calcutta' (३० अप्रैल, १९८८) इसमें शोधपूर्ण लेख है—

'From community to class—The Marwari in historical prospective' By Sri Dwijendra Tripathi, 'Pillars of Learning—A critique on Marwari Educational Institution' By Dr. Nisith Ranjan Ray, 'The Most Ancient Folk Language of Rajasthan' By Rishi Gemini Kaushik 'Barua'.

इसी प्रकार जोधपुर से प्रकाशित राजस्थानी भाषा के मासिक 'माणक' (अगस्त, १९८८) में डॉ० कन्हैया लाल खांडपकर का ऐतिहासिक शोधपूर्ण निबन्ध है "आजादी आन्दोलन में प्रवासी राजस्थानी पुरखां री आहुतियाँ"। डॉ० खांडपकर ने "आधुनिक भारतीय राजनीति मे आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का उदय" विषय पर पी० एच० डी० के लिए शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया है। आप प्रसिद्ध राजस्थानी साहित्यकार-कथाकार डॉ० नृसिंह राजपुरोहित के सुपुत्र हैं तथा सम्प्रति जोधपुर विश्वविद्यालय मे राजनीति विभाग में रीडर हैं।

गणेश्वर संस्कृति

अ० भा० मा० सम्मेलन के स्वर्ण-जयन्ती (१९८५-८६ ई०) के अवसर पर 'समाज विकास' मासिक पत्र का विशेषांक प्रकाशित हुआ, जिसमे कई शोधपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। आज जहाँ राजस्थान, हरियाणा और मालवा का क्षेत्र है—वहाँ किसी

समय सरस्वती नदी प्रवाहित होती थी, जिसके तटों पर वेदों की रचनाएं हुईं। राजस्थान में 'गणेश्वर संस्कृति' सिन्धुघाटी सभ्यता से पूर्वकालिक उच्च ताम्र-सभ्यता की जननी कही जाती है। ऐसे पुरातात्विक अनुसन्धान पर डॉ० रतनचन्द्र अग्रवाल का शोधपरक निबन्ध 'गणेश्वर संस्कृति' पृष्ठ ६ पर प्रकाशित हुआ है। 'गणेश्वर संस्कृति' के उत्खनन से जो सामग्री प्राप्त हुई है, उससे उसकी सिन्धुघाटी से पूर्व की प्राचीनता पुष्ट होती है। चोई गणेश्वर (नीमका थाना, सीकर), चीतलवाना, नरसिंहपुरा, प्रतापपुरा, देगूसर, सोती, सोनासर, कासमसर, कंवरपुरा, खण्डेलपुरा (खण्डेला), चिड़ावा आदि स्थानों पर ऐसी प्रागैतिहासिक सामग्री प्राचीन धोरों पर उपलब्ध हुई है। इसी भाँति "संस्कृति के नूतन आयाम : प्राचीन स्थल सुनारी : उत्खनन व उपलब्धियाँ" लेख में विस्तार से नई खोजों से प्राप्त सामग्रियों पर प्रकाश डाला गया है। राजस्थान का शेखावाटी क्षेत्र अपनी प्राचीन संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है। पिछले दिनों पुरातत्व विभाग से जो अनुसन्धान हुए हैं, उनसे पता चलता है कि सुनारी (खेतड़ी-झूंझनू) के उत्खनन से नए आयामों का उद्घाटन हुआ है। सुनारी का स्थल कातली नदी के उद्गम पर स्थित है। सुनारी का टीला जयपुर से लगभग १२५ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। राजस्थान में प्राप्त सामग्री एवं नए अनुसन्धानों से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस्वी पूर्व ३५०० ई० में यहाँ एक विकसित सभ्यता थी। राजस्थान के मानचित्र से स्पष्ट भासित होता है कि गणेश्वर, कालीबंगा (बीकानेर) तथा बनमाली (हिसार-हरियाणा) को जोड़ने से जो त्रिकोण बनता है, वह पूरा क्षेत्र सिन्धु-सभ्यता के पहले की, उन्नत सभ्यता का क्षेत्र था और यह था सरस्वती-सभ्यता का क्षेत्र। 'समाज-विकास' के प्रधान सम्पादक हैं श्री नन्दकिशोर जालान। आप सम्मेलन के अध्यक्ष और प्रधान सचिव के पदों को सुशोभित कर चुके हैं। सम्पादक मण्डल के सहयोगी हैं श्री रतन शाह, श्री श्यामसुन्दर बगड़िया, श्रीमती कुसुम जैन एवं श्री गीतेश शर्मा।

मंचिका

अखिल भारतीय मारवाड़ी युवा मंच के द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन (८, ९, १० अप्रैल, १९८८), दिल्ली के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका 'मंचिका' में कई सुधी विद्वानों ने राजस्थान के इतिहास और साहित्य पर अपनी शोधपूर्ण रचनाओं का प्रकाशन किया है—जिनमें उल्लेखनीय हैं—'मारवाड़ी समाज : राष्ट्रीय गौरव' लेखक डॉ० डी० के० टकनेत, 'मारवाड़ी समाज की विलुप्त होती संस्कृति' लेखक प्रसिद्ध पत्रकार गीतेश शर्मा, 'राष्ट्रभाषा हिन्दी को मारवाड़ियों का योगदान' लेखक डॉ० प्रभाकर माचवे। डॉ० माचवे ने अपने निबन्ध में उन मनीषी राजस्थानी लेखकों की रचनाओं का विवरण प्रस्तुत किया है, जिनकी कालजयी रचनाओं से हिन्दी

की हिन्दी उन्नत हुई है। 'मंचिका' मे प्रसिद्ध आयकर विशेषज्ञ तथा कई पुस्तको के रचयिता श्री रामनिवास लाखोटिया ने अपने निबन्ध 'राजस्थानी भाषा को उचित स्थान दिलाएँ' में राजस्थानी भाषा को आठवी सूची में दर्ज कराने की पुरजोर वकालत की है। श्री अरुण कुमार बजाज के सम्पादन में 'मंचिका' का सुन्दर प्रकाशन हुआ है, जिसके सम्पादन में सहयोगी हैं श्री प्रमोद कुमार सराफ, राष्ट्रीय अध्यक्ष, मारवाडी युवा मंच तथा श्री दिनेश मालानी, सुश्री मंजू डोसी एवं श्री राजकुमार गाड़ोदिया।

खण्डेला का इतिहास

'खण्डेला का इतिहास' पुस्तक का प्रकाशन कोरोनेशन प्रेस, आगरा से १६२७ ई० मे हुआ। वैसे खण्डेला निवासी पं० गंगानारायण शास्त्री ने इतिहास की सामग्री एकत्रित की थी, किन्तु उसे इतिहास-पुस्तक के रूप मे जयपुर के महाराजा कॉलेज के संस्कृत प्रोफेसर पं० सूर्यनारायण शर्मा ने लिपिबद्ध किया। इसकी भूमिका खण्डेला बड़ा पाना (राज्य) के कुमार प्रताप सिंह ने लिखी है। 'खण्डेला का इतिहास' पुस्तक मे शेखावत शाखा के रायसलोत वीर क्षत्रियों की पुरातन राजधानी खण्डेला और वहाँ के वीर राजपूतो का इतिहास विस्तार से लिखा गया है। इसके प्रणयन मे टॉड के 'राजस्थान' से प्रचुर सामग्री ली गई है। टॉड ने खण्डेला के गौरव का बखान पूरे एक अध्याय में किया है। खण्डेला अत्यन्त प्राचीन नगर है। इसका उल्लेख व्यास-कृत 'महाभारत' मे है। कहा जाता है कि महाभारत-युद्ध मे यहाँ के राजा खण्डपुर के नाम से सम्मिलित हुए थे। इसकी प्राचीनता इसी से प्रकट है कि यहाँ तीसरी-चौथी शताब्दी के शिलालेख पाये गये है। खण्डेलवाल (ब्राह्मण-वैश्य) जाति की उत्पत्ति का उत्स भी खण्डेला ही बताया जाता है—जहाँ भगवान नृसिंहदेव का मन्दिर अपनी प्राचीनता का बखान करता है।

टॉड के 'राजस्थान' का बंगानुवाद

हमने पूर्व में कहा है कि कर्नल जेम्स टॉड के "एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान" का प्रकाशन दो खण्डो मे इंगलैण्ड से हुआ। प्रथम खण्ड १८२६ ई० में एवं द्वितीय खण्ड १८३२ ई० मे प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशन से यूरोप और भारत में इसकी धूम मच गई। अंग्रेजी भाषा मे नव-शिक्षित बंगाल के लोगो ने इसे बड़े चाव से पढ़ा। चूंकि उस समय तक राजस्थान के सम्बन्ध में ही क्या अन्य प्रदेशों के बारे में इतना प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ प्रकाशित नही हुआ था। जब 'राजस्थान' ग्रन्थ की मांग बढ़ी और इंगलैण्ड का संस्करण मिलने मे कठिनाई होने लगी, तो कलकत्ता के प्रकाशकों ने इस ग्रन्थ का अंग्रेजी में पुनर्मुद्रण करना शुरू किया। इस ग्रन्थ की ख्याति के बढ़ने का कारण था कि बंगला साहित्य मे इससे उपकथाएँ लेकर साहित्य रचा जा रहा था। लेकिन अंग्रेजी तो सभी नही जानते थे तथा टॉड साहब की अंग्रेजी भाषा कठिन और दुरूह थी। साथ ही बंगला-साहित्य मे रचे जा रहे ग्रन्थों का पाठकों में प्रचार बढ़ रहा था। इसलिए टॉड के राजस्थान के बंगानुवाद की आवश्यकता महसूस की जाने लगी और 'राजस्थान' ग्रन्थ के बंगला मे अनुवाद प्रकाश में आए।

१८८३ ई० मे सुरेन्द्रनाथ मजुमदार ने 'राजस्थान' ग्रन्थ का बंगला भाषा में अनुवाद किया। सुरेन्द्रनाथ ने 'राजस्थान इतिवृत्त' नाम से पांच खण्डो मे इसका प्रकाशन कलकत्ता से किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में श्री गोपालचन्द्र मुखोपाध्याय ने 'राजस्थान' ग्रन्थ का अनुवाद १८८६ ई० मे प्रस्तुत किया। यह अनुवाद 'सचित्र राजस्थान' नाम से दो खण्डों में शोभाबाजार राजबाड़ी, कलकत्ता की ओर से श्री वरदाकान्त मित्र द्वारा १३ मार्च, १८८६ ई० को प्रकाशित हुआ। इस अनुवाद-ग्रन्थ के मुख पृष्ठ पर कर्नल टॉड के दो अंग्रेजी मन्तव्य विशेष रुचि के साथ प्रकाशित किए गए। 'राजस्थान' ग्रन्थ से पहला उद्धरण टॉड की भूमिका से लिया गया है और दूसरा उद्धरण 'राजस्थान' के प्रथम खण्ड के पृष्ठ २१० से। दोनों उद्धरण इस प्रकार है—

"There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopyle and scarcely a city that has not produced its Leonidas"
—Tod.

x x x

"Rajasthan exhibits the sole example in the history of mankind, of a people withstanding every outrage barbarity can inflict

or human nature sustain, from a foe whose religion cormmands annihilation and bent to the earth, yet rising buoyant from the pressure and making calamity a whetstone to courage."—Tod

असल में प्रथम उद्धरण इतना प्रसिद्ध हुआ कि वह बंगला भाषा की कई पुस्तकों में मुख्य पृष्ठ पर छपा और लोगों की जुबान पर चढ़ कर एक प्रवाद बन गया।

'सचित्र राजस्थान' में 'अनुष्ठान-पत्र' शीर्षक से प्रकाशक श्री वरदाकान्त मित्र की ओर से एक भूमिका प्रकाशित हुई है, जिसमें लिखा गया है—"अब यह समय १९वीं शताब्दी का शेषकाल है। विद्या के आलोक से भारतवासी अन्धकार से प्रकाश की किरण देख रहे हैं। अब प्रत्येक भारतवासी स्वजाति के उत्स की खोज में लगा है। किन्तु चिन्ता का विषय है, यह होगा कैसे ? जिस जाति का अपना कोई इतिहास नहीं, जिसे दूसरों के लिखे इतिहास ग्रन्थ में अपनी अस्मिता को खोजना पड़ता है, तब विडम्बना होती है। विदेशियों के द्वारा प्रणीत इतिहास से देशवासी दिशाभ्रमित होते हैं। जिस भारत की धर्मनीति, राजनीति, समाजनीति, अर्थशास्त्र, ज्ञान-विज्ञान, काव्य और अलंकार-शास्त्र आदि ग्रन्थों के अध्ययन से पाश्चात्य—गगन-मण्डल में नए-नए दिगन्तों का उन्मेष हो रहा है, उस देश के पुरातत्व-सागर-मन्थन के लिए विदेशी मनीषी दृढ़व्रत हो रहे हैं, वहीं भारत आज अपना इतिहास जानने के लिए विदेशियों का मुखापेक्षी है।

किसी भी जाति का इतिहास उस जाति या राष्ट्र को गढ़ने का एकमात्र प्रकृत उपकरण होता है। जबतक भारत का अपना इतिहास नहीं लिखा जाता है तब तक यह अपना सही अर्थों में आत्मप्रकाश नहीं कर सकता। जो विदेशी आज भारत के अतीत को लिपिबद्ध करने में तत्पर हैं, उनमें कर्नल टॉड प्रमुख हैं। इस भारतबन्धु, ज्ञानवीर ने अनेक वर्षों तक कठोर उद्यम और अध्य-व्यवसाय से जिस अमूल्य रत्न ('राजस्थान' ग्रन्थ) को खोजकर हमारे सामने रखा है, संसार में जबतक इतिहास के प्रति आदर और श्रद्धा रहेगी तब तक यह 'राजस्थान का इतिहास' भारत के उज्ज्वल अतीत को प्रकाशपुंज से आलोकित करता रहेगा। महात्मा टॉड ने गम्भीर गवेषणा, असीम अनुसन्धित्सा, लिपि-चातुर्य, प्रांजल भाषा से इस ग्रन्थ को विरचित किया है। इसके पाठ से आत्माभिमान जगता है, हृदय प्रेम-भक्ति से आप्लावित हो जाता है।

कविगुरु बाल्मीकि और कवि कुल तिलक कृष्णद्वैपायन ने मातृभूमि भारतवर्ष के प्राचीन आर्यों की कीर्तिगाथा के रूप में रामायण-महाभारत की रचना की है, लेकिन एक

विदेशी इतिहासकार टॉड ने दूर देश से आकर कष्ट सहकर हमारे लिए अमृत-ग्रन्थ प्रदान किया है। 'राजस्थान ग्रन्थ' का मूल्य रामायण-महाभारत से किसी अंश में कम नहीं है। उसीका बंगानुवाद करके हमने देशवासियों के हितार्थ इसे प्रचारित किया है।"

शोभाबाजार राजघराने से प्रकाशित इस 'सचित्र राजस्थान' की छपाई और कागज सुन्दर है—जिल्द भी मजबूत और आकर्षक है। स्वाभाविक है कि इसका मूल्य अपेक्षाकृत थोड़ा अधिक था।

'चारुवार्ता' के पूर्व सम्पादक श्री यज्ञेश्वर वन्दोपाध्याय द्वारा अनुदित और श्री अघोरनाथ बराट द्वारा प्रकाशित 'राजस्थान' का बंगानुवाद १२९० बंगाब्द (१८८३ ई०) मे प्रकाश में आया। यह ग्रन्थ भी दो खण्डो में है। प्रथम खण्ड १२९० बंगाब्द मे तथा द्वितीय खण्ड १२९१ बंगाब्द मे प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में महात्मा टॉड और उनके ग्रन्थ की उच्च शब्दों मे प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि इस अमूल्य रत्न 'राजस्थान' का देश की विभिन्न भाषाओं मे अनुवाद होना चाहिए। इसके देशी भाषाओ मे अनुवाद से भारतवासी अपने अतीत को पढ़कर गौरवान्वित होंगे और देश मे इतिहास प्रणयन की रुचि पैदा होगी।

अनुवादक श्री यज्ञेश्वर वन्दोपाध्याय ने अपने वक्तव्य में लिखा है कि टॉड साहब संस्कृत के जानकार नहीं थे। इसलिए इतिहास में कुछ भ्रांतियाँ रह गई है। आपने ग्रन्थ के अन्त में विभिन्न संस्कृत-ग्रन्थों का हवाला देकर इन त्रुटियों की ओर दिशानिर्देश किया है। लेकिन ये सारी बातें पुराणो से सम्बन्धित है। पुराणो मे भी अतिमानवीय वर्णन हैं।

कलकत्ता के वसुमति कार्यालय से भी 'सचित्र राजस्थान' ग्रन्थ १३०५ बंगाब्द (१८९८ ई०) मे प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक हैं श्री महेन्द्रनाथ विद्यानिधि और प्रकाशक है श्री उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय।

प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है—"राजस्थान" बड़ा ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ भारत में आदर और श्रद्धा से पढा जाता है। पूर्व मे शोभाबाजार राजघराने तथा बराट प्रेस से 'राजस्थान' ग्रन्थ के दो बंगानुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इससे बंग-साहित्य की गौरव वृद्धि हुई है, किन्तु अनुवाद ग्रन्थों का अधिक मूल्य होने के कारण सर्वसाधारण तक राजस्थान की पहुँच नहीं हो पाई है। इस कारण 'राजस्थान' के पिपासु पाठकों की तृप्ति नहीं हो पाई है। पूर्व के कुछ अनुवाद पद्य मे हुए है। हमने इस इतिहास ग्रन्थ को उपन्यास की मनोरम कहानी के रूप में गद्य मे प्रस्तुत किया है।

सम्भव है वसुमति कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'सचित्र राजस्थान' के दूसरे संस्करण मे श्री यज्ञेश्वर वन्दोपाध्याय जुड़ गए थे। अतः चौथे संस्करण की प्रकाशकीय विज्ञप्ति में कहा गया है—"इस 'राजस्थान' ग्रन्थ के अनुवादक हैं पंडित श्रीयुत यज्ञेश्वर वन्दो-

पाध्याय कविभूषण। आपने द्वितीय संस्करण को संशोधित और परिवर्द्धित किया है और ग्रन्थ के अन्त में एक परिशिष्ट जोड़ा है—जिसमें टॉड की संस्कृत सम्बन्धी अशुद्धियों को बताया गया है।

दो संस्करणो के प्रकाशन से भी जब प्यास नही बुझी तो पुनः तीसरा और चौथा संस्करण प्रकाशित हुआ। चौथा संस्करण १९०७ ई० मे प्रकाशित हुआ। इतनी अल्प अवधि मे 'सचित्र राजस्थान' के कई सस्करणों का प्रकाशित होना, उसकी प्रसिद्धि का ही द्योतक नही है, अपितु इससे मालूम होता है कि बंगला भाषा के पाठक कितने पठनशील और ज्ञान-पिपासु हैं।

एक बात ध्यान देने की है कि प्रकाशको ने अपने 'राजस्थान' के बंगानुवाद को 'सचित्र' शब्द से जोड़ने की अभिरुचि दिखाई है। इसका शायद यह कारण है कि टॉड साहब का मूल अंग्रेजी संस्करण, जो इंगलैण्ड से प्रकाशित हुआ था, वह बड़ा ही भव्य और आकर्षक था। उसमे कई सुन्दर चित्र और नक्शे छपे थे। हमें इगलैण्ड से प्रकाशित टॉड का केवल प्रथम खण्ड ही बड़ी कठिनाई से देखने और पढ़ने को मिला! बहुत कोशिश करके भी हम दूसरा खण्ड नहीं पा सके। हाँ, कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली से अंग्रेजी भाषा में पुनर्मुद्रित कई संस्करण हमें देखने को मिले। चूंकि इन भारतीय संस्करणों में भी टॉड के मूल ग्रन्थ से चित्र लेकर प्रकाशित किए गए है। अतः बंगानुवादों मे भी उस परम्परा का निर्वाह किया गया है और 'राजस्थान' के साथ 'सचित्र' शब्द जोडा गया है।

हिन्दी में टॉड के 'राजस्थान' का अनुवाद

बंगला साहित्य के माध्यम से जब टॉड के 'राजस्थान' का देश के अन्य भागो में प्रचार-प्रसार हुआ तो हिन्दी में भी साहित्य रचना की प्रक्रिया शुरू हुई। आरम्भ मे उन कृतियो का हिन्दी में अनुवाद कार्य शुरू हुआ, जो टॉड के 'राजस्थान' से उपकथा लेकर बंगला मे प्रणीत हुई थी। स्वाभाविक है कि शनैः शनैः टॉड के इतिहास ग्रन्थ का हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के क्षेत्र में भी प्रचार-प्रसार शुरू हुआ। हमने पुस्तक के अन्य अध्यायो मे इसे दिखाने की चेष्टा की है। बंगला भाषा में जैसे टॉड के 'राजस्थान' का बंगानुवाद हुआ वैसे ही हिन्दी मे भी यह कार्य आरम्भ हुआ। हिन्दी मे टॉड के ग्रन्थ का अनुवाद कार्य बीसवी सदी के आरम्भ मे शुरू हुआ।

सबसे पहले १९०७ ई० में बम्बई के खेमराज श्रीकृष्णदास के 'श्री वैंकटेश्वर' स्टीम प्रेस से टॉड के 'राजस्थान' का हिन्दी अनुवाद "राजस्थान इतिहास" के नाम से प्रकाशित हुआ। इस इतिहास ग्रन्थ का अनुवाद मुरादाबाद निवासी पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने किया। ग्रन्थ के मुख्य पृष्ठ पर लिखा है—कर्नल जेम्स टॉड प्रणीत अंग्रेजी ग्रन्थ "राजपूत जाति का इतिहास।" इस ग्रन्थ को उदयपुर राज्य के तत्कालीन

महाराणा फतेह सिंह को समर्पित किया गया है। राजस्थान का इतिहास दो खण्डों में है—जिसके आरम्भ में मेवाड़ के राणाओं के चित्र दिए गए हैं। प्रथम खण्ड मे १२२४ पृष्ठ है। इसमे राजस्थान का भूगोल वंशावली तथा मेवाड़ का इतिहास है। दूसरे खण्ड मे मारवाड़, आमेर, जैसलमेर, बीकानेर, कोटा, बून्दी का इतिहास कोई एक हजार पृष्ठों मे प्रकाशित है।

असल मे पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने अनुवाद का कार्य बड़े परिश्रम और लगन से १९०५ ई० मे ही सम्पन्न कर लिया था, किन्तु इस बीच उनका स्वर्गवास हो गया और उसके बाद पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने इसका सम्पादन कर श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से इसे १९०७ ई० मे प्रकाशित कराया। पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने टॉड के इतिहास का अविकल अनुवाद किया है। इनकी भाषा सरल और प्रभावोत्पादक है। आपने अनुवाद के साथ-साथ राजस्थान के अन्य इतिहास ग्रन्थो, काव्यों से उद्धरण देकर इसे पूर्ण बनाने की पूरी कोशिश की है।

१९११ ई० में बाबू गंगा प्रसाद गुप्त ने "टॉड कृत राजस्थान का इतिहास" नाम से पांच खण्डो में हिन्दी में अनुवाद किया, जिसका प्रकाशन भारतीय जीवन, काशी से हुआ। इस ग्रन्थ के ५८४ पृष्ठों मे राजस्थान के कुलो और मेवाड़ का इतिहास है—अन्य खण्डो मे राजस्थान के दूसरे राज्यो का इतिहास है।

पश्चात बांकीपुर (पटना) के खड्गविलास प्रेस से १९३३ ई० मे टॉड के 'राजस्थान' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ। इसका अनुवाद श्री रामगरीब चौबे ने किया था और सम्पादन पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने किया था। इस अनुवाद के केवल दो खण्ड ही प्रकाशित हुए।

जनवरी १९६२ ई० मे "टॉड लिखित राजस्थान" हिन्दी मे इलाहाबाद मे प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक हैं श्री केशव कुमार ठाकुर और भूमिका लेखक हैं प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० ईश्वरी प्रसाद। प्रकाशक श्री गिरधर शुक्ल ने इसे एक ही खण्ड में प्रकाशित किया है। उल्लेखनीय है कि टॉड साहब का लिखा हुआ मूल अंग्रेजी ग्रन्थ (राजस्थान) लगभग तेरह सौ पृष्ठो में प्रकाशित हुआ है। स्वाभाविक है कि जहाँ पं० बलदेव प्रसाद मिश्र का अनुदित ग्रन्थ कोई २५०० पृष्ठों में प्रकाशित हुआ है, उसकी तुलना में श्री केशव कुमार ठाकुर का अनुवाद मात्र एक हजार पृष्ठो मे है। केशव कुमार ठाकुर इतिहास के विद्वान है और आपकी भाषा बहुत अंशो मे परिमार्जित है, लेकिन टॉड के राजस्थान का पूरा अनुवाद न होने से बहुत सी बातें अधूरी रह गई है।

१९६३ ई० मे "टॉड कृत राजस्थान" का हिन्दी अनुवाद जयपुर के मंगल प्रकाशन से हुआ है। इस ग्रन्थ के अनुवादक है डॉ० देवीलाल पालीवाल और प्रधान सम्पादक हैं राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० रघुवीर सिंह। इसकी भूमिका

लिखी है डॉ० मथुरालाल शर्मा ने। यह अनुवाद अन्य अनुवादों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक इसलिए है कि इसमें राजस्थान के स्थानों तथा राजा-महाराजाओं के नाम अधिक शुद्ध हैं। बीच-बीच में घटनाओं को स्पष्ट करने के लिए तथा इतिहास में आए हुए नामों को समझाने के लिए पूरी व्याख्या दी गई है। यह ग्रन्थ कई खण्डों में प्रकाशित करने की योजना बनी, किन्तु शायद बाद में प्रकाशन स्थगित हो गया।

टॉड के 'राजस्थान' का केवल 'मेवाड़' अध्याय १९५७ ई० में दिल्ली से प्रकाशित हुआ, जिसका अनुवाद श्री शरण ने किया है। चूंकि टॉड के 'राजस्थान' के प्रथम भाग में मेवाड़ का विस्तृत इतिहास दिया गया है, साथ में भूगोल एवं राजकुलों का इतिहास है, किन्तु श्री शरण ने केवल मेवाड के इतिहास का ही सुन्दर भाषा में अनुवाद किया है। इस अनुवाद पुस्तक का नाम है "मेवाड़"।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे या तीसरे दशक में "संक्षिप्त टॉड का राजस्थान" पुस्तक लाहौर में प्रकाशित हुई। इसके अनुवादक हैं श्री शिवव्रत लाल। आपने टॉड के 'राजस्थान' के दो भागों को संक्षिप्त करके एक पुस्तक में प्रकाशित किया है।

टॉड का 'राजस्थान' : इतिहास की कसौटी

हमने इस बात का जिक्र कई स्थानों पर किया है कि टॉड का 'राजस्थान' ऐतिहासिकता की कसौटी पर कई स्थलों पर प्रामाणिक नहीं ठहरता है। इसका कारण था कि टॉड को चारण और भाटों से सुनी हुई कहानियों पर निर्भर रहना पड़ा था। उस समय तक आज की भाँति ऐतिहासिक तथ्य संग्रह करने के साधन भी विकसित नहीं हुए थे। यही कारण है कि आधुनिक इतिहासकारों ने टॉड की ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिह्न लगाये हैं।

टॉड के 'राजस्थान' से बंगला-साहित्य में जिन चरित्रों का सर्वाधिक प्रभाव रहा है तथा जिन पर सबसे अधिक साहित्य कृतियाँ रची गई हैं, उनमें मुख्य हैं राणा प्रताप, रानी पद्मिनी, राज सिंह, यशवन्त सिंह, दुर्गादास आदि। आधुनिक गवेषणाओं से प्रताप का जो मिथकीय चरित्र बना था, उसके बारे में कई शकाएँ उठाई गई हैं। टॉड ने भी अतिरंजित ढंग से राणा प्रताप के वीर कार्यों को प्रस्तुत किया है। नए तथ्यों के उद्घाटन से भी राणा का जो लिजंड्री चरित्र लोगों के मानस में बैठ गया है, उसका मिटना मुश्किल है। तो भी इतना तो स्वीकार करना पड़ेगा कि ऐतिहासिक राणा प्रताप और साहित्यिक कृतियों के राणा प्रताप में काफी अन्तर है, एक को यथार्थ की

डॉ० कालिका रंजन कानूनगो ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८ पर लिखा है— "आश्चर्य की बात है कि महाराणा उदय सिंह के राजत्वकाल में कई घटनाएँ घटी पर उनके शासनकाल के छत्तीस वर्षो में राणा प्रताप की कोई रोमांचकारी घटना हमें नहीं मिलती है। हाँ, प्रताप की बत्तीस वर्ष की उम्र में केवल एक बात का पता चलता है कि १६ मार्च, १५५६ ई० को उनका विवाह ईडर के राव नारायणदास राठौर की पुत्री से हुआ था और उससे राणा प्रताप के प्रथम पुत्र अमर सिंह का जन्म हुआ था। महाराणा उदय सिंह अपनी छोटी रानी (भट्टीरानी) के प्रति आसक्त थे। इसलिए उसके पुत्र जगमल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।"

इतिहासकारो की इन नवीन खोजो के बावजूद राणा प्रताप के वीरोचित चरित्र को सभी ने सराहा है और स्वतंत्रता के लिए किए गए उनके त्याग की प्रशंसा की है। तभी तो राणा का चरित्र देश की आजादी के दीवानो के लिए प्रेरणा का महामन्त्र बन गया था।

बंगला-साहित्य मे पद्मिनी पर प्रचुर साहित्य रचा गया और उस वीर रमणी की भूयसी प्रशंसा की गई है, किन्तु आधुनिक इतिहासकारो ने पद्मिनी की कथा को काल्पनिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। टॉड ने पद्मिनी की कथा चारण-भाटों से सुनी थी और चारण-भाटो ने इस कथा को मल्लिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' महाकाव्य से लिया है। हिन्दी मे 'पद्मावत' तुलसीकृत रामायण की तरह दोहा-चौपाई मे अवधी भाषा मे लिखा गया है। जायसी एक सूफी कवि थे। इसलिए उन्होंने इस कथा के माध्यम से अपने सूफीमत का प्रचार किया है। 'पद्मावत' की आरम्भिक कथा काल्पनिक है और उसका उत्तरार्द्ध इतिहास से पुष्ट है। चूंकि जायसी ने पद्मावत को एक रूपक के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसमें चित्तौड़ शरीर है, राजा रतनसेन मन है, सिंहल द्वीप हृदय है, पद्मिनी ज्ञान है और अलाउद्दीन माया का प्रतीक शैतान है। इस दृष्टि से 'पद्मावत' काव्य को ऐतिहासिक न कहकर रूपक-काव्य की संज्ञा दी जा सकती है।

उल्लेखनीय है कि जायसी के 'पद्मावत' काव्य की रचना के ७० वर्ष बाद हम फरिश्ता को भी अपनी पुस्तक मे इस कथानक का वर्णण करते हुए देखते हैं। जायसी के समकालीन अबुल फजल के ग्रन्थ मे भी इस कथानक का आभास मिलता है। उसने सिर्फ इतना ही लिखा है कि दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन ने सुना था कि मेवाड़ के राणा रावल रतन की पत्नी परम सुन्दरी थी। 'आईने-अकबरी' के दूसरे खण्ड के २६९ पृष्ठ पर यह कथा मिलती है।

टॉड ने भीम सिंह को पद्मिनी का पति बताया है। श्यामलदास जी ने अपने 'मेवाड़ के इतिहास' मे भीम सिंह को लक्ष्मण सिंह का पितामह बताया है और अला-

उद्दीन के समसामयिक मेवाड़ के राणा का नाम बताया है रतन सिंह, जो समर सिंह के पुत्र थे।

डॉ० कालिका रजन कानूनगो ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान काहिनी' के पृष्ठ ३३३ पर लिखा है—

"हमारे विचार से मध्य प्रदेश के रतन सेन नामक किसी राजा की पत्नी पद्मिनी की कहानी अयोध्या में प्रचलित थी। मुसलमान कवि ने उस कथा को अपने ढंग से गढ़ लिया है। जायसी ने ऐतिहासिक काव्य लिखने की कोशिश नहीं की थी। अगर वह ऐसा करता तो हीरामन तोता, राघव चेतन, सात समुद्र पार सिंहल आदि का वर्णन नही करता। कवि ने काव्य के उपसंहार मे रूपक देकर इसे अन्योपदेशिक काव्य (Allegorik Poem) की संज्ञा दी है। रतन सेन मन के समान हमारे चित्तौड़ रूपी शरीर का राजा है—वह मेवाड़ के समर सिंह का पुत्र नहीं। हृदयरूपी सिंहलद्वीप में बुद्धिरूपी पद्मिनी उत्पन्न हुई थी। इतिहास मे पद्मिनी रानी को खोजना व्यर्थ है।"

किन्तु सूफी कवियो मे केवल जायसी ने ही नही, कुतुबन और मंझन ने भी भारत की ऐसी ही लोक प्रचलित कथाओ को लेकर सूफीमत से प्रभावित काव्यो का हिन्दी में प्रणयन किया है।

इसी प्रकार मेवाड़ के राणा राज सिंह, मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह और मेवाड़ी वीर दुर्गादास के सम्बन्ध मे टॉड द्वारा लिखित इतिहास मे डॉ० कानूनगो ने संदेह प्रकट करने की कोशिश की है। फिर भी इतना स्वीकारना पड़ेगा कि 'राणा राज सिंह' पर बंकिम ने अपना सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास बंगला भाषा में लिखा है तथा बंगला के प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय ने 'दुर्गादास' नाटक रचा है। यह नाटक इतिहास की दृष्टि से बंगला का सफल नाटक माना जाता है।

अस्तु, टॉड के ऐतिहासिक ग्रन्थ 'राजस्थान' पर अनेक आलोचकों और इतिहासकारों ने अपनी लेखनी चलाई है और कुछ ऐतिहासिक घटनाओ पर शका प्रकट की है, पर यह एक तथ्य है कि जब हमारे देश में कोई इतिहास नही था तब टॉड ने अपने भगीरथ प्रयत्न से रेगिस्तान में गंगा का अवतरण किया और उनके इस प्रसिद्ध ग्रन्थ ने १९वी सदी के भारतीय नवजागरण मे एक विशिष्ट भूमिका निभाई।

—:•:—

द्वितीय अध्याय

बंगला काव्यों में राजस्थान

भूमिका—१९वीं शताब्दी के आरम्भ से ही पाश्चात्य संस्कृति के संघात से भारत मे नवजागरण का सूत्रपात हुआ। नवजागरण विभिन्न रूपों मे परिलक्षित हुआ। बंगला-साहित्य इस नवचेतना से अछूता नही रहा। अंग्रेजी साहित्य और संस्कृति के सम्पर्क मे आधुनिक बंगला साहित्य को देखा-परखा जा सकता है। गद्य-पाठ्यपुस्तकों के प्रवर्त्तन एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन को इस युगान्तर का साक्ष्य स्वीकारा जा सकता है। फलतः मध्ययुगीन कलेवर से बंगला-साहित्य में आधुनिकता का नवकलेवर सामने आया। अंग्रेजी-शिक्षा और साहित्य से समाज में एक नये समाज की संरचना होने लगी। इस समाज के लोग पश्चिम की संस्कृति और साहित्य से एक नये रस का आस्वादन करने लगे। इसे हम रंगलाल, मधुसूदन, भूदेव और बंकिम की साहित्य-कृतियो में बखूबी देख सकते है। वस्तुतः अंग्रेजी साहित्य के रसग्राही शिक्षित समाज में आत्मसम्मान और देशात्मबोध की भावना जागरित हुई। इसी मानसिकता ने नव-जागरण की अवतारण की और साहित्याकाश मे नवदिगंतो का गवाक्ष उन्मुक्त हुआ, जिससे आधुनिकता के रूप में युगान्तर और साहित्य की पुरानी धारा से हट कर नयी धारा का गतिशील स्रोत प्रवाहित हुआ।

जैसे हिन्दी साहित्य के इतिहास मे रीतिकाल की जीर्ण-शीर्ण केंचुली को छोड़ कर भारतेन्दु-युग मे आधुनिकता के दर्शन हुए, उसी प्रकार बंगला-साहित्य मे मंगल-काव्यो की भाराक्रान्त इतिवृत्तात्मक मध्ययुगीन परम्परा के विरुद्ध कवि भारतचन्द्र और ईश्वरचन्द्र गुप्त की वाणी ने जेहाद की घोषणा की। भारतचन्द्र के "अन्नदामंगल" काव्य में सर्वप्रथम आधुनिकता का स्वर गूंजता सुनाई देता है। बगला-साहित्य के इतिहासकारो ने "अन्नदामगल" काव्य को नई चेतना का धारक और वाहक बताया है, किन्तु बंगला काव्य की प्रथम रचना का गौरव बंगला-साहित्य में रंगलाल के "पद्मिनी उपाख्यान' को प्राप्त है। कवि रंगलाल की यह रचना टॉड के 'राजस्थान' पर आधारित है।

१८५७ का प्रथम स्वातंत्र्य-संग्राम

कवि रगलाल वन्दोपाध्याय ने १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम को नया स्वर और नया तेवर दिया। वस्तुतः रंगलाल ने स्वतंत्रता की प्रथम लडाई को राजनीतिक मंच के साथ साहित्यिक मंच से जोड़कर पुरोधा क्रान्तिकारी कवि-कर्म किया। १८५७ ई० के स्वातंत्र्य-संग्राम को अंग्रेज इतिहासकारों ने महज "सिपाही विद्रोह" कह कर नजरअन्दाज किया है। भले ही आजादी की पहली लड़ाई सफल नहीं हुई, किन्तु इसने सारे देश में एक नई शक्ति का उद्रेक किया। इसने सम्पूर्ण देश-

वासियों को नवचेतना से झकझोर दिया। यद्यपि यह विद्रोह राजाओं, नवाबों और मुगलिया सल्तनत के अन्तिम बादशाह बहादुरशाह जफर के द्वारा शुरू हुआ था, किन्तु रानी लक्ष्मीबाई, तात्यां टोपे, कुंवर सिंह आदि महावीरों के त्याग से महिमा मण्डित हो गया। इस क्रान्ति का जो सूत्रपात १८५७ ई० में हुआ, उसी की अन्तिम परिणति है १९४७ ई० में भारत का स्वतंत्र होना। १८५७ ई० की लड़ाई में अंग्रेजों के खिलाफ हिन्दू-मुसलमानों ने सम्मिलित शक्ति का प्रयोग किया था। यह इतिहास का क्रूर परिहास है कि देश आजाद हुआ, पर विभाजन के साथ।

१८५७ ई० की क्रान्ति के दूसरे ही वर्ष कवि रंगलाल की प्रथम काव्य-कृति "पद्मिनी उपाख्यान" का प्रकाशन हुआ। बंगला भाषा के इस प्रथम अमर काव्य में देश-प्रेम और स्वतंत्रता का तीव्र उद्घोष सुनाई दिया। तब यह कैसे स्वीकारें कि १८५७ ई० का विद्रोह सिर्फ 'सिपाही म्यूटिनी' था। अगर वह असफल हो जाता तो कवि रंगलाल यह कैसे गाता ?—

> स्वाधीनता-हीनताय के बाँचिते चाय ?
> दासत्व-शृंखल बोलो के पोरिबे पाय ?

असल में वह पूरी तरह सफल हुआ। साम्राज्यवादी अंग्रेजों ने इसका पूरा अहसास किया। फलतः इंगलैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से भारत का शासन सीधा अपने हाथ में ले लिया। महारानी की घोषणा से देश के लोग आश्वस्त तो हुए पर विद्रोह की आग भीतर ही भीतर सुलगती रही, जिसे सर्वप्रथम बंगला भाषा के साहित्यकारों ने साहित्य-कृतियों को हवि से प्रज्ज्वलित किया। पश्चात् सारे देश की मनीषा ने उसे नई वाणी देकर महाक्रान्ति का रूप दे दिया। इस साहित्यिक क्रान्ति के पुरोधा थे कवि रंगलाल।

प्रसिद्ध इतिहासकार तथा महाराजा मणीन्द्रचन्द्र कॉलेज (कलकत्ता) के प्राचार्य एवं रवीन्द्रभारती विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के प्रोफेसर डॉ० किरणचन्द्र चौधरी ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री आफ मॉडर्न इण्डिया" (१९८३ ई०) में १८५७ के विद्रोह के कारणों पर प्रकाश डालते हुए पृ० ३२० पर लिखा है—"इस विद्रोह के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सैनिक-असन्तोष मुख्य कारण थे। लार्ड डल्हौजी की राज्य-हड़प नीति से तत्कालीन राजाओं और नवाबों में असन्तोष फैल गया था। डल्हौजी ने अपनी साम्राजवादी नीति के कारण सतारा, सम्बलपुर, नागपुर और झाँसी के राज्यों को ब्रिटिश हुकूमत में मिला लिया था।"

"The causes of the Revolt of 1857 divide themselves into political, social, economic, military and religious heads. Among the political causes Dalhousie's occupation of Satara, Sambalpur,

Nagpur, Jhansi and stoppage of the payment of allowance to the ruling houses of Tanjore, Carnatic as well as of Nana Sahib, annexation of Oudh on the plea of maladministration were not only immoral but also shcking to the Indian conscience for they revealed the utter selfishness of the British and the total disregard of immemorial Hindu customs." (History of Modern India, By Dr. K. C. Choudhury, page 320)

१८५७ ई० की स्वतंत्रता की पहली लड़ाई मे झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अद्‌भुत वीरता का परिचय दिया था। रानी झाँसी की वीरता पर बगला मे कई रचनाएँ हैं। यहाँ हम हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री **सुभद्रा कुमारी चौहान** की प्रसिद्ध कविता **"झाँसी की रानी"** के कुछ अश प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नही कर पा रहे है। इस कविता मे अग्रेजो की राज्य-हड़प करने की साम्राज्यवादी नीति का बड़ी ही ओजस्वी भाषा मे वर्णन किया गया है। असल में १९३० ई० के स्वातंत्र्य-संग्राम की लड़ाई मे कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान ने राष्ट्र को जगाने और आजादी के लिए उत्साहित करने के निमित्त इस कविता की रचना की थी। यह कविता हिन्दी कविता का गलहार बन गई और करोड़ो कण्ठो से फूट पड़ी—

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी।
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।

× × ×

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौजी मन में हरषाया।
राज्य हड़प करने का उसने यह अवसर अच्छा पाया।
फौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झण्डा फहराया।
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया।

× × ×

अनुनय विनय नहीं सुनता है, विकट शासकों की माया।
व्यापारी बन दया चाहता था जब वह भारत आया।

डलहौजी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया।
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया।

× × ×

महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी।
वह स्वतंत्रता की चिनगारी अन्तरतम से आई थी।
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थी।
मेरठ, कानपुर, पटना ने भी भारी धूम मचाई थी।

× × ×

इस स्वतंत्रता-महायज्ञ में कई वीरवर आये काम।
नाना धून्दू पंत, तातिया, चतुर अजिमुल्ला सरनाम।
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुंवर सिंह सैनिक अभिराम।
भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।

('मुकुल' काव्य—सुभद्राकुमारी चौहान पृ० २०)

कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी इस प्रसिद्ध कविता मे अंग्रेजो की साम्राज्यवादी नीति का खुले शब्दो मे पर्दाफाश किया है। यह लड़ाई आम लोगो तक फैल गई थी, जिसे महलो ने आग दी थी और झोपड़ियो ने चिनगारी दी थी। संयोग देखिये कि इस विद्रोह का सूत्रपात कलकत्ता के बैरकपुर की छावनी से वीर सिपाही मगल पाण्डेय ने किया था। जिस बंगाल मे अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने पहले अपने चरण रखे—वहीं से उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए स्वातंत्र्य-संग्राम की भेरी बजी। इसे बजाने मे बंगला भाषा के क्रान्तिकारी कवि रंगलाल ने अहम भूमिका अदा की।

कवि रंगलाल वन्दोपाध्याय : डॉ० सुकुमार सेन का मत

डॉ० सुकुमार सेन ने "बांग्ला साहित्येर इतिहास" के द्वितीय खण्ड मे पृ० १३८ पर लिखा है—"काव्य में रोमांस का प्रवर्तन कर कवि रंगलाल वन्दोपाध्याय (१२३४-९८ बगाब्द) ने बगला-साहित्य में नये युग का आरम्भ किया। रंगलाल के रोमान्टिक काव्य में मूल सुर नारी-प्रेम नहीं है, अपितु स्वदेश-प्रेम है। टॉड के 'राजस्थान' ने बंगाल के अंग्रेजी शिक्षित समाज मे और खासतौर से नवयुवकों के मन में देश की स्वाधीनता का सपना संजोया था। वे पराधीनता की बेड़ियों से मुक्ति चाहते थे। उनमे आत्मसम्मान का गौरवबोध टॉड के 'राजस्थान' से हुआ, जिसमें उन्होने देश की बलिवेदी पर हँसते-हँसते प्राणो का उत्सर्ग करने वाले राजपूत वीरो की रोमांचकारी, साहसिक

वीरगाथाओ को पढ़ा। रंगलाल ने टॉड के 'राजस्थान' से राजपूत वीरवाला के उपाख्यान को लेकर पद्मिनी की कहानी काव्य-पुस्तक मे लिखी।"

डॉ० सेन ने आगे लिखा है—"स्कॉट एव वायरन का प्रभाव रंगलाल के काव्य में देखा जाता है, लेकिन उसमे टॉमस मूर का प्रभाव सर्वाधिक है। टॉमस मूर पराधीन आयरिश का चारण कवि था। स्वाभाविक है कि पराधीन वंगाली कवि रंगलाल पर उसकी छाप गहरी पड़ी। रंगलाल के काव्य की रूमानियत में प्रभात के अंधकार को विदीर्ण करनेवाले विहंग की अस्फुट काकली का स्वर निनादित होता सुनाई पड़ता है। वंगला के इस चारण कवि की वाणी ने पश्चिमी शिक्षा में दीक्षित वंगाली युवकों में नई आशा और भावना का उद्रेक किया। स्वाभाविक है कि "पद्मिमी उपाख्यान" में शिक्षित वंगाली समाज को स्वतंत्रता का गीत सुनानेवाला एक क्रान्तिकारी कवि मिल गया और सम्पूर्ण समाज हीनग्रन्थि से उबर कर स्वतंत्रता की भावना से आन्दोलित होने लगा। पराधीनता की काली अन्धेरी रात की यवनिका का परिवर्तन करने में रंगलाल की कृति का वड़ा अवदान है। सच पूछा जाय तो काव्य-रंगभूमि में माइकेल मधुसुदन दत्त के प्रवेश करने के पूर्व रंगलाल ने नान्दीपाठ (प्रस्तावना) के रूप में अपनी काव्य-कृतियों से नवचेतना के गीत गाये थे।"

कवि रंगलाल ने टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर तीन काव्य लिखे—"पद्मिनी उपाख्यान", "कर्मदेवी" और "शूर सुन्दरी"। अब हम इन पर यहाँ विचार करेंगे।

रंगलाल का 'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य

"पद्मिनी उपाख्यान" काव्य-ग्रन्थ की भूमिका में कवि रंगलाल (१८२७ ई०—१८८७ ई०) ने ग्रन्थ रचना का इतिहास बताते हुए लिखा है कि कुन्ती के प्रसिद्ध जमीन्दार कालीचन्द्र रायचौधरी एवं सत्याचरण घोषाल बहादुर की प्रेरणा से टॉड के ग्रन्थ का अनुसरण कर उन्होने अपनी काव्य-पुस्तक १८५८ ई० में लिखी। कवि के शब्दों में—"आमी उपरोक्त महात्मार अनुरोधे कर्नल टॉड विरचित राजस्थान प्रदेशेर विवरण पुस्तक हइते उपाख्यानटी निर्वाचित करिया रचनारम्भ करिया छिलाम।" अर्थात् मैंने उपरोक्त महानुभावो के अनुरोध से कर्नल टॉड की राजस्थान प्रदेश इतिहास पुस्तक से इस उपाख्यान को लेकर ग्रन्थ की रचना की है।

कवि रंगलाल ने परम्परा की लकीर से हटकर या इतिवृत्तात्मकता से अलग होकर क्यो राजस्थान के उपाख्यान को अपनी काव्य-रचना का विषय बनाया, इस प्रसंग में उन्होने स्वयं अपनी कैफियत इन शब्दो मे बयां की है—

"यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि मैंने प्राचीन इतिहास से कोई उपाख्यान न लेकर राजपूत इतिहास से इस काव्य रचना का विषय क्यों चुना ? इसका उत्तर है कि प्राचीन पौराणिक इतिहास मे वर्णित विविध उपाख्यान भारत के सभी क्षेत्रो में सभी लोगो को कण्ठस्थ हैं। खासतौर से इन सभी उपाख्यानों में अनेक अलौकिक घटनाओ का वर्णन है जिनके प्रति नये शिक्षित युवक समाज में न तो कोई आस्था है और न कोई विश्वास। फलतः इन आख्यानो से न तो इच्छित कार्य की सिद्धि हो सकती है और न भारत के युवक समाज मे नये रस का, स्वदेश-प्रेम का सचार किया जा सकता है। पराधीनता की इस घोर निशा में पुराना जो कुछ गौरवमय है, उसका गुणानुवाद ही इस समय अभीष्ट है। हमारी वीरता, शौर्य और पराक्रम के जो भग्नावशेष हमें मिलते हैं, वे केवल राजपूताना में ही उपलब्ध हैं, जो इस बात के साक्षी हैं कि कैसे हमारी स्वाधीनता का अपहरण हुआ और वीरों ने उसकी रक्षा में किस तेजस्विता से प्राणाहुति दी। राजपूत जिस प्रकार वीरता, धीरता और धार्मिकता के सद्गुणों से महिमामण्डित थे, उसी प्रकार वहाँ की रमणियाँ भी इन सद्वृत्तियों की संवाहिका थीं। उनमें सतीत्व, सुधीत्व और साहसिकता कूट-कूट कर भरी पड़ी थी। अपने देश के वीरो की कहानी स्वाभाविक है कि लोगो में आत्म-सम्मान, स्वदेश-प्रेम और आत्माहुति की प्रेरणा जुटायेगी। इसी

उद्देश्य से और लोगो मे स्वाधीनता की भावना जगाने के लिए मैंने राजपूत इतिहास से उपाख्यान का चयन किया है।"

कवि के इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि केवल जायका वदलने के लिए या परिवर्तन के नाम पर परिवर्तन करने की गरज से ही 'पद्मिनी उपाख्यान' के रचनाकार ने अपनी काव्य-कृति के विषय का चयन 'राजस्थान' ग्रन्थ से नहीं किया था। कवि का एक स्पष्ट लक्ष्य था। वह अपने देश के युवा-समाज मे स्वदेश-प्रेम के वीज वपन करना चाहता था। वह चाहता था देश पराधीनता की शृंखला से मुक्त हो। तभी तो कवि वोल उठा—

स्वाधीनता-हीनताय के वांचिते चाय!

अर्थात् स्वाधीनता से हीनता की गुलामी में कौन भला अपने को जीवित रखना चाहेगा?

डॉ० तारापद मुखोपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक वांगला काव्य' (पृष्ठ ६६) में लिखा है—"प्राचीन युग की वीरता और परम्परा की संवाहिका स्वरूप कथाओ को काव्य का विषय बनाकर रगलाल ने वंगला-साहित्य मे एक नए दिगन्त का उद्घाटन किया है। अतीत की गौरवपूर्ण कहानियाँ जहाँ एक ओर पाठको को विमोहित कर राष्ट्रीयता की प्रेरणा जुटाती है, वही अतीत के हमारे गौरवमय अध्याय को, जो घनान्धकार में विलुप्त हो गया था, हमारे सामने उद्घाटित करती है और एक अपरूप रोमांस-रस का रस-पाक करती हैं। चित्त को गौरवोज्ज्वल करती है।"

वंगला-साहित्य मे टॉड के 'राजस्थान' के आधार पर अनेक नाटक और उपन्यास रचित हुए है, किन्तु काव्य कृतियो की दृष्टि से यह संख्या थोड़ी है। फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि वंगला-साहित्य के इतिहास मे आधुनिक काल की जो प्रथम काव्य-कृति लिखी गई वह टॉड के 'राजस्थान' पर अवलम्बित रंगलाल की रचना 'पद्मिनी उपाख्यान' ही है।

डॉ० श्री कुमार वनर्जी ने डॉ० तारापद मुखोपाध्याय की पुस्तक 'आधुनिक वांगला काव्य' पुस्तक की प्रस्तावना के ११वें पृष्ठ पर लिखा है—"रगलाल इतिहास के जिस युग-सन्धि-काल मे अवतरित हुए थे, उस काल मे उन्होने वंगला-साहित्य को एक नूतन मोड़ दिया, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता है। राजपूताना के शौर्य-वीर्य मण्डित इतिहास की कहानियो को चित्रित कर उन्होने गतानुगतिकता की अर्गला को ध्वस्त किया तथा वंग-सरस्वती की वीणा में नूतनता का तार झंकृत किया। इस दृष्टि से प्रथम आविष्कर्त्ता के रूप मे रगलाल को देखा जा सकता है। रंगलाल का कृतित्व है कि उन्होने सबसे पहले वंगला-साहित्य मे वीर काव्य का सृजन कर नवयुग का द्वार उन्मुक्त कर दिया।"

डॉ० श्री कुमार बनर्जी की इस उक्ति से स्पष्ट भाषित होता है कि कवि रंगलाल की कृति 'पद्मिनी उपाख्यान' के पश्चात् ही बंगला-साहित्य में राजस्थान की वीर-विजय दुन्दुभी निनादित होने लगी। रंगलाल की इस शुरूआत को हम १९वीं सदी के मध्य भाग से २०वीं सदी के मध्य भाग तक अर्थात् स्वतन्त्रता प्राप्ति तक देख सकते हैं।

बीटन-समाज और रंगलाल की चुनौती

"पद्मिनी उपाख्यान" काव्य की रचना भी रंगलाल के जीवन की एक क्रांतिकारी घटना है। कवि ने 'पद्मिनी उपाख्यान' की भूमिका में लिखा है—"इस अभिनव काव्य के प्रणयन और प्रकाशन के सम्बन्ध मे मेरा एक छोटा सा निवेदन है। १२५९ बंगाब्द (१८५२ ई०) के वैशाख महीने में "बीटन सोसाइटी" की सभा मे एक प्रबन्ध पढ़ा गया, जिसमे बंगला कविता की हीनता प्रकट की गई और कहा गया—"बंगालियों में बहुत दिनों से पराधीनता की बेड़ियों मे जकड़े रहने के कारण कोई सच्चा कवि पैदा नहीं हो सका।" मैंने एक माह के भीतर प्रत्युत्तर में प्रबन्ध-पाठ किया और बीटन-समाज के आलोचकों की भूल धारणा को निर्मूल सिद्ध किया।"

"बीटन-सोसाइटी" मे रंगलाल ने चुनौती को स्वीकार किया, जिसकी सुखद परिणति है 'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य। कहा जाता है कि रंगलाल के उस प्रबन्ध का जब पुस्तकाकार रूप में प्रकाशन हुआ तो बंगाल के बहुत से लोगों ने उन्हें साधुवाद दिया। इन बधाई देनेवालों मे प्रमुख थे रंगपुर (कुन्ती) के प्रसिद्ध जमीन्दार कालीचन्द्र रायचौधरी, जिन्होंने निम्न पद्य से कवि को प्रेरणा दी—

> *आधुनिक युवाजने स्वदेशीय कविगणे,*
> घृणा करे नाहि सहे प्राणे,
> बांगालीर मनः पद्म, कविता सुधार सद्म,
> एई मात्र राखो हे प्रमाणे।

नवजागरण का गायक

रंगलाल को "मनः पद्म" से काव्य की प्रेरणा मिल गई। कवि को 'स्वाधीनता-हीनताय' को भास्वर करने के लिए सुदूर राजस्थान के वीर-इतिहास के पृष्ठों में जाना पड़ा। रंगलाल ने टॉड के इतिहास-ग्रन्थ 'राजस्थान' से कथा तो ली पर अपने युग के पराधीन देशवासियो को जगाने का गीत गाया। आपने ग्रीक-कवियों और नाटककारों की भाँति बंगला भाषा में काव्य-रचना का कार्य किया। यूरोप के रचनाकारों ने ग्रीक पुराणों से कथाएँ लेकर अपने युग की बात कही थी, यही कार्य रंगलाल ने 'राजस्थान' के इतिहास से उपकथाएँ लेकर किया। बंगाल के नवजागरण में रंगलाल का तथा उनके काव्य-साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। इसीलिए बंगला साहित्य के आलोचकों और

इतिहासकारों ने उन्हे नवयुग के प्रवर्तक की संज्ञा दी है। 'पद्मिनी उपाख्यान' मे जब वीर बालक बादल पठानो की सेना से युद्ध करने जाता है तब अपनी माँ के चरणो में शीश झुका कर कहता है—

'रणे जेई त्यजे प्राण, धन्य सेई पुण्यवान
केवल कैवल्य तार स्थान
जीवने मरणे यश, परिपूर्ण दिग् दश
कभू तार नाहि अवसान।'

अर्थात् हे माँ! तुम मृत्यु का भय मत करो—क्योंकि युद्ध मे जो मृत्यु को वरण करता है, उस पुण्यात्मा को कैवल्य याने स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जीवन-मरण मे वह यश का अधिकारी होता है—मर कर भी वह मरता नही, उसकी कीर्ति अमर हो जाती है।

इस कथन में हम रगलाल की देशभक्ति का एक उत्कृष्ट प्रमाण पाते है। वे संस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्य देशी भाषाओं के विद्वान थे। बादल की वीरवाणी मे गीताकार की ध्वनि प्रतिध्वनित होती दीख पड़ती है—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्, जित्वा वा भोक्ष्से महीम्।
तत्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः॥ (गीता-२/३७)

'पद्मिनी उपाख्यान' के वीर बादल को युद्ध करने की प्रेरणा नही देनी पड़ती—वह स्वय माँ से युद्ध में जाने और देश-मातृका को स्वतंत्र करने का आशीर्वाद मांगता है। रगलाल अपने युग के अंग्रेजी शिक्षा मे नव-दीक्षित युवकों को प्रकारान्तर से स्वतंत्रता के लिए प्रेरित कर रहा है।

कुरुचि से सुरुचि

रंगलाल की काव्य-साधना का उद्देश्य था बंगला काव्य को कुरुचि से मुक्त कर सुरुचि का प्रसार करना अर्थात् उसे शृंगारिक मायाजाल से मुक्त करना। हिन्दी के आधुनिक युग के कवियो ने भी रीतिकालीन परम्परा को तोड़ कर आधुनिक युग का स्वच्छन्दतावादी सुर भारतेन्दु काल में दिया था। "रंगलाल रचनावली" की भूमिका में श्री त्रिपुरा शंकर सेन शास्त्री ने पृष्ठ १६ पर इन्हीं सब कारणो से रंगलाल को आधुनिक बंगला-साहित्य का 'आदि काव्य प्रणेता' की उपाधि से भूषित किया है। 'रगलाल रचनावली' का प्रकाशन १९७४ ई० मे हुआ है। इसका सम्पादन किया है डॉ० शान्तिकुमार दासगुप्ता एवं श्री हरिबन्धु मुखटी ने। अंग्रेजी साहित्य से अनेक नई उद्भावनाओं को लेकर कवि रगलाल ने अंग्रेजी शिक्षा में साहित्य-रस का आनन्द लेनेवालों के सामने देश-प्रेम का गीत गाया। रंगलाल ने स्वयं लिखा है—"मैंने

पाश्चात्य साहित्य से कई उत्कृष्ट अंशो का अनुवाद कर उनका प्रयोग अपनी रचनाओ मे किया है।" लेकिन उनकी रचनाओ में अनुवाद की नही, मौलिकता की छवि दीख पड़ती है। ऐसी है कवि की भाषा और भावो की पकड़।

आजादी का गायक

अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के समय राजा भीम सिंह (रत्न सिंह) राजपूत वीरो को देश की स्वतंत्रता और नारी के सतीत्व की रक्षा के लिए उत्साहवर्द्धक वाणी मे युद्ध के लिए आह्वान करता है। इस आह्वान गीत की पंक्तियो ने बंगाल की जनता को आजादी के लिए भयकर रूप से उद्दीप्त और प्रेरित कर दिया। आज भी रंगलाल की ये पंक्तियाँ राष्ट्रीय गीत के रूप मे गाई जाती हैं। प्रस्तुत है रंगलाल का सबसे अधिक चर्चित गीत—

"स्वाधीनता-हीनताय के बाँचिते चाय हे, के बाँचिते चाय ?
दासत्व-शृंखल बोलो के पोरिबे पाय हे, के पोरिबे पाय ?
कोटि कल्प दास थाका नरकेर प्राय हे, नरकेर प्राय।
दिनेकेर स्वाधीनता स्वर्ग-सुख ताय हे, स्वर्गसुख ताय।
सार्थक जीवन आर बाहुबल तार हे, बाहुबल तार।
आत्मनाशे जेई करे देशेर उद्धार हे, देशेर उद्धार॥
के बोले शमन-सभा भयेर निधान हे, भयेर निधान।
क्षत्रियेर जाति यम वेदेर विधान हे, वेदेर विधान॥
अतएव रणभूमे चलो त्वरा जाइ हे, चलो त्वरा जाई।
देशहिते मरे जेई तुल्य तार नाई हे, तुल्य तार नाई॥"

(रंगलाल रचनावली, पद्मिनी उपाख्यान, पृ० १६४)

टॉमस मूर का प्रभाव

कवि रंगलाल वन्दोपाध्याय अंग्रेजी कवि टॉमस मूर से अधिक प्रभावित थे। उन्होने अनेक स्थलो पर टॉमस मूर की कविता का अपनी रचनाओ मे अनुवाद किया है, किन्तु अनुवाद इतना सुन्दर हुआ है कि पाठक को वह अनुवाद प्रतीत नही होता। 'पद्मिनी उपाख्यान' मे राजा भीम सिंह के आह्वान-गीत मे हमे टॉमस मूर की निम्न कविता की प्रतिध्वनि पूरी तरह सुनाई पड़ती है—

From life without freedom,
Oh ! who would not fly ?
For one day of freedom,
Oh ! who would not die ?

Hark ! hark, it is the trumpet !
the call of the brave,
The death-song of tyrants
and dirge of the slave,
Our country lies bleeding
Oh ! fly to her aid;
One arm that defends is worth
hosts that invade.
From life without freedom
Oh ! who would not fly ?
For one day of freedom,
Oh ! who would not die ?

हिन्दी में रंगलाल

रंगलाल की उक्त राष्ट्रीय कविता का प्रचार अनुवाद के माध्यम से देश की विभिन्न भाषाओं में हो गया। उन दिनों कलकत्ता से "हिन्दी बंगवासी" पत्र का प्रकाशन होता था। "हिन्दी बंगवासी" के १२ अप्रैल, १८६७ ई० के अंक में 'स्वाधीनता-हीनताय·····" का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार हुआ—

पराधीन ह्वै कौन चहै जीवौ जग माहीं।
को पहिरै दासत्व शृंखला निज पग माहीं॥
एक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम।
पल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहु ते उत्तम॥

रंगलाल की कविता के इस हिन्दी अनुवाद में ब्रजभाषा की पूरी छाप है। असल में भारतेन्दु-काल में काव्य की भाषा ब्रजभाषा को छोड़ नहीं पाई थी। यह कार्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में हुआ जब काव्य की भाषा ब्रज के स्थान पर खड़ी बोली हुई। रंगलाल की इस राष्ट्रीय उक्ति का उद्धरण हमे श्री राधाकृष्ण दास द्वारा रचित "राजस्थान केसरी अथवा महाराणा प्रताप सिंह" नाटक के सप्तम अंक, पञ्चम गर्भाङ्क के पृष्ठ १२४-१२५ पर मिलता है। राधाकृष्ण दास का "महाराणा प्रताप सिंह" नाटक सं० १९५४ (१८९७ ई०) मे प्रकाशित हुआ, जिसकी हिन्दी संसार मे धूम मच गई। इसका अनेक स्थानों पर सफल मचन हुआ एवं कई संस्करण प्रकाशित हुए। हमने राधाकृष्ण दास के "महाराणा प्रताप सिंह" नाटक पर "नाटक अध्याय" मे विस्तार से आलोचना की है।

रंगलाल का पाण्डित्य

यद्यपि रंगलाल ने कालिदास के कुमारसम्भव, मेघदूत तथा ऋतुसंहार आदि काव्यों का बंगला भाषा में पद्यानुवाद किया था। उन्होंने देशी-विदेशी भाषाओं के प्रवाद-कहावतों का अनुवाद बंगला में किया था, जिनमें हिन्दी भाषा के मुहावरे और कहावतें हैं। उनके काव्यों में हिन्दी के दोहे भी बीच-बीच में मिलते हैं। रंगलाल माइकेल मधुसूदन की भाँति कई भाषाओं के पण्डित थे। अंग्रेजी साहित्य से उनका गहरा लगाव था। उन्होंने अंग्रेजी के कवियों की रचना-प्रणाली का अपने काव्यों में प्रयोग किया है। उन्हें स्वदेश-प्रेम और स्वाधीनता की प्रेरणा टॉमस मूर, स्कॉट तथा बायरन आदि की अंग्रेजी भाषा की कविताओं से मिली। इसे सभी स्वीकारते हैं कि १९वीं शताब्दी में बंगला साहित्य में जो नवोत्थान हुआ और पश्चात् सारे भारत में जो नवजागरण आया उसके मूल में पश्चिम के साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान था। पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान के आलोक ने नए दिगन्त खोल दिए। रंगलाल नवजागरण के शलाका पुरुष थे, जिन्होंने आर्य-संस्कृति की विरासत को नव्य रूप में देशवासियों के सामने प्रस्तुत किया।

"पद्मिनी उपाख्यान" काव्य और इतिहास

१८५८ ई० में जब रंगलाल बन्द्योपाध्याय ने "पद्मिनी उपाख्यान" काव्य की रचना की उस समय तक टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ के अतिरिक्त इतिहास का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था तथा तब तक उस पर किसी ने अनैतिहासिकता का आरोप नहीं लगाया था। टॉड के ग्रन्थ में 'खुमान रासो', 'पृथ्वीराज रासो' और प्रकारान्तर से जायसी के 'पद्मावत' की कथाएँ थीं। इन ग्रन्थों और टॉड के 'राजस्थान' पर बाद में नवीन खोजों के आधार पर आलोचना हुई और नए तथ्य सामने आये। ऐसी स्थिति में रंगलाल ने टॉड के 'राजस्थान' को ही आधार मान कर 'पद्मिनी उपाख्यान' लिखा। कथा में इसीलिए चित्तौड़ के राणा रत्न सिंह के स्थान पर भीम सिंह नाम है और 'पद्मिनी' को सिंहल के राजा की कन्या बताया गया है।

कथा की नवीन शैली

किन्तु रंगलाल की विशेषता है कि उसने टॉड के 'राजस्थान' से उपकथा तो ली, पर उसे अंग्रेजी काव्यों की शैली में लिखा। यह काव्य उनकी प्रथम कृति है, अतः उसे सर्गों में नहीं बाँटा गया है। कहानी अलग-अलग शीर्षकों में कही गई है, जैसे सूचना, पद्मिनी-वर्णन; विग्रह उ सचिर मंत्रणा, राज दम्पतिर कथो-कथन, पद्मिनी-प्रदर्शन, भीम-सिंहेर बन्धन दशा, राणीर आर्तनाद, धैर्यधारण, शिविरे गमन, भीम सिंहेर परित्राण, घोरतर युद्ध, एकावली, भुजंग प्रयात, बादशाहेर समर-विजय, पुनर्युद्ध उ देव वाणी, पुत्रदिगेर सहित परामर्श, अरिसिंहेर युद्ध, शेष समरे भीम सिंहेर प्रवेश, क्षत्रिय दिगेर

प्रति राजार उत्साह वाक्य, पद्मिनी-स्थाने राजार विदाय ग्रहण, अग्नि प्रवेश, सहचरीगनेर प्रति उत्साह वाक्य, स्तोत्र, चित्तोराधिकार।

पथिक का राजपूताना भ्रमण

'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य पुस्तक के मुख पृष्ठ पर छपा है—"राजस्थानीय इतिहास विशेष" अर्थात राजस्थान इतिहास से संकलित। काव्य की सूचना या आरम्भ एक उत्साही *सैलानी (पर्यटक) की भ्रमण कहानी से होता है।* सैलानी भारतवर्ष के विभिन्न स्थानो का परिभ्रमण कर अन्त मे राजपूताना मे उपस्थित होता है। जब वह चित्तौड़ नगरी मे पहुँचता है तो वहाँ के प्राकृत सौदर्य को देखकर अभिभूत होता है, लेकिन चित्तौड़दुर्ग के भग्नावशेष उसे मर्माहत और दु.खी करते है। इसी समय वहाँ एक सरोवर के किनारे स्नान करते के उद्देश्य से एक ब्राह्मण आता है। सैलानी उस ब्राह्मण से चित्तौड़ के प्राचीन इतिहास का वर्णन करने और दुर्ग के ध्वस्त होने का कारण पूछता है। तब ब्राह्मण चित्तौड़-दुर्ग के ध्वस होने का वृतान्त वर्णन करता है। कवि की कथा कहने की यह शैली चित्ताकर्षक है, जिस पर पश्चिम का प्रभाव है, पर हमारे यहाँ भी सम्वादो मे पौराणिक कथाएँ कही गई है। स्वयं रगलाल ने कालिदास के कुमारसम्भव, मेघदूत आदि का बगानुवाद किया है, पर उन्होने पाश्चात्य अंग्रेजी साहित्य से ही प्रभावित होकर कथा की यह शैली अपनाई।

'पद्मिनी उपाख्यान' की "सूचना" मे कवि ने लिखा है—

नवीन भावुक एक भ्रमण कारण।
भारतेर नाना देशे करि पर्यटन ॥
अवशेषे उपनीत राजपूतानाय।
वसुधा वेष्ठित जार कीर्ति-मेखलाय ॥

(रंगलाल रचनावली, पद्मिनी उपाख्यान पृ० १४१)

सैलानी भारत में घूमता हुआ राजपूताना में पहुँचता है, वह जयपुर, अजमेर, जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, बून्दी और उदयपुर का भ्रमण करता है। वह उदयपुर के राजमहल पर सूर्य-चिह्न को देखता है—

देखिलेन अजामील-पुरी आजमीर।
यशल्मीर जोधपुर आर वीकानीर ॥
कोटा वून्दि शिकावती नीमच सारये।
उदय उदयपुरे प्रफुल्ल ह्रदये ॥
जयसिंह-पुरी जयपुर चारुदेश।
जार शोभा मनोलोभा वैकुण्ठ विशेष ॥

× × ×

पद्मिनी वर्णन

द्विज पद्मिनी का वर्णन इस प्रकार करता है—वह सिंहल द्वीप के चौहान वंशीय राजा हम्मीर शंक की सुन्दर कन्या थी, जो तिलोत्तमा और रमा के समान सौंदर्य की अधिष्ठात्री थी। उसका विवाह चित्तौड़ के राणा भीम सिंह (रत्न सिंह) के साथ हुआ था। भीम सिंह भी रूप और गुण में तथा वीरता में अद्वितीय थे।

> चौहान कुलेर दीप, सिंहल-द्वीपेर नृप,
> विख्यात हामिर शंख राय ॥
> ताँर कन्या मनोरमा, तिलोत्तमा किवा रमा,
> पद्मिनी सौंदर्य-सार भाग।
> भीमसिंहे दुहिताय, दिलेन हामिर राय
> सह यथायोग्य अनुरोग ॥ (वही, पृ० १४३)

आलोचना

'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य के सम्बन्ध में विस्तार से आलोचना करने के पूर्व टॉड के 'राजस्थान' में वर्णित आख्यान के आकर्षण और उसकी विचित्रता पर विचार करना अप्रासंगिक नहीं होगा!

टॉड का 'राजस्थान' एक विशाल ग्रन्थ है, जिसमे बहुत-सी चित्ताकर्षक और रोमांचकारी कथाओ का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इन कथाओ में कुछ घटनापूर्ण कथाएँ विशेष रूप से आकर्षक है। यही कारण है कि 'राजस्थान' ग्रन्थ पर आधारित कई ग्रन्थ बंगला-साहित्य में मिलते है। 'राजस्थान' ग्रन्थ मे वर्णित 'पद्मिनी उपाख्यान' एक ऐसी कथा है, जिस पर बंगला के कई लेखको, कवियों, नाटककारो, उपन्यास लेखको का ध्यान गया है।

कथानक

अनन्य सौंदर्य की अधिकारिणी राजा भीम सिंह की पत्नी पद्मिनी के प्रति सौंदर्य लोलुप सम्राट अलाउद्दीन आकर्षित था। वह उसे अपने हरम में लाने के लिए व्याकुल था। जबसे उसने पद्मिनी के अपरूप सौंदर्य का बखान सुना था तबसे वह उसको प्राप्त करने के लिए सचेष्ट था। अन्तत: पद्मिनी को पाने के लिए उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। जब छल-बल और सैन्य-बल से अलाउद्दीन पद्मिनी को पाने में सफल नहीं हुआ तो दर्पण मे उस अनन्य सौंदर्य-साम्राज्ञी का मुख देखने पर ही राजी हो गया। फिर धोखे से उसने राजा भीम सिंह को बन्दी बना लिया। अलाउद्दीन की इस विश्वास-घातकता का मुकाबला गोरा और बादल के सहयोग से पद्मिनी ने कैसे किया, किस प्रकार अलाउद्दीन को चकमा देकर राजा भीम सिंह का उद्धार किया गया और पद्मिनी

एईरूप नाना शोभा देखिते देखिते ।
पथिक उठेन दुर्गे पुलकित चित्ते । (वही, पृ० १४२)

चित्तौड़दुर्ग की भव्यता से पुलकित होकर पथिक ६ द्वारों या परकोटों को पार कर जब सिंहद्वारा (मुख्य द्वार) पर पहुँचता है तो वहाँ के महल, स्तम्भ, सरोवर, मन्दिर देखता है—

क्रमे-क्रमे परिहार करि छय द्वार ।
उपनीत यथा सिंहद्वार सुविस्तार ॥ (वही, पृ० १४२)

चित्तौड़गढ़ के भग्नावेशों को देखकर उसका मन अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों में खो जाता है और वह अनुशोचन करता है—

मानसे करेन चिन्ता कोथाय से दिन ।
जे दिने भारतभूमि छिलेन स्वाधीन ॥
असंख्य वीरेर जिनी जन्मप्रदायिनी ।
कत शत देशे राज-विधिविधायिनी ॥
एखन दुर्भाग्यो परभोग्या पराधीनी ।
यातनाय दिन जाय होये अनादिनी ॥ (वही, पृ० १४२)

चिन्ताकुल पथिक ऐसी ही उधेड़बुन में एक सरोवर के पास आया और उसकी भेंट एक स्नानार्थी ब्राह्मण से हुई। उसने ब्राह्मण से करबद्ध प्रार्थना करके चितौड़ के ध्वस्त होने का तथा यहाँ के वीरों का वृतान्त बताने का अनुरोध किया—

"कहो द्विज, एई पुरी-वृत्तान्त आमारे ।"
विप्र कन, "शुनो उहे पथिक सुजन !
करुणा-रसेर सिन्धु स्थान-विवरण ॥ (वही, पृ० १४२)

'पद्मिनी उपाख्यान' की कथा

द्विजवर श्रेष्ठ ने चित्तौड़ की कारुणिक कहानी को और वीरों-वीरांगनाओं के शौर्य-पराक्रम तथा जौहर-व्रत का बखान किया। इसी कहानी को "पद्मिनी उपाख्यान" में कवि रंगलाल ने पथिक और द्विज के कथोपकथन से कहलवाया है। पथिक के अनुरोध पर ब्राह्मण पद्मिनी का वर्णन करता है—

"कहो द्विज मम प्रति होये कृपावान ।
विवरिया पद्मिनी चारु उपाख्यान ॥" (वही, पृ० १४३)

पद्मिनी वर्णन

द्विज पद्मिनी का वर्णन इस प्रकार करता है—वह सिंहल द्वीप के चौहान वंशीय राजा हम्मीर शंक की सुन्दर कन्या थी, जो तिलोत्तमा और रमा के समान सौंदर्य की अधिष्ठात्री थी। उसका विवाह चित्तौड़ के राणा भीम सिंह (रत्न सिंह) के साथ हुआ था। भीम सिंह भी रूप और गुण मे तथा वीरता मे अद्वितीय थे।

> चौहान कुलेर दीप, सिंहल-द्वीपेर नृप,
> विख्यात हामिर शंख राय ॥
> ताँर कन्या मनोरमा, तिलोत्तमा किवा रमा,
> पद्मिनी सौंदर्य-सार भाग।
> भीमसिंहे दुहिताय, दिलेन हामिर राय
> सह यथायोग्य अनुरोग ॥ (वही, पृ० १४३)

आलोचना

'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य के सम्बन्ध मे विस्तार से आलोचना करने के पूर्व टॉड के 'राजस्थान' मे वर्णित आख्यान के आकर्षण और उसकी विचित्रता पर विचार करना अप्रासंगिक नही होगा !

टॉड का 'राजस्थान' एक विशाल ग्रन्थ है, जिसमे बहुत-सी चित्ताकर्षक और रोमांचकारी कथाओ का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इन कथाओ में कुछ घटनापूर्ण कथाएँ विशेष रूप से आकर्षक हैं। यही कारण है कि 'राजस्थान' ग्रन्थ पर आधारित कई ग्रन्थ बंगला-साहित्य में मिलते हैं। 'राजस्थान' ग्रन्थ मे वर्णित 'पद्मिनी उपाख्यान' एक ऐसी कथा है, जिस पर बंगला के कई लेखको, कवियों, नाटककारो, उपन्यास लेखको का ध्यान गया है।

कथानक

अनन्य सौंदर्य की अधिकारिणी राजा भीम सिंह की पत्नी पद्मिनी के प्रति सौंदर्य लोलुप सम्राट अलाउद्दीन आकर्षित था। वह उसे अपने हरम मे लाने के लिए व्याकुल था। जबसे उसने पद्मिनी के अपरूप सौंदर्य का बखान सुना था तबसे वह उसको प्राप्त करने के लिए सचेष्ट था। अन्ततः पद्मिनी को पाने के लिए उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। जब छल-बल और सैन्य-बल से अलाउद्दीन पद्मिनी को पाने मे सफल नहीं हुआ तो दर्पण में उस अनन्य सौंदर्य-साम्राज्ञी का मुख देखने पर ही राजी हो गया। फिर धोखे से उसने राजा भीम सिंह को बन्दी बना लिया। अलाउद्दीन की इस विश्वास-घातकता का मुकाबला गोरा और बादल के सहयोग से पद्मिनी ने कैसे किया, किस प्रकार अलाउद्दीन को चकमा देकर राजा भीम सिंह का उद्धार किया गया और पद्मिनी

ने हजारों राजपूत वीरांगनाओं के साथ सतीत्व रक्षा के लिए जौहर-व्रत का पालन किया। यही कथा है, जिसका टॉड ने रोमांचक ढंग से वर्णन किया है। चित्तौड़ की रक्षा के लिए राजपूत वीरों ने प्राणों का पण लगाकर अलाउद्दीन की विशाल सेना का वीरतापूर्वक सामना किया और देश की बलिवेदी पर शहीद हुए। यह वृत्तान्त ऐसी ओजस्वी भाषा में वर्णित है, जिसकी ओर अनायास किसी भी भावुक कवि या लेखक का आकृष्ट होना स्वाभाविक है। इसी कारण कवि रंगलाल एवं बाद में नाट्यकार क्षीरोद प्रसाद, कथाकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर आदि बंगला के साहित्यकार इस उपाख्यान के प्रति आकर्षित हुए।

कानूनगो और ओझाजी का मत

बाद में जैसे-जैसे इतिहास के नए दिगन्त उन्मुक्त हुए और नए तथ्य सामने आये तब पद्मिनी के ऐतिहासिक उपाख्यान के सम्बन्ध में प्रश्नवाचक चिह्न लगने लगे। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, डॉ० कालिका रंजन कानूनगो आदि इतिहासकारों ने इस आख्यान के प्रति शंका प्रकट की। डॉ० कानूनगो ने तो अपनी पुस्तक "राजस्थान काहिनी" में पृष्ठ २३२ पर साफ शब्दों में लिखा है— ऐसा लगता है कि पद्मिनी उपाख्यान का उत्स-स्थान मेवाड़ न होकर अयोध्या है, जहाँ बैठकर कवि मल्लिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' काव्य की रचना की है।"

जायसी का 'पद्मावत'

सूफी कवि मल्लिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावती उपाख्यान को लेकर हिन्दी की अवधी भाषा में दोहा-चौपाई-छन्द में 'पद्मावत' महाकाव्य की रचना की है। जायसी के इस काव्य-ग्रन्थ की पूर्वार्द्ध कथा काल्पनिक है और उत्तरार्द्ध में इतिहास से उसका मेल खाता है। कवि ने पूर्व भाग में सूफीमत को प्रतिपादित करने के लिए इसकी अवतारणा की है। एक रूपक के द्वारा जायसी ने सूफीमत को इस प्रकार रखा है—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पदमिनी चीन्हा।
गुरु सुआ जेइ पन्थ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोई न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीन सुल्तानू॥

(जायसी का 'पद्मात' काव्य)

डॉ० कालिका रंजन कानूनगो का मत है कि "मध्य देश के किसी राजा रतन सेन की पत्नी पद्मिनी के विषय में अयोध्या में कोई कहानी प्रचलित थी। सूफी मुसलमान कवि जायसी ने उस कथा को अपने मत का प्रचार करने के लिए कहानी गढ़ ली

और काव्य रचना की। इतिहास में रानी पद्मिनी को खोजना व्यर्थ है ('राजस्थान काहिनी' पृष्ठ २३२-३३)। उल्लेखनीय है कि बगला के मुसलमान कवि आलाउल ने जायसी के 'पद्मावत' का बंगला भाषा मे रूपान्तर किया है।

अस्तु, जो भी हो, यह सच है कि १५वी शताब्दी से पद्मिनी उपाख्यान सारे देश मे प्रचलित था और बंगाल मे भी उसकी गूंज थी। इस आख्यान को अंग्रेज इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ग्रन्थ 'राजस्थान' में वर्णित कर स्टाम्प लगा दी। अंग्रेजी शिक्षा मे पली मानसिकता ने उसे सहज ही ग्रहण कर लिया। साथ ही यह भी एक तथ्य है कि टॉड के 'राजस्थान' के पूर्व देशवासियो के समक्ष राजस्थान का कोई प्रामाणिक इतिहास भी नही था। अंग्रेजी भाषा में टॉड का 'राजस्थान' होने के कारण अनायास ही वह बंगाल की नव-शिक्षित जनता में धड़ल्ले से पढ़ा जाने लगा और समादरित हुआ। जब रंगलाल ने 'पद्मिनी उपाख्यान' की रचना की, उस समय तक टॉड के 'राजस्थान' की प्रामाणिकता पर किसी ने शका नही की थी।

डिंगल में पद्मिनी पर रचनाएँ

विक्रम सम्वत् २०१८ मे श्री भँवरलाल नाहटा के सम्पादन मे "पद्मिनी चरित्र चौपाई" पुस्तक का बीकानेर से प्रकाशन हुआ है, जिसमे रानी पद्मिनी सम्बन्धी प्रचुर साहित्य का संकलन किया गया है। सती पद्मिनी और गोरा-बादल का चरित्र सतीत्व और स्वामीधर्म का प्रतीक होने से मेवाड़ के कण-कण में व्याप्त हो गया था और विभिन्न कवियों ने उस पर काव्य रचना की। ये रचनाएँ डिंगल और पुरानी राजस्थानी मे मिलती हैं। सम्वत् १६४५ मे कवि हेमरत्न ने, सं० १६८० मे नाहर जटमल ने, सं० १७०७ मे लब्धोदय ने और पश्चात् कवि दलपति विजय ने 'खुमाण रासो' मे सती पद्मिनी की गौरव गाथा गाई है। श्री नाहटा ने इस पुस्तक मे कवि लब्धोदय कृत 'पद्मिनी-चरित्र चौपाई' तथा 'गोरा-बादल कवित्त' के अतिरिक्त 'खुमाण रासो' के षष्ट खण्ड को भी संकलित किया है, जिसमे पद्मिनी का गौरवपूर्ण चरित्र चित्रित हुआ है।

कर्नल जेम्स टॉड ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान' का प्रणयन करने के लिए राजस्थान के चारण और भाट कवियो के काव्य-ग्रन्थो का अध्ययन कर अपने नोट्स लिए थे। फलतः उन्हें राजस्थान की लोकभाषा में प्रचुर सामग्री मिली थी।

प्रयाग विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के बाद डॉ० माता प्रसाद गुप्त राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। आपने १९६३ ई० मे जायसी के 'पद्मावत' का सम्पादन किया। डॉ० गुप्त ने पुस्तक की भूमिका में पृष्ठ ५ पर लिखा है—"राजस्थान मे रत्न सेन की वीरता, पद्मिनी के सतीत्व और गोरा-बादल

की स्वामी भक्ति की कथा बहुत लोकप्रिय रही है। इसका प्राचीनतम रूप इस समय कदाचित् उपलब्ध नहीं है। उसके आधार पर निर्मित एक कवित्तबन्ध रचना 'गोरा बादल रा कवित्त' के नाम से मिलती है। कथा के प्राप्त रूपों में कदाचित् यही सर्वाधिक प्राचीन है, किन्तु न इसकी रचना तिथि ज्ञात है और न इसके रचयिता का नाम है। इसी प्रकार एक 'चउपई-बंध' रचना भी मिलती है, जो हेमरतन की है और जिसका रचनाकाल सम्वत् १६४५ है। 'चउपई-बन्ध' रूप में एक-दो और कृतियाँ भी इस कथा की मिलती हैं। 'वार्ता बन्ध' रूप में जटमल की कृति 'गोरा बादल री वात' प्रसिद्ध ही है, जो सं० १६८५ की है। राजस्थान में किसी पूर्ववर्ती रचना की सहायता से नई रचना प्रस्तुत करने की एक समृद्ध परम्परा रही है, जो 'ढोला-मारू' आदि आख्यान-काव्यों में देखी जा सकती है।"

डॉ० माता प्रसाद गुप्त के पूर्व वैसे 'पद्मावत' के कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं, पर उनमें सबसे अधिक प्रचलित ग्रन्थ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रन्थावली' है, जिसमें जायसी के 'पद्मावत', 'अखरावट' तथा 'आखिरी कलाम' काव्य-ग्रन्थों का संकलन किया गया है। आचार्य शुक्ल ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'त्रिवेणी' में सूर, तुलसी और जायसी पर विद्वतापूर्ण ढंग से विचार किया है। सच पूछा जाय तो शुक्लजी ने मल्लिक मुहम्मद जायसी पर जितने विस्तार से लेखनी चलाई, इसके पूर्व हिन्दी में ऐसा गवेषणात्मक कार्य किसी ने नहीं किया। शुक्लजी की आलोचना के बाद जायसी हिन्दी में कदाचित् अधिक प्रचारित हुए। आचार्य शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' का सम्पादन कर उसमें एक विस्तृत भूमिका लिखी है। यह पुस्तक सं० १९८१ में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित हुई।

ऐतिहासिक आधार

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका में पृष्ठ २१ पर लिखा है—"पद्मावत की सम्पूर्ण आख्यायिकाओं को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। रत्नसेन की सिंहलद्वीप यात्रा से लेकर पद्मिनी को लेकर चित्तौड़ लौटने तक हम कथा का पूर्वार्द्ध मान सकते हैं और राघव चेतन के निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक उत्तरार्द्ध। ध्यान देने की बात है कि पूर्वार्द्ध तो बिलकुल कल्पित कहानी है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है। ऐतिहासिक स्पष्टीकरण के लिए टॉड के 'राजस्थान' में दिया हुआ चित्तौड़गढ़ पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का वृत्तान्त हम नीचे देते हैं—

विक्रम सम्वत् १३३१ में लक्ष्मण सिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। वह छोटा था, इससे उसका चाचा भीम सिंह ही राज्य करता था। भीम सिंह का विवाह सिंहल के चौहान राजा हम्मीर शंक की कन्या पद्मिनी से हुआ था, जो रूप गुण में जगत में

अद्वितीय थी। उसके रूप की ख्याति सुनकर दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़गढ़ पर चढ़ाई की....।" (टॉड का 'राजस्थान' (अंग्रेजी), प्रथम खण्ड, छठा अध्याय, पृष्ठ २१६-२०)

टॉड ने जो वृत्तान्त दिया है, वह राजपूताने में रचित चारणों के इतिहासों के आधार पर है। दो-चार ब्योरों को छोड़कर ठीक यही वृत्तान्त 'आईने-अकबरी' में दिया हुआ है। 'आईने-अकबरी' में भीम सिंह के स्थान पर रतन सिंह या रत्नसेन नाम है।

कवि रंगलाल ने ग्रन्थ के आरम्भ में ही टॉड के वर्णन के अनुसार इस आख्यान को इस रूप में उपस्थित किया है—

तेर शत एकत्रिंश सम्वत् वत्सरे।
करिलो लक्ष्मण सिंह सिंहासनोपरे॥
कुमार लक्ष्मण नहे प्राप्त व्यवहार।
राज्य करे भीम सिंह पितृव्य ताँहार॥
जार प्रियतमा से पद्मिनी मनोरमा।
रूपे, गुणे, ज्ञाने, अवनीते अनुपमा॥
ताँहार रूपेर कथा शुनि दिल्लीपति।
चितोर घेरिलो आसि होये क्षिप्रमति॥
राज्यलोभ, वंशलोभ, प्राप्त होय ताय।
ध्यान-माला राखिलोर शुधार ज्याखाय॥
तथापि पद्मिनी सती, सतीत्व-रतन।
ना दिलेन यवनेरे, करि प्राणपन॥
अतुलित, रूप, गुण, सतीत्व महिमा।
अर्पिलेन अग्निमाझे राखिते स्वगरिमा॥
('पद्मिनी उपाख्यान', पृ० १४१)

टॉड का कथन

कर्नल टॉड ने 'ऐनाल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' के प्रथम भाग के छठे अध्याय में पृष्ठ २१२ पर लिखा है—

"Lakumsi succeeded his father in Samvat 1331 (A.D. 1275), a memorable era in the annals, when Cheetore, the repository of

all that was precious yet untouched of the arts of India, was stormed, sacked, and treated with remorseless barbarity, by the Pathan emperor, Alla-o-din.

Bheemsi was the uncle of the young prince, and protector during his minority. He had espoused the daughter of Hamir Sank (Chohan) of Ceylon, the cause of woes unnumbered to the Sisodias. Her name was Pudmani, a title bestowed only on the superlatively fair, and transmitted with renown to posterity by tradition and the song of the bard. Her beauty accomplishments, exaltation and destruction, with other incidental circumstances, constitute the subject of the most popular traditions of Rajwarra"

इतिहासकारो ने इस बात को प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि पद्मिनी राजा रतन सेन की पत्नी थी। सम्भव है कि राजस्थान के भाटो की विरुदावली मे समर सिंह के बाद राजा रतन सिंह का नाम छूट गया हो और टॉड ने पद्मिनी को भीम सिंह की पत्नी बताया हो। टॉड ने राजस्थान का इतिहास चारण-भाटो की कविता से, किम्वदन्तियो और लोक प्रचलित उपाख्यानो से संकलित किया था। इस सकलन मे रतन सिंह के स्थान पर भीम सिंह का उल्लेख हो जाना कोई अचम्भे की बात नही है। चित्तौड़ के किले मे 'पद्मिनी का महल' और वह स्थान, जहाँ से अलाउद्दीन को दर्पण मे पद्मिनी दिखाई गई थी, आज भी सुरक्षित है। किले मे उस स्थान के भग्नावशेष भी मौजूद हैं, जहाँ पद्मिनी और उसकी सखियों ने जौहरव्रत का पालन किया था। चूंकि जायसी ने भी पद्मिनी को सिंहल राज-कन्या बताया है और अनन्य सुन्दरी के रूप मे पद्मनकमल के समान पद्मिनी की ख्याति थी। इस कारण लोकप्रवाद के रूप मे एक धारणा यह बन गई थी कि सात समुन्दर पार पूंगलगढ़ की पद्मिनी असाधारण रूपवती थी। जायसी के सिंहलद्वीप के वर्णन के अनुसार भी शायद लोगो मे यह प्रचलित हो गया होगा कि पद्मिनी सिंहल या सिलोन की थी। कवि रंगलाल ने ही नहीं परवर्ती कथाकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी पद्मिनी को सिंहल राज्य की कन्या बताया है। उल्लेखनीय है कि जिस समय चित्तौड़ के राजा लक्ष्मण सिंह थे, उस समय सिंहल राज्य मे चतुर्थ प्रकरणबाहू का शासनकाल था।

शुक्ल जी का मत

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका के पृष्ठ २४ पर लिखा है—'पद्मिनी क्या सचमुच सिंहल की थी? पद्मिनी सिंहलद्वीप की हो नही सकती। यदि 'सिंहल' नाम ठीक माने तो वह राजपूताने या गुजरात का कोई स्थान होगा। न तो सिंहल द्वीप मे चौहान आदि राजपूतों की वस्ती का कोई पता है न इधर हजार वर्ष से कूपमण्डूक बने हुए हिन्दुओं के सिंहलद्वीप में जाकर विवाह सम्बन्ध करने

का। दुनिया जानती है कि सिंहलद्वीप के लोग (तमिल और सिंहली दोनों) कैसे काले-कलूटे होते हैं। वहाँ पर पद्मिनी स्त्रियों का पाया जाना गोरखपन्थी साधुओं की कल्पना है।"

"जायसी योगमार्ग से प्रभावित थे और वे धर्म-प्रचार के लिए हिन्दुओं की कथाओं में अपनी बात कहना चाहते थे। ऐसी स्थिति में अगर उन्होंने सिंहलद्वीप की कल्पना कर ली हो तो आश्चर्य क्या?" शुक्लजी की व्यथा यहाँ यह भी है विदेशी शासनकाल में हिन्दू कूप-मण्डूक हो गए। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि चन्द्रगुप्त आदि सम्राटों के गुप्तकाल में भारत की विजय-वैजयन्ती सुदूर बाली, जावा, सुमात्रा तक फैली थी। आज भी इसी कारण इण्डोनेशिया, श्रीलंका आदि स्थानों में भारत की प्राचीन संस्कृति के चिह्न पाये जाते हैं। भौगोलिक दृष्टि से श्रीलंका विषवत रेखा के पास है—वहाँ भयंकर गर्मी पड़ती है। अतः यहाँ के लोग काले होते हैं तब पद्मिनी ऐसी अनिन्द्य सुन्दरी का होना असंगत है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आगे पृष्ठ २५ पर लिखा है—"नाथ-पन्थ की परम्परा वास्तव मे महायान शाखा के योगमार्गी बौद्धों की थी, जिसे गोरखनाथ ने शैव रूप दिया। बौद्ध-धर्म जब भारतवर्ष से उठ गया तब उसके शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन का प्रचार यहाँ न रह गया। सिंहलद्वीप मे ही बौद्ध-शास्त्रों के अच्छे पण्डित रह गए। इसी से भारतवर्ष के अवशिष्ट योगमार्गी बौद्धों में सिंहलद्वीप एक सिद्धपीठ समझा जाता रहा। इसी धारणा के अनुसार गोरखनाथ के अनुयायी सिंहलद्वीप को एक सिद्धपीठ मानते है। उनका कहना है कि योगियों को पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने के लिए सिंहलद्वीप जाना पड़ता है, जहाँ साक्षात् शिव परीक्षा के पीछे सिद्धि प्रदान करते है। पर वहाँ जानेवाले योगियों के शम, दम की पूरी परीक्षा होती है। वहाँ सुवर्ण और रत्नों की अतुल राशि सामने आती है तथा पद्मिनी स्त्रियाँ अनेक प्रकार से लुभाती है। बहुत से योगी उन पद्मिनियों के हाव-भाव मे फँस योग-भ्रष्ट हो जाते है। कहते हैं गोरखनाथ (वि० सं० १४०७) के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दरनाथ) जब सिंहल मे सिद्धि की पूर्णता के लिए गए तब पद्मिनियों के जाल मे इसी प्रकार फँस गए। पद्मिनियों ने उन्हें एक कुएँ मे डाल रखा था। अपने गुरु की खोज मे गोरखनाथ भी सिंहल गए और कुएँ के पास से होकर निकले। उन्होंने अपने गुरु की आवाज पहचानी और कुएँ के किनारे होकर बोले—'जाग मछन्दर गोरख आया।' इसी प्रकार की और भी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।"

१९५४ ई० में दादा भदन्त आनन्द कौशल्यायन से मित्रवर स्व० गोपीकृष्ण शर्मा 'गोपेश' के साथ मैंने महाबोधी सोसाइटी में भेंट की थी। वे उस समय कलकत्ता होकर श्रीलंका जा रहे थे। उनसे वार्तालाप के सिलसिले में आचार्य शुक्ल की कई तथ्यपरक बातों की पुष्टि हुई।

कवि रंगलाल ने १८५८ ई० मे 'पद्मिनी उपाख्यान' की रचना की और नाट्यकार क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद ने १९०६ ई० मे 'पद्मिनी' नाटक लिखा तथा टैगोर परिवार के अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने १९०९ ई० में 'राज काहिनी' की रचना की, जिसमें 'पद्मिनी' कहानी का बड़ा महत्त्व है। वैसे पद्मिनी की कहानी पर बंगला में और भी रचनाएँ हुई। यहाँ तक कि हरिपद चट्टोपाध्याय ने १९१६ में 'पद्मिनी' नामक यात्रा नाटक लिखा।

क्षीरोद प्रसाद और अवनीन्द्रनाथ ने भीम सिंह को ही पद्मिनी का पति बताया है और पद्मिनी को सिंहल की राजकन्या के गौरव से विभूषित किया है। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की पुस्तक 'राजकाहिनी' की पद्मिनी कहानी का वर्णन यहाँ द्रष्टव्य है— "समर सिंह के राज्यकाल के कोई एक सौ वर्ष बाद चित्तौड़ में जब राजा लक्ष्मण सिंह राजगद्दी पर बैठे तब दिल्ली में पठान-बादशाह अलाउद्दीन का राज्य था। उसी समय एक दिन राणा लक्ष्मण सिंह के चाचा भीम सिंह ने सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मिनी से विवाह किया और समुद्र पार कर वे चित्तौड़ पधारे। कमल का फूल जैसे सारे सरोवर को प्रफुल्ल कर दिगदिगंत में फैल जाता है, वैसे ही कमलालय लक्ष्मी के समान सुन्दरी पद्ममुखी राजपूत रानी पद्मिनी के रूप सौंदर्य की महिमा, गुण-गरिमा सारे भारतवर्ष में फैल गई। सुन्दरता के इस पद्म-फूल की चर्चा दीन-दुखी की झोपड़ी से लेकर राजाधिराजाओं के राज-प्रासादों में भी होने लगी कि ऐसी सुन्दरता की प्रतिमूर्ति और गुणवती कहीं भी नहीं है।

जब इस सुन्दरी पद्मिनी के साथ भीम सिंह चित्तौड़ मे सुख के दिन व्यतीत कर रहे थे, उसी समय एक दिन दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन खास महल की छत पर गजदन्त के पलंग पर बैठकर वसन्त की हवाखोरी कर रहा था और चाँदनी रात में संगीत-नृत्य का आनन्द ले रहा था। बादशाह के आदेश पर प्यारी बेगम की बाँदी ने हिन्दुस्तानी गजल पेश की। गजल का आशय था—हिन्दुस्तान में एक फूल है, जिसका दूसरा जोड़ नहीं, वह पद्म-फूल रानी पद्मिनी है। की दृष्टि उस फूल पर थी, मनुष्य की भी थी, चारों तरफ जलमय कर कौन उस फूल को पा सकता था?' बादशाह अलाउद्दीन ने "मैं हिन्दुस्तान का बादशाह हूँ, मैं उसे पा सकता मैं कल ही आऊँगा।" बाँदी गा रही थी—कौन हुआ सि किसने पाया मेवाड़ का वीर भीम सिंह हुआ फूल को तो ....।"

जायसी ने पद्मिनी के रूपगुण की सुन्दर तोते से वह तोता त्रिकालदर्शी था। फिर राजा रतन सेन पर

सिंहल पहुँच कर साहसिक अभियान के बाद पद्मिनी को प्राप्त करता है। पद्मिनी के सौंदर्य का बखान एक ब्राह्मण बादशाह अलाउद्दीन से करता है। कहने का तात्पर्य, इस पद्मिनी-आख्यान का विभिन्न कवियो, नाटककारो, गल्प-लेखकों ने अपने-अपने ढंग से वर्णन किया है। इससे इतना तो प्रमाणित हो जाता है कि यह कहानी सारे भारत में थोड़े फेर-बदल के साथ प्रचलित थी।

टॉड ने अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण का कारण इस प्रकार बताया है—

"The Hindu bard recognises the fair, in preference to fame and love of conquest, as the motive for the attack of Alla-o-din, who limited his demand to the possession of Pudmani, though this was after a long and fruitless seise (Ibid, Page 213).

लक्ष्मीनिवास बिड़ला की कथा-कृति : "पद्मिनी का शाप"

प्रसिद्ध उद्योगपति और साहित्यकार श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने अंग्रेजी मे "The curse of Padmini" उपन्यास लिखा, जिसका हिन्दी अनुवाद 'पद्मिनी का शाप' नाम से डॉ० उमापति राय चंदेल ने किया है। इसका प्रकाशन १९७२ ई० मे सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली से हुआ है। 'पद्मिनी का शाप' उपन्यास की भूमिका में लेखक लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने पृ० ६ पर लिखा है—

"निःसन्देह, पद्मिनीवाली घटना सुल्तान अलाउद्दीन की क्रूरता और उसके काइयांपन से परिपूर्ण विजयो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अबुल फजल लिखता है—'दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने किसी से सुना कि मेवाड़ के राजा रावल रतन सिंह की रानी अत्यन्त रूपवती (पद्मिनी-ए-दरद, अर्थात् पद्मिनी-वर्ग की स्त्री) है।' इस बात को कई आलोचको ने पकड़ लिया और कहा कि 'पद्मिनी' किसी स्त्री का नाम नहीं, प्रत्युत् एक विशेष प्रकार की गुणवती स्त्री का परिचायक शब्द है, अतएव पद्मिनी की सारी कहानी मात्र एक साहित्यिक कल्पित कथा है, परन्तु यह इतनी सशक्त और विश्वनीय गल्प है कि विशेषतः साहित्यिक परम्परा मे तो यह बिल्कुल सच्ची घटना जान पड़ती है।"

महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने 'राजपूताना का इतिहास' के प्रथम खण्ड के 'उदयपुर राज्य का इतिहास' अध्याय मे पृ० ४६१ पर लिखा है—"इतिहास के अभाव मे लोगो ने 'पद्मावत' को इतिहास पुस्तक मान लिया, परन्तु वास्तव में वह आजकल के ऐतिहासिक उपन्यासों की सी कवितावद्ध कथा है।""उसके (रत्न सिंह) के समय में सिंहलद्वीप का राजा गन्धर्व सेन नही (जैसा जायसी ने लिखा है) किन्तु राजा कीर्ति निःशंकदेव पराक्रमबाहु (चतुर्थ) या भुवनेक बाहु (तृतीय) होना चाहिए।"

बिड़लाजी ने उपन्यास मे लिखा है कि सिंहल में पराक्रमबाहु और निःशंक-मल्ल नामक दो प्रसिद्ध राजा हो चुके है। निःशंकमल्ल पराक्रमबाहु का भतीजा था। निःशंकमल्ल के बाद पराक्रमवाहु द्वितीय राजा बना। १२७० ई० के आसपास जब द्वितीय पराक्रमवाहु का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तो छोटे-छोटे जागीरदारों ने अपना सिर उठाना शुरू कर दिया, किन्तु एक योग्य सेना-नायक ने विद्रोही जागीरदारो का मुकाबला किया। उल्लेखनीय है कि सौ वर्ष से कुछ अधिक समय पहले उस सेना-नायक के पूर्वज भारत से सिंहल आये थे। जब पतनोन्मुख पुराना शक्तिशाली राज्य टूक-टूक हो गया तो हम्मीर शंक एक बड़ी रियासत का स्वामी बन बैठा—वह उसी सेना-नायक के वंश का राजपूत चौहान था। उसकी एक सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम था पद्मिनी। पद्मिनी की माँ भारत से आई थी। अपनी माँ से कन्या ने उत्तराधिकार में अपने मातृ-देश भारत के लिए गहरा और कोमल प्यार प्राप्त किया था। इसी पद्मिनी के साथ चित्तौड़ के राणा रत्न सिंह का विवाह हुआ था, जिसका उल्लेख जायसी के 'पद्मावत', टॉड के **'राजस्थान'** और रंगलाल के **'पद्मिनो उपाख्यान'** मे है। बिड़लाजी ने भी जायसी के अनुसार ही अपने उपन्यास **'पद्मिनी का शाप'** में राजा रत्नसेन की सिंहल यात्रा का वर्णन किया है। 'पद्मिनी का शाप' उपन्यास पर हमने उपन्यास-अध्याय मे विचार किया है।

ओझाजी और डॉ० दशरथ शर्मा

ओझाजी के कथन पर राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० दशरथ शर्मा ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ **"राजस्थान थ्रू दि एजेज"** ग्रन्थ मे लिखा है—"जैसा कि हमने प्रोसीडिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९६१ ई० मे प्रकाशित अपने लेख में लिखा है "चोपाई चरित" के आधार पर अब इस बात का निश्चित साक्ष्य मिल चुका है कि जायसी के समय से पहले भी पद्मावती की कहानी प्रचलित थी। वह जायसी की अपनी कल्पना नहीं है। कोई चाहे तो यह भी मान सकता है कि जायसी के काव्य के अन्य दो मुख्य पात्रो अलाउद्दीन खिलजी और रतन सिंह की भाँति पद्मावती भी एक यथार्थ पात्र है।" इसी ग्रन्थ के आधार पर डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, प्रो० एम० हबीब, प्रो० एस० राय और श्री एस० सी० दत्त आदि विद्वानों को अमीर खुसरो के 'खयाजन-उल-फतह' में दिए गए पद्मिनी के उपाख्यान मे एक गूढ़ संकेत प्राप्त होता है।" श्री एस० सी० दत्त कहते है—"जो कहानी इतने विभिन्न रूपों में हमारे सामने आई है, उसमे आखिर कुछ न कुछ सच्चाई तो होगी ही, हालांकि वह पूरी की पूरी सच हो, यह जरूरी नहीं। उदाहरण के लिए वह सिंहल की राजकुमारी नहीं भी हो सकती है, सिंघोली रियासत से भी तो उसका सम्बन्ध हो सकता है।" ('पद्मिनी का शाप', प्रस्तावना, पृ० ७)

पद्मिनी की कथा को ऐतिहासिक सत्यता पर प्रायः सभी इतिहासकारों एवं साहित्यकारों ने अपना-अपना मत व्यक्त किया है। कुछ इसे जायसी की कल्पित कथा कहते हैं और कुछ इतिहास से पुष्ट। गुजराती भाषा के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, डॉ० कालिकारंजन कानूनगो, बाबू जगनलाल गुप्ता ने पद्मिनी की संदिग्धता पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। १९५९ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय में "रघुनाथ प्रसाद नोपानी व्याख्यानमाला" के अन्तर्गत डॉ० कालिकारंजन कानूनगो तथा डॉ० दशरथ शर्मा ने शोधपरक व्याख्यान दिए थे। डॉ० कानूनगो ने पद्मिनी की कथा को महज कल्पना-प्रसूत सिद्ध किया और डॉ० शर्मा ने इसे ऐतिहासिक बताया। 'खिलजी वंश का इतिहास' पुस्तक के लेखक डॉ० किशोरी शरण लाल ने भी इस कथा को कल्पना-प्रसूत सिद्ध करने की कोशिश की है। सूर्यमल मिश्रण के 'वंश भास्कर', श्यामलदास के 'वीर विनोद' में पद्मिनी की कथा का वर्णन है।

जोधपुर विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के प्रो० जहूरखाँ मेहर ने राजस्थानी भाषा में "राजस्थानी संस्कृति रा चितराम" पुस्तक का दूसरा संस्करण १९८४ ई० में प्रकाशित किया है। यह राजस्थानी गद्य-शिल्प की सुन्दर कृति है, जिसमें 'पदमणी' शीर्षक लेख मे जहूरखाँ मेहर ने पद्मिनी की कथा पर विस्तार से ऐतिहासिक सन्दर्भ मे अपने विचार व्यक्त किए है। जहूरखाँ ने इतिहास के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत कर इस कथा पर संदिग्धता प्रकट की है। आपने 'पदमणी' लेख के उपसंहार में पृ० ८२ पर लक्ष्मीनिवास बिड़ला की भाँति इस प्रकार अपनी बात को रखा है—

"इण आलेख मे म्हूँ बीजै पड़पंचा मे नी पड़ अर आ वात चावी करण रा जतन करिया है कै पदमणी रौ जलम 'पदमावत' सू हुवौ। 'पदमावत' साहित री पोथी है। अलाउद्दीन रै चित्तौड़ हमलै री वजै पदमणी गत्त ई नी ही। साहित री वात करतां-करतां इतिहास बणगी। सो हमैं तौ पदमणी-कथा जायसी री थोथी कल्पना अगेजीज जावणी जोईजै।"

जहूरखाँ मेहर ने राजस्थानी गद्य की विधा में सुन्दर कृतियों का प्रकाशन किया है। १९८४ ई० में प्रकाशित उनकी राजस्थानी पुस्तक "धर मजला धर कोसा" को १९८६ ई० में कलकत्ता की भारतीय भाषा परिषद् ने पुरस्कृत किया है। जहूरखाँ की पुस्तक 'राजस्थानी संस्कृति रा चितराम' की जोधपुर के चौपासनी राजस्थानी शोध संस्थान के निदेशक डॉ० नारायणसिंह भाटी तथा "बृहद् राजस्थानी सबद कोस" के प्रख्यात सम्पादक मनीषी पद्मश्री डॉ० सीताराम लालस ने भूरी-भूरी प्रशंसा की है।

महामहोपाध्याय ओझाजी ने पद्मिनी का सिंहल की राजकन्या होने मे तो सन्देह

बिड़लाजी ने उपन्यास मे लिखा है कि सिंहल में पराक्रमबाहु और निःशंकमल्ल नामक दो प्रसिद्ध राजा हो चुके है। निःशंकमल्ल पराक्रमबाहु का भतीजा था। निःशंकमल्ल के वाद पराक्रमबाहु द्वितीय राजा वना। १२७० ई० के आसपास जब द्वितीय पराक्रमवाहु का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तो छोटे-छोटे जागीरदारों ने अपना सिर उठाना शुरू कर दिया, किन्तु एक योग्य सेना-नायक ने विद्रोही जागीरदारो का मुकाबला किया। उल्लेखनीय है कि सौ वर्ष से कुछ अधिक समय पहले उस सेना-नायक के पूर्वज भारत से सिंहल आये थे। जब पतनोन्मुख पुराना शक्तिशाली राज्य टूक-टूक हो गया तो हम्मीर शंक एक वड़ी रियासत का स्वामी वन वैठा—वह उसी सेना-नायक के वंश का राजपूत चौहान था। उसकी एक सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम था पद्मिनी। पद्मिनी की माँ भारत से आई थी। अपनी माँ से कन्या ने उत्तराधिकार मे अपने मातृ-देश भारत के लिए गहरा और कोमल प्यार प्राप्त किया था। इसी पद्मिनी के साथ चित्तौड़ के राणा रत्न सिंह का विवाह हुआ था, जिसका उल्लेख जायसी के 'पद्मावत', टॉड के 'राजस्थान' और रंगलाल के 'पद्मिनी उपाख्यान' मे है। बिड़लाजी ने भी जायसी के अनुसार ही अपने उपन्यास 'पद्मिनी का शाप' में राजा रत्नसेन की सिंहल यात्रा का वर्णन किया है। 'पद्मिनी का शाप' उपन्यास पर हमने उपन्यास-अध्याय मे विचार किया है।

ओझाजी और डॉ० दशरथ शर्मा

ओझाजी के कथन पर राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० दशरथ शर्मा ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ "राजस्थान थ्रू दि एजेज" ग्रन्थ में लिखा है—"जैसा कि हमने प्रोसीडिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९६१ ई० मे प्रकाशित अपने लेख में लिखा है "चौपाई चरित" के आधार पर अब इस बात का निश्चित साक्ष्य मिल चुका है कि जायसी के समय से पहले भी पद्मावती की कहानी प्रचलित थी। वह जायसी की अपनी कल्पना नहीं है। कोई चाहे तो यह भी मान सकता है कि जायसी के काव्य के अन्य दो मुख्य पात्रों अलाउद्दीन खिलजी और रतन सिंह की भाँति पद्मावती भी एक यथार्थ पात्र है।" इसी ग्रन्थ के आधार पर डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, प्रो० एम० हबीब, प्रो० एस० राय और श्री एस० सी० दत्त आदि विद्वानों को अमीर खुसरो के 'खयाजन-उल-फतह' में दिए गए पद्मिनी के उपाख्यान में एक गूढ़ संकेत प्राप्त होता है।" श्री एस० सी० दत्त कहते हैं—"जो कहानी इतने विभिन्न रूपों में हमारे सामने आई है, उसमें आखिर कुछ न कुछ सच्चाई तो होगी ही, हालांकि वह पूरी की पूरी सच हो, यह जरूरी नहीं। उदाहरण के लिए वह सिंहल की राजकुमारी नहीं भी हो सकती है, चित्तौड़ी रियासत से भी तो उसका सम्बन्ध हो सकता है।" ('पद्मिनी का शाप', प्रस्तावना, पृ० ७)

पद्मिनी की कथा को ऐतिहासिक सत्यता पर प्रायः सभी इतिहासकारों एवं साहित्यकारों ने अपना-अपना मत व्यक्त किया है। कुछ इसे जायसी की कल्पित कथा कहते हैं और कुछ इतिहास से पुष्ट। गुजराती भाषा के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, डॉ० कालिकारंजन कानूनगो, बाबू जगनलाल गुप्ता ने पद्मिनी की सदिग्धता पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। १९५९ ई० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे "रघुनाथ प्रसाद नोपानी व्याख्यानमाला" के अन्तर्गत डॉ० कालिकारंजन कानूनगो तथा डॉ० दशरथ शर्मा ने शोधपरक व्याख्यान दिए थे। डॉ० कानूनगो ने पद्मिनी की कथा को महज कल्पना-प्रसूत सिद्ध किया और डॉ० शर्मा ने इसे ऐतिहासिक बताया। 'खिलजी वंश का इतिहास' पुस्तक के लेखक डॉ० किशोरी शरण लाल ने भी इस कथा को कल्पना-प्रसूत सिद्ध करने की कोशिश की है। सूर्यमल मिश्रण के 'वंश भास्कर', श्यामलदास के 'वीर विनोद' में पद्मिनी की कथा का वर्णन है।

जोधपुर विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के प्रो० जहूरखाँ मेहर ने राजस्थानी भाषा में "राजस्थानी संस्कृति रा चितराम" पुस्तक का दूसरा संस्करण १९८४ ई० में प्रकाशित किया है। यह राजस्थानी गद्य-शिल्प की सुन्दर कृति है, जिसमे 'पदमणी' शीर्षक लेख मे जहूरखाँ मेहर ने पद्मिनी की कथा पर विस्तार से ऐतिहासिक सन्दर्भ मे अपने विचार व्यक्त किए है। जहूरखाँ ने इतिहास के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत कर इस कथा पर संदिग्धता प्रकट की है। आपने 'पदमणी' लेख के उपसंहार मे पृ० ८२ पर लक्ष्मीनिवास बिड़ला की भाँति इस प्रकार अपनी बात को रखा है—

> "इण आलेख मे म्हूँ बीजै पड़पंचा में नी पड़ अर आ वात चावी करण रा जतन करिया है कै पदमणी रौ जलम 'पदमावत' सू हुवौ। 'पदमावत' साहित री पोथी है। अलाउद्दीन रै चित्तौड़ हमलै री वजै पदमणी गत्त ई नी ही। साहित री बात करतां-करतां इतिहास वणगी। सो हूँ तौ पदमणी-कथा जायसी री थोथी कल्पना अगेजीज जावणी जोईजै।"

जहूरखाँ मेहर ने राजस्थानी गद्य की विधा मे सुन्दर कृतियो का प्रकाशन किया है। १९८४ ई० मे प्रकाशित उनकी राजस्थानी पुस्तक "धर मजलां धर कोसां" को १९८६ ई० मे कलकत्ता की भारतीय भाषा परिषद् ने पुरस्कृत किया है। जहूरखाँ की पुस्तक 'राजस्थानी संस्कृति रा चितराम' की जोधपुर के चौपासनी राजस्थानी शोध संस्थान के निदेशक डॉ० नारायणसिंह भाटी तथा "वृहद राजस्थानी सबद कोस" के प्रख्यात सम्पादक मनीषी पद्मश्री डॉ० सीताराम लालस ने भूरी-भूरी प्रशंसा की है।

महामहोपाध्याय ओझाजी ने पद्मिनी का सिंहल की राजकन्या होने मैं

बिड़लाजी ने उपन्यास में लिखा है कि सिंहल में पराक्रमबाहु और निःशंक-मल्ल नामक दो प्रसिद्ध राजा हो चुके हैं। निःशंकमल्ल पराक्रमबाहु का भतीजा था। निःशंकमल्ल के बाद पराक्रमबाहु द्वितीय राजा बना। १२७० ई० के आसपास जब द्वितीय पराक्रमबाहु का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तो छोटे-छोटे जागीरदारों ने अपना सिर उठाना शुरू कर दिया, किन्तु एक योग्य सेना-नायक ने विद्रोही जागीरदारों का मुकाबला किया। उल्लेखनीय है कि सौ वर्ष से कुछ अधिक समय पहले उस सेना-नायक के पूर्वज भारत से सिंहल आये थे। जब पतनोन्मुख पुराना शक्तिशाली राज्य टूक-टूक हो गया तो हम्मीर शंक एक बड़ी रियासत का स्वामी बन बैठा—वह उसी सेना-नायक के वंश का राजपूत चौहान था। उसकी एक सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम था पद्मिनी। पद्मिनी की माँ भारत से आई थी। अपनी माँ से कन्या ने उत्तराधिकार में अपने मातृ-देश भारत के लिए गहरा और कोमल प्यार प्राप्त किया था। इसी पद्मिनी के साथ चित्तौड़ के राणा रत्न सिंह का विवाह हुआ था, जिसका उल्लेख जायसी के 'पद्मावत', टॉड के 'राजस्थान' और रंगलाल के 'पद्मिनी उपाख्यान' में है। बिड़लाजी ने भी जायसी के अनुसार ही अपने उपन्यास 'पद्मिनी का शाप' में राजा रत्नसेन की सिंहल यात्रा का वर्णन किया है। 'पद्मिनी का शाप' उपन्यास पर हमने उपन्यास-अध्याय में विचार किया है।

ओझाजी और डॉ० दशरथ शर्मा

ओझाजी के कथन पर राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० दशरथ शर्मा ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ "राजस्थान थ्रू दि एजेज" ग्रन्थ में लिखा है—"जैसा कि हमने प्रोसीडिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९६१ ई० में प्रकाशित अपने लेख में लिखा है "चौपाई चरित" के आधार पर अब इस बात का निश्चित साक्ष्य मिल चुका है कि जायसी के समय से पहले भी पद्मावती की कहानी प्रचलित थी। वह जायसी की अपनी कल्पना नहीं है। कोई चाहे तो यह भी मान सकता है कि जायसी के काव्य के अन्य दो मुख्य पात्रों अलाउद्दीन खिलजी और रतन सिंह की भाँति पद्मावती भी एक यथार्थ पात्र है।" इसी ग्रन्थ के आधार पर डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, प्रो० एम० हबीब, प्रो० एस० राय और श्री एस० सी० दत्त आदि विद्वानों को अमीर खुसरो के 'खयाजन-उल-फतह' में दिए गए पद्मिनी के उपाख्यान में एक गूढ़ संकेत प्राप्त होता है।" श्री एस० सी० दत्त कहते हैं—"जो कहानी इतने विभिन्न रूपों में हमारे सामने आई है, उसमें आखिर कुछ न कुछ सच्चाई तो होगी ही, हालांकि वह पूरी की पूरी सच हो, यह जरूरी नहीं। उदाहरण के लिए वह सिंहल की राजकुमारी नहीं भी हो सकती है, सिंघोली रियासत से भी तो उसका सम्बन्ध हो सकता है।" ('पद्मिनी का शाप', प्रस्तावना, पृ० ७)

पद्मिनी की कथा की ऐतिहासिक सत्यता पर प्रायः सभी इतिहासकारों एवं साहित्यकारों ने अपना-अपना मत व्यक्त किया है। कुछ इसे जायसी की कल्पित कथा कहते हैं और कुछ इतिहास से पुष्ट। गुजराती भाषा के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, डॉ० कालिकारंजन कानूनगो, बाबू जगनलाल गुप्ता ने पद्मिनी की संदिग्धता पर अपने विचार व्यक्त किए है। १९५९ ई० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे "रघुनाथ प्रसाद नोपानी व्याख्यानमाला" के अन्तर्गत डॉ० कालिकारंजन कानूनगो तथा डॉ० दशरथ शर्मा ने शोधपरक व्याख्यान दिए थे। डॉ० कानूनगो ने पद्मिनी की कथा को महज कल्पना-प्रसूत सिद्ध किया और डॉ० शर्मा ने इसे ऐतिहासिक बताया। 'खिलजी वंश का इतिहास' पुस्तक के लेखक डॉ० किशोरी शरण लाल ने भी इस कथा को कल्पना-प्रसूत सिद्ध करने की कोशिश की है। सूर्यमल मिश्रण के 'वंश भास्कर', श्यामलदास के 'वीर विनोद' में पद्मिनी की कथा का वर्णन है।

जोधपुर विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के प्रो० जहूरखाँ मेहर ने राजस्थानी भाषा में "राजस्थानी संस्कृति रा चितराम" पुस्तक का दूसरा संस्करण १९८४ ई० में प्रकाशित किया है। यह राजस्थानी गद्य-शिल्प की सुन्दर कृति है, जिसमे 'पदमणी' शीर्षक लेख में जहूरखाँ मेहर ने पद्मिनी की कथा पर विस्तार से ऐतिहासिक सन्दर्भ मे अपने विचार व्यक्त किए है। जहूरखाँ ने इतिहास के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत कर इस कथा पर संदिग्धता प्रकट की है। आपने 'पदमणी' लेख के उपसंहार मे पृ० ८२ पर लक्ष्मीनिवास बिड़ला की भांति इस प्रकार अपनी बात को रखा है—

"इण आलेख मे म्हूँ बीजै पड़पंचा में नी पड़ अर आ बात चावी करण रा जतन करिया है कै पदमणी रौ जलम 'पदमावत' सू हुवौ। 'पदमावत' साहित री पोथी है। अलाउद्दीन रै चित्तौड़ हमलै री वजै पदमणी गत्तई नी ही। साहित री बात करतां-करतां इतिहास बणगी। सो हमैं तो पदमणी-कथा जायसी री थोथी कल्पना अंगेजीज जावणी जोईजै।"

जहूरखाँ मेहर ने राजस्थानी गद्य की विधा मे सुन्दर कृतियों का प्रकाशन किया है। १९८४ ई० मे प्रकाशित उनकी राजस्थानी पुस्तक "धर मजलां धर कोसां" को १९८६ ई० में कलकत्ता की भारतीय भाषा परिषद् ने पुरस्कृत किया है। जहूरखाँ की पुस्तक 'राजस्थानी संस्कृति रा चितराम' की जोधपुर के चोपासनी राजस्थानी शोध संस्थान के निदेशक डॉ० नारायणसिंह भाटी तथा "वृहद राजस्थानी सबद कोस" के प्रख्यात सम्पादक मनीषी पद्मश्री डॉ० सीताराम लालस ने भूरी-भूरी प्रशंसा की है।

महामहोपाध्याय ओझाजी ने पद्मिनी का सिंहल की राजकन्या होने मे तो सन्देह

व्यक्त किया है पर अपने वृहत् इतिहास "राजपूताने का इतिहास" में केवल इतना ही कहा है कि समर सिंह के पुत्र रत्न सिंह की रानी पद्मिनी थी। ओझाजी ने अपने इतिहास ग्रन्थ में पृ० ४८३ पर लिखा है—"रावल समर सिंह के पीछे उसका पुत्र रत्न सिंह चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। उसको शासन करते थोड़े ही महीने हुए थे कि सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया।" आगे पृ० ४८६ पर ओझाजी लिखते हैं—"रत्नसिंह की मुख्य रानी पद्मिनी थी, जिसके सुविशाल प्राचीन महल चित्तौड़गढ़ में एक तालाब के तट पर बड़े ही रमणीक स्थल में बने हुए हैं। ये महल और तालाब पद्मिनी के नाम से विख्यात हैं।"

आश्चर्य है कि ओझाजी ने राणा रत्न सिंह का शासन मात्र एक वर्ष बताया है जब कि आप ही ने रानी पद्मिनी के महलों और तालाब आदि का वर्णन चित्तौड़गढ़ दुर्ग में किया है। इतने अल्पकाल में ही रानी पद्मिनी का इतनी ख्याति पा जाना और आज भी चित्तौड़गढ़ में पद्मिनी के महल का मिलना ओझाजी के वक्तव्य के सामने एक बड़ा प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है। अस्तु, अब हम इस विवादास्पद प्रकरण को यहीं समाप्त करते हैं और रंगलाल वन्दोपाध्याय के "पद्मिनी उपाख्यान" काव्य पर पुन: यहाँ चर्चा करते हैं।

शर्त-संधि-प्रस्ताव

पद्मिनी के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर उसे प्राप्त करने के लिए सम्राट अलाउद्दीन चित्तौड़ पर आक्रमण करता है। बहुत दिनों तक राजपूतों से युद्ध करने पर भी जब सम्राट असफल होता है तब वह राणा भीम सिंह के पास एक 'शर्त-सन्धि' का प्रस्ताव भेजता है—"शर्त है कि यदि एकबार उसे पद्मिनी का दर्शन हो जाय तो वह युद्ध से विरत होकर अपनी राजधानी दिल्ली लौट जाएगा।"

एई रूप कत दिन होइलो समर।
दिवा विभावरी रणे नाहि अवसर॥
तथापिउ यवनेर ना होइलो जय।
अभेद्य दुर्गम दुर्ग, कार साध्य लय?

× × ×

एक बार देखा चाई से रूप ताहार॥
आसार आशाय फल लाभ होले बाँचि।
इहार अधिक मिछे मने मने आँचि॥
नाहि चाहि रत्नभार, चितोरेरदेश।

देखिबो से मोहिनीरे, एई धार्य शेष ॥
एतो भावि पत्र लिखि दूत पाठाइलो ।
संधिर पताका शुभ्र, शून्ये उडाइलो ॥
(रंगलाल रचनावली, 'पद्मिनी उपाख्यान' पृ० १४७)

इस अपमानजनक सन्धि-प्रस्ताव को पाकर राणा भीम सिंह क्रुद्ध हो जाते है; किन्तु इसका प्रतिकार करने की राणा में शक्ति नहीं थी। राजपूत वीर भी इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे। तब पद्मिनी ने चित्तौड़ की ध्वंसलीला को बचाने के लिए पति को सुझाव दिया कि यदि पठान अलाउद्दीन दुर्ग को ध्वस्त कर मेरा दर्शन करेगा तो इससे हमारी कुल-मर्यादा कलंकित होगी। अगर वह दर्पण में मेरी छाया देख कर दिल्ली लौट जाना चाहता है तो उभय कुलो के वीरो की प्राण-रक्षा होगी। टॉड ने लिखा है कि *अलाउद्दीन ने पद्मिनी के कारण ही चित्तौड़ पर आक्रमण किया* था। अपनी शक्तिशाली सेना के द्वारा चित्तौड़ को घेर कर अलाउद्दीन ने इस बात को जाहिर कर दिया कि पद्मिनी को पा जाने के बाद वह चित्तौड़ से लौट जायेगा। बहुत दिन बीत जाने पर भी जब उसे सफलता नहीं मिली तो सुल्तान ने पद्मिनी को दर्पण मे देखने का सन्धि-प्रस्ताव राणा के पास भेजा। टॉड का अंग्रेजी कथन इस प्रकार है—

At length he restricted his desire to a mere sight of this extraordinary *beauty and acceded to the proposal of beholding* her through the medium of mirrors. (Tod's Rajasthan, Vol. I, Ch. VI, Page 213)

उल्लेखनीय है कि टॉड ने जहाँ लिखा है कि अलाउद्दीन ने दर्पण मे पद्मिनी को देखने का प्रस्ताव रखा, किन्तु यह बात रंगलाल के काव्य में नहीं है। रंगलाल ने दर्पण में पद्मिनी की छाया दिखाने की बात उसी के मुख से तर्क सहित कहलवाई है। इससे दोनों पक्षो को युद्ध-विग्रह से विरत होना होगा—यह शान्ति-स्थापन का उचित तर्क था।

दुर्जन दलन, सुजन पालन,
एई तो राजार नीति।

× × ×

निरखि आमाय, शत्रु यदि जाय,
सब दिक रक्षा पाय।
तबे हे आमारे, देखाउ ताहारे,
निरुपाये सदुपाये ॥

साक्षात् आमाय, यदि देखे राय
होवे तवे कुले कालि।
देखुक दर्पणे, छाया दरशने,
वंशेते ना रवे गालि॥ (वही पृ० १४६)

पति को उद्विग्न और किंकर्त्तव्य विमूढ़ देखकर ही पद्मिनी ने राणा से राजा के कर्त्तव्य की बात कही। वस्तुतः दुर्जन दलन और सुजन पालन ही तो राज-धर्म और राजा का कार्य है, पर इसे कौन पालित करता है ? यह उक्ति रंगलाल ने अंग्रेजी-राज्य की ओर इंगित करके कही है। अंग्रेजी-शासन मे सुजनों की रक्षा की अपेक्षा उन पर अत्याचार होता था। असल मे अंग्रेजो के कुशासन से कवि देश को मुक्त करना चाहता था। अतः बीच-बीच में वह अपने युग-बोध और युग-धर्म की ओर संकेत कर रहा है। राणा पद्मिनी की इस बात को सुनकर प्रसन्न हुए, किन्तु इस सन्धि-प्रस्ताव के पीछे अलाउद्दीन की कुत्सित अभिसन्धि थी। पद्मिनी को दर्पण मे देखने के बाद जब पठान बादशाह दुर्ग से विदा हो रहा था और राणा उसे विदाई दे रहे थे तो सम्राट के छिपे हुए सैनिको ने भीम सिंह को बन्दी बना लिया।

अलाउद्दीन ने विश्वासघातकता के षड्यन्त्र से भीम सिंह को बन्दी बना लिया, चित्तौड़ मे शोक छा गया, किन्तु पद्मिनी ने धैर्य धारण कर छल का उत्तर चतुराई से देने और पति को मुक्त कराने का निर्णय किया। अलाउद्दीन ने राणा को बन्दी बनाने के बाद कहला भेजा था कि पद्मिनी के हरम मे आने पर भीम सिंह को मुक्त कर दिया जायगा। इस घटना को टॉड ने इस प्रकार लिखा है—

Relying on the faith of the Rajpoot, he enterted Cheetore slightly guarded and having gratified his wish, returned. The Rajpoot, unwilling to be outdone in confidence, accompanied the king to the foot of the fortress, amist many complimentary excuses from his guest at the trouble he thus occasioned It was for this that Alla risked his own safety, relying on the superior faith of the Hindu. Here he had an ambush; Bheemsi was made prisoner, hurried away to the Tatar Camp and his liberty made dependent on the surrender of Pudmani. (*Ibid, Page* 213)

दुर्नीतिपरायण बादशाह ने धोखे से भीम सिंह को बन्दी बना कर कारागार में डाल दिया—

दारुण दुर्नीत दुष्ट दुरात्मा दनुज।
साधे यवनेरे हिन्दू ना बोले मनुज॥

× × ×

दुरन्त पाठानपति पेये ताँरे करे।
सेई क्षणे कारागारे लये बंध करे॥ (वही, पृ० १५१)

और बोला—

"एखनो पद्‌मिनी आनि दाउ हे राजन !"

भीम सिंह बन्दी दशा में भी यह सुनकर क्रुद्ध होता है, बादशाह तब कहता है कि मैं तुम्हारी हत्या कर दूँगा और चित्तौड़ को जला कर खाक कर दूँगा—अतः बुद्धिमानी इसी में है कि मुझे पद्मिनी दे दो और अपनी तथा चित्तौड़ की रक्षा करो—

यदि पारे नाहि पाई करिलाम पण।
सकलेर आगे तव वधिबो जीवन॥
परे विनाशिबो सब काल-वेश धरि।
चित्तौड़ करिबो चूर्ण गोलावृष्टि करि॥

× × ×

अतएव वृथा केनो वाड़ाइवे गोल।
पद्मिनीरे एने दाउ राखो मम बोल॥
सब दिक रक्षा पावे होइवे मंगल।
एकेबारे निवे जावे समर-अनल॥ (वही पृ० १५२)

राणा भीम सिंह अलाउद्दीन की बातें सुन कर कुपित होता है और कहता है—कि अरे दुरात्मा ! क्या यही तुम्हारी राजनीति है—क्या यही तुम्हारा धर्म है ? यह क्या वीरोचित कार्य तुमने किया है ?

क्षत्रियेर क्रोधानल अति खरतर।
बोले, "धिक् उरे दुष्ट यवन पामर
एई कि योद्धार धर्म रे रे दुराचार ?
एई कि पौरुष तोर पुरुष होइया ?
बादशाही अधर्मेर आश्रय लइया ? (वही पृ० १५२)

"यदि सात दिन के अन्दर पद्‌मिनी मेरे हरम मे न आई तो मैं चित्तौड़ की ईंट से ईंट बजा दूँगा।" अलाउद्दीन की इस गर्वोक्ति का पद्‌मिनी ने धैर्य और कौशल से जवाब दिया—"यदि बादशाह रानी पद्‌मिनी की पदमर्यादा की रक्षा कर उसकी हजार सखियो का पालकियो मे स्वागत करेगा, तो वह उसके हरम में जायेगी।" इस उत्तर को पाकर बादशाह राजी हो गया। पद्‌मिनी ने एक सहस्र पालकियों मे यात्रा

शुरू की। प्रत्येक पालकी मे वीर शस्त्रो से सुसज्जित होकर छद्मवेश में बैठे थे और पालकियो के कहार भी गुप्त वेश में थे। इनका नेतृत्व गोरा और उसके भतीजे बादल ने किया। बंदी-गृह से मुक्त होकर भीम सिंह और पद्मिनी दुर्ग मे लौट आये। पठान सेना के साथ भयंकर युद्ध हुआ। गोरा युद्ध मे अपूर्व वीरता दिखाकर वीरगति को प्राप्त हुआ, उसकी पत्नी ने जौहर किया। वीर बादल भी पराक्रम दिखा कर युद्ध मे घायल हुआ। जायसी ने अपने पद्मावत मे १६ सौ पालकियो का वर्णन किया है कि रानी पद्मिनी दशभुजाधारिणी दुर्गा के रूप मे सज्जित होकर युद्ध मे पालकियो के साथ गई।

एई रूपे पद्मिनी प्राणेश-परित्राणे।
चल्लिलेन शत्रुर शिविर सन्निधाने।। (वही, पृ० १५७)

पुन: चित्तौड़ पर अलाउद्दीन की सेना का आक्रमण होता है और राणा भीम सिंह को देववाणी सुनाई देती है। रंगलाल ने जहाँ अपने काव्य में आधुनिकता का शुभारम्भ किया है, वे भी ऐसी अलौकिक घटना का वर्णन करने से बच नही सके। राजा को रात में काली की मूर्ति दिखाई देती है जो कहती है—"मैं भूखी हूँ! जब तक राणा के ११ राजकुमारो का युद्ध मे बलिदान नहीं होगा तब तक चित्तौड़ के राजवंश की रक्षा नही होगी।"

एकदा क्षणदा गते, आलस्य नयनपथे,
　　करिले पलक द्वार रोध,
देखिलेन कालीमूर्ति, स्तम्भ होते पेये स्फूर्ति,
　　कहितेछे वचन सक्रोध।
"शुन भीम वाक्य मोर, मंगल होइवे तोर,
　　यदि क्षुधा निवार आमार।"

× × ×

देवी कन, "महाशय, आछे पुत्र एकादश
　　मम ग्रासे कर समर्पण।"　　　(वही, पृ० १६२)

तीन दिन तक यवनो और राजपूतो का भयानक संग्राम हुआ। चौथे दिन अरि सिंह मारा गया। उसके बाद अरि सिंह का छोटा भाई अजय सिंह युद्ध के लिए तैयार हुआ। परन्तु राणा भीम सिंह का प्रेम उसके प्रति अधिक था, इसलिए उसे युद्ध मे जाने से रोका गया। इस अवस्था मे अजय सिंह के जो छोटे भाई थे, एक-एक करके युद्ध में गये और सब मिला कर राणा भीम सिंह के ग्यारह लड़के युद्ध मे मारे गए।

केवल अजय सिंह बाकी रहा। इसके बाद राणा भीम सिंह युद्ध मे गए और पद्मिनी ने सखियों के साथ जौहर-व्रत किया। अन्य ग्रन्थो में राणा लक्ष्मण सिंह को देववाणी सुनाई देती है और उसके ग्यारह पुत्र युद्ध में मारे जाते हैं। अजय सिंह बचता है और अरि सिंह का पुत्र हम्मीर मेवाड़ का राणा बनता है।

राणा भीम सिंह युद्ध में जाने के पूर्व क्षत्रियो को उत्साह देने के लिए काव्य पाठ करता है—

"स्वाधीनता-हीनताय के बाँचिते चाय ..." (वही पृ० १६४)

इस राष्ट्रीय गीत पर हमने पूर्व में अपने विचार व्यक्त किए हैं—अतः उसपर विचार की पुनः आवश्यकता नही है।

'जौहर-व्रत' का पालन कर राजपूत वीरगति पाते हैं और पद्मिनी के साथ राजपूत-वीरांगनाएँ सती होती है। अलाउद्दीन को चित्तौड़ दुर्ग में केवल राख की ढेर मिलती है और वह पश्चाताप की ज्वाला में जलता है।

ओई शुनो ! ओई शुनो ! भेरीर आवाज हे,
भेरीर आवाज।
साज साज साज बोले, साज साज साज हे,
साज साज साज ॥
चलो चलो चलो सबे, समर-समाज हे,
समर-समाज।
राखोहो पैतृक धर्म, क्षत्रियेर काज हे,
क्षत्रियेर काज।
आमादेर मातृभूमि राजपूतानार हे,
राजपूतानार।

× × ×

परहिते, देशहिते, त्यजिलो जीवन हे
त्यजिलो जीवन ॥
स्मरह ताँदेर सब कीर्ति-विवरण हे,
कीर्ति-विवरण !

× × ×

देशहित मरे जेई, तुल्य तार नाई हे,
तुल्य तार नाई।
अतएव रणभूमे चलो त्वरा जाई हे,
चलो त्वरा जाई ॥ (वही, पृ० १६५)

द्विज ने पथिक को वह स्थान दिखाया जहाँ पद्‌मिनी ने जौहर-व्रत पालन करने के लिए अग्नि में प्रवेश किया था—

देखो, पथिक सुजन !
एई स्थाने पद्मिनीर कलेवर सुरुचिर,
दाह करिलो हुताशन ॥
गिरि, गुहार भितर। (वही, पृ० १६६)

कवि रंगलाल ने पद्‌मिनी उपाख्यान के उपसंहार में लिखा है—

तमोमय समुदय, किन्तु नाहि दृष्टि होय,
परिक्लान्त पोतपति-प्राण ॥
विपद्-वारण-हेतु, शैलोपरि जेन केतु
प्रदीप्त आलोक शोभा पाय।
सेरूप भारतदेशे, स्वाधीनतासुख शेषे,
छिलो मात्र राजपूतानाय ॥
कि होइलो हाय-हाय ! से नक्षत्र लुप्तकाय,
निभिलो से आलोक उज्ज्वल। (वही पृ० १६६)

चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार होने से राजस्थान की स्वाधीनता का प्रदीप बुझ गया और १९वीं शताब्दी का चारण कवि रंगलाल बोल उठा—

कि होइलो हाय-हाय ! कोथा सब महाकाय,
तेजःपूत राजपूतगण ?
प्रभाते उठिये तारा, जूझिए दिवस सारा
प्रदोषेते मूदिलो नयन ॥

\+ + +

हाय ! कहाँ गए वे राजपूत ?
युद्ध ही था जिनका पण !

उत्तर कौन दे ?
पूछता है मन।

× × ×

के भाँगिवे सेई घूम ? घोर कालानल घूम
घेरियाछे पल्केर द्वार। (वही पृ० १७०)

इस प्रकार कवि रंगलाल ने पराधीन देश की जनता को उद्‌बुद्ध करने के लिए 'पद्मिनी उपाख्यान' में शंख-ध्वनि की। कवि कहता है कि क्या देशवासियों की कुम्भकर्णी नींद अब भी पराधीनता के बन्धनों को काटने के लिए भंग नहीं होगी ? १८५७ ई० की प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम की आग क्या बुझ जायगी ? रंगलाल देश के युवकों को आजादी के लिए जगाकर ललकारता है और स्वतन्त्रता की लड़ाई को पुरजोर बनाता है—देखिए—

भारतेर भाग्य जोर, दुःख विभावरी भोर
घूम-घोर थाकिवे कि आर ?
इंगराजेर कृपाबले, मानस उदयाचले,
ज्ञानभानु प्रभाय प्रचार॥ (वही पृ० १७२)

कवि रंगलाल ने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के २७ वर्ष पूर्व और बंगभग के ४७ वर्ष पूर्व ही देश की आजादी का तराना गाना शुरू कर दिया था। हमने आरम्भ में यह कहा है कि १८५७ ई० का प्रथम स्वतन्त्रता-युद्ध असफल नहीं हुआ, अपितु रंगलाल ऐसे राष्ट्र-कवियों की वाणी से दूने जोश के साथ उद्‌भासित हुआ।

अन्त में कवि स्कॉट, बायरन और टॉमस मूर की शैली में अपने उपाख्यान को समाप्त करता है। 'पद्मिनी उपाख्यान' में स्कॉट के रोमांस काव्यों का अनुकरण और टॉमस मूर के स्वतन्त्रता के लिए गाये गए गीतों को देखा जा सकता है। लोक-भाषाओं का चारण (ब्राह्मण) सैलानी युवक को कथा सुनाता है। यह काव्य-ग्रन्थ पूर्णतः समाख्यानात्मक है और इसका काव्य-रूप परम्परागत रोमांस से स्पष्टतः भिन्न है। काव्य सर्गों में विभाजित नहीं है, पर उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों की भरमार है। रंगलाल कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त के साहित्यिक शिष्य ही नहीं थे, बल्कि पत्रकारिता में उनके सहयोगी भी थे, किन्तु काव्य क्षेत्र में उन्होंने गुरु से हटकर एक नए स्वर का निनाद किया, जिसमें देशप्रेम और राजपूती वीरता का यशोगान है।

'पद्मिनी उपाख्यान' के शेष में कवि ने कहा है—

सुनो हे पथिकवर, साग होलो अतःपर मनोहर पद्मिनी उपाख्यान।
यदि आर थाके क्षुधा, योगाइबो काव्य-सुधा, एईरूप हृदे धरि ध्यान॥
(वही, पृ० १७२)

कवि श्यामनारायण का 'जौहर' काव्य

वैसे पद्मिनी के जौहर को लेकर बंगला कवि रंगलाल बन्दोपाध्याय की भाँति हिन्दी में कई काव्य और नाटक लिखे गए। महाराणा प्रताप के बाद राजस्थान का जो चरित्र सारे देश मे सर्वाधिक चर्चित रहा उसमें वीरांगना पद्मिनी का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। कदाचित् कवि रंगलाल बन्दोपाध्याय के 'पद्मिनी उपाख्यान' से अनुप्रेरित होकर हिन्दी के वीर-रस के कवि श्री श्यामनारायण पाण्डेय ने वि० सं० १९९६ में पद्मिनी के चरित्र को लेकर 'जौहर' काव्य लिखा। इस काव्य-ग्रन्थ का प्रकाशन सं० २००१ में हुआ।

पुस्तक के अग्निकण (भूमिका) मे पृष्ठ २२ पर कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने लिखा है—

"हल्दीघाटी' लिखकर मैंने जनता के सामने एक भारतीय वीर पुरुष का आदर्श रखा और 'जौहर' लिखकर एक भारतीय नारी का। इसलिए नहीं कि कोई छन्दों के प्रवाह में झूम उठे, वल्कि इसलिए कि भारतीय पुरुष प्रताप को समझें और भारतीय नारियाँ 'पद्मिनी' को पहचानें।"

कवि पाण्डेयजी ने रंगलाल बन्दोपाध्याय के अनुसार 'जौहर' काव्य की कथा को पुजारी और पथिक के कथोपकथन से आरम्भ किया है। रंगलाल ने एक चारण भाट और सैलानी युवक के कथोपकथन से पद्मिनी की कहानी कहलवाई है। पाण्डेयजी का पुजारी पद्मिनी की पूजा करने थाल लेकर जा रहा है तो एक पथिक रास्ते मे उसके गन्तव्य लक्ष्य को पूछता है—

पथिक—

थाल सजा कर किसे पूजने चले प्रात ही मतवाले ?
कहाँ चले तुम रामनाम का पीताम्बर तन पर डाले ?
('जौहर' काव्य, प्रथम चिनगारी, पृ० ३)

पुजारी—

मुझे न जाना गंगासागर, मुझे न रामेश्वर काशी।
तीर्थराज चित्तौड़ देखने को मेरी आँखें प्यासी॥ (वही, पृ० ४)

\+ \+ \+

अपने अचल स्वतंत्र दुर्ग पर सुनकर वैरी की बोली।
निकल पड़ी लेकर तलवारें जहाँ जवानों की टोली॥
सुन्दरियों ने जहाँ देशहित जौहरव्रत करना सीखा।
स्वतंत्रता के लिए जहाँ बच्चों ने भी मरना सीखा॥
वहाँ पद्मिनी जौहरव्रत कर चढ़ी चिता की ज्वाला पर।
क्षण भर वहीं समाधि लगेगी, बैठ इसी मृगछाला पर॥ (वही, पृ० ४)

कवि श्यामनारायणजी ने टॉड के वर्णन के अनुसार अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण, गोरा-बादल की वीरता और महारानी पद्मिनी के जौहर का सशक्त भाषा में बखान किया है। उल्लेखनीय है कि मेवाड़ की अधिष्ठात्री देवी का स्वप्न में राणा के सामने प्रकट होना और 'मैं भूखी हूँ' आदि कहना—ये सारी बातें बंगला साहित्यकारों द्वारा वर्णित तथा "पद्मिनी उपाख्यान" से मिलती-जुलती हैं।

वीर-रस का कवि

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक-काल के वीर-रस के सर्वोत्कृष्ट कवियों में श्री श्यामनारायण पाण्डेय का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इन्हें आधुनिक-काल का 'भूषण' कहा जाता है। हिन्दी के छायावादी-युग में जब रचनाकार पलायनवादी प्रवृत्ति से प्रभावित थे और रोमांटिक कविताएँ लिख रहे थे। उस समय देश की आजादी के लिए कवि ने युवकों में वीरता, आत्मत्याग और देशभक्ति के भाव भरे। श्याम *नारायणजी ने यह कार्य प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच किया। उस समय देश में* गाँधीजी की आँधी वह रही थी और 'भूषण' की 'शिवाबावनी' को साम्प्रदायिकता का फतवा देकर विद्यालयों के पाठ्यक्रम में बन्द किया जा रहा था। हिन्दू-मुस्लिम एकता की आरोपित मानसिकता में कवि का काव्य-प्रणयन जोखिम भरा था। फिर भी श्यामनारायण ने 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' काव्य लिखे। इन रचनाओं की सारे हिन्दी जगत में धूम मच गई। कवि श्यामनारायण पाण्डेय का जन्म विक्रम सम्वत् १९६४ में डुमग्रामर (डुमराव), मऊनाथभंजन, जिला आजमगढ़ में हुआ था। कवि की भाषा में भावों के अनुकूल शब्द-विन्यास और वीर-रस-सिक्त भाव इतने प्रभावोत्पादक हैं कि अल्प समय में ही उनके काव्य लोगों की जुबान पर चढ़ गए और विद्यार्थी अन्त्याक्षरी में उनका धड़ल्ले से प्रयोग करने लगे। कवि की इस विशेषता से ही उनकी तुलना हिन्दी के भूषण, रसखान, संस्कृत के विल्हड़ या कल्हड़, उर्दू के अनीस और अंग्रेजी के टेनीसन से की जाती है।

कवि श्री श्यामनारायण पाण्डेय ने यद्यपि 'जौहर' काव्य लिखने के पूर्व 'हल्दीघाटी' खण्ड-काव्य की रचना की थी और उनकी यह काव्य-कृति हिन्दी क्षेत्रों में अत्य-

धिक प्रचारित-प्रसारित हुई थी, किन्तु रंगलाल ने सर्वप्रथम 'पद्मिनी उपाख्यान' इसी कथानक पर लिखा। इसलिए हम यहाँ 'हल्दीघाटी' के पूर्व उनके 'जौहर' काव्य और रंगलाल के 'पद्मिनी उपाख्यान' पर थोड़े विस्तार से चर्चा करेंगे। उल्लेखनीय है कि रंगलाल ने 'शूर-सुन्दरी' काव्य में महाराणा प्रताप के जीवन-चरित्र को लेकर काव्य रचना की है और उसी कथानक पर श्यामनारायण पाण्डेय ने 'हल्दीघाटी' का सृजन किया है। हमने चूंकि वंगला-साहित्य मे टॉड के "राजस्थान' के प्रभाव को दर्शाने की चेष्टा की है तथा हमारे अध्ययन का मूल विषय यही है, अतः तारतम्य बनाये रखने के लिए हमने 'हल्दीघाटी' से पहले 'जौहर' पर चर्चा करना उचित समझा है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी 'जौहर' की घटना अलाउद्दीन खिलजी के काल की है तथा प्रताप का युद्ध अकबर की सेना के साथ बहुत समय बाद हल्दीघाटी के मैदान मे हुआ था।

हमे अपने इस अध्ययन मे यह उपलब्धि हुई है कि राजस्थान के वीरों की कहानी सर्वप्रथम टॉड के 'राजस्थान' से वंगला भाषा के साहित्य मे आई और फिर हिन्दी से होती हुई पुनः राजस्थानी साहित्य मे चली गई। यूं टॉड के इतिहास में भी राजस्थान के प्राचीन ग्रन्थो, चारण-भाटो की विरुदावली का विवरण है, पर एक अंग्रेज इतिहासकार के द्वारा और विशेषकर लन्दन से जब 'राजस्थान' ग्रन्थ का प्रकाशन १८२६ ई० में हुआ तो उसकी प्रसिद्धि हो गई। अंग्रेजी शिक्षा मे नवशिक्षित वंगला-समाज और साहित्यकारो ने उसे बड़ी श्रद्धा से ग्रहण किया। इन साहित्यकारो ने जहाँ टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ ली, वही उनमे अंग्रेजी कवियो से प्रेरणा लेकर एक ऐसा काव्य-रस-पाक तैयार किया, जिससे १६वीं शताब्दी का नवजागरण प्रदीप्त हो उठा। विश्व के इतिहास मे यह एक अनोखी घटना है कि एक विदेशी लेखक की कृति ने इतना बड़ा काम किया। सचमुच कर्नल टॉड के 'राजस्थान' ने भारतीय नवजागरण को नई दिशा और नई वाणी दी; जिससे देश को मनोपा स्वतन्त्रता के लिए, मातृभूमि के उद्धार के लिए कटिबद्ध हो गई। टॉड का प्रभाव सर्वप्रथम वंगला-साहित्य पर पड़ा; तत्पश्चात् हिन्दी-साहित्य पर। स्वाभाविक है कि वंगला-साहित्य के रचनाकारो का प्रभाव हिन्दी पर पड़ा। इसे आलोचको ने आंग्ल-भाषा के प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में देखा है। टॉड की पुस्तक अंग्रेजी मे लन्दन से प्रकाशित हुई थी। उस एक पुस्तक का वंगला और हिन्दी पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। इसे हम रंगलाल और श्यामनारायण के तुलनात्मक अध्ययन में देखेंगे।

'पद्मिनी उपाख्यान' और 'जौहर' की सादृश्यता

"पद्मिनी उपाख्यान" और "जौहर" में एक ही कथानक होने के साथ-साथ रंगलाल और श्यामनारायण की कथा कहने की शैली भी एक ही है। रंगलाल को यह पद्धति स्कॉट और टॉमसमूर से मिली। अवश्य ही हिन्दी के कवि को रंगलाल की कृति को देखने का मौका मिला होगा—क्योंकि दोनों में कथा

हने की सादृश्यता है। वैसे तुलसी ने रामायण की कथा तीन सम्वादों में हलवाई है—गरुड़-काकभुशुण्डि-सम्वाद, शिव-पार्वती-सम्वाद और याज्ञवल्क-रद्वाज-सम्वाद। कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने कथा कहने के ढंग का सहारा ायद व्यास महाराज से लिया हो? आपने अग्निकण (भूमिका) के पृष्ठ २२ पर खा है—"श्रीमद्भागवत की संकल्पित कथा जिस पवित्रता और श्रद्धा के ाथ पौराणिक व्यास तीर्थ से लौटे हुए अपने यजमान को सुनाता है उसी रह पुलक-पुलक का भावुक पुजारी ने अधिकारी पथिक को 'जौहर' की कथा नाई है। 'जौहर' का पाठ करते समय पाठक को पुजारी और पथिक दोनों लेंगे, सिद्ध-साधक के रूप में, ज्ञाता-जिज्ञासु के रूप में, गुरु और शिष्य के प में।"

ई उद्भावनाएँ?

'पद्मिनी उपाख्यान' और 'जौहर' में कथानक की समानता होते हुए कुछ वीनताएँ भी हैं। रंगलाल की नई उद्भावनाओं का हमने पहले ही उल्लेख किया है। ामनारायणजी की नई उद्भावना यह है कि 'जौहर' काव्य मे दर्पण में रानी पद्मिनी ा चेहरा अलाउद्दीन को नहीं दिखाया गया है। जबकि टॉड के ग्रन्थ में तथा अन्य तिहास-पुस्तकों में इस घटना को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है! अलाउद्दीन ब चित्तौड़ के गढ़ से पद्मिनी के प्रतिविम्ब को देखकर लौटता है और सौजन्यतावश न सिंह किले के द्वार तक आते हैं तो छल-कपट-पारंगत अलाउद्दीन उन्हें बन्दी बना ता है और कहला भेजता है कि पद्मिनी के मिलने पर ही रतन सिंह की रिहाई गी। "जौहर" काव्य मे आखेट करते हुए रतन सिंह जब एक मृग-दम्पति का पीछा रते हैं, तो शिकार के बाद वनदेवी का शाप सुन कर अचेत हो घोड़े से भूमि पर गिर ाते हैं और अलाउद्दीन के गुप्त-सैनिक उन्हें बन्दी बना लेते हैं। देखिए—

उधर दुर्ग-सन्निधि अरि आया,
रूप ज्वाल को रख प्राणों में।
रतन चला आखेट खेलने,
इधर भयद वन के झाड़ों में॥

मृग-दम्पति को मार विपिन में
रावल ने जो पुण्य कमाया।
वनदेवी का तप्त शाप ले
खिलजी से उसका फल पाया॥

('जौहर', तीसरी चिनगारी, पृ० ३४)

इसे सुनकर पथिक ने पुजारी से वनदेवी के शाप देने का कारण पूछा तब चौथी चिनगारी में कवि ने रतन सिंह की मृगया का पूरा विवरण दिया है। रतन सिंह मृग-दम्पति का घोड़े पर सवार होकर पीछा करता है—भयंकर गर्मी है, मृग-दम्पति प्यास से जल के लिए उधर आये थे, पर शिकारी की नजर में चढ़ गए। दोनों प्राण-पण से दौड़ते हैं—पसीने से लथपथ है और शिकारी रतन सिंह भी। आखिर मृग और मृगी थक कर खड़े हो जाते हैं और कातर नेत्रों से प्राण-भिक्षा मांगते हैं, पर घुड़सवार रावल रतन सिंह ने उनका काम तमाम कर दिया—

भगते-भगते खड़े हो गये, थकी मृगी, मृग थका विचारा।
कम्पित तन-मन, शिथिल अंग थे, साँसों का रह गया सहारा।
दोनों की आँखों में टप-टप, दो-दो बिन्दु गिरे आँसू के।
सूख गये पर हाय वहीं पर, सन-सन-सन बहने से लू के॥

× × ×

एक हाथ मारा सवार ने, दोनों दो-दो टूक हो गये।
चीख-चीख वन की गोदी में, धीरे-धीरे मूक हो गये॥

मृग-दम्पति के खून से धरती लाल हो गई और कानों में वन देवी का शाप सुनाई पड़ा—

तुरत किसी ने कानों में यह, धीरे से सन्देश सुनाया।
इतने श्रम के बाद अभागे, जीवन का बस अन्त कमाया॥
यही नहीं, तेरे अघ से जब विपिन-मेदनी डोल रही है,
व्याकुल सी तेरे कानों में, वनदेवी जब बोल रही है।
तो हत्या यह क्या न करेगी, राजपूत-बलिदान करेगी।
यह घर-घर प्रलयाग्नि लगाकर, सारा पुर वीरान करेगी॥
चिता पद्मिनी की धधकेगी, सारा अग-जग काँप जायगा।
साथ जलेंगी वीर नारियाँ, महाप्रलय भय भाँप जायगा॥
('जौहर' चौथी चिनगारी, पृ० ४०-४१)

वनदेवी के शाप को सुनकर रावल रतन सिंह का अचेत होना एवं बाद में बंदी होना कवि की अपनी कल्पना है। इससे नवीनता तो प्रकट होती है, पर आश्चर्य इस बात का होता है कि चित्तौड़ का रावल कैसे इतनी जल्दी आखेट के प्रति अनुरक्त हो गया जबकि कुछ दिन पूर्व अलाउद्दीन ने पद्मिनी को

पाने के लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी। यद्यपि वह पराजित होकर दिल्ली लौट गया था, लेकिन ऐसे छली और बली दिल्ली के बादशाह की दुरभिसन्धि से बेखबर हो जाना, मृगया करना, कुछ अजीब सा लगता है। जबकि अलाउद्दीन फण पर चोट खाये साँप की तरह 'फिर फुफकारने के लिए उद्यत था—उसके गुप्तचर चित्तौड़ की खबर संग्रह करते थे। अस्तु, 'जौहर' मे वीर-रस का वैसा परिपाक नहीं हुआ है, जो 'हल्दीघाटी' मे देखने को मिलता है। "हल्दीघाटी" के वीर कवि की वाणी का एक छोटा सा नमूना 'जौहर' की सातवी और आठवी चिनगारी मे हमें मिलता है। सातवी चिनगारी में रानी पद्मिनी की वीरवाणी को सुनकर वीर राजपूत ही सतीत्व रक्षा और चित्तौड़ की स्वतन्त्रता के लिए कमर नहीं कसते है, वीर बालक गोरा और बादल भी युद्ध के लिए प्रस्तुत होते हैं। रानी वीरों को ललकार कर छल का उत्तर चतुराई से देने को कहती है। वह कहती है कि कपटी अलाउद्दीन को छलने के लिए कहलवा दो—"पद्मिनी तुम्हारे हरम में आयेगी पर अपनी सात सौ सहेलियों के साथ। ये सात सौ सहेलियाँ डोली में सवार होगी। असल में सात सौ डोलियों में सात सौ वीर राजपूत होगे और डोली के कहार भी छद्मवेष मे वीर सिपाही होगे।" देखिए सातवी चिनगारी मे—

क्यों दूध कलंकित करते, क्षत्राणी के सीने का।
बोलो तो रूप यही है, क्षत्रिय जन के जीने का॥
धिक्कार तुम्हारे बल को! धिक्कार जवानी को है!
अरि गरज रहा सीने पर धिक्कार जवानी को है!

× × ×

कह दो कि सात सौ सखियाँ उसके संग-संग रहती हैं।
उसकी तन-पीड़ा को ले अपने तन पर सहती हैं॥
उसके पति को छोड़ें, तो अपनी सहचरियों को ले।
वह शोभित महल करेगी, ले साथ सात सौ डोले॥

× × ×

उस काल रमा-काली-सी, शशि-किरण-कला, ज्वाला सी।
वाणी से आग बरसती, खरतर-रविकर-माला-सी॥
रानी की बातें सुनकर दो बालक आगे आये।
बोले—माँ, तेरी जय हो, संगर के बादल छाये॥

यदि हम गोरा बादल, तो बैरी-दल दलन करेंगे।
वन्दी को मुक्त करेंगे, क्षण भर भी कल न करेंगे॥
('जौहर' सातवीं चिनगारी, पृ० ७५, ७७)

दूसरे दिन प्रातःकाल चित्तौड़ दुर्ग का फाटक खुला और वीरों ने कहारों के भेष में सात सौ डोलियाँ उठाईं। सात सौ डोलियाँ चित्तौड़ के चक्करदार और ढालू पथ से कतार बाँध कर गोरा-बादल के नायकत्व में चल पड़ीं। इस समर-यात्रा का वर्णन कवि ने बड़ी ही प्रभावोत्पादक वाणी में किया है। इसे पढ़ कर 'हल्दीघाटी' का कवि पुनः अपनी वीर-रस की शब्दावली में बोल उठता है—

जान गमन रात का, जान समय प्रात का,
वीर सब उछल पड़े, महल से निकल पड़े॥
+　　　+　　　+
सात सौ सवारियाँ, तीव्रतर कटारियाँ,
तेग तवर आरियाँ, चल पड़ीं दुधारियाँ॥
×　　　×　　　×
दुर्ग का महारथी, समर-शूर सारथी,
बोल उठा ताव से, राजसी प्रभाव से—
　तुम अजर, बढ़े चलो, तुम अमर, बढ़े चलो।
　तुम निडर, बढ़े चलो, आन पर चढ़े चलो॥
काँप रहा हाड़ हो, घोर विपिन झाड़ हो।
सामने पहाड़ हो, सिंह की दहाड़ हो॥
पर न तुम रुको कभी, पर न तुम झुको कभी।
नाग पर चले चलो, आग पर चले चलो॥
+　　　+　　　+
　वेश की शपथ तुम्हें, देश की शपथ तुम्हें।
　मददगार राम है, लौटना हराम है॥
('जौहर' आठवीं चिनगारी, पृ० ८४-८७)

इस प्रकार राजपूत-वीर रावल रतन सिंह को मुक्त करते हैं। भयंकर युद्ध होता है—अलाउद्दीन पराजित होकर पुनः दिल्ली लौटता है, पर इस युद्ध में गोरा देश की बलिवेदी पर बलिदान हो जाता है। पुनः अलाउद्दीन की चित्तौड़ पर चढ़ाई होती है।

रानी पद्मिनी अन्य राजपूत वीरांगनाओं के साथ जौहर की आग मे कूदती है और राजपूत केसरिया बाना पहन कर युद्ध मे जौहर दिखाते हैं। इस युद्ध में राणा लक्ष्मण सिंह के सभी पुत्र, जिनमे अरि सिंह भी है, अमरत्व प्राप्त करते हैं। सबसे कनिष्ट अजय सिंह घायल होता है तो उसे सुरंग के मार्ग से केलवाड़े के सुरक्षित पहाड़ी दुर्ग मे भेज दिया जाता है। ज्ञात रहे अरि सिंह के पुत्र हम्मीर को बाद में अजय सिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठाता है। चित्तौड़ की इस लड़ाई में राजपूतो के जौहर-व्रत करने के पश्चात् अलाउद्दीन विजयी होता है पर उसे चित्तौड़गढ़ मे राख की ढेरी के अतिरिक्त कुछ नही मिलता। अलाउद्दीन पद्मिनी की खोज मे जब वहाँ उद्भ्रान्त है, तो उसे एक बुढ़िया मिलती है, वह बुढ़िया और कोई नहीं सिंहवाहिनी अष्टभुजा है। इस अलौकिक घटना से दिल्ली का बादशाह मूर्छित हो जाता है—उसे फिर दिल्ली लाया जाता है। इस कारुणिक हृदय-विदारक घटना से सभी अलाउद्दीन को धिक्कारते है, उसकी आत्मा भी उसे कोसती है। उस सम्राट के माथे पर कलंक का जो धब्बा लगा, वह इतिहास में आज तक मिट नहीं सका। हिन्दू-मुसलमान उसे घृणित और अमानवीय कहते है। इन्हीं रोंगटे खड़े करनेवाली घटनाओ का साक्ष्य है "जौहर" काव्य—हिन्दी की अमर रचना। यह काव्य २१ चिनगारियों (सर्गो) में विभक्त हैं, जिसमे १३२७ छन्द हैं।

श्री श्यामनारायण पाण्डेय ने अपने इस काव्य मे इतिहास की एक नई सूचना और दी है, जिसका उल्लेख 'अग्निकण' के पृष्ठ १३ पर इस प्रकार है—"बप्पा रावल से बीसवीं पीढ़ी में रण सिंह नाम के एक बहुत पराक्रमी राजा हो गये हैं। उनसे रावल और राणा नाम की दो शाखायें फूटीं। रावल वंशीय रतन सिंह चित्तौड़ के अन्तिम शासक थे और राणा शाखा वाले सीसोदे की जागीर पाकर वहाँ राज करते थे। वहाँ के अधिपति लक्ष्मण सिंह, रावल रतन सिंह से दूध-पानी की तरह मिले थे, अलाउद्दीन से दोनों मिलकर लड़ रहे थे, दोनों के जनबल से चित्तौड़ की रक्षा की जा रही थी।"

किन्तु टॉड ने 'राजस्थान' में लिखा है—"सम्वत् १३३१ (सन् १२७५ ई०) मे लक्ष्मण सिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। उस समय उसकी अवस्था छोटी थी। इसलिए उसके चाचा भीम सिंह ने उसके संरक्षण का काम किया और शासन का उत्तराधिकार अपने हाथो में रखा। राणा भीमसिंह ने सिंहलद्वीप के निवासी चौहानवंशी हमीरशंख की लड़की पद्मिनी के साथ विवाह किया था। पद्मिनी अपने रूपलावण्य के लिए बहुत प्रसिद्ध थी और उसके सौन्दर्य की प्रशंसा बहुत दूर-दूर तक फैली हुई थी। राणा भीमसिंह के शासनकाल में अलाउद्दीन ने अपनी तातार सेना लेकर पद्मिनी को पाने के लिए चित्तौड़ पर आक्रमण किया। (टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास, अनुवादक, केशवकुमार ठाकुर, पन्द्रहवाँ परिच्छेद, पृ० १४६)

वंगला भाषा के कवि रंगलाल ने टॉड के ग्रन्थ के आधार पर ही 'पद्मिनी उपाख्यान' की रचना की है—इसलिए रतन सिंह के स्थान पर उन्होंने भीम सिंह नाम का इस्तेमाल किया है। यह स्वाभाविक है कि १८५८ ई० और १९४४ ई० के कालखण्ड में इतिहास के कई नये तथ्य सामने आ गए थे। फिर भी १८५८ ई० के रंगलाल और १९४४ ई० के श्यामनारायण के काव्यों मे यथा "पद्मिनी उपाख्यान" और "जौहर" में कई समानताएँ हैं।

प्रो० सुधीन्द्र का "जौहर" काव्य

वड़ी ही दिलचस्प और संयोग की वात है कि इसी समय राजस्थान के वनस्थली विद्यापीठ के प्राध्यापक प्रो० सुधीन्द्र का काव्य 'जौहर' खड़ी वोली हिन्दी में सम्वत २००० में विद्या मन्दिर लि०, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। तिथि के अनुसार यह कृति श्यामनारायण पाण्डेय के 'जौहर' से एक वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई है। पुस्तक की भूमिका में प्रो० सुधीन्द्र ने अपनी मानसिक पीड़ा को व्यक्त किया है। असल में यह समय स्वातन्त्र्य-संग्राम के चरमोत्कर्ष का था। दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था—१९४२ ई० में प्रो० सुधीन्द्र का 'जौहर' काव्य प्रकाशित हुआ। भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम मे महात्मा गाँधी की विशेष भूमिका थी। उनके विचार देश मे प्रचारित थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता में गाँधीजी के प्रयास चल रहे थे। ऐसी स्थिति में प्रो० सुधीन्द्र को कई वाधाओं का मुकावला कर अपना काव्य प्रकाशित करना पड़ा। यहाँ प्रस्तुत है उन्ही के शब्दो मे उनकी व्यथा-कथा—

"जौहर' मेरी सर्वप्रथम प्रकाशित कृति "शंखनाद" की समकालीन रचना है। 'प्रलय-पुस्तक-माला' द्वारा 'शंखनाद' के पीछे ही प्रकाशित होनेवाली थी भी; किन्तु आज (पूरे ६ वर्ष बाद) प्रकाशित हो रही है।" (भूमिका में प्रो० सुधीन्द्र के विचार, 'जौहर' पृ० ४)

कवि की व्यथा-कथा

"जौहर' की कथा भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि आज देशवासी अपने इतिहास तक को प्रस्तुत करने में झिझकते हैं। महात्मा गाँधी ने जव भूषण की 'शिवावावनी' को भारत के राष्ट्रीय वातावरण में हिंसा का विष फैलानेवाली कृति घोषित करके उसे विद्यालयों के पाठ्यक्रमों से निर्वासित करा दिया, तव से अनेक क्षेत्रों में उसकी गूँज फैली और उसीका प्रभाव था कि जव 'जौहर' के प्रकाशन की वात श्रद्धेय पंडित हरिभाऊ उपाध्याय से छिड़ी, तो उन्होंने इसके प्रकाशन को युग-विरोधी और असमीचीन वताया। उन्हें लगा कि इसके प्रकाशन से भारतीय अहिंसा

को, राष्ट्रीय-आत्मा को आघात पहुँचेगा। उनके मत से अहिंसा में 'जौहर' में वर्णित युद्ध को कोई स्थान नहीं था।" ('जौहर' काव्य की भूमिका, पृ० ४)

आश्चर्य इस बात का है कि गाँधीजी की अहिंसा तो वीरों की, सत्-पुरुषों की अहिंसा थी और हरिभाऊ जी ने बापू की आत्मकथा हिन्दी में लिख कर इस सत्य को उजागर किया है। स्वयं गाँधी जी ने प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजों को साथ देने के लिए उत्साहित किया था। फिर 'जौहर' का युद्ध तो धर्म-युद्ध था, सत् और असत् का युद्ध था जैसे राम-रावण का। मध्यकाल के हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में जहाँ पठानों, मुगलों की सेना में हिन्दू थे—वही राजपूतों के साथ मुस्लिम भी थे। रणथम्भौर के हठी हम्मीर ने मीर महिम के लिए अलाउद्दीन से प्राणों की बाजी लगा दी शरणागत की रक्षा में। यही भारतीय धर्म रहा है। श्यामनारायण पाण्डेय के 'जौहर' काव्य में भीलों द्वारा राजा मानसिंह को बन्दी बनाये जाने पर, राणा प्रताप ने हल्दीघाटी-युद्ध के पूर्व उसे ससम्मान मुक्त कराकर अपनी अहिंसा-वीरता का परिचय दिया था। इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद के 'महाराणा का महत्व' काव्य में राणा के पुत्र अमर सिंह द्वारा रहीम खानखाना की बेगम को बन्दी बनाये जाने पर प्रताप ने पुत्र की भर्त्सना ही नहीं की, बेगम को नारी-सम्मान के साथ खानखाना के हरम में भिजवा दिया। राणा प्रताप की सेना में तोप चलानेवाले मुसलमान वीर थे। तब ऐसे राजपूत-मुसलमान युद्धों को साम्प्रदायिक हिंसा का युद्ध कैसे कहा जा सकता है?

प्रो० सुधीन्द्र ने भूमिका में पृष्ठ ५ पर आगे लिखा भी है—"ऐतिहासिक आधार पर मैंने जौहर का एक रूपक प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इतिहास के तथ्यों को ओझल करने में असमर्थ होने के कारण मुझे यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष को लेकर चलना पड़ा है, किन्तु यह कौन नहीं जानता कि भारत-सम्राट अलाउद्दीन खिलजी और मेवाड़ नरेश राणा रत्न सिंह का वह युद्ध मुस्लिम-हिन्दू संघर्ष नहीं था। क्या सम्राट की सेना में सब मुसलमान ही थे? क्या उसमें हिन्दू न थे? एक दुर्जेय राज्य-लिप्सा और अदम्य विलास-लालसा, इस विग्रह के मूल में थी। फिर मेरे निकट तो हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का वही अर्थ है जो हिन्दू-हिन्दू या मुस्लिम-मुस्लिम संघर्ष का हो सकता है, मेरे लिए तो अलाउद्दीन-रत्न सिंह का यह संघर्ष कौरव-पाण्डवों के 'महाभारत' से कम न था।"

हेलन के लिए स्पार्टा और ट्राय का युद्ध हुआ और होमर ने 'इलियड' महाकाव्य की रचना की। सीता के लिए राम-रावण और द्रोपदी के लिए कौरव-पाण्डव-युद्ध

हुआ। मेवाड़ की कृष्णकुमारी के लिए मारवाड़ और जयपुर के राजाओं में संघर्ष हुआ और राजकुमारी को विषपान कराया गया।

युद्ध मानव का सनातन कर्म रहा है, शाश्वत धर्म हम चाहें न कहें। मनुष्य की यह उद्दाम पाशविक वृत्ति है, जो उसे मानव के उच्च शिखर से स्खलित कर दानव बना देती है। मनुष्य के इस दानव या असत् को सत् में रूपान्तरित करने के लिए वाल्मीकि की 'रामायण', व्यास का 'महाभारत', होमर का 'इल्यिड ओडेसी', वर्जिल का 'इनियड', फिरदौसी का 'शाहनामा', दाँते का 'दि डिवाइन कॉमेडी' और मिल्टन का 'पैराडाइज लॉस्ट' महाकाव्य लिखे गये, जो विश्व की श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियाँ समझी जाती हैं।

हमने किसी का राज्य छीना नहीं, किसी पर आक्रमण नही किया, किन्तु गुप्त-काल का स्वर्णिम इतिहास इस बात का साक्षी है कि जावा, सुमात्रा, इण्डोनेशिया तक भारत की विजय वैजयन्ती फहराई, जिसके भग्नावशेष आज भी मौजूद हैं—इसका निदर्शन वहाँ की साहित्य-संस्कृति में देखा-परखा जा सकता है। चन्द्रगुप्त ने शेल्यूकस की पुत्री से विवाह किया और बप्पा रावल ने ईरान मे विजय का डंका बजा कर बादशाह की पुत्री से विवाह किया। असल में बौद्ध-युग की अहिंसा से जहाँ विश्व को नया संदेश मिला, वहीं हम प्रवृत्ति-मार्ग से निवृत्ति-मार्ग की ओर अग्रसर हुए। आध्यात्मिक ग्रन्थि में जकड़ गए। शंकर के सिंहनाद से बौद्ध-धर्म यहाँ से बाहर चला गया। बीसवीं सदी मे गाँधी जी ने उसे नये नजरिये से पेश किया। उसकी ऐतिहासिक जरूरत थी, पर उन्होंने कायरो की अहिंसा का कभी पक्ष नहीं लिया। उनकी अहिंसा तो वीरों का बाना था।

आज गाँधीवाद को नए चश्मे से देखना होगा। क्या चीन के आक्रमण से हमने सबक नही लिया? जरूर लिया, तभी तो १९६५ ई० मे पैटन टैंकों की धज्जियाँ उड़ गई। आज जब पुनः पाकिस्तान का हमला हो, तो क्या हम हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहेंगे? युग के साथ मान्यतायें और सन्दर्भ बदल जाते हैं। १९६२ ई० में दिनकर को 'परशुराम की प्रतीक्षा' काव्य लिखना पड़ा और सारा देश वीरता की हुंकार से गरज उठा। उस समय लगता था शायद हिन्दी के वीरगाथा काल का पुनर्जागरण हो रहा है। आज भी 'जौहर' ऐसे वीर काव्यों की जरूरत है—राजस्थान के वीरो की आवश्यकता है, जिन्होने देश की एकता और आजादी के लिए प्राणोत्सर्ग किया। लक्ष्मी पुत्र ही 'दानी कर्ण' और 'वीर' ही सबसे बड़ा अहिंसक हो सकता है, जिसके पास कुछ है ही नहीं, वह क्या दान करे?—नंगी क्या धोये क्या निचोड़े?

प्रियमाण में हुँकार कहाँ से आये ? फलों से लदे वृक्ष ही नत होते हैं—नहीं तो 'पंछिन को छाया नहीं, फल लागे अति दूर' की कहावत चरितार्थ होगी। राष्ट्र और जाति जब सम्पन्न होती है, समृद्ध होती है, तो उससे उदारता फूट पड़ती है। प्रेमचन्द की 'आत्माराम' कहानी इसका प्रमाण है, जब आत्माराम सोनार को मोहरों से भरा कलश मिल जाता है तो वह धर्मात्मा और उदार ही नहीं लोगों की श्रद्धा का पात्र बन जाता है।

प्रो० सुधीन्द्र का 'जौहर' काव्य ६ ज्वाला (सर्गों) में विभक्त है। प्रथम ज्वाला में भारत सम्राट अलाउद्दीन खिलजी और मेवाड़ के महाराणा रत्न सिंह के विरोध की कथा है, जिसमे अलाउद्दीन पद्मिनी को पाने की कुचेष्टा करता है। द्वितीय ज्वाला मे अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण होता है। राणा रत्न सिंह वीरतापूर्वक राजपूत वीरो को संगठित कर स्वतन्त्रता और अस्मिता के लिए युद्ध करता है। कवि ने राणा की मानसिक उद्वेलक स्थिति का पृष्ठ ३७ पर इस प्रकार वर्णन किया है—

धधक रही थी रत्न सिंह के उर में जो प्रण की ज्वाला,
उठ-उठ ओठों पर आती थी उसकी लपटों की माला,
उसे हृदय का राग कहें या उसे आत्मसंगीत कहें ?
उसे मुक्ति का मर्म कहें या जीवन-धर्म पुनीत कहें !

राणा रत्न सिंह के वीर वाक्यों को निम्न गीत में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

किसे वरोगे वरवीरो !
स्वतंत्रता या परवशता का ग्रहण करोगे कर वीरो !
हो शूलों का मुकुट शीश पर ज्वाला की ही जयमाला,
तब स्वयंबरा स्वतंत्रता की पाओगे तुम वरमाला !
आत्माहुति की व्रतवेदी पर कालकूट पी तिक्त तुम्हें !
करना होगा उसे प्राण के अमृत से अभिषिक्त तुम्हें !
उससे आलिंगित होकर तो मरोगे न मर-मर वीरो।
किसे वरोगे वर वीरों ?

('जौहर', द्वितीय ज्वाला, पृ० ३७-३८)

रंगलाल का प्रभाव

इस गीत के भाव में रंगलाल के 'स्वाधीनता-हीनताय के बाँचिते चाय' की छाया को देखा जा सकता है। कवि रंगलाल के 'पद्मिनी उपाख्यान' में इसी प्रकार राणा

भीम सिंह राजपूतो को युद्ध के लिए उत्साहित करने के लिए 'स्वाधीनता-हीनता·····' का गीत गाता है।

तृतीय ज्वाला मे अलाउद्दीन का सन्धि-पत्र आता है और यह सोचकर दर्पण मे रानी पद्मिनी को दिखाया जाता है कि इसके वाद वह दिल्ली लौट जायगा। चतुर्थ ज्वाला मे दर्पण में पद्मिनी को दिखाया जाता है और पञ्चम ज्वाला में राणा रत्न सिंह को धूर्त अलाउद्दीन बन्दी बनाता है। षष्टम ज्वाला मे राणा मुक्त होते हैं और चित्तौड़ पर पुनः जब अलाउद्दीन की फौज का आक्रमण होता है तब 'जौहर व्रत' ही शेष कार्य रह जाता है। देखिए—

स्वतंत्रता के पुण्य चरण में और न जब उपहार बचा,
तब प्राणों की समिध जुटा कर 'जौहर' व्रत का यज्ञ रचा!
पहन लिया वीरों ने अपने तन पर केसरिया बाना!
गाने लगे उच्च स्वर से फिर अमल अमरता का गाना—

× × ×

(प्रयाण-गीत)

बढ़े चलो, लड़े चलो!
प्रशस्त पुण्य-पंथ में प्रदीप्त हो बढ़े चलो·····
रुको न मोह-जाल में समुद्र से गंभीर हो!
विपत्ति-वात-चक्र रोक लो कि शैल धीर हो!
अभेद्य अंधकार चीर दो कि भीम भानु हो!
अहो, अमित्र तूल जाल के लिए कृशानु हो!
प्रशस्त पुण्य·····

× × ×

अडोल शत्रु शैल हो! बनो प्रचण्ड वज्र-से!
मयंक-भानु से बनो कि शत्रु राहु क्या ग्रसे?
रहो न रंक धन्वियो! पड़े कलंक-पंक में
चढ़ो अशंक निष्कलंक स्वाभिमान-अंक में!
प्रशस्त पुण्य·····

+ + +

अजेय अप्रमेय हो, सुराभिनन्दनीय हो !
स्वधर्म ध्येय-श्रेय, कर्म प्रेय, वन्दनीय हो !
मलीन हो, विलीन हो न प्राण की पुनीतता !
खड़ी समक्ष ही तुम्हें बुला रही स्वतंत्रता !
प्रशस्त पुण्य पंथ में प्रदीप्त हो बढ़े चलो,
बढ़े चलो, लड़े चलो।

('जौहर' षष्ठ ज्वाला, पृ० ९८-१००)

जयशंकर प्रसाद की अनुकृति

इस 'प्रयाण गीत' पर जयशंकर प्रसाद के प्रयाण गीत का अनुकरण है जो 'चन्द्रगुप्त' नाटक में गाया गया है। यह गीत है—

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती—
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो ॥

कवि प्रो० सुधीन्द्र ने 'जौहर' काव्य में श्रद्धा से मलिक मुहम्मद 'जायसी' के 'पद्मावत' का वर्णन किया है। यद्यपि जायसी सूफी मुसलमान था, पर उसने भी रत्न सिंह और अलाउद्दीन के युद्ध का वर्णन किया है, भले ही उसमें सूफीमत के आध्यात्मिक पक्ष को रूपक देकर दिखाया गया है। देखिए कवि ने जायसी का किस प्रकार स्मरण किया है—

यही पद्मिनी है वह जिसका सौरभ था भू पर छाया,
जिसके लिए जायसी ने था अपना 'पद्मावत' गाया,
वह वागीश रहस्यभाव का प्रेम-पुजारी वह कविवर
गाकर जिसकी अमर कथा को कवि-जग में हो गया अमर !

('जौहर', बीज; पृ० १८)

कर्नल टॉड ने भी अपने इतिहास ग्रन्थ 'राजस्थान' में इस कथा का सुन्दर वर्णन किया है। अगर 'जौहर' का संघर्ष साम्प्रदायिक होता तो क्या एक मुसलमान कवि रानी पद्मिनी का यशोगान करता ? उसने तो पद्मिनी को साक्षात् 'ब्रह्म' का पर्याय बना दिया

और रत्नसेन को एक 'भक्त'। उसने "राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू।" लिखकर रूपक-पद मे अलाउद्दीन को 'माया' प्रतिपादित किया है।

सम्राट अलाउद्दीन रूपसी पद्मिनी को पाने में जब असमर्थ होता है तो सन्धि का प्रस्ताव मेवाड़ नरेश के पास भेजता है—कहता है "उस रूप के सागर को मैं केवल एक बार दर्पण के प्रतिविम्ब मे देखकर दिल्ली लौट जाऊँगा।" बहुत विचार-विमर्श के बाद उसे पद्ममिनी का चेहरा दर्पण मे दिखाया जाता है—

जो इस भव में रूप-सुरा है, वही खुदा की प्रेम-सुधा !
इसी प्रेम का वैभव पाकर, यह रमणीय बनी वसुधा !
यह जग का आसव आसव है ? नहीं प्रेम उन्माद यही !
यह जग की उल्फत उल्फत क्या ? इश्क खुदा का स्वाद यही !
तो क्या अपने स्वर्ण महल में दोगे वह सुन्दर अवसर ?
होगा प्रेम-मिलन अपना भी, और रूप-दर्शन जी भर,
देख सकूँ यदि एक पलक भर वह मानवी रूप-देवी,
प्रायश्चित करूँ पापों का, जीवन हो मानव-सेवी।

('जौहर' चौथी ज्वाला, पृ० ४६-४७)

कपटी बादशाह ने 'प्रेम-मिलन' का वास्ता दिया, प्रायश्चित करने की प्रतिज्ञा की और छल-बल से रत्न सिंह को बन्दी बना लिया। दुष्टों को दुष्टता से जवाब दिया जाता है और इसी कारण सात सौ डोलियों मे पद्मिनी के अलाउद्दीन के हरम मे जाने की बात कही गई। डोलियों में वीर राजपूत गए और कहारों के वेष मे रणबाँकुरे। गोरा-बादल ने वीरता दिखा कर राणा रत्न सिंह का उद्धार किया। देखिए अलाउद्दीन ने किस छल से राणा को बन्दी बनाया था—

ज्यों ही दुर्ग-द्वार पर आये रत्न बंधे अरि के छल में !
सहसा ही फिर गये वहाँ पर छिपे हुए शाही दल में !
बंधी विपक्षो की बाहों में काया वह पावनप्राणा !
अपने ही सम्राट-अतिथि के बन्दी बने महाराणा !

(वही, पृ० ७०)

ऐसे प्रवंचक बादशाह को क्या कहा जाय—उसके युद्ध को क्या कहा जाय ? क्या यह सत् के लिए, न्याय के लिए धर्म-विग्रह नहीं था ? ऐसे भावों को लेकर प्रो० सुधीन्द्र ने गांधी-युग मे अपनी 'जौहर' रचना का बाधा-विपत्तियों के बीच प्रणयन और प्रकाशन किया। आपने सम्पूर्ण कथा को ६ ज्वालाओं में विभक्त किया है—प्रथम

ज्वाला में कथा का बीज है, दूसरी मे संघर्ष, तीसरी में सन्धि, चौथी में दर्शन, पाँचवीं में राणा का प्रत्यावर्तन और षष्ठ ज्वाला मे उत्सर्ग अर्थात 'जौहर-व्रत' का पालन। कवि की यह काव्य-कृति इतिहास की सच्चाई का एक सशक्त निदर्शन है, जिसमे राष्ट्र-प्रेम और मानव-प्रेम के गीत गाये गए हैं—साम्प्रदायिक सद्भावना को पुष्ट किया गया है। कवि प्रो० सत्येन्द्र ने 'शंखनाद', 'मेरे गीत', 'प्रलय वीणा', 'अमृत लेखा' आदि कृतियो का सृजन किया है और अपने 'जौहर' काव्य को राजस्थान की जीवन-ज्योति वनस्थली विद्यापीठ की वीर बालिकाओ को समर्पित किया है। भाषा मे प्रसाद जी के समान तत्सम शब्दों की बहुलता है और भावों में गम्भीरता।

राजस्थानी भाषा में पद्मिनी पर रचनाएं

प्रो० सुधीन्द्र के 'जौहर' काव्य के पश्चात् स्वातन्त्रोत्तर काल मे पद्मिनी के चरित्र को लेकर राजस्थानी भाषा में कई रचनाएँ प्रकाश मे आई। इनमें प्रसिद्ध हैं—कवि डॉ० मनोहर शर्मा की 'पद्मिनी' एवं कवि किशोर कल्पनाकान्त की 'पद्मणी'

मनोहर शर्मा ने 'अरावली की आत्मा' काव्य-संकलन (१६४७ ई०) में 'पद्मिनी' शीर्षक राजस्थानी कविता मे अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—

चर आयो संवाद ले, और न कोई आस।
ललना कुल की लाज अब, जौहर व्रत कै पास ॥१॥
वा वीरां की सेन अब, ई धरती पर नांय।
सार दियो ना सिर दियो, रण खेता हरखाय ॥२॥

('अरावली की आत्मा', पृ० ३६)

सतीत्व रक्षा के लिए राजस्थान की ललनाओ ने जौहर-व्रत का पालन किया है और रानी पद्मिनी के लिए भी यही पथ शेष था। राजस्थान के वीरो ने भी युद्ध क्षेत्र मे मस्तक दे दिया, पर अपनी अस्मिता पर आँच नहीं आने दी।

रानी पद्मिनी के साथ राजस्थान की सतियाँ चिता पर आरूढ़ होने के लिए इस प्रकार चली मानो सूर्य की किरणें अस्ताचल की ओर चली—

सतियाँ सत सूँ ऊजली, चाली आज चितांह।
सूरज की किरणाँ चली, ज्यूँ अस्ताचल छांह ॥ १७ ॥

(वही पृ० ३८)

सतियो के सत से अनेक चिताएँ धक्-धक् जलने लगी। इन वीरांगनाओं के सत् से एक विशेष ज्योति जगमगा गई। ऐसी वीर नारियाँ धन्य हैं—जिन्होंने प्राण दिए पर सतीत्व नहीं गंवाया—

सतियाँ कै सत सूं जली धक धक चिता अनेक।
सतियाँ कै सत में मिली, धन धन जोत वसेक ॥ ३३ ॥ (वही पृ० ३६)

कवि मनोहर शर्मा ने पद्‌मिनी के साथ स्पार्टा और कार्थेज की वीर ललनाओ को नमन किया है और कहा है कि सत्य की धारा बड़ी बलवती है। इसे देश, काल और जाति की सीमाओ के बन्धन मे बांध कर नही रखा जा सकता। इन्ही पद्‌मिनी सरीखी वीर ललनाओ से राजस्थान गौरवान्वित है—

थाकी वच्यो न आज दिन, भू पर एक निसान।
स्पार्टा की ललना सदा, पण जग में द्युतिमान ॥३४॥
थाकी वच्यो न आज दिन, भू पर एक निसान।
पण ललना करथेज की, जगती में छविमान ॥३५॥
सत की धारा जोर की, बड़ मिनखां रा काम।
देश काल अर जात का, बाध न लागै त्याम ॥३६॥
(वही पृ० ४१)

इस प्रकार कवि ने ओज-प्रसादमयी भाषा मे 'पद्‌मिनी' के जौहर-व्रत का वर्णन किया है। कवि कहता है कि चाहे इतिहास और राज-समाज न रहे, पर वीरांगना पद्‌मिनी के जौहर का गुणगान सदा-सर्वदा इस मरुधरा में होता रहेगा—

ख्यात रहो या ना रहो, रहो न राज समाज।
पण जौहर कै त्याग को, सदा सुरंगो साज ॥३६॥
जय दुर्गा जय सारदा, जय लक्ष्मी रति धन्य।
जय जय राणी पदमणी, राजस्थान अनन्य ॥४०॥
(वही पृ० ४१)

कवि किशोर कल्पनाकान्त की 'पदमणी' काव्य-कृति

राजस्थानी भाषा के बहु चर्चित कवि श्री किशोर कल्पनाकान्त ने राजस्थानी मे कई गीत और काव्य-कृतियो की रचना की है। आपने रतनगढ़ से राजस्थानी भाषा मे 'ओळमों' नाम से लम्बे समय तक मासिक-पाक्षिक पत्र का प्रकाशन कर साहित्य-सृजन का कार्य किया है। किशोर जी ने रवीन्द्र शताब्दी (१९६२ ई०) वर्ष मे रवीन्द्रनाथ के 'नष्टनीड़' कथा-साहित्य का राजस्थानी मे अनुवाद प्रस्तुत कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। ऐसी कृतियो से भावनात्मक, सांस्कृतिक-साहित्यिक एकता का मार्ग काफी हद तक प्रशस्त हुआ है। कवि ने कालिदास के 'ऋतु-संहार' का भी राजस्थानी मे गीतान्तरण किया है। आपने श्री एल० एन० बिरला की अंग्रेजी

औपन्यासिक कृति 'कर्स ऑफ पद्मिनी' (पद्मिनी का शाप) का राजस्थानी में १९७३ ई० में अनुवाद किया है। सम्प्रति (१९८७-८८ ई०) कवि किशोर कल्पनाकान्त के 'केनोपनिषद' के राजस्थानी गीतान्तरण का धारावाहिक प्रकाशन दैनिक 'राजस्थान पत्रिका' में हुआ है, जिसकी साहित्य-जगत मे विशेष चर्चा है। उल्लेखनीय है कि कलकत्ता के साहित्य प्रेमी श्री रामअवतार सराफ के सौजन्य से हमें किशोर जी की 'पदमणी' काव्य-रचना की पाण्डुलिपि के अवलोकन का अवसर मिला। अन्त साक्ष्य के अनुसार कवि ने इसकी रचना पांचवें दशक में की थी।

किशोर कल्पनाकान्त की 'पदमणी' में कई नई उद्भावनाओं का प्रकाशन हुआ है तथा राजस्थान की वीर बाला के ममतापूर्ण भावपक्ष का सरस भाषा मे उद्घाटन हुआ है। असल मे 'पदमणी' कवि की लम्बी कविता है, जिसमें दिल्ली सम्राट अलाउद्दीन खिलजी की कुत्सित रूपलिप्सा तथा उसके चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण का वर्णन है। किस प्रकार राजपूत वीरो ने अपनी स्वतन्त्रता और नारी-जाति की अस्मिता की रक्षा के लिए प्राणो का पण लगाकर भीषण युद्ध किया—इसका ओजस्वी भाषा मे वखान है। 'पदमणी' कविता का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

आ वीरभोम वीरां री है, कणकण में जस रा गाणा है।
रजवट, रजपूती, सूरापै रा धणी, जठै म्हाराणा है॥
इण धरती नै सौवार निवण, उण वीरां रो जस गावूं हूँ।
सतियाँ रै सत आगै लुल्लुल, सरधा रा पैप चढ़ावूं हूँ।

पद्मिनी की सुन्दरता का वर्णन कवि के शब्दो में सुनिए—

अेकर आभै रो चंदरमा, इण धरती पर औतार लियो।
उतर्यायो सोलूं-कला लियां, निज रूप नार रो धार लियो॥
आ धरती है रमणीक इसी, मन अठै चाँद रो रमग्यो है।
कुण जाणै के कमतर खातर, इण धरती उपरा थमग्यो है॥
मुख ओज-तेज सूं दीपै है, सत-पाण रूप पग रोपै है।
सिणगार, मान-मुरजादां रो 'पदमणी' नांव सूं ओपै है॥
मेवाड़राज री रानी है, सुन्दरता में पटराणी है।
वा गढ़चित्तौड़-धिराणी है, रजपूतण है, क्षत्राणी है॥

('पदमणी', पृ० ६-७)

ऐसी रूपवती 'पद्मिनी' को बलात् अपने हरम में ले जाने के लिए अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण होता है—

"मेवाड़ खोस ल्यो राणा रो, रजपूतां सूं घमसाण लड़ो"।
दिल्लीपत रो फुरमाण हुयो—'पूरी ताकत रै पाण लड़ो'॥
दिल्ली सूं सेन्या सज चाली, मेवाडां सूं भिड़ जावणनै।
चित्तौड़ फते कर आवणनै, पदमण नै दिल्ली ल्यावणनै॥
सुणियो जद खिलजी चढ़ आयो, रजपूती रगत उबल आयो।
नस-नस में वीर-चांकड़ां रै धरती रो हेत प्रवल आयो॥
दिल्लीपत री सेन्या सूं झट, नर-नाहर भिड़ग्या मेवाड़ी।
रण में, जम सूं जम खेलगियां, वै जब्बर-जोधा मेवाड़ी॥
(वही, पृ० ८)

घमासान युद्ध हुआ। राजपूतों की वीरता के सामने अलाउद्दीन की सेना गाजर-मूली की भाँति कटने लगी। दिल्ली के बादशाह को ऐसी वीरता का गुमान नहीं था। उसने राणा को सन्धि का पत्र लिखा और कहला भेजा कि उसे तो सिर्फ पद्मिनी चाहिए। अतः तत्काल युद्ध बन्द कर पद्मिनी उसके हवाले कर दी जाय। इस पत्र ने मेवाड़ियों की वीरता को पुनः ललकार दिया और वे दूने जोश से प्राणोत्सर्ग करने पर उतारू हो गए। अन्त मे उलाउद्दीन ने रानी पद्मिनी के सौंदर्य को देखकर दिल्ली लौट जाने का प्रस्ताव राणाजी के सामने प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव पर दरबार में विचार-विमर्श हुआ। रानी पद्मिनी ने इस विषय पर राणा के समक्ष अपने ममतापूर्ण विचार व्यक्त किए। कवि ने लिखा है कि पद्मिनी केवल रूप की अधिकारिणी ही नहीं थी—उसमें मातृत्व का स्रोत भी प्रवाहित था। अतः उसने व्यर्थ मे वीरों के रक्त-प्रवाह का वर्जन किया और अपनी छवि को दर्पण मे दिखाने का प्रस्ताव किया—

वा कोरी रूप-मंगेजण नी, गुण री भी घणी गुमानण है।
वा मोल मानखै रो जाणै, उणरा दोनू-पख च्यानण है॥
वा तन सूं-ई उजियागर नी, मन री भी रूप रूपालो है।
उणरै हिरदै में नारी री, ममता रो खड्यो हिंवालो है॥

× × ×

वा मन में जुगत विचारै यूं, सांपरत दरस तो ठीक नहीं।
पण रूप दिखायां दरपण में, तूटैला कुल री रीत नहीं॥
(वही पृ० १३)

कवि रंगलाल ने भी दर्पण में रूप-सौंदर्य दिखाने की बात 'पद्मिनी उपाख्यान' मे रानी पद्मिनी के मुख से ही कहलवाई है। अस्तु, दर्पण में रानी का बिम्ब दिखाया

ता है। किन्तु इस घटना में कवि किशोर जी ने अद्भुत चमत्कार का संयोजन किया । जब दर्पण में पद्मिनी का सौंदर्य प्रतिभासित होता है, तो उस रूप-मार्तण्ड के लत प्रकाश मे अलाउद्दीन की आँखें चौंधिया जाती हैं और वह ज्ञान-शून्य हो अचेत-सा जाता है—

अर अेक अणोपम-बीजल-सी, दरपण रै उपरां पलक उठी।
सूरज री किरण सरीखी बा, तीखी तीखी सी झलक उठी॥
तप-तेज सकल त्रिभुवण रो वो दरपण उपरां दीपण लाग्यो।
पूरब में जाणै सूरजजी, अंगड़ायी ले ऊगण लाग्यो॥
वा रूप-किरण अत-अणियारी, आंख्यां रै मांय गडण लागी।
खिलजी रै माथै में जाणै, भांगड़ली जोर चढ़ण लागी॥
आंख्यां में अंधियारो छायो, जाणै दीवड़लो निंदग्यो है।
धड़कण अेकरसी थमगी है, कालजियो जाणै बिंधग्यो है॥
(वही पृ० १६)

इस प्रकार कवि किशोर कल्पनाकान्त ने 'पदमणी' में नई कल्पना-शक्ति का मत्कार दिखाया है। खेद है, कवि की यह काव्य कृति अधूरी और अप्रकाशित है। र्पण में पद्मिनी के सौंदर्य की झलक देखकर जब दिल्ली का बादशाह लौटता है तो ौजन्यतावश राणा उसे गढ़ के दरवाजे तक विदा करने आते हैं और वहीं अलाउद्दीन के शारे पर यवन सेना राणा को बन्दी बना लेती है। इसके पश्चात किस भाँति गोरा-ादल ने राणा को बन्दीगृह से मुक्त किया और पुनः अलाउद्दीन के चित्तौड़-आक्रमण के मय राजपूतों ने अपना शोणित बहाया तथा पद्मिनी और वीरांगनाओं ने किस भाँति ौहर व्रत का पालन किया—इन सब घटनाओं का 'पदमणी' में वर्णन नहीं है। इस ष्टि से रचना अधूरी सी लगती है। आश्चर्य इस बात का भी है कि किशोर जी ऐसे ाजस्थानी के समर्थ कवि की यह प्रभावशाली रचना अभी तक मुद्रित नहीं हुई है जबकि नेक कवि-सम्मेलनों में यह रचना बार-बार आग्रह के साथ पढ़ी गई है।

रंगलाल का 'कर्मदेवी' काव्य

सुनो हे पथिकवर ! सांग होलो अतःपर मनोहर पद्मिनी उपाख्यान।
जदि आर थाके क्षुधा, जोगाइबो काव्य-सुधा, एईरूप हृदे धरि ध्यान॥

कवि रंगलाल वन्दोपाध्याय ने 'कर्मदेवी' काव्य की भूमिका मे 'पद्मिनी उपाख्यान' की उक्त अन्तिम पंक्तियों का उल्लेख कर कहा है कि अब इस काव्य का प्रकाशन हो जाने से मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। 'कर्मदेवी' काव्य का प्रकाशन ३० आषाढ़, १२६६ बंगाब्द (१८६२ ई०) को कलकत्ता में हुआ। इस काव्य-पुस्तक के मुख-पृष्ठ पर छपा है—'राजस्थान की सती का छन्दोबद्ध काव्य।'

जब रंगलाल का दूसरा समाख्यान काव्य 'कर्मदेवी' प्रकाश मे आया तब तक माइकेल मधुसूदन दत्त के दो अंग्रेजी काव्य-ग्रन्थ अतुकान्त छन्दो मे आ चुके थे। किन्तु 'पद्मिनी उपाख्यान' के प्रकाशन तक माइकेल की कोई कृति बंगला मे नही आई थी। रंगलाल के परवर्ती काव्यों पर माइकेल का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नही होता, सिवाय इसके कि उन्होने दूसरे काव्य 'कर्मदेवी' को सर्गबद्ध कर दिया है। 'कर्मदेवी' काव्य राजेन्द्रलाल मित्र को उत्सर्ग किया गया है। 'कर्मदेवी' की कथावस्तु भी टॉड के 'राजस्थान' से ली गई है। जैसलमेर के अन्तर्गत पूंगल प्रदेश के भट्टि-जाति के अधिपति पुलंगदेव के पुत्र साधू को इसमे नायक बनाया गया है। साधू जिस प्रकार साहसी वीर था, उसी तरह देश-प्रेमी भी था। 'पद्मिनी उपाख्यान' मे जिस प्रकार राजपूत रमणी का वीरोचित चित्रण किया गया है, तदनुरूप 'कर्मदेवी' काव्य में, कर्मदेवी को नायिका का दर्जा देकर उसके नाम पर ही काव्य का नामकरण किया गया है।

कवि रंगलाल वन्दोपाध्याय ने 'कर्मदेवी' काव्य की भूमिका मे आगे लिखा है—"जिस लक्ष्य को दृष्टि में रख कर मैंने 'पद्मिनी उपाख्यान' की रचना की थी, वह श्रम व्यर्थ नहीं गया। कदाचित् यह पद्मिनी का ही प्रभाव है कि पिछले वर्ष वंग भाषा में विमलानन्द दायिनी कविताओं का प्रकाशन हुआ है। इससे लगता है कि लोगो में देश की भाषा और देश-प्रेम के प्रति अनुराग बढ़ा है। अंग्रेजी शिक्षा के इस जमाने में अगर लोग कुरुचिपूर्ण साहित्य से विरत होकर सत्-साहित्य की ओर आकर्षित हो रहे हैं, तो इससे बड़े आनन्द की और क्या बात हो सकती है ? जो लोग अब तक अंग्रेजी मे कविता करते थे, वे भी देशीय भाषा के प्रति अनुरक्त हो रहे हैं—यह भी प्रसन्नता की बात है।" यहाँ उल्लेखनीय है कि रंगलाल का यह इशारा माइकेल मधुसूदन दत्त की ओर था, जिन्होंने अंग्रेजी भाषा मे काव्य रचना से साहित्य सृजन का कार्य आरम्भ किया था,

'पद्मिनी उपाख्यान' की प्रसिद्धि से प्रभावित और अनुप्रेरित होकर माइकेल ने बंगला भाषा में 'शर्मिष्ठा' (१८५९ ई०), 'पद्मावती' (१८६० ई०) और 'कृष्णकुमारी' (१८६१ ई०) नाटक लिखे।

'कर्मदेवी' काव्य की सूचना (प्रस्तावना) में भी हमें वही ब्राह्मण और पथिक बातचीत करते हुए मिलते है। द्विज के मुख से 'पद्मिनी उपाख्यान' की कथा को सुन कर पथिक आत्मविभोर हो गया। फिर दोनों ने सरोवर में हाथ-मुँह धोया और पथिक ब्राह्मण के साथ उसके आश्रम में चला आया। गोधूलि बेला के समय गायें चरागाह से घरों को लौट रही थीं—ऐसे समय में पथिक ने द्विज से प्रश्न किया—'मरुदेश (राजस्थान का मरु प्रदेश) में एक रम्य सरोवर है, जिसका नाम 'कर्म-सरोवर' क्यों पड़ा और उसकी कथा क्या है ?' द्विज ने कर्मदेवी का नाम सुना तो उसकी आँखों से सती कर्मा के स्मरण से अश्रुधारा बह चली। फिर आश्वस्त होकर उसने 'कर्म-सरोवर' की कथा आरम्भ की—

जिज्ञासेन पथिक—"बोलो हे कृपाकर !
मरुदेशे आछे एक रम्य सरोवर,
कर्म-सरोवर नाम पुण्य तीर्थस्थल—

× × ×

शुनि कर्मदेवी नाम, भूदेव नयने,
गजमुक्ताकार अश्रु उदय सघने—

× × ×

"शुनिवे कि हे सुजन, कर्मदेवी कथा ?
विवरिवो अनुपूर्व श्रुत आछे यथा।
सतीत्व-साध्वीत्व गुणे वरणीय अति,
पद्मिनीर समतुल्य होन सेई सती।
अद्यापि ताँहार गुन एई राजस्थाने
गृहे गृहे गीत होय, सारंगीर ताने

('कर्मदेवी' काव्य, सूचना, पृ० १७५-७६)

सती कर्मदेवी की कथा राजस्थान की लोकभाषाओं में चारण-ढोली सारंगी पर आज भी बड़ी तन्मयता से गाते हैं। द्विज (चारण) ने भी अपनी सारंगी लाने का आदेश दिया, जो कई दिनों से मूक होकर खूँटी में टँगी हुई थी। फिर द्विज ने सारंगी पर सप्पाराग में 'कर्मदेवी' की कथा आरम्भ की—

आन रे मधुर यंत्र सारंगी आमार,
बहुदिन करि नाई आलाप ताहार।
बहुदिन नागदंते झूलानो रयेछे,
यंत्रि-अनादरे यंत्र अतंत्र हयेछे।"
आज्ञामात्र सारंग जोगाय परिचर,
मिलाये मूर्च्छना मार्ग, द्विज गुणाकर
आरंभिला संध्यारागे कर्मदेवी-कथा।
प्रदोपेते पद्मकोले भृंगनाद यथा॥

('कर्मदेवी' काव्य, सूचना, पृ० १७६)

अपने प्रथम काव्य-ग्रन्थ 'पद्मिनी-उपाख्यान' की प्रसिद्धि से अनुप्रेरित होकर रंगलाल ने राजपूत बाला कर्मदेवी की कथा को चुना और टॉड का अनुसरण किया। महात्मा टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ में इस कथा को इस प्रकार लिखा है—

"I will conclude with one displaying the romantic chivalry of the Rajpoot, and the influence of the fair in the formation of character, it is taken from the annals of Jessulmer, the most remote of the states of Rajasthan, and situated in the heart of the desert, of which it is an oasis" (Annals and Antiquities of Rajasthan, By James Tod, Vol. I, Chapter XXIII, Page 498).

'कर्मदेवी' का कथानक

महामना टॉड ने कर्मदेवी की जिस कथा का उल्लेख किया है, उसीको रंगलाल ने अपने काव्य में चार सर्गों मे लिपिबद्ध किया है। इस वीरोचित आख्यान मे जहाँ नायक साधू (शार्दूल सिंह) की वीरता का ओजस्वी भाषा मे वर्णन हुआ है, उसी प्रकार वीर रमणी कर्मदेवी (कोड़मदे) की साहसिकता, वीरता, धीरता और आत्म-त्याग का हृदयग्राही वर्णन हुआ है। कथा में रोमांस का गहरा पुट है और रोमांचकता भी साथ-साथ पाठक के मानस को उद्वेलित करती रहती है। उल्लेखनीय है कि कर्मदेवी के पाणिग्रहण के लिए पूर्व मे ही उसके वाग्दान की बात मंदौर के राठौर अरण्यकमल (अरड़कमल) के साथ तय हो चुकी थी। पर वीर रमणी साधू की असीम वीरता पर मुग्ध थी और उसे ही अपना पति बनाना चाहती थी। स्वाभाविक है कि कथा में कवि रंगलाल को रोमांस का स्थल मिला और उन्होने उसे अपनी कल्पना-शक्ति से रूमानियत दी।

जैसलमेर के अन्तर्गत पूंगल राज्य का अधिपति रणंगदेव था। उसका पुत्र साधू था,

जो सम्पूर्ण मरूभूमि में अपनी साहसिक वीरता से भय का कारण बना हुआ था। एक बार साधू वीरता का पराक्रम दिखाता हुआ अरिन्तनगर मे पहुँचा। अरिन्त मे १४४० खण्ड के ग्रामों का अधीश्वर मोहिल जाति का सामंत माणिकराव शासन करता था। माणिक राव ने साधू के आगमन का समाचार सुनते ही उसे बड़े सम्मान से बुला भेजा। अरिन्त में साधू का यथेष्ट स्वागत-सत्कार हुआ। माणिकराव की एक सुन्दरी कन्या थी कर्मदेवी। उसने साधू की वीरता की कहानियाँ सुन रखी थी। साधू के समान उस समय वैसा मरूभूमि मे दूसरा कोई अश्वारोही नही था। ऐसे वीरश्रेष्ठ साधू को महल मे अपने नेत्रों से देखकर कर्मदेवी उसके प्रति आसक्त हो गई। उसने मदौर के राज्य-सिंहासन की कामना का परित्याग कर दिया। यद्यपि मंदौर के राजकुमार अरण्यकमल के साथ उसके विवाह की बात पक्की हो चुकी थी। फिर भी कर्मदेवी ने साधू को पति के रूप मे वरण करने का संकल्प किया। माणिकराव को कन्या के संकल्प की बात से बड़ा दुःख हुआ। उसे राजकुमार अरण्यकमल का भय था, किन्तु पुत्री की जिद् के सामने उसे झुकना पड़ा और साधू से विवाह का प्रस्ताव करना पड़ा। साधू ने कहा कि विवाह का नारियल यथारीति पूंगल भेजने से वह सहर्ष कर्मदेवी का पाणिग्रहण करेगा। अन्ततः सगाई के शगुन के रूप में नारियल भेजा गया और साधू तथा कर्मदेवी का विवाह सम्पन्न हुआ।

इधर मन्दौर के युवराज को जब अपनी मंगेतर के विवाह का समाचार मिला तो वह आगबबूला हो गया। वह सेना लेकर साधू से युद्ध करने के लिए आ पहुँचा। माणिक राव ने अपने जामाता और पुत्री को निर्विघ्न पूंगल लौट जाने के लिए चार हजार सैनिक साथ दिए, लेकिन साधू ने सिर्फ पचास सैनिको को साथ मे लिया और कहा कि उसके साथ जो भट्ट वीरो की सेना है, वही पर्याप्त है। इस प्रकार प्रबल पराक्रमशाली साधू अपनी नव-विवाहिता पत्नी और सेना को लेकर चल पड़ा। जब साधू चन्दन नामक स्थान मे विश्राम कर रहा था, तभी अरण्यकमल की सेना वहाँ आ पहुँची। दोनो सेनाओ मे घोर युद्ध होने लगा। साधू और अरण्यकमल ने एक-दूसरे पर बरछे से आक्रमण किया। साधू का बरछा अरण्यकमल के गले को भेद कर निकल गया, पर अरण्यकमल के बरछे से साधू का मस्तक ही धड़ से अलग हो गया और वह मारा गया।

साधू की वीरगति का सम्वाद सुनकर कर्मदेवी ने पति का अनुगमन करने के लिए हाथ मे साधू की तलवार ले ली। कर्मदेवी ने तलवार से पहले अपनी बायीं भुजा को काटा और कहा—"यह भुजा मैं अपने प्राणेश्वर के पिता के चरणों मे भेजती हूँ। उनसे जाकर कहना कि "आपकी पुत्री ने स्वयं भुजा काटकर भेजी है।" कर्मदेवी ने अपनी दाहिनी भुजा को काटने की आज्ञा दी और कहा—"यह मेरी भुजा विवाह का कंगण पहने हुए है' जिसे मैं मोहीलियों के कविश्रेष्ठ को उपहार स्वरूप भेज रही हूँ।"

तदुपरान्त चिता बनाई गई और कर्मदेवी ने मृत पति के शव को गोद में लेकर आत्माहुति दी। चारों ओर राजपूत वीरबाला कर्मदेवी सती की जय-जयकार से दिशाएँ गूँज उठीं। कर्मदेवी की आज्ञा के मुताबिक दोनों भुजाएँ यथा स्थान भिजवा दी गईं। पूंगल के वृद्ध रणंगदेव ने अपनी पुत्रवधू की भुजा की अन्त्येष्ठि की और जिस स्थान पर यह पवित्र दाह-संस्कार हुआ, वहाँ उन्होंने एक बड़ा सरोवर खुदवाया, जो आज भी 'कर्मदेवी के सरोवर' के नाम से विख्यात है। यही है संक्षेप में कर्मदेवी की कथा। यह घटना सं० १४६२ (१४०५ ई०) की है।

आलोचना

कवि रंगलाल ने टॉड द्वारा वर्णित इस कथा में थोड़ा फेर-बदल करके इसे काव्य रूप दिया है। टॉड ने जहाँ पूंगल अधिपति को रणंगदेव के नाम से अभिहित किया है, वहीं रंगलाल ने उसका नाम अनंगदेव बताया है। इसी भाँति 'राजस्थान' में वर्णित माणिकराव का नाम 'कर्मदेवी' काव्य में माणिकदेव राय हमें मिलता है। रंगलाल ने 'कर्मदेवी' काव्य के प्रथम सर्ग में टॉड की कथा के अनुरूप कहानी का आरम्भ इस प्रकार किया है—

यशल्मीर अन्तःपाती, देशे छिलो भट्टिजाति,
अधीप अनंगदेव तार।
पूंगल देशेर नाम, ताँर पुत्र गुणधाम,
साधूनामा, विक्रम-आधार।
('कर्मदेवी', प्रथम सर्ग, पृ० १७६)

टॉड ने लिखा है—

"Raningdeo was lord of Poogul, a *fief* of Jessulmeer; his heir, named Sadoo, was the terror of the desert, carrying his raids even to the valley of the Indus, and on the last to Nagore." (*Ibid*, Page 498).

टॉड ने साधू की लूट की घटनाओं का विस्तार से वर्णन नहीं किया है, किन्तु कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय देकर इस प्रसंग को देशात्मबोध में रूपान्तरित किया है। इस प्रसंग में कवि ने विदेशी व्यापारियों के आगमन और साम्राज्य स्थापन की बात का उल्लेख कर स्वतन्त्रता की बात को उठाया है। जो अंग्रेज व्यापारी बनकर आया था, वह कालान्तर में शासक बन बैठा। इसी तरह सोने की चिड़िया हिन्दुस्तान की धन-दौलत का लुण्ठन करने के लिए विदेशी आक्रमणकारी आये और सम्राट बन गए। १८५७ की आजादी की पहली लड़ाई के उपरान्त कवि ने इस युगबोध को प्रभावपूर्ण भाषा में इन शब्दों में कहा है—साधू साहसी वीर ही नहीं स्वदेशाभिमानी भी है—

काहू प्रति क्षमा नाइ, हउक आपन भाई,
समुचित शिक्षा दिबे तारे।
अन्याय ना सह्य होय, मिथ्यावाद नाहि सह्य,
सत्येर परीक्षा तरवारे। (वही; पृ० १७७)

एक बार साधू को पता चला कि जलंधर के पास विपाशा नदी के तीर पर मुसल्मान वणिकवाहिनी ने आकर अपनी छावनी स्थापित की है। फलतः साधू ने सदल-बल छावनी पर आक्रमण किया और वणिकवाहिनी को पराजित किया। वणिक दलपति ने अनुनय-विनय के साथ साधू से कहा—

हिन्दुस्थान शान्तिस्थान संवाद-श्रवणे।
एसेछि तोमार देशे वाणिज्य-कारणे॥
सूखेर वाणिज्ये होय देशेर उन्नति।
वणिकेर धनवृद्धि ताहार संहति॥
देखितेछो आनियाछि घोड़ा आर ऊँट।
एसकल नहे देश करिबारे लूट॥
मानसेते नाइ किछु अनिष्टेर आशा।
द्रव्य दिबो, अर्थ लोबो, एइ जन्य आसा॥
('कर्मदेवी', प्रथम सर्ग, पृ० १७६)

'हमने सुना है भारत है शान्ति का स्थल,
आये हैं यहाँ हम करने वाणिज्य-व्यापार,
वाणिज्ये वसते लक्ष्मी है मंत्र हमारा,
भरेंगे धन-धान्य से घर तुम्हारा,
फकत ऊँट और घोड़े हैं साथ में,
ये नहीं हैं साधन बाट-मार के,
मन में नहीं है हमारे कोई—
अनिष्ट की आशा,
द्रव्य देंगे, अर्थ लेंगे,
मात्र यही है अभिलाषा।'

साधू ने उत्तर दिया—

बात तुम्हारी है अर्धसत्य,
पूर्व में आई हैं—
ऐसी अनेक लुटेरी जातियाँ
फैलाई हैं, जिनने
नाना भ्रांतियां।
लूटा है इन लुटेरों ने,
अनेक बार देश भारतवर्ष को,
साक्षी है इतिहास,
बना है व्यापारी शासक इस देश में—

साधू ने तब पठान वणिक से कहा—"पूर्व में ऐसे ही छल-छद्मी वणिक आये थे और लूट-पाट कर चले गए—फिर वे शासक बन गए—तुम भी उन्हीं लुटेरों में से हो—

'सेई दुष्ट दुराशय हरिलो ए सब।
तोमरा ताहारा जाति, ज्ञाति गोत्रभव॥
हाजार मंगलव्रते हये एसो व्रती।
विश्वास ना हबे आर तोमादेर प्रति॥
एरूप वाणिज्यछले कोतो जाति एसे।
करिलेक प्रभुत्वस्थापन नाना देशे॥
× × ×
अन्य देशे गति विधि प्रयोजन नाई।
स्वाधीन स्वदेश धनी होक एइ चाई॥" (वही पृ० १८०-१८१)

भारत स्वाधीन और धनी हो यही कामना कदाचित् कवि रंगलाल की थी, जिसे कवि ने साधू के मुख से बेलाग सपाट भाषा में कहलवाया है। 'पद्मिनी उपाख्यान' के कवि में स्वदेश-प्रेम और स्वाधीनता की प्रबल कामना 'कर्मदेवी' में मुखर होती दीख पड़ती है। साधू ने वणिकवाहिणी का पण्य-द्रव्य नहीं लिया, केवल उनके लौटने के लिए कुछ ऊँट और घोड़े छोड़ कर बाकी जानवरों को अपने कब्जे में कर लिया और वणिक दलपति को तत्काल स्वदेश लौटने की आज्ञा दे दी।

पश्चात साधू घूमता-फिरता अरिन्त नगर में पहुँचा। वहाँ के अधिपति माणिकदेव ने उसका स्वागत किया। माणिकदेव की षोड़षी रूपवती कन्या कर्मदेवी साधू की वीरता पर मुग्ध हो गयी। साधू भी कर्मदेवी के रूप-लावण्य पर मुग्ध हो गया। मन्दोर के

राठौर अधिपति के पुत्र अरण्यकमल के साथ कर्मदेवी के विवाह की बात पक्की हो चुकी थी, पर कर्मदेवी ने मंदौर-राजमहिषी होने की अपेक्षा पूंगल कुमार की पत्नी होना निश्चय किया। वीरोचित कार्यों की प्रतियोगिता में भी जब साधू सर्वश्रेष्ठ वीर प्रमाणित हुआ तो रूपसी कर्मदेवी ने अपनी ओर से साधू को सम्मानित करने के लिए विजयमाला भेजी। साधू ने उसे कबूल तो कर लिया, पर रंगशाला के बीच सबको सम्बोधित कर कहा—

> पिता-सत्वे दुहितार स्वतंत्रता नाई।
> जार धन, तार कृत सम्प्रदान चाई॥
>
> (कर्मदेवी, तृतीय सर्ग, पृ० १६५)

यह ठीक भी था कि जब कर्मदेवी के पिता कन्यादान मे पुत्री का सम्प्रदान करें तभी साधू उसे ग्रहण कर सकता है। चूंकि मन्दौर के राजकुमार से कुमारी का विवाह स्थिर हो चुका था। पिता पुत्री की बलवती मनोकामना देखकर विवश हो गया और रीति के अनुसार विवाह का नारियल पूंगल भेजा गया।

टॉड ने इस घटना का वर्णन सिर्फ इतनी-सी बात कह कर किया है—

"Returning from a foray, with a train of captured camels and horses, he passed by Aureent, where dwelt Manik Rao, the Chief of the Mohils, whose rule extended over 1440 villages. Being invited to partake the hospitality of the Mohil, the heir of Poogul attracted the favourable regards of the old Chieftain's daughter, for he had the fame of being the first riever of the desert. Although betrothed to the heir of the Rathore of Mundore, she signified her wish to *renounce the throne to be the bride of the chieftain of* Poogul, and inspite of the dangers he provoked, and contrary to the Mohil Chief's advice, Sadoo, as a gallant Rajpoot, dared not reject the overture, and he promised "to accept the Coco" if sent in form to Poogul. In due time it came, and the nuptials were solemnised at Aureent." (*Ibid, Page 498*)

साधू का वीरत्व

माणिकराव का मन्दौर राजकुमार से शंकित होना स्वाभाविक था, फिर भी कर्मदेवी का विवाह साधू के साथ अरिन्त मे सम्पन्न हो गया। नवोढ़ा पत्नी कर्मदेवी को विदा कराकर जब साधू पूँगल लौट रहा था तो रास्ते मे अरण्यकमल की सेना ने उसे आ घेरा। यह समाचार मिलते ही माणिकराव ने जमाता की सहायता हेतु चार हजार सैनिक भेजे, किन्तु वीर साधू ने केवल पचास सैनिक रखकर बाकी को लौटा दिया और श्वसुर को लिख भेजा—

आये दुश्मन की सेना हजार,
करे विक्रम बार-बार।
समर्थ हैं मेरे भट्टी वीर,
प्राण देने को शत-बार॥

आसुक हाजार शत, करुक विक्रम-यत, शृगाल सम ज्ञान करि।
जे आछे आमार बल, भट्टिकुल भानु-दल, सप्त-शत विक्रम-केशरी॥
('कर्मदेवी', चतुर्थ सर्ग, पृ० २०१)

कर्मदेवी की वीरता

अन्ततः चन्दना नदी के दोनों किनारों पर अरण्यकमल और साधू की सेना ने एकत्रित होकर युद्ध की व्यूह-रचना की। अरण्यकमल ने द्वन्द्व-युद्ध के लिए साधू को आह्वान किया क्योंकि दोनों ओर की सेना समान-समान नहीं थी। साधू राजी नहीं हुआ। फलस्वरूप दोनों ओर की सेनाओं के सेनापतियों के नेतृत्व में युद्ध आरम्भ हुआ। अरण्यकमल का प्रतिहारी मिहिरज साधू के प्रतिहारी जयउरंग के द्वारा निहत हुआ। पश्चात अरण्यकमल और साधू का द्वन्द्व युद्ध शुरू हुआ। दोनों वीरों ने पैंतरे बदल कर एक दूसरे पर प्राणघातक हमले किए। तलवार और बर्छे से घात-प्रतिघात होने लगे। इस युद्ध में साधू वीर गति को प्राप्त हुआ। पति की मृत्यु का सम्वाद सुनकर कर्मदेवी मूर्छित हो गई। पुनः जब उसे ज्ञान हुआ तो उसने अपने भाई को बुलाया और साधू की तलवार लेकर बायीं भुजा को काट डाला। कटी भुजा को भाई के सुपुर्द करते हुए कहा—'इसे हमारे कुलकवि को देना' और फिर भाई से दाहिनी भुजा को काटने के लिए कहा। उसने दूसरी भुजा श्वसुर को देने का अनुरोध किया और फिर पति के शव को गोद में लेकर वह जल्दी चिता में बैठ गई। सती कर्मदेवी का शरीर पति के शव के साथ आग की लपटों में जल गया।

कवि रंगलाल ने इस रोमांचक घटना का वर्णन इन शब्दों में किया है—

पति-खर कृपाण लोइए करे,
स्वीय वाम बाहूते प्रहारे॥
छिन्न कर भूषण सहित
सहोदर हस्ते करि समर्पण।
कहे, 'शुनो शुनो भाई,
करिह पालन मम चरम वचन'
आमादेर कुल कविवरे,

दियो एइ हस्त रतन मंडित ।
सतीत्वेर संगीत आख्याने भाई
गान जेन दासीर चरित ॥' ('कर्मदेवी', चतुर्थ सर्ग, पृ० २११)

कुलकवि को बायीं भुजा अर्पण करने के पश्चात वीर बाला कर्मदेवी ने अपनी दायीं भुजा काटने का आदेश दिया और उसे श्वसुर को भेंट करने का अनुरोध भाई से किया—

अनन्तर भ्रातारे कृपाण दिए
कहिते छे विनत वचन ।
एइ हस्त पाठाइयो आमार
हृदयनाथ-पितार निकटे ।
जानिबेन एई कथा तिनि भाई
वधू तार सुत-योग्य वटे ॥
पिता स्थाने दासीर ए शेष भिक्षा,
साधू-सह दहि कलेवर
एई स्थाने सरसी खनन करि
नाम देन कर्म-सरोवर ॥ (वही, पृ० २११)

टॉड ने 'राजस्थान' में सती कर्मदेवी की इस वीरता को इन शब्दों मे लिखा है—

"The fray thus begun, single combats and actions of equal parties followed, the rivals looking on. At length Sadoo mounted; twice he charged the Rathore ranks, carrying death on his lance each time he returned for the applause of his bride who beheld the battle from her car. Six hundred of his foes had fallen, and nearly half his own *warriors. He bade her a last adieu, while she exhorted* him to the fight, saying, "She would witness his deeds, and if he fell, would follow him even "in death".

Now he singled out his rival Irrinkowal (Aranyakamal), who was alike eager to end the strife, and blot out his disgrace in his

conten-
dealt out
returned
ohil saw

the steel descend on the head of her lover. Both fell prostrate to the earth; but Sadoo's soul had sped; the Rathore had only swooned.

With the fall of the leaders the battle ceased; and the fair cause of strife, Korumdevi, at once a virgin, a wife, and a widow, prepared to follow her affianced. Calling for a sword, with one arm she dissevered the other, desiring it might be conveyed to the father of her lord—"tell him such was his daughter." The other she commanded to be struck off, and given with her marriage jewels thereon, to the bard of the Mohils. The pile was prepared on the field of battle; and taking her lord in her embrace, she gave herself upto the devouring flames. (Ibid, Page 499)

कर्मदेवी की शेष इच्छा उस स्थान पर एक सरोवर बनाकर पूरी की गई। वहाँ कर्मदेवी की प्रस्तर मूर्ति विराजमान है और लोग श्रद्धा से कर्मदेवी सरोवर में स्नान कर वीर रमणी का स्मरण कर गुणानुवाद करते हैं। कवि रंगलाल ने 'पद्मिनी उपाख्यान' में रानी पद्मिनी के जौहर की गाथा गाई और 'कर्मदेवी' में कर्मदेवी की यशोगाथा का वर्णन किया। रंगलाल के द्वारा कर्मदेवी के मुख से कहलाई गई पंक्तियाँ आज भी 'कर्मदेवी सरोवर' में गूंजती हैं—

वीरेर नन्दिनी आमि
वीरवर मम स्वामी
वीर प्रसविनी होबो शेष। (कर्मदेवी, चतुर्थ सर्ग, पृ० २०२)

मैं वीर पिता की पुत्री हूँ और मेरे पति भी वीरश्रेष्ठ हैं। मैं वीर प्रसविनी बनूंगी। वीर प्रसविनी मरुधरा की बेटी की यह उक्ति अक्षरश: सत्य है।

माणिकराव की राजधानी मे साधू का मल्लयुद्ध और अरण्यकमल के साथ द्वन्द्व-युद्ध दिखाकर रंगलाल ने अंग्रेजी रोमांस के नाइटो का स्मरण करा दिया है। कर्मदेवी के साथ साधू के प्रथम मिलन का वर्णन काव्य रूढ़ि के रूप में चले आते पूर्व राग का ही नवीन संस्करण है। इस प्रणय-मिलन पर टॉमस, मूर, बायरन की अपेक्षा भारतचन्द्र के 'विद्यासुन्दर' का प्रभाव देखा जा सकता है। कवि की यह दूसरी कृति काव्य-सौष्ठव और देशात्मबोध से आप्लावित है। 'कर्मदेवी' काव्य 'पद्मिनी उपाख्यान' की अपेक्षा अधिक वर्णनात्मक है। डॉ० सुकुमार सेन ने 'बंगला साहित्येर इतिहास' के पृष्ठ १४८ पर अपना मन्तव्य इन शब्दों मे दिया है—"कर्मदेवी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का बोध अधिक स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है। साधू के चरित्र को इसी ढाँचे में ढाला गया है। विदेशी वणिकों को साधू की फटकार भारत के

स्वर्ण-लुटेरों के विरुद्ध कवि का आक्रोश है। भारतीयों में पारस्परिक सौहार्द्र का पूर्ण अभाव है और पुरुष पुरुषत्व से हीन हैं। यह दिखाकर रंगलाल ने तत्कालीन समाज की हीन भावना पर व्यंग्य विद्रूप किया है।'

वीर साधू (शार्दूल सिंह) और कर्मदेवी (कोड़मदे) के आत्मत्याग के चार माह पश्चात पूंगल के वीरों और अरण्यकमल (अरड़कमल्ल) की राठौरी सेना में युद्ध हुआ—

चारि मास अन्ते, होये अन्तरे विकल।
प्राणत्याग करिलेन अरण्य-कमल॥
सेई वैर-शोधनार्थ पुरुषानुक्रमे।
भट्टि सह राठौर जूझिलो पराक्रमे॥
अवशेषे भट्टिदेर होइलो विजय।
ग्राम्य-गीते से सकल व्यक्त देशमय॥
सेई सरोवर कथा कहिले धीमान्।
सेई कर्म-सरोवर पुण्यतीर्थ स्थान॥ (कर्मदेवी, चतुर्थ सर्ग, पृ० २१२)

और ब्राह्मण ने सारंगी का सुर बन्द कर दिया—कर्मदेवी की कहानी शेष हो गई।

राजस्थानी भाषा में कर्मदेवी काव्य

राजस्थानी के सुपरिचित कवि श्री मेघराज मुकुल ने बंगला कवि रंगलाल की भांति राजस्थानी भाषा में कर्मदेवी तथा साधू के वीर चरित्रों को लेकर 'कोड़मदे' कविता की १९४५ ई० में रचना की। यह कविता मुकुल के 'उमंग' काव्य-संग्रह में सकलित है। वीर-रस की इस कविता मे सादूल और कोड़मदे की वीरता का वर्णन है। कवि मुकुल कहते हैं—

सादूल और अरड़क दोन्यू, लड़-लड़ कै थक-थक हुआ चूर।
दोन्यू था कुल की आण लियाँ रण में बांका मदमत्त शूर॥
इतणै में बिजली-सी चमकी, बस आँख झपी, तलवार चली,
सादूल हुयो, दो टूक, शीश जा पड्यो दूर, फैजाँ मचली। ('उमंग', पृ० १०६)

कोड़मदे ने पति के मरने के बाद आग की चिता तैयार कराई। उसने अपनी दोनों भुजाओं को काटकर एक पिता के यहाँ और दूसरी श्वसुर के यहाँ भिजवाई और खुद मृत पति के कटे सिर को गोद में लेकर सती हो गई—

फिर कट्ये शीश कानी देख्यो, चुदड़ी में ढकली वरमाला,
धक-धक ल्पटां में धधक उठी, भारत री वेटी रण-वाला।

('उमंग', पृ० १०७)

डॉ० मनोहर शर्मा का 'कोड़मदे' काव्य

इसी कथानक पर राजस्थानी-हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार कवि डॉ० मनोहर शर्मा ने 'कोड़मदे' नामक गीतात्मक प्रेमाख्यान की रचना राजस्थानी भाषा में की है। उनकी यह काव्य-कृति 'धोरां रो संगीत' शीर्षक उनके काव्य ग्रन्थ में संकलित है। 'धोरां रो संगीत' का प्रकाशन कलकत्ता के अमसेन स्मृति भवन स्थित श्री रामरक्षपाल झुनझुनवाला स्मृति पुस्तकालय के मन्त्री श्री श्यामलाल जालान ने सं० १६३५ में किया है। इसकी भूमिका में प्रसिद्ध उद्योगपति एवं सुलेखक श्री लक्ष्मी निवास बिड़ला ने राजस्थानी प्रेमाख्यान साहित्य की परम्परा पर सुन्दर प्रकाश डाला है। कवि मनोहर शर्मा ने लिखा है—

मोहिलवत रण सूरमा खरा, माणक राय सुजान।
जिण घर कोड़मदे रस उतरी, पोयण फूल समान॥

('धोरां रो संगीत', पृ० ८६)

कोमड़दे के पति शार्दूल सिंह और अरड़कमल की राठौर-सेना के बीच किस प्रकार युद्ध हुआ उसका वर्णन देखिए—

आंमी-स्यांमी गरज आवतां, भिड़ी मूठ सूं मूठ।
साथी ललकार्‌या गरवीला, वार न जावै छूट॥
वखतर ढाल समावै
तीखी तलवारां वाजै नाचती
रणवीर भवानी

× × ×

सारदूल रणभोम पड्यो लड़, पड्यो ज अरड़कमल्ल।
दोन्नूं सोया वीर खेत में, दोन्नूं भया अचल्ल॥ (वही, पृ० ६५)

पति के वीरगति प्राप्त होने पर नववधु कोड़मदे ने शार्दूल के सिर को गोदी में ले लिया और चिता पर बैठ गई। उसने अपनी एक भुजा काट कर श्वसुर को और दूसरी भुजा कटवा कर पिता के यहाँ बदला लेने के लिए भिजवा दी और आग की लपटों में सती हो गई।

कोड़मदे सत रूप सुंवार्‌यो, पिव में जोग जुड़ाय।
सिर गोदी में लेकर बैठी, चन्नण चिता चिणाय ॥

× × ×

कोड़मदे सतरूप हाथ सूं, काट्‌यो निज रो हाथ।
लाल सुरंगो सदा सोवणो, कांगण डोरी साथ ॥
कुल रो भाट बुलायो
पूगल नै भेज्यो "वदलो म्होड़सी
लख लाल निसानी।"
हाथ कटायो बोल दूसरो, सूँप्यो देव उदार।
धावल वदलो जीताँ म्होड़ै, कह्‌ज्यो कर विस्तार ॥ (वही, पृ० ६६)

इस प्रकार रंगलाल के 'कर्मदेवी' की अनुगूंज हमे हिन्दी और राजस्थानी काव्यो मे मिलती है। कोड़मदे की कहानी आज भी राजस्थान में चर्चित है।

रंगलाल का "शूर-सुन्दरी" काव्य

'रंगलाल रचनावली' की भूमिका मे श्री त्रिपुराशंकर सेन शास्त्री ने प्रथम पृष्ठ पर लिखा है—"बंगला-साहित्य एवं बंगाल के नवजागरण में कवि रंगलाल बन्दोपाध्याय की विशिष्ट भूमिका है। बंगला-साहित्य में सर्वप्रथम ऐतिहासिक आख्यानों का प्रवर्त्तन रंगलाल ने ही किया। उनकी इस प्रचेष्टा में सर्वभारतीय चेतना और भारत की मार्मिक पीड़ा को अनुभूत किया जा सकता है। रंगलाल ने जिस समय १९वीं शताब्दी में काव्य-रचना का प्रणयन आरम्भ किया था उस समय न तो बंगला-साहित्य के इतिहास का लेखन हुआ था और न बंगला के इतिहास का। उन दिनो विदेशी इतिहासकार बंगाली चरित्र को भीरु, कापुरुष, दुर्बल आदि व्यंग्यवाणो से घायल करने में लगे हुए थे। रंगलाल ने ऐसे विदेशी आलोचको को राजपूतों के वीरत्व की कहानी का प्रणयन कर समुचित उत्तर दिया।"

कवि रंगलाल ने 'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य की भूमिका में इस घटना का वर्णन किया है और बताया है कि क्यों उन्होंने टॉड के 'राजस्थान' से उपकथा लेकर काव्य-रचना की। 'पद्मिनी उपाख्यान' की प्रसिद्धि के बाद आपने पद्मिनी के समान दूसरी वीरनारी 'कर्मदेवी' पर काव्य लिखा और इसके पश्चात १८६८ ई० मे आपके तीसरे काव्य 'शूर-सुन्दरी' का प्रकाशन हुआ। जिसके मुख्य पृष्ठ पर मुद्रित है—"राजस्थान की वीरबाला का उज्ज्वल चरित्र।"

रंगलाल की रचनाओ पर बंगला के बड़े-बड़े इतिहासकारो और आलोचको ने प्रशंसात्मक टिप्पणी की है। यहाँ प्रस्तुत है स्वतन्त्रता सेनानी श्री विपिनचन्द्र पाल का वक्तव्य—"रंगलाल ही प्रथम बंगला कवि हैं, जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित पाठकों के मन में पराधीनता की वेदना भरी एवं स्वाधीनता के लिए आशा की ज्योति जगाई।"

नवजागरण और रंगलाल

यह एक तथ्य है कि भारत के १९वीं सदी के नवजागरण में अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य की प्रभावशाली भूमिका थी। पाश्चात्य विचारो ने बंगाली नव-शिक्षित समाज के सामने ज्ञान-विज्ञान के नए द्वार खोल दिए थे। पाश्चात्य शिक्षा के प्रवर्तन के लिए राजा राममोहन राय ने लार्ड एमहर्स्ट को एक लम्बा पत्र लिखा था। आचार्य गुरुदास वन्दोपाध्याय ने रंगलाल के बारे मे लिखा है—"पूर्व और पश्चिम के मिलन

से ही बंगला-साहित्य में तेजी से रचना-प्रक्रिया शुरू हुई। पश्चिम के इतिहास के पठन-पाठन से बंगाल के मनीषियों के हृदय में राष्ट्रीयता, स्वाधीनता और आत्मगौरव का भाव पैदा हुआ। इसी भावना का फल है कि बंगला-साहित्य के रचनाकारों ने भारतीय एकता को महसूस किया और वे इसे मूर्तरूप देकर सही दिशा देने लगे। ऐसे रचनाकारों में अग्रणी भूमिका है रंगलाल की, जिसने देश की स्वाधीनता का "स्वाधीनता-हीनताय ....." में शंख निनादित किया।" (रंगलाल रचनावली, पृ० ८)

हमने पूर्व में लिखा है कि रंगलाल कई देशी-विदेशी भाषाओं के पण्डित थे। कहा जाता है कि रंगलाल ने हिन्दी भाषा के एक शृङ्गार रस के काव्य का बंगला में पद्यानुवाद किया था, जिसका नाम दिया गया था—"रतनचूर"; किन्तु जब मनस्वी राजेन्द्रलाल मित्र ने बंगला में रूपान्तरित 'रतनचूर' काव्य कृति को पढ़ा तो वे क्षुब्ध हो गए। उन्होंने रंगलाल को इसे न प्रकाशित करने का परामर्श दिया। रंगलाल राजेन्द्रलाल का आदर करते थे और उन्होंने 'कर्मदेवी' काव्य उन्हीं को उत्सर्ग किया है। फलतः 'रतनचूर' का प्रकाशन नहीं हो सका और हम यह भी नहीं जान सके कि हिन्दी के किस रीतिकालीन शृङ्गारपरक काव्य का रंगलाल ने बंगला भाषा में पद्यानुवाद किया था। अस्तु, अब हम कवि के 'शूरसुन्दरी' काव्य पर चर्चा करेंगे।

'शूर-सुन्दरी' की कथा

कवि रंगलाल का जन्म २१ दिसम्बर, १८२६ ई० को बाकुलिया ग्राम में हुआ था, जो पश्चिम बंगाल के हुगली जिले में स्थित है। आपकी मृत्यु ८ मई, १८८७ ई० को हुई। कवि रंगलाल बन्दोपाध्याय ने 'कर्मदेवी' काव्य का प्रणयन करने के उपरान्त १८६८ ई० में "शूर-सुन्दरी" नामक तृतीय काव्य ग्रन्थ की रचना की। यह काव्य भी चार सर्गों में विभक्त है। इस काव्य-कृति में अकबर के दरबारी कवि पृथ्वीराज के उस ऐतिहासिक पत्र की बड़ी भूमिका है, जो उन्होंने महाराणा प्रताप को लिखा था। कहा जाता है कि प्रताप ने अतिशय कष्टों से ऊब कर एवं विशेषकर वनविलाव के द्वारा बच्चों की घास की रोटी ले भागने के दुःख से अकबर को सन्धि-पत्र लिखा था। उस पत्र को पृथ्वीराज ने झूठा बताकर राणा के शौर्य को जगाने के लिए वीरतापूर्ण पत्र लिखा था।

'शूर-सुन्दरी' की कथा पृथ्वीराज के उस ऐतिहासिक पत्र से आरम्भ होती है, जो अब भी उदयपुर राज्य के संग्रहालय में सुरक्षित है। कहानी हमारे पूर्व परिचित द्विज और पथिक के कथोपकथन से कहलवाई गई है। राजा मान सिंह प्रताप से जब अपमानित होकर अकबर के सामने अपना दुखड़ा रोता है, तो अकबर एक बड़ी मुगल सेना राणा को पराभूत करने के लिए भेजता है। अकबर का पुत्र सलीम सेना का प्रधान बनकर जाता है—हल्दीघाटी का युद्ध होता है, जिसमें झालापति मान्ना अपनी वीरता दिखाता है, राणा घायल अवस्था में चेतक पर सवार होकर जाते हैं, तो दो मुगल सैनिक

उसका पीछा करते हैं। इन्हें शक्ति सिंह मार कर अपने भाई राणा से मिलता है और उन्हें अपना घोड़ा देता है—क्योंकि चेतक मर जाता है। जब सलीम को इस बात का पता चलता है तो वह शक्ति सिंह पर कुपित होता है और उसे निकाल देता है। शक्ति सिंह के विद्रोह की यह घटना अकबर के क्रोध में घी का काम करती है। तब वह मान के अपमान का बदला लेने के लिए तथा शक्ति सिंह को सबक सिखाने के लिए 'नौरोज' के मेले का आयोजन करता है। इस मीना बाजार के पीछे सम्राट की कुत्सित भावना है। वह हिन्दू-राजपूत स्त्रियों का शीलहरण कर प्रतिहिंसा की आग को ठण्डा करना चाहता है। वह शक्ति सिंह की पुत्री का, जो पृथ्वीराज की पत्नी है, नौरोज के मेले में सतीत्व नष्ट करने की कुचेष्टा करता है, किन्तु वीर रमणी जब कटार लेकर अकबर की छाती पर चढ़ जाती है तब अकबर कातर स्वर में जीवन भिक्षा मांगता है। उसकी जीवन-रक्षा तभी होती है जब वह भविष्य में इस प्रकार के कुकृत्यों से विरत रहने की सौगन्ध खाता है और 'नौरोज' मेले की समाप्ति की घोषणा करता है। पृथ्वीराज ने राणा को लिखे पत्र में 'नौरोज' की शीलहरण की घटनाओं का जिक्र कर राणा को जोश दिलाया है। यद्यपि 'शूर-सुन्दरी' काव्य में राणा प्रताप के वीरोचित कार्यों का विस्तार से वर्णन है, पर मुख्य रूप से कवि की दृष्टि 'नौरोज' की घटना पर रही है। इसीलिए कवि ने काव्य का नामकरण किया है 'शूर-सुन्दरी'। कुल चार सर्गों में विभक्त इस काव्य में दो सर्गों में राणा प्रताप का वर्णन है और बाकी दो सर्गों में वीरबाला की वीरता का वृतान्त है। इतिहास के पण्डितों ने बाद की खोजों में बताया है कि सलीम (जहाँगीर) हल्दीघाटी युद्ध में नहीं गया था। वह उस समय बहुत छोटा था।

'नौरोज' के मेले तथा पृथ्वीराज के पत्र का बंगला, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं की कृतियों में बार-बार उल्लेख हुआ है। पुस्तक के अन्य पृष्ठों में इस विषय पर हमने विस्तार से चर्चा की है। रंगलाल ने यद्यपि इस काव्य कृति की कहानी भी टॉड के 'राजस्थान' से ली है, पर कहीं-कहीं उन्होंने अपनी स्वतन्त्र कल्पना का सहारा भी लिया है। वे पृथ्वीराज के कुस्वप्न का वर्णन करते हैं। टॉड ने जहाँ लिखा है कि पृथ्वीराज की रानी नौरोज के मेले में गई, तब उसने आत्मरक्षा के लिए अपने वस्त्रों में कटार रख ली थी। रंगलाल उसे कटार लेकर जाते हुए नहीं दिखाते हैं, अपितु जब वह बन्दिनी होकर अकबर के कक्ष में पहुँचती है तो काली का स्मरण करने पर देवी प्रकट होकर पृथ्वीराज की महिषी को तलवार देती है और उसमें साहस भरती है।

रंगलाल ने अपने पूर्ववर्ती दोनों काव्यों के आरम्भ में भूमिका भी लिखी थी और मंगलाचरण में 'पद्मिनी उपाख्यान' और 'कर्मदेवी' को उत्सर्ग भी किया था, किन्तु उनके तीसरे काव्य 'शूर-सुन्दरी' में भूमिका नहीं है अपितु मंगलाचरण में कवित्व-शक्ति के प्रति प्रार्थना है। कवि कवित्व-शक्ति से प्रार्थना करता है कि हे देवी! तुम मेरी

लेखनी में इतनी शक्ति भर दो, जिससे मैं अपने देश की सतियों का वीरतापूर्ण बखान कर सकूँ—

देहो भावरूपिणि गो ! लेखनीते बल ।
एई मात्र आशा मम करगो सफल ॥
स्वदेशीय सतीगन अबला अचला ।
ज्ञानबले बुद्धिवले कर गो सबला ॥ (शूर-सुन्दरी, पृ० २१४)

'शूर-सुन्दरी' के प्रकाशन के समय कवि सरकारी नौकरी के कारण उन दिनों कटक गए हुए थे । अतः मंगलाचरण के अन्त मे कटक स्थान के साथ तिथि दी गई है—१ला आश्विन, १२७५ बंगाब्द (१८६८ ई०) ।

'शूर-सुन्दरी' की प्रस्तावना

आइए अब हम सबसे पहले 'पद्मिनी उपाख्यान' तथा 'कर्मदेवी' के कथाकार द्विज के पास चलें, जो पथिक को 'शूर-सुन्दरी' की कथा कहनेवाले हैं । सूचना (प्रस्तावना) में द्विज श्रेष्ठ एक दिन पथिक को 'कर्मदेवी' की कथा समाप्ति के बाद एक शुभ सूचना देते है । वे कहते हैं "तुम्हारे आगमन की खबर सुनकर उदयपुर के महाराणा ने तुमको उदयपुर आने का प्रेमभरा निमन्त्रण भेजा है । अगर तुम उदयपुर जाओगे तो वहाँ मेवाड़ की सुन्दर राजधानी देखोगे तथा तुम्हें ऐतिहासिक स्थल भी देखने को मिलेंगे—

एक दिन कर्मदेवी कथा सांग परे ।
कहेन द्विजेन्द्र-कवि, पथिक-प्रवरे ॥
"महाराणा लिखेछेन, शुन महाशय ।
जाइते उदयपुरे यदि इच्छा होय ॥
× × ×
महाराणा प्रेम-गुने होये हर्षयुत ।
चल चल हे पथिक गुणाकर ॥
देखिवे उदयपुर नगर सुन्दर ।
आर तव उद्देश्य फलिवे बहुमत ।
सुनिते पाइवे सत्य इतिहास कत ॥
('शूर-सुन्दरी' काव्य सूचना पृ० २१५)

पृथ्वीराज का पत्र

इस प्रकार हर्षित होकर द्विज और पथिक उदयपुर पहुँचे। वहाँ महाराणा का आतिथ्य पाकर वे आनन्दित हुए। उन्होंने वहाँ मेवाड़ के वीरों की रोमांचकारी कहानियाँ सुनीं, आजादी के लिए मर मिटने की राजपूती की दास्तान सुनी। पथिक ने वहाँ के ग्रन्थागार देखे। वहाँ पथिक को ग्रन्थागार में कवि पृथ्वीराज का वह ऐतिहासिक पत्र देखने को मिला, जो उन्होंने राणा प्रताप को लिखा था। तब पथिक पृथ्वीराज तथा उसके पत्र के बारे में ब्राह्मण से पूछता है—

"कह कवि ए पत्रे र मर्म सविस्तार।
केबा एई पृथ्वी सिंह कवि गुणाधार॥
लिखेछेन महाराणा प्रताप निकटे।
"काहार उ निस्तार नाई नौरोजा-संकटे॥
किवा ए नौरोजाकाण्ड बुझिते ना पारि।
कह कह अनुग्रहे विशेष विस्तारि॥ (वही, पृ० २१५)

और द्विज (चारण) की सारंगी से सुर फूट पड़ा—विभिन्न राग-रागनियों से स्वर लहरी गूँज उठी—मेवाड़ के राणा प्रताप की यशोगाथा थिरक-थिरक कर सारंगी के तारों से निःसृत होने लगी।

प्रथम सर्ग में राजा मानसिंह के अपमान की कथा है। राणा प्रताप सिंह ने यह कह कर मानसिंह के साथ भोजन करने में अपना अपमान समझा कि जिसने अपनी बहन को यवनों को दान किया है वह अयोग्य है। इस अपमान से तिलमिला कर मान सम्राट अकबर के दरवार में जाकर अपमान की घटना को बढ़ाचढ़ा कर कहता है—आँसू ढलकाता है। अकबर क्रोधित होकर सलीम के नेतृत्व में विशाल सेना भेजता है। राणा की राजपूत सेना और मुगल सेना में हल्दीघाटी में भयंकर युद्ध होता है।

जयपुर के अधिपति (भगवानदास) ने अपनी पुत्री (जोधा बाई) का विवाह अकबर के साथ किया था। इस कारण मानसिंह अकबर का साला था। अन्य इतिहासकारों ने जोधाबाई को भगवान दास की बहन बताया है और अकबर को मान का फूफा बताया है। साले-बहनोई के सम्बन्ध के कारण राजा मान की अकबर के यहाँ बड़ी पहुँच थी। वह था भी वीर और बहादुर। उसने बंगाल में पठानों को परास्त कर अकबर की विजय पताका फहराई थी और बहुत दिनों तक बंगाल की नवाबी की थी। राजा मानसिंह के इन युद्धों का वर्णन बंगला भाषा की कई पुस्तकों में है। उसके पुत्र को बंकिम ने अपने 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास में नायक बनाया है। रंगलाल ने लिखा है—

जयपुर-अधिपति करि कन्यादान।
दिल्लीपति-कृत प्राप्त अतुल सम्मान॥
ताँर सुत मानसिंह विक्रमे विशाल।
वांगलार नवाबी करिलो कत काल॥

× × ×

केवल मेवाड़-पति प्रतापकेशरी।
विशुद्ध राखिलो कुल प्राणपण करि॥
मोगलेर छले वले ना होइलो वश।
प्रकाशिलो अनुपम वीरत्व उ जस॥

('शूर-सुन्दरी', प्रथम सर्ग, पृ० २१७)

दाक्षिणात्य विजय करने के बाद राजा मानसिंह ने उदयपुर जाना तय किया। उसकी कामना थी कि वह राणा प्रताप के साथ भोजन करके अपने जातीय गौरव को अकलंकित करेगा। उसने राणा को अपनी यात्रा की खबर भिजवाई। प्रताप ने अपने पुत्र अमर सिंह को मानसिंह का आतिथ्य करने का सुझाव दिया, किन्तु खुद भोजन में सम्मिलित नहीं हुए। जब मान ने राणा को बुलाने को कहा तो अमर ने उनकी सिर पीड़ा की बात कही। इसे मान समझ गया और अपमान-बोध कर भोजन से उठ गया। तभी प्रताप ने वहाँ उपस्थित होकर उसे फटकारा और कहा कि जिसने अपनी बहन का दान यवनों को किया है, उसके साथ भोजन नहीं किया जा सकता। इससे मान की क्रोधाग्नि भड़क गई और उसने अकबर से इस अपमान की बात कही—

दाक्षिणात्य जय करि मानसिंह राय।
उदय उदयपुरे जातिर आशाय॥
राणार सहित करि एकत्रे भोजन।
पुनर्वार क्षत्रियत्व प्रापन मनन॥
प्रताप पाठाये देन आपन कुमारे।
मानसिंहे यथासमादरे आनिवारे॥
राणारे ना देखि मान भोजन-समये।
कुमारे जिज्ञासा करे म्लानमुख होये॥

× × ×

कुमार कहेन, "पिता अस्वस्थ शरीर।"
मान कहे, "बूझियाछि अस्वस्थ कारण"॥
× × ×
शुनिये से कथा राणा आसिया निकटे।
कहिलेन, "जा कहिले सब सत्य बटे॥
किन्तु कह प्रायश्चित होइबे केमने ?
तोमार भगिनी गत यवनभवने॥" (वही, प्र० सर्ग पृ० २१७-१८)

राजा मानसिंह के अपमान की व्यथा-कथा सुनकर सम्राट अकबर क्रोधाग्नि से जल उठा और उसने उदयपुर के विरुद्ध मुगल-सेना को भेजा—

श्यालकेर दुर्दशा शुनिये दिल्लीपति।
एकेबारे क्रोधानले जलिलांग अति॥
+ + +
साजिलो उदयपुर-दर्पचूर हेतु।
उड़िलो आकाशे अर्द्ध चन्द्र चित्रकेतु॥ (वही, पृ० २१८)

हल्दीघाटी का युद्ध

द्वितीय सर्ग में हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन है। राणा प्रताप चेतक पर सवार होकर युद्ध में मानसिंह को खोज रहे हैं और अपनी वीरता का प्रदर्शन कर रहे हैं। मान को न पाकर उन्होंने सलीम के हाथी की ओर चेतक की वल्गा मोड़ दी। राणा के भाले से सलीम बच गया पर उसके हाथी की सूंड़ कट गई और यवन सेना के साथ राणा का भीषण युद्ध होने लगा। राणा को जब मुगल सेना ने घेर लिया तो भाला सरदार ने उनका छत्र और निशान अपने हाथ में ले लिया। मुगलों ने भाला मान्ना को प्रताप समझ कर उससे युद्ध किया। वह वीर सैंकड़ों यवनों को यमलोक पहुँचा कर वीरगति को प्राप्त हुआ—

उड़े वैजयन्ती भानु-भासित लोहित।
वाजीराज चेतकेर पृष्ठ आरोहित॥
वैर-शोध-ग्रहणार्थ व्याकुल अन्तरे।
कुलेर कज्जल मानसिंहेर तत्व करे॥
सन्धान ना पेये तार घन-घन फेरे।
सन्मुखे पाइलो शाह-सुत सलिमेरे॥
+ + +

हेन काले झालवर देशेर ईश्वर ।
प्रभुर उद्धार-हेतु होन अग्रसर ॥
× × ×
धन्य-धन्य झालवरपति महाकाय । (वही, पृ० २२०)

प्रदोप वेला में राणा ने युद्ध से प्रस्थान किया—रास्ते मे पहाड़ी नदी थी—चेतक ने उसे एक छलांग में पार कर लिया । राणा के पीछे दो मुगल घोड़ों पर उनका पीछा कर रहे थे । तभी राणा के कान में आवाज आई "ओ नीला घोड़ारा सवार !" उन्होने घूमकर देखा, यह तो शक्ति सिंह है । तब तक शक्तिसिंह ने दोनों मुगल सैनिको को मार गिराया था । दोनों भाइयों याने राणा और शक्ति सिंह का मिलन होता है । चेतक प्राण त्यजता है । शक्ति सिंह राणा को अपना अश्व प्रदान कर नतमस्तक होता है । इस घटना को सुनकर सलीम शक्ति सिंह पर कुपित होता है और कहता है—

"कहो वीर कृतघ्नेर कि होय दुर्गति ।
देश जाति, भ्रातृ त्यजि, त्यजि आत्मजन ।
दिल्लीर आसनतले होइला शरण ॥
जे दिलो आश्रय, करो अहित ताहार ।
अतएव ए स्थान तोमार योग्य नय ।
प्रस्थान करह यथा अभिरुचि होय ॥ (वही, पृ० २२२)

नौरोज-मेला का आयोजन : अकबर की कूटनीति

शक्ति सिंह पुनः प्रताप के पास चला आता है और मेवाड़ के पूर्व प्रदेश के भई-स्रोर को जीत कर राणा को उपहार देता है । राणा उस उपहार को शक्ति सिंह को सप्रेम भेंट करते हैं । शक्ति सिंह की इस कृतघ्नता की कहानी को सुनकर अकबर के तन बदन में आग लग जाती है । एक तो मानसिंह का राणा द्वारा अपमान और राणा के भाई शक्ति सिंह का ऐसा आचरण । इन दो बातों से कुपित होकर अकबर षडयन्त्र करता है । एक दिन अकबर सुनता है कि कवि पृथ्वीराज की पत्नी, जो शक्ति सिंह की कन्या है, वह बड़ी रूपवती और परमा सुन्दरी है । राणा प्रताप तथा शक्ति सिंह से एक साथ बदला लेने के निमित्त अकबर ने 'नौरोज' मेले का आयोजन किया और पृथ्वीराज की रानी का शीलहरण करने की कुचेष्टा की । उसने सोचा कि इस प्रकार वह सती का सतीत्व नष्ट कर देगा, तो राणा का दर्प चूर्ण हो जायेगा ।

शुनि शाह दुई भेये सुख-सम्मिलन ।
क्रोधे जले जेन युगान्तरे हुताशन ॥
+ + +

देववशे एकदा शुनिलो आकबर।
विकानेर राजभ्राता पृथ्वी कविवर॥
शक्तिसिंह-सुता सती वनिता ताहार।
रूपे गुने अनुपमा रमा-अवतार॥

\+ + +

आनिवो अन्दरे आमि तार प्रमदारे।
देखिबो केमने राणा राखे एइ बारे॥

\+ + +

एत भावि षडयंत्र ठाहरे सम्राट।
अन्तःपुरे वसाइयो युवतीर हाठ॥

\+ + +

अवश्य आसिवे तथा शक्तिर नंदिनी।

\+ + +

कौशले करिवो तारे निज करगत।
साधिवो सकल साध अभिमत यत॥ (वही, पृ० २२३)

और दूसरे ही दिन दिल्ली मे नगाड़ा पीटकर घोषणा हो गई कि प्रति मास 'नौरोज' का मेला लगेगा। यह थी दीनइलाही धर्म के प्रचारक सम्राट अकबर की कूटनीति। उसने पहले हिन्दुओं की लड़कियो से विवाह किया और फिर उनके सतीत्व का अपहरण करने की साजिश की—

पर दिन दिल्लीपुरे घोषणा प्रकाश।
होइवे "नौरोजा" पर्व प्रति मास मास॥ (वही, पृ० २२३)

रंगलाल की नई कल्पना

उल्लेखनीय है कि बगला, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के किसी लेखक ने नौरोज मेले के पीछे छिपी अकबर की इस कुत्सित भावना का उल्लेख नहीं किया है। यह रंगलाल की सर्वथा अपनी कल्पना है और इसी के परिप्रेक्ष में कवि ने 'शूर-शून्दरी' काव्य की रचना की है। ऐसे चिन्तक और मननशील रचनाकार के तीन काव्यों पर इसीलिए हमने विस्तार से आलोचना की है। रंगलाल बंगला भाषा के ही नहीं; अपितु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ के पहले चारण कवि है, जिन्होंने बड़ी साहसिकता से 'राजस्थान' के वीरवांकुरो का यशोगान किया और अपनी नवीन कल्पनाओ से परवर्ती रचनाकारो के

लिए राजमार्ग खोल दिया। अंग्रेजी प्रशासन में उनके इन काव्यो की बड़ी भूमिका है और है स्वातन्त्र्य-संग्राम को पुष्ट करने की उनकी बलवती इच्छा।

टॉड ने अपने 'राजस्थान' इतिहास के प्रथम खण्ड के 'मेवाड़ इतिहास' में पृष्ठ २०३ और २०४ पर पृथ्वीराज के पत्र का तथा नौरोज उत्सव का वर्णन किया है—यहाँ हम उसे उद्धृत करना चाहेंगे—

"घास की रोटी के बन विलाव द्वारा ले भागने पर जब बच्ची बिलख कर रोती है तो अपने बच्चो की इस दशा को देख कर राणा सोचते हैं—"उस राज्याधिकार को धिक्कार है, जिसके लिए जीवन में इस प्रकार के दृश्य देखने पड़ें।" और वे अकबर को सन्धि-पत्र लिखते हैं। पृथ्वीराज इस पत्र को झूठा बताकर राणा को पत्र लिखते है—"हिन्दुओ का सम्पूर्ण भरोसा एक हिन्दू पर ही निर्भर है। राणा ने सब कुछ छोड़ दिया और इसीसे आज भी राजपूतो का गौरव बहुत कुछ सुरक्षित रह सका है। नौरोज मे हमारे घरो की स्त्रियों की मर्यादा छिन्न-भिन्न हो गई है। क्या अब चित्तौड़ का स्वाभिमान भी इस बाजार में विकेगा?" इस जोशीली कविता के पत्र से राणा का सोया शौर्य जग जाता है।"

"पृथ्वीराज ने अपने पत्र में नौरोज का उल्लेख किया है। उसके सम्बन्ध मे कुछ स्पष्टीकरण यहाँ आवश्यक है। नौरोज का अर्थ वर्ष का नया दिन होता है। अकबर ने इसकी प्रतिष्ठा कर इसका नाम खुशरोज रखा था। उस मेले मे न जाने कितनी स्त्रियो की मर्यादा नष्ट हो चुकी थी। केवल पृथ्वीराज की स्त्री ने बड़े साहस और शौर्य के साथ अपनी मर्यादा की रक्षा की। वह शक्तावत वंश की स्त्री थी। किसी प्रकार उस मेले मे अकबर ने पृथ्वीराज की स्त्री को लाने की चेष्टा की। उस मौके पर बादशाह की दूषित भावनाओ को समझ कर पृथ्वीराज की स्त्री ने आवेश में आकर और अपने वस्त्रो से छिपी हुई कटार को निकाल कर अकबर से कहा—"खबरदार, अगर इस प्रकार की तूने हिम्मत की। कसम खा कि आज से कभी किसी स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार न करूँगा।" अकबर ने कसम खाई और उसकी प्राण रक्षा हुई।" (टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास, अनुवादक—केशव कुमार ठाकुर, पृ० २०३-२०४)

सुन्दरी की शूरता

अकबर ने पृथ्वीराज के भाई की पत्नी की मदद से पृथ्वीराज की पत्नी को नौरोज के मेले है लाने का षडयन्त्र किया। वह सफल हुआ। तृतीय सर्ग और चतुर्थ सर्ग मे दिखाया गया है कि अकबर एक योगी के वेश मे छिपकर मेले मे जाता है। उसे भृत्य (नौकर) पृथ्वीराज की पत्नी के आने का समाचार देता है। यह नौकर एक खोजा है—

सतीर भासुर-जाया बिकानेर रानी ।
अप्रेतारे कोनो रूप करतले आनि ॥

\+ \+ \+

गुप्तगृहे कहे खोजा, "शुनो जहाँपना ।
आसिया छे पुरी माझे सती सुवदना ॥
सेरूप स्वरूप कथा कि कहिवो आमि ।
हेन नारी देखी नाई हे धरणी स्वामी ॥
क्लीव आमि निरखि मोहित मन मम ।
से रूपेते मुग्ध होय स्थावर जंगम ॥
तार समतुल्य नाई तोमार आगारे ।
चलो जहाँपना त्वरा हेरिते ताहारे ॥" (वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० २३०)

खोजा आकर अकबर को पृथ्वीराज की पत्नी के आगमन की खबर देता है और उसके रूप-सौंदर्य का वर्णन करता है। वह स्वयं क्लीव (नपुंसक) है, पर वह भी सती के रूप को देखकर मुग्ध होता है और कहता है कि हे जहाँपनाह ! तुम्हारे हरम में भी ऐसा अद्वितीय सौंदर्य नही है। खोजा की बात सुन कर अकबर योगी का भेष बना कर सती को ठगने जाता है—

कि वेशे जाइबे तथा भावे दिल्लीपति ।
कोनरूपे संशय ना करे मने सती ॥
सात पाँच चिन्ता करि धरे योगिवेश ।
परिहरे राजवेश भुवन नरेश ॥ (वही, पृ० २३०)

पृथ्वीराज की पत्नी को भुलावा देकर गुप्त रास्ते से एक रहस्यमय कक्ष में लाया जाता है और अकबर अपने असली रूप में आकर सती को नाना प्रकार के प्रलोभन देता है। वीर क्षत्राणी उसे फटकारती है, किन्तु विपत्ति में अपने को फँसी जान कर देवी काली की प्रार्थना करती है—स्तोत्र पाठ करती है। काली अवतरित होकर सती को तलवार देती है और उसे साहस बँधाती है—

एई रूपे एकमने करे नति स्तुति ।
प्रसन्ना होइला ताहे देवी शिवदूती ॥

\+ \+ \+

कहिछेन स्नेहभरे "शुनो कन्ये सति !
तोर अमंगल करे काहार शकति ॥
सतीत्व कवचे तोर आवृत्त शरीर।
प्रकाशे प्रभाव जेन मध्याह्नमिहिर ॥
भय नाई, भय नाई, भय नाई आर।
एई लह तरवारि प्रसाद आमार" ॥ (वही, पृ० २३५)

लम्पट बादशाह जब सती का शीलहरण करने को उद्यत होता है तो वीर क्षत्राणी तलवार लेकर उसकी छाती पर चढ़ जाती है और क्रोधपूर्ण शब्दों मे कहती है—

केशरी-कुमारी प्राय विषम विक्रम।
कहे सती, "शुन रे मोगल नराधम ॥
तुमि ना धार्मिक धीर वीर बादशाह।
तुमि ना जगतगुरु बोलि यश चाह ॥
तुमि ना अभेद-ज्ञानि सर्व धर्म प्रति।
तुमि ना साधुर श्रेष्ठ सुरति सुमति।
एई कि वीरत्व तव यवन तनय।
एई कि तोमार धर्म रे रे दुराचार ॥
+ + +
आमादेरे अस्त्र नहे सूचिका कर्त्तरी।
एई देख करे करवाली भयंकारी ॥
एई देख परीक्षा ताहार दुराचार।
एई रे तैमूर-वंश करि रे संहार ॥" (वही, पृ० २३५-३६)

अकबर द्वारा प्राण-भिक्षा

यह कह कर वीर सती अकबर पर तलवार से वार करने को उद्यत होती है। देववाणी का धन्य-धन्य शब्द सुनाई देता है और अकबर थर-थर काँपता हुआ प्राण-भिक्षा के लिए आर्तनाद कर उठता है—

"शुनो शक्तिमति सति शक्तिर तनये ॥
जानिलाम तुमि सति सत्य-पतिव्रता।
क्षत्रकुल-पवित्रकारिणी कल्पलता ॥

धन्य वीरांगना तुमि वीरेर नंदिनी।
वीरगण अन्तरेते आनन्द स्यान्दिनी॥
करियाछि अपराध मागि परिहार।
रोष परिहर हरो दुर्गति आमार॥
करिलाम मातृरूपे तोमारे स्वीकार।
स्वच्छन्दे सुखेते जाहो गृहे आपनार॥
एकमात्र भिक्षा मम करो अंगिकार।
प्रकाश न होय जेन एई समाचार॥"

शान्त होकर तब राजपूत बाला कहती है—

शान्त होये सती कहे—"तवे क्षमि आमि।
यदि एक प्रतिज्ञा करह क्षितिस्वामी॥
....।
लिखे देहो निज पंजा दस्तखत करि॥
यदवधि तुमि किंवा तव वंशधर।
भारतेर सिंहासने थाकिवा ईश्वर॥
छले वले कि कौशले दिल्ली-अधिकारी।
ना आनिवे निजपुरे राजपूत नारी॥"

+ + +

तथास्तु वोलिया शाह करें अंगिकार।
लिखे दिलो सेई कथा आज्ञा अनुसार॥

('शूर-सुन्दरी' काव्य, चतुर्थ सर्ग, पृ० २३६)

इधर कवि पृथ्वीराज को पत्नी के काफी रात गए तक न आने पर बुरे-बुरे स्वप्न आ रहे थे और वे बेचैन हो रहे थे।

हेथा पृथ्वी प्रिया-हारा पारावत प्राय।
यामिनी यापन करे छटपट काय॥ (वही, पृ० २३६)

अन्ततः वीर सती घर लौट आई। पृथ्वीराज ने उसके दुर्गा रूप को देखा तो स्तब्ध रह गये। पत्नी से विलम्ब का कारण पूछा। सारा वृतान्त सुनकर अकबर की राजधानी से उन्हें वीतराग हो गया और उन्होंने पौ फटने के पूर्व पाप नगरी का परित्याग कर दिया। पुष्करतीर्थ मे आकर स्नान किया पति-पत्नी ने और अपने को पवित्र

किया। वहाँ कई दिन रह कर दान-ध्यान किया और राणा प्रताप को पत्र लिखा। काव्य के उपसंहार में कथा समाप्त करते हुए द्विज पथिक से कहता है—"यही वही पृथ्वीराज है, जिसने राणा प्रताप को पत्र लिखा कि 'अकबर के नौरोजा' में किसी का निस्तार नहीं—"नौरोजा" 'खुशरोज' नहीं दु:खरोज है।

> एईरूप हास्य-रसे पोहाय शर्वरी।
> प्रत्युपे चलिलो पृथ्वी दिल्ली परिहरि ॥
> सस्त्रीक पुष्करतीर्थे करिलेन स्नान।
> कत दिन थाकि तथा करे दान ध्यान ॥
> सेई से लिखिलो पत्र राणार निकटे।
> "काहारो निस्तार नाई नौरोजा-संकटे ॥"
>
> \+ \+ \+
>
> सेई पत्र एई पत्र शुनो हे सुजन।
> श्री शूर-सुन्दरी—कथा समापम। (वही, पृ० २३८)

इस प्रकार कवि रगलाल ने कथा की एक ऐसी शैली अपनाई कि एक के बाद एक काव्य की रचना द्विज (चारण) और पथिक (सैलानी) के कथोपकथन से होती रही। तीन काव्यो ('पद्मिनी उपाख्यान', 'कर्मदेवी' और 'शूर-सुन्दरी') को इस तरह से एक माला मे मणि-मुक्ता की भाँति पिरोना रंगलाल ऐसे सशक्त कवि का ही काम था। उनकी चौथी काव्य-कृति है "काची कावेरी"। प्रथम तीनो काव्य टॉड के 'राजस्थान' की कहानियो पर आधारित हैं—पर नवीन कल्पना कवि की अपनी है। कल्पना सर्वथा नई और मौजू है। १९वी सदी के प्रथम बंगला भाषा के कवि की इस प्रतिभा को देखकर हैरत और आश्चर्य मे रह जाना पड़ता है। 'कांची कावेरी' काव्य उड़ीसा की एक किंवदंती को लेकर रचा गया है। इसकी कथा कवि पुरुषोत्तम दास के एक प्राचीन उड़िया काव्य से ली गई है। (देखिए मेरा लेख "कांची कावेरी" दैनिक 'सन्मार्ग'—पूजा दीपावली विशेषांक, १९८६ ई०)

कवि श्याम नारायण का "हल्दीघाटी" काव्य

रंगलाल ने 'शूर-सुन्दरी' काव्य में राणा प्रताप की वीरता और हल्दीघाटी-युद्ध का वर्णन किया है। उसी प्रकार हिन्दी के वीर-रस के प्रसिद्ध कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने 'हल्दीघाटी' खण्ड-काव्य की रचना की है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के छायावाद युग में जहाँ कुछ हिन्दी की श्रेष्ठ प्रतिभाएँ पलायनवाद का शिकार थी और प्रकृति के चित्रण मे रहस्यवाद का अनुसन्धान कर रही थीं तब प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवाद सामने आया। इसका एक कारण यह भी था कि उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने यथार्थ-जीवन की देहली में पदार्पण कर लिया था। उनका महाकाव्यमय उपन्यास (एपिक नोवेल) 'गोदान' चर्चा का विषय बन गया था। प्रेमचन्द ने *"प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना* १९३६ ई० में ही कर दी थी। राजनीतिक रंगमंच पर "गाँधीवाद" और गाँधी की आँधी जोरो से चल रही थी। १९२० ई० के असहयोग आन्दोलन से १९३० ई० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के काल-खण्ड मे गाँधी के सत्य, प्रेम, अहिंसा और सत्याग्रह ने जन-मानस मे एक नई वैचारिक क्रान्ति पैदा कर दी थी। कुछ आलोचकों का कहना है कि भारतीय राजनीति मे महात्मा गाँधी के प्रवेश से द्विवेदी युग की सुधारवादी-राष्ट्रीय भावना को एक नया स्वर मिला और लोग गाँधीजी के विचारो के पक्षधर बन गए। खिलाफत-आन्दोलन के बाद हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए तथा अछूतोद्धार के लिए गाँधीजी ने जबरदस्त *अभियान* शुरू कर दिया। कदाचित् यही कारण था कि १९२० ई० से हिन्दी मे स्वच्छन्दतावाद (रोमेंटिसिज्म) या छायावाद का प्रवर्तन हुआ।

महात्मा गाँधी ने जब भूषण की "शिवाबावनी' को भारत के राष्ट्रीय वातावरण में हिंसा का विष फैलानेवाली कृति घोषित कर दिया और उसे विद्यालयों के पाठ्यक्रम से निर्वासित करा दिया तो प्रकारान्तर से शिवाजी और राणा प्रताप सम्बन्धी काव्य-रचना पर अघोषित प्रतिबन्ध-सा लग गया। इतिहास की यह एक सत्यता है कि इन दो वीरों ने देश की आजादी के लिए यवनों से मुगलकाल में जबरदस्त टक्कर ली थी और प्रताप तथा शिवाजी हिन्दू राष्ट्र के सूर्य ही नहीं आजादी के मसीहा समझे जाते थे। इन वीरों का गुणगान करने वाले साहित्यकारों को साम्प्रदायिकता का फतवा दिया जाता था। ऐसे उपालम्भ बीसवीं सदी के हिन्दी छायावाद के वीर-रस-कवियों को

ही नहीं सुनने पड़े, अपितु १९वीं सदी में बंगला-साहित्य के उपन्यास सम्राट बंकिमचन्द्र चटर्जी भी इन व्यंग्य वाणों से बच नहीं सके। उन्हें साम्प्रदायिक तक घोषित किया गया। यद्यपि बंकिम ने अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'राजसिंह' के उपसंहार में इन आक्षेपों का उत्तर दिया है, फिर भी उनके 'आनन्द मठ' उपन्यास और 'वंदेमातरम' गीत में, तब भी आलोचकों को साम्प्रदायिकता की गंध आती थी और आज भी लोग दबी जबान से इसकी जुगाली करते हैं। तभी तो संविधान के रचयिताओं ने "वंदेमातरम" के स्थान पर "जन-गण-मन" को राष्ट्रगान बना दिया।

धर्मनिरपेक्षता की राजनीति

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी तथा साहित्यकार श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपने निबन्ध "कुछ खरी-खुली बातें" में लिखा है "गाँधीजी ने मुसलमानों का हृदय जीतने के लिए खिलाफत को राष्ट्रीय-संग्राम (१९२१-२२ ई०) का एक प्रधान अंग बना लिया। गाँधीजी ने १९२१ ई० में किसी भी दाम पर मुसलमान नेताओं को खुश करना चाहा। तब से यह परिपाटी ही चल पड़ी कि अल्पसंख्यकों को खुश करने का नारा दो। "(पृ० ७) श्री मन्मथनाथ गुप्त का यह लेख पत्रकार-साहित्यकार श्री गीतेश शर्मा की चर्चित पुस्तक "साम्प्रदायिकता एवं साम्प्रदायिक दंगे" में प्रकाशित हुआ है। इसका प्रकाशन कलकत्ता से १९८५ ई० में हुआ।

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने आगे पृष्ठ ८ पर लिखा है—"स्वतंत्र भारत के नेताओं को धर्मनिरपेक्षता की उस लिबलिब भावुकतापूर्ण धारणा को त्याग कर उस पर पुनरीक्षण करना चाहिए था, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। नेहरू ने कांग्रेस को स्वातंत्र्य-योद्धाओं के संयुक्त मोर्चे के गौरवमय पद से उतार कर, गिरा कर अपने दल के चुनावों को लड़ने की दासी संस्था में परिणत कर दिया। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ हो गया, जिस भी गलत-सही उपाय से हो, अल्पसंख्यकों के वोट प्राप्त कर अपने दल का उल्लू सीधा करना। अफसोस है कि वामपंथी भी इस सड़े-गले गंदे कुण्ड से अपने को निकाल नहीं सके। गाँधीजी ने खिलाफत-आन्दोलन को अपना कर उस पर कांग्रेस का ठप्पा लगा कर १९२१ ई० में जो हिमालय समान भूल की थी, स्वराज्य के बाद उसीकी पुनरावृत्ति होती रही।"

इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र नेताओ की तुष्टिकरण नीति से साहित्य पर बुरा प्रभाव पडा और लेखको को इतिहास को प्रतिबद्ध होकर लिखने पर मजबूर होना पड़ा। जब साहित्य किसी वाद विशेष का प्रतिबद्ध या पिछलग्गू बन जाता है तो वह अपने उद्देश्य से स्खलित हो जाता है। साहित्य के लिए ऐसी मानसिकता खतरनाक होती है। तथाकथित प्रगतिशील लेखक प्रतिबद्धता की दुहाई देकर अपने मत को साहित्य में ठूंसने की चेष्टा करते है और कट्टरपन्थी उसी मानसिकता से उसे निरस्त करने की चेष्टा करते हैं। ये दोनो ही प्रवृत्तियाँ साहित्य-सृजन के लिए आत्मघाती सिद्ध होती हैं।

'हल्दीघाटी' काव्य की प्रसिद्धि

अस्तु, ऐसे वातावरण मे हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार और वीर-रस के सर्वाधिक चर्चित कवि पं० श्यामनारायण पाण्डेय ने "हल्दीघाटी" खण्ड-काव्य की रचना १९३९ ई० मे की। इसका प्रकाशन इण्डियन प्रेस, प्रयाग से हुआ है। 'हल्दीघाटी' की प्रसिद्धि इतनी अधिक हुई कि विद्यालयो और विश्वविद्यालयो में इसका उपयोग अन्त्याक्षरी के रूप मे होने लगा। कवि की भाषा मे ऐसा ओज, प्रसाद और वीर-रस का परिपाक था कि लोगो को यह काव्य-खण्ड कण्ठस्थ हो गया और इसके कई संस्करण हाथो-हाथ बिक गए। काव्य-कृति के रूप मे द्विवेदी युग के मैथिलीशरण गुप्त की "भारत-भारती" की एक समय धूम मच गई थी और अंग्रेज सरकार को उस पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा था— उसी भाँति छायावाद-प्रगतिवाद युग के सन्धिकाल की काव्य कृति "हल्दीघाटी" हिन्दी जनता की कण्ठहार बन गई। यद्यपि 'हल्दीघाटी' का प्रकाशन १९३९ ई० मे हुआ पर कवि श्यामनारायण पाण्डेय इसे पिछले सात वर्षों से गा-गा कर लोगो को सुना रहे थे। उन्ही के शब्दो मे प्रस्तुत है "हल्दीघाटी" खण्ड-काव्य की भूमिका। कवि ने पृष्ठ ७ पर भूमिका के आरम्भ मे लिखा है—

"प्रताप! आज सात वर्षो से तेरी पवित्र कहानी गा-गा कर सुना रहा था, मोह होने पर भी आज उसे पूर्ण कर रहा हूँ। मुझे इसमे क्या सफलता मिली, मैंने साहित्य-देश-धर्म की क्या सेवा की, मैं नहीं कह सकता। यह तो तू ही बता सकता है कि मेरी 'हल्दीघाटी' और तेरी 'हल्दीघाटी' मे क्या अन्तर है।"

हमने पूर्व मे ही लिखा है कि १९वी शताब्दी में टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर बंगला के साहित्यकारो ने कालजयी रचनाओं का सृजन किया। इन विद्वानो ने टॉड के ऐतिहासिक ग्रन्थ 'राजस्थान' से तो उपकथाएँ ली, किन्तु अपनी कल्पना से उन्होने रचनाओ में सतरंगी भाव भरे। बंगला के रचनाकार अंग्रेजी भाषा और पश्चिम के कवियों से प्रभावित थे। अतः उनकी रचना-प्रक्रिया पर अनायास अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस वास्तविकता को बंगला साहित्य के लेखको ने सहर्ष स्वीकार किया है। चूंकि १९वीं सदी मे टॉड के 'राजस्थान' के अतिरिक्त

राजपूताना के वीरो और वीरांगनाओ के चरित्रों को जानने का दूसरा कोई साधन नही था इसलिए उन्हें टॉड पर ही निर्भर रहना पड़ता था। हाँ, इतना अवश्य है कि बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी से संस्कृत ग्रन्थों के साथ राजस्थान और हिन्दी के प्राचीन काव्य-ग्रन्थो का भारतीय और अंग्रेज विद्वानों द्वारा सम्पादन का कार्य हो रहा था। टीकाओं सहित १९वीं सदी मे कई काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे, जिनमे हिन्दी का आदि महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो', 'खुमान रासो', 'बीसल देव रासो' ऐसे ग्रन्थो का उल्लेख किया जा सकता है।

इतिहास नए आईने में

आरम्भ मे हमने आधुनिक बंगला-साहित्य के काव्य निर्माता कवि रंगलाल बन्दोपाध्याय पर विचार किया है और 'शूर-सुन्दरी' मे दिखाया है कि हल्दीघाटी के युद्ध का मुख्य कारण राजा मानसिंह का राणा प्रताप द्वारा अपमानित होना है। अन्य इतिहासकारों ने भी इस बात को स्वीकार किया है। 'नौरोज' या मीनाबाजार के आयोजन के पीछे सम्राट अकबर का क्रोध शक्तिसिंह की एक घटना विशेष के कारण था, जिसका उल्लेख पहले ही हमने रंगलाल की काव्यकृति 'शूर-सुन्दरी' की आलोचना में किया है। अकबर हिन्दू स्त्रियो का शीलहरण कर उनका सतीत्व नष्ट करना चाहता था। श्यामनारायण पाण्डेय ने अपने खण्ड-काव्य 'हल्दीघाटी' मे मानसिंह के अपमान के कारण हल्दीघाटी युद्ध की बात बताई है। चूंकि रंगलाल के 'शूर-सुन्दरी' काव्य (१८६८ ई०) और श्यामनारायण पाण्डेय के 'हल्दीघाटी' काव्य (१९३९ ई०) के रचना-काल मे कोई इकहत्तर वर्षों का अन्तर है। इस अवधि में इतिहास की नई स्थापनाएँ सामने आ गई थी। टॉड ने जहाँ अपने ग्रन्थ में लिखा है कि मुगल सेना का नेतृत्व अकबर के बेटे सलीम (जहाँगीर) ने किया—वहीं अन्य इतिहासकारो ने यह कह कर सलीम को खारिज कर दिया कि उस समय अर्थात् हल्दीघाटी के युद्ध के समय मे उसकी (सलीम) उम्र कुल ६ वर्ष की थी। इसीलिए रंगलाल और श्यामनारायण के हल्दीघाटी-युद्ध-वर्णन में हम अन्तर देखते है। रंगलाल ने लिखा है कि प्रताप चेतक पर सवार होकर युद्ध मे भयकर मारकाट कर रहा था। वह मानसिह को खोज रहा था। वह जब नही मिला, तो उसने सलीम पर वार किया। राणा प्रताप का भाला सलीम के हाथी के ओहदे से टकरा गया और सलीम औहदे के नीचे छिप गया, उसकी प्राण रक्षा हो गई, पर श्यामनारायण के 'हल्दीघाटी' काव्य मे राणा का युद्ध मानसिह के साथ होता है। श्यामनारायण ने 'हल्दीघाटी' की भूमिका के पृष्ठ १५ पर लिखा है—

"प्रतापी प्रताप! अचानक तेरी दृष्टि उस रणमच हाथी पर पड़ी, जिस पर बैठ कर वीर सैनिको से घिरा हुआ मानसिह अपनी सेना का सचालन कर रहा था। तेरे शरीर का रक्त उबल उठा और क्रोध की ज्वाला से देह जल उठी। चेतक उड़ा, शत्रु-

सेना को रौंदता हुआ हाथी के समीप जा धमका, क्षण भर रुका, फिर अपने अगले पैर हाथी के कुम्भस्थल पर जमा दिए। भाला गेहुँवन की तरह मानसिंह की ओर लपका, फीलवान हाथी से गिर पड़ा और उस मुर्दे को सिपाहियों ने कुचलकर चूर कर दिया। बिना महावत के हाथी चिंघाड़कर भाग गया। मेवाड़ के दुर्भाग्य से मानसिंह की रक्षा हुई। बड़ा भयंकर समर था।"

हल्दीघाटी-युद्ध का वर्णन

'हल्दीघाटी' के युद्ध का वर्णन कवि ने द्वादश सर्ग में जिस ओजपूर्ण भाषा में किया है उसे पढ़ने पर लगता है कि कवि की भावनाओं के साथ शब्द आगे-आगे द्रुतगति से भाग रहे हैं, कवि की लेखनी युद्ध का सजीव वर्णन करने में सजग प्रहरी की भाँति द्रुततर हो गई है। भावना और शब्दों की यह प्रतिद्वन्द्विता श्यामनारायण की 'हल्दी-घाटी' में देखिए जहाँ राणा प्रताप मानसिंह को चेतक पर सवार होकर व्यग्रता से खोज रहा था—

> मेवाड़-केसरी देख रहा, केवल रण का न तमाशा था।
> वह दौड़-दौड़ करता था रण, वह मान-रक्त का प्यासा था॥
> चढ़ चेतक पर तलवार उठा, रखता था भूतल पानी को।
> राणा प्रताप सिर काट-काट करता था सफल जवानी को॥
> ऐसा रण राणा करता था, पर उसको था संतोष नहीं।
> क्षण-क्षण आगे बढ़ता था वह, पर कम होता था रोष नहीं॥
> कहता था लड़ता मान कहाँ, मैं कर लूँ रक्त-स्नान कहाँ?
> जिस पर तय विजय हमारी है, वह मुगलों का अभिमान कहाँ?

"हल्दीघाटी" के रणांगण में जब राणा ने कुल-कलंक मान को देख लिया तो उसका रक्त खौल उठा। मानसिंह के हाथी पर अकबर के झण्डे का निशान उड़ रहा था। राणा ने चेतक की वल्गा को जरा संकेत किया और चेतक लपक कर मान के हाथी पर जा चढ़ा—

> तब तक प्रताप ने देख लिया, लड़ रहा मान था हाथी पर।
> अकबर का चंचल साभिमान उड़ता निशान था हाथी पर।
> फिर रक्त देह का उबल उठा, जल उठा,—क्रोध की ज्वाला से।
> घोड़ा से कहा बढ़ो आगे, बढ़ चलो कहा निज भाला से।
> वह महाप्रतापी घोड़ा उड़ जंगी हाथी को हवक उठा।
> भीषण विप्लव का दृश्य देख, भय से अकबर-दल दबक उठा।

क्षण भर छलबल कर लड़ा अड़ा, दो पैरों पर हो गया खड़ा।
फिर अगले दोनों पैरों को हाथी-मस्तक पर दिया गड़ा।
यह देख मान ने भाले से करने की की क्षण चाह समर।
इस तरह थाम कर झटक दिया हाथी की भी झुक गई कमर॥
राणा के भीषण झटके से हाथी का मस्तक फूट गया।
अम्बर कलंक उस कायर का भाला भी दब कर टूट गया॥
('हल्दीघाटी' काव्य, द्वादश सर्ग, पृ० १४०)

मानसिंह हत-बुद्धि हो गया तो राणा प्रताप ने उसे पुनः भाला लेकर युद्ध करने के लिए कहा। राजा मानसिंह भी कहाँ घबड़ानेवाला था। उसने फिर भाला हाथ में ले लिया, लेकिन राणा प्रताप की विकराल मूर्ति को देखकर उसके होश पस्त हो गए, हाथ काँप गए, हाथ से भाला गिर गया। वीर-केसरी प्रताप ने हँसते हुए मानसिंह से कहा—"अब बस कर दे हो गया युद्ध''''भगजा भगजा अब जान बचा।" यह कह कर राणा ने अपना भाला मान की ओर तान दिया और चारों तरफ़ भीषण हाहाकार मच गया।

क्षण देर न की तनकर मारा, अरि कहने लगा न भाला है।
यह गेहुवन करइत काला है या महाकाल मतवाला है॥
छिप गया मान हौदे-तल में टकरा कर हौदा टूट गया।
भाले की हलकी हवा लगी पिलवान गिरा तन छूट गया।
अब बिना महावत के हाथी चिंघाड़ भगा राणा भय से।
संयोग रहा, बच गया मान, खूनी भाला, राणा हय से॥
('हल्दीघाटी' काव्य, पृ० १४१)

वीर रमणी की वीरता

बंगला के कवि रंगलाल ने पृथ्वीराज के जिस पत्र को साक्षी बना कर अपने 'शूर-सुन्दरी' काव्य का प्रणयन किया, उसमें नौरोज की घटना का वर्णन है और 'शूर-सुन्दरी' काव्य का यही कथानक है, जिसमें कवि पृथ्वीराज की पत्नी कटार लेकर मीना-बाजार में अकबर का प्राण लेने पर आमादा हो जाती है। इस घटना का वर्णन पं० श्यामनारायण ने 'हल्दीघाटी' काव्य के द्वितीय सर्ग में किया है—

जब 'नौरोज' के मेले में शिशोदिया-कुल-ललना के सतीत्व को भंग करने की सम्राट अकबर ने चेष्टा की तो वह क्षत्राणी कटार निकाल कर अकबर का प्राण लेने को उद्यत हो गई—

शिशोदिया-कुल-कन्या थी वह सती रही पंचाली सी।
क्षत्राणी थी चढ़ बैठी उसकी छाती पर काली सी॥
कहा डपट कर—? 'बोल प्राण लूँ या छोड़ेगा यह व्यभिचार ?"
बोला अकबर—"क्षमा करो अब देवि ! न होगा अत्याचार॥

('हल्दीघाटी' काव्य, द्वितीय सर्ग, पृ० ४७)

कवि पृथ्वीराज का पत्र

रंगलाल ने 'शूर-सुन्दरी' काव्य में दिखाया है कि वह क्षत्राणी अकबर के दरबारी कवि की पत्नी थी और शक्ति सिंह की बेटी थी। श्यामनारायण ने उस वीरांगना का परिचय मात्र इन शब्दों में दिया है "शिशोदिया-कुल-कन्या थी....." बंगला-साहित्य के अन्य नाटककारों, उपन्यासकारों और कवियों ने रंगलाल की भाँति पृथ्वीराज की पत्नी को राणा प्रताप के भाई शक्ति सिंह की पुत्री बताया है, किन्तु राजस्थानी भाषा और साहित्य के विद्वान पं० मोतीलाल मेनारिया ने अपने इतिहास-ग्रन्थ 'राजस्थानी भाषा और साहित्य" में पृ० १२२ पर कवि पृथ्वीराज का परिचय देते हुए लिखा है—"पृथ्वीराज मुगल सम्राट अकबर के दरबारी कवि थे। पृथ्वीराज ने दो विवाह किए थे। इनकी पहली स्त्री का नाम 'लाला दे' था। यह जैसलमेर के रावल हरराज की पुत्री थी। इसका देहान्त हो जाने पर इन्होंने इसी लालादे की बहन "चाँपादे" से अपना दूसरा विवाह किया था।" लालादे की मृत्यु से कवि पृथ्वीराज को दुख हुआ था, पर चाँपादे सुन्दरी और कवयित्री थी। इससे कवि का स्त्री-वियोग दूसरी पत्नी चाँपादे से पुनः आनन्द से लबालब भर गया। यहाँ यह लिखना हम आवश्यक समझते हैं कि वन-बिलाव के रोटी ले भागने से जब राणा प्रताप के बच्चे बिलबिलाते हैं—बच्चों रुदन करती है तब हिमालय के समान राणा का अडिग हृदय काँप जाता है, जिससे द्रवित होकर प्रताप अकबर को पत्र लिखते हैं। अकबर इस पत्र से प्रसन्न होता है और कवि पृथ्वीराज को दिखाता है। वे इसे झूठा बताते हैं और राणा प्रताप को जोश दिलाने; आजादी के लिए लड़ते रहने का प्रण करने की बात कहते हैं। इस ऐतिहासिक पत्र में 'नौरोज' में हिन्दू ललनाओं के शीलहरण का वर्णन है। रंगलाल का 'शूर-सुन्दरी' काव्य इस ऐतिहासिक पत्र पर आधारित है, किन्तु श्यामनारायण ने 'हल्दीघाटी' में वन बिलाव के घास की रोटी ले भागने का तो वर्णन किया है और बच्चों के करुण क्रन्दन को भी तुतली भाषा में दर्शाया है—पर महाराणी के यह कहने पर

तू संधि-पत्र लिखने का कह कितना है अधिकारी ?
जब बन्दी माँ के दृग से अब तक आँसू हैं जारी।

('हल्दीघाटी' काव्य, पंचदश सर्ग पृ० १७०)

नई दृष्टि

और राणा प्रताप अकबर को सन्धि-पत्र लिखने से विरत हो जाते है। यह कवि की अपनी नई उद्भावना है। वन बिलाव द्वारा रोटी ले भागने तथा राणा द्वारा अकबर को सन्धि-पत्र लिखने की घटना का एवं पृथ्वीराज के पत्र पर हमने 'नाटक अध्याय' मे चर्चा की है। अतः हम यहाँ 'हल्दीघाटी' के इस प्रसंग पर अधिक विस्तार से लिखने से विरत हैं।

कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने 'हल्दीघाटी' मे एक और नई घटना का उल्लेख किया है और दिखाया है कि जब भीलों द्वारा राजा मानसिंह बन्दी हो जाते हैं तो राणा प्रताप अपनी उदारता और सदाशयता का उज्ज्वल पक्ष उपस्थित कर उसे मुक्त कर देते हैं। ऐसी उदात्तता के गुणो से ही प्रताप पूजनीय और वन्दनीय हुए।

हिन्दी के छायावादी कवियो ने प्रकृति नटी का बड़ा ही मनोमुग्धकारी वर्णन किया है—कवि सुमित्रानन्दन पंत तो प्रकृति के कवि ही हो गए। अल्मोड़ा की प्रकृति-स्थली ने उन्हें कवि बनने की प्रेरणा दी। कवि श्यामनारायण छायावाद युग के कवि हैं। उन पर भी युगबोध का प्रभाव है। आपने 'हल्दीघाटी' काव्य मे कई स्थानों पर प्रकृति का मनोमुग्धकारी चित्रण किया है। विशेषकर दशम सर्ग मे तो लगता है जैसे कवि वीर-रस का नहीं शान्त-रस का संन्देशवाहक है। जितनी तन्मयता से आपने अरावली के रम्य प्राकृतिक सौंदर्य का वखान किया है—उसे देखने के लिए राजा मान सिंह 'हल्दीघाटी' की लड़ाई के पूर्व अपनी छावनी से कुछ मुगल सैनिकों को लेकर वहाँ की प्राकृतिक शोभा देखने निकल पडता है और गिरिजनों अर्थात् भीलो के द्वारा बन्दी हो जाता है—

ले सहचर मान शिविर से निर्झर के तीरे-तीरे।
अनिमेष देखता आया वन की छवि धीरे-धीरे।।
उसने भीलों को देखा उसको देखा भीलों ने।
तन में बिजली-सी दौड़ी वन लगा भयावह होने।।
शोणित-मय कर देने को वन-वीथी वलिदानों से।
भीलों ने भाले ताने असि निकल पड़ी म्यानों से।।
जय जय केसरिया बाना जय एकलिंग की बोले।
जय महादेव की ध्वनि से पर्वत के कण-कण डोले।।

('हल्दीघाटी' काव्य, दशम सर्ग, पृ० ११४)

भीलों ने मानसिंह को बन्दी बना लिया और तभी उधर से अपने साथियों सहित

महाराणा प्रताप वहाँ आ गए। वन्दी मानसिंह की बुरी दशा थी—चौबे जी दूबे जी बन गए थे—

लज्जा का बोझा सिर पर नत मस्तक अभिमानी था।
राणा को देख अचानक वैरी पानी-पानी था॥

(वही, पृ० ११५)

राणा प्रताप ने सहज वीर गति से आगे बढ़कर मानसिंह के बन्धन खोले और उस नर-नाहर ने अपने भील-भाइयों से वीरोचित वाणी संयत भाषा में कहा—

"मेवाड़ देश के भीलो, यह मानव-धर्म नहीं है।
जननी सपूत रण-कोविद योधा का कर्म नहीं है॥
अरि को भी धोखा देना शूरों की रीति नहीं है।
छल से उनको वश करना यह मेरी नीति नहीं है॥
अब उसे भी झुक-झुक कर तुम सत्कार समेत विदा दो।
कर क्षमा क्षमा-याचना इनको गल्हार समेत विदा दो॥

('हल्दीघाटी' काव्य, दशम सर्ग, पृ० ११५-१६)

यह कवि श्यामनारायण की अपनी उद्भावना है। शायद उन्होंने इस कारण भी राणा के "मानव-धर्म" को व्याख्यायित करने की चेष्टा की हो। क्योंकि आपने चतुर्थ सर्ग में सम्राट अकबर के "दीन-इलाही" धर्म का बखान किया है। कवि ने लिखा है—"राणा प्रताप से अकबर से इस कारण वैर विरोध बढ़ा।"

राणा प्रताप का औदार्य

बंगला के प्रसिद्ध नाटककार और कवि तथा रवीन्द्र के बड़े भ्राता ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर के "अश्रुमति" नाटक में हल्दीघाटी युद्ध के पहले मान ने राणा की पुत्री अश्रुमति का अपहरण करने का षडयन्त्र किया। युद्ध के शिविर से उसने सैनिकों को गुप्त रीति से राणा की पुत्री को उठा लाने का आदेश दिया। 'अश्रुमति' एक विवादास्पद नाटक है—जिस पर हमने 'नाटक अध्याय' में विचार किया है। ज्योतिरिन्द्रनाथ ने 'अश्रुमति' नाटक की रचना १८७६ ई० में की थी। उनके नाटक में जहाँ मानसिंह का प्रतिशोध निम्न स्तर का हो गया था, वहीं श्यामनारायण की 'हल्दीघाटी' में राणा का औदार्य आर्य-संस्कृति का उज्ज्वल नक्षत्र बन गया। 'रामायण' में भी जब रावण निहत्था हो गया था तो राम ने उसे पुनः शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध में आने का निमन्त्रण दिया था और उसे अवध्य छोड़ दिया था—यही वह आर्य-संस्कृति है, जिसकी परम्परा में बंगला के ही नहीं अपितु अन्य भाषाओं के मनीषियों ने राणा प्रताप की उस विरासत का शलाका-पुरुष बताया है।

आजादी का गायक

पं० श्यामनारायण पाण्डेय ने कवि 'दिनकर' की भाँति देश को जगाने के लिए 'हल्दीघाटी' खण्ड-काव्य की रचना की है। कवि 'दिनकर' ने 'हिमालय' कविता में लिखा है—

ओ मौन तपस्या लीन यती
पल भर तो कर नयनोन्मेष''''

देश को स्वतन्त्र करने के लिए कवि-साहित्यकार अपनी लौह लेखनी से देशवासियों को जगाकर स्वातन्त्र्य-संग्राम की ज्वाला को धधका रहे थे। 'हिमालय' को प्रतीक बना कर जिस प्रकार 'दिनकर' ने राष्ट्र की जनता को जगाया वैसे ही कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने 'हल्दीघाटी' के प्रथम सर्ग को इन पंक्तियों से आरम्भ किया है—

वण्डोली है यही, यहीं पर है समाधि सेनापति की।
महातीर्थ की यही वेदिका, यही अमर-रेखा स्मृति की॥

× + +

सजी हुई है मेरी सेना, पर सेनापति सोता है।
उसे जगाऊँगा, विलम्ब अब महासमर में होता है॥

('हल्दीघाटी' काव्य, प्रथम सर्ग, पृ० २५-२६)

कवि कहता है आजादी के दीवाने भारतवासियों को अंग्रेजी दासता से मुक्ति दिलाने के लिए सेना तैयार है, पर सेनापति राणा प्रताप सोया है—उसे जगाना है गुलामी की जंजीरों को काटने के लिए।

'हल्दीघाटी' के एकादश सर्ग में पृ० ११६ पर कवि कहता है—

जग में जाग्रति पैदा कर दूँ, वह मंत्र नहीं, वह तंत्र नहीं।
कैसे वांछित कविता कर दूँ, मेरी यह कलम स्वतंत्र नहीं॥

सचमुच उस समय अंग्रेजों का शासन था—राजनीति में 'गाँधीवाद' का युग था और साहित्य में 'छायावाद'। अंग्रेजी-राज्य में देशवासियों को आजादी के लिए जगाना जोखिमभरा काम था, जिसे बंगला-हिन्दी के ही साहित्यकारों ने नहीं किया। भारत की तमाम भाषाओं में स्वतन्त्रता की आरती उतारी गई। श्यामनारायण जी की कविता में युग-बोध भी झलकता है। आपने 'हल्दीघाटी युद्ध को न्याय और धर्म का युद्ध कहा है। मानसिंह जब मुगलों की सेना लेकर हल्दीघाटी के युद्ध के लिए प्रस्थान करता है तो कवि कहता है—

मानसिंह का था प्रस्थान सत्य-अहिंसा का बलिदान।
कितना हृदय-विदारक ध्यान शत-शत पीड़ा का उत्थान॥
('हल्दीघाटी' काव्य, षष्ट सर्ग, पृ० ८२)

कवि को अपनी बात निर्भीकता से कह कर देशवासियो को स्वतन्त्रता के लिए जगाना था। उसे न अंग्रेजो के अत्याचार का खौफ था न तथाकथित प्रगतिशील आलोचकों का भय था। वह तो सपाट बयानी मे कह रहा था—

ले महाशक्ति से शक्ति भीख, व्रत रख वनदेवी रानी का।
निर्भय होकर लिखता हूँ ले आशीर्वाद भवानी का॥
मुझको न किसी का भय बंधन, क्या कर सकता संसार अभी।
मेरी रक्षा करने को जब राणा की है तलवार अभी।
('हल्दीघाटी' काव्य, अष्टम सर्ग, पृ० ९५)

कवि ने 'हल्दीघाटी' की भूमिका के पृष्ठ २२ पर लिखा है—"मेवाड़ उद्धारक! आज मैं अपने तैंतीस करोड़ सहयोगियो के साथ तुझे जगा रहा हूँ।" उस समय भारत की जनसंख्या ३३ करोड़ थी और लोग तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की बात कहा करते थे।

कवि आगे लिखता है—"तू समाधि की चट्टानों को फेंक दे और गरज कर उठ जा। खल-दल चकित और चिन्तित हो उठे। वैरी का मणिमय सिंहासन भय से कांप उठे और पराधीन भारत को उसका खोया हुआ सेनापति मिल जाय।"

साम्प्रदायिकता बनाम सिद्धान्त

पं० श्यामनारायण पाण्डेय ने 'हल्दीघाटी' की भूमिका के पृष्ठ ११ पर लिखा है—"सूरमा! भला तू कब अवसर चूकनेवाला था? पहले ही से हल्दीघाटी के समीप एक मनोहर उपत्यका मे बाईस हजार सिपाहियो को लेकर शत्रु की बाट देख रहा था और अरावली की उन्नत चोटी पर गर्वपूर्ण केसरिया झण्डा फहरा रहा था। तेरी सेना मे हिन्दू-मुसलमान दोनो सम्मिलित थे, समर-यज्ञ मे दोनो अपने प्राणो की आहुतियाँ देकर जननी-जन्मभूमि की रक्षा करना चाहते थे। इसी से कहा जाता है कि हल्दीघाटी का युद्ध साम्प्रदायिक युद्ध नही था, बल्कि अपने-अपने सिद्धान्तो की लड़ाई थी।"

समीक्षा

इस प्रकार कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने "सत्रह सर्गो मे अपने खण्ड-काव्य 'हल्दीघाटी' की रचना की है। यह खड़ी बोली हिन्दी का सर्वाधिक चर्चित काव्य है। 'हल्दीघाटी' के दूसरे संस्करण मे कवि ने रंगलाल की भाँति अपनी बात को दोहराया है

केसरीसिंह वारहठ का 'प्रताप-चरित्र' काव्य

वारहठ का 'प्रताप-चरित्र' काव्य

कवि श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी' काव्य के समान राजस्थानी मे ठाकुर केसरी सिंह वारहठ का 'प्रताप-चरित्र' काव्य है।

महाराणा प्रताप के ओजस्वी चरित्र को लेकर १९वीं शताब्दी में रंगलाल वन्दोपाध्याय ने बंगला में काव्य रचना की, उसी परम्परा में बीसवीं शताब्दी में कई काव्य हिन्दी, राजस्थानी और देश की अन्य भाषाओ में लिखे गए। १९५१ ई० मे ठाकुर केसरीसिंह वारहठ का 'प्रताप-चरित्र' काव्य राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा मे कलकत्ता से दूसरी वार प्रकाशित हुआ। इस काव्य-कृति में कई नई सूचनाएँ हैं तथा भाषा प्रभावोत्पादक है। यह भी संयोग की बात है कि राणा प्रताप के चरित्र को लेकर रंगलाल की कृति 'शूर-सुन्दरी' का प्रकाशन बंगला भाषा में १८६८ ई० मे कलकत्ता के प्रख्यात प्रकाशन सस्थान वसुमति कार्यालय से हुआ और तिरासी वर्ष बाद अर्थात् १९५१ ई० मे राणा प्रताप पर वारहठ का 'प्रताप-चरित्र' बड़ाबाजार (कलकत्ता) के १८६, क्रॉस स्ट्रीट स्थित श्री महालचन्द बयेद के ओसवाल प्रेस से हुआ।

कवि 'दिनकर' का वक्तव्य

"प्रताप-चरित्र" की भूमिका राष्ट्रीय कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखी है। आपने राणा प्रताप के स्वातन्त्र्य-संघर्ष का श्रद्धा से स्मरण किया है तथा इस बात पर खेद प्रकट किया है कि देश मे एक ऐसी हवा बह रही है, जिसमें शिवाजी और प्रताप का नाम लेना भी साम्प्रदायिकता की कोटि में गिना जाता है। आपने भी 'जौहर' के कवि और वनस्थली विद्यापीठ के प्रो० सुधीन्द्र की भाँति भूषण की वीर-रस की कविताओ पर लगनेवाले 'गाँधीवाद' के प्रतिबन्ध पर आपत्ति उठाई है। हम 'दिनकर' के विचारों को यहाँ उन्ही की भाषा में प्रस्तुत कर रहे हैं—

"महाराणा प्रताप वीरता की उस भावना के प्रतीक हैं, जिनके अधीन जातियाँ अन्यायियो की सत्ता के विरुद्ध बगावत करती हैं और मनुष्य जुल्मो के आगे गर्दन झुकाने से इन्कार कर देता है। किन्तु, दुःख की बात है कि हिन्दी में प्रताप-साहित्य की वैसी सृष्टि नहीं हो सकी, जैसी होनी चाहिए थी। अजब नहीं कि तुलसीदास उनके समकालोन रहे हो, किन्तु हिन्दी के इस राष्ट्रीय कवि ने अपने समय के सबसे बड़े राष्ट्रीय सूरमा का नाम सुना था या नहीं, इसका कोई प्रमाण नही मिलता।" (प्रताप-चरित्र, भूमिका, पृष्ठ क)

तुलसी की मानसिकता

उल्लेखनीय है कि महाकवि तुलसीदास ने रामकथा का अमर काव्य 'रामचरित मानस' तो लिखा, पर अपने युग के बारे में उन्होंने कोई विशेष चर्चा नही की। 'मानस' के 'उत्तरकाण्ड' में कलिकाल के वर्णन को तत्कालीन सामाजिक स्थिति से जोड़ लें तो वात जुदा है। सचमुच ऐसे युग-द्रष्टा और युगश्रष्टा कवि से उनके अपने युग की घटनाओं का अनुल्लिखित रहना आश्चर्य मे डालता है। अवश्य ही उनके बारे मे दो प्रसंग आते हैं—एक है—

संतन को कहाँ सीकरी सों काम ?
आवत-जात पनही घिसे मुख छूटे हरि नाम ॥

दूसरा प्रकरण है—

हम चाकर रघुवीर के पटो लिख्यो दरवार।
तुलसी अव का होहिंगे नर के मनसवदार ॥

कहा जाता है कि सम्राट अकवर ने एक वार तुलसीदासजी को फतेहपुर-सीकरी मे बुलाया था और उन्हें पुरस्कृत करने अर्थात् कोई मनसवदार बनाने की इच्छा की थी, जिसके प्रत्युत्तर मे ही कदाचित् तुलसी के उक्त प्रसंग जनमानस में प्रचारित हैं। तुलसी राम के प्रति समर्पित थे और प्राकृत-जन का गुणगान करना वे बुरा मानते थे। सम्भव है इस मानसिकता के कारण समकालीन वीरों का गुणानुवाद तुलसी को अभीष्ट न रहा हो ?

साम्प्रदायिक ऐक्य ?

दिनकर जी ने आगे लिखा है—"रीतिकाल में वीर काव्य नही लिखे गये, यह बात नही है। हम्मीर पर कई काव्य सामने आये। असल मे औरंगजेव के खिलाफ उत्तरी और दक्षिणी भारत मे जो विद्रोह चल रहा था, वह हिन्दुओं के भीतर कसमसाती हुई किसी विद्रोही भावना का ही सूचक था और साहित्य पर उसका प्रभाव पड़ रहा था। रीतिकालीन वीर काव्यों से यह सकेत अवश्य मिलता है कि कविगण वीरता के कुछ सही आलम्बनों की खोज कर रहे थे, वह शारीरिक हलचल का काल था और हम्मीर जैसे वैयक्तिक वीर को ही अपनी अभिव्यक्ति का यथेष्ट माध्यम मानकर कवियों ने अपने कर्तव्य की इतिश्री मान ली। भारतेन्दु काल में और उसके बाद हम प्रताप-सम्बन्धी साहित्य प्रस्तुत करने की दिशा मे दो-एक सफल प्रयास देखते हैं। किन्तु, उसके उपरान्त देश में एक ऐसी हवा वही जिसमें शिवाजी और प्रताप का नाम लेना भी गुनाह हो गया। हिन्दू जाति हिन्दू नहीं रह कर गैर-मुस्लिम

कहलाने लगी और भूषण की कवितायें इसलिए वर्जित की जाने लगीं कि उनसे हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना को खतरा होने का भय था। साम्प्रदायिक ऐक्य के विधान का इससे अधिक नकली तरीका इतिहास में, शायद और नहीं मिलेगा। ....अगर अतीत के इतिहास का भस्मीभूत होना इस ऐक्य की वृद्धि के लिए अनिवार्य है तो उसके लिए प्रताप और शिवाजी को ही नहीं संस्कृति के अनेक ऐसे नेताओं को भी जलना पड़ेगा जिन पर हिन्दू और मुसलमान, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से श्रद्धा रखते आये हैं।" (वही, पृ० ख, ग, घ)

खेद यहाँ इन पंक्तियों के लेखक को भी है, कि राष्ट्रकवि दिनकर ने यत्र-तत्र तो प्रताप और चित्तौड़ का नाम लिया पर न तो उनकी कोई काव्य कृति सामने आई और न उनके इतिहास ग्रन्थ 'संस्कृति के चार अध्याय' में इसका उल्लेख हुआ, वल्कि पं० जवाहरलाल नेहरू की कृपाकांक्षा के लिए साम्प्रदायिक ऐक्य का नया ताश का घर कवि ने खड़ा कर दिया। आज भी वाम और दक्षिण के घेरों में बंटी देश की राजनीति झकझोले खा रही है। उधार की ली हुई बैसाखी पर खड़े हो कर लोग तलवार भाँज रहे हैं—भारतीय राष्ट्रीयता के नाम पर नहीं। धर्मनिरपेक्षता का ढकोसला भी सत्ता की राजनीति का एक अस्त्र है। अब धर्म को राजनीति से अलग करने का नारा दिया जा रहा है पर सत्ताधारी कथनी और करनी में कोई तालमेल नहीं बैठा पाते। वस्तु, दिनकर जी की उक्त भूमिका के भाव उस समय के हैं, जब वे मुजफ्फरपुर के लंगटसिंह कॉलेज मे हिन्दी के प्राध्यापक थे। बाद मे वे राज्य सभा के सदस्य और भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने। दिनकर जी की बाल-साहित्य की एक कहानी पुस्तक "चित्तौर का साका" हमे अवश्य मिलती है, जिस पर हमने 'कहानी अध्याय' मे चर्चा की है।

कवि का निवेदन

'प्रताप-चरित्र' के रचयिता केसरीसिंह बारहठ ने पुस्तक के 'निवेदन' मे कहा है कि काव्य लिखते हुए मैंने कोरी कल्पना का ही आधार नहीं लिया है। हाँ, यह अवश्य है कि मैंने रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर ओझा के शोध को ही आधार नहीं माना है। जहाँ-तहाँ मैंने राजपूताने के इतिहास के जन्मदाता कर्नल टॉड और महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण की कृतियो (वंशभास्कर) का भी आश्रय लिया है। आपने आगे लिखा है—"इसी प्रकार इस काव्य को साम्प्रदायिक और राजनीतिक दृष्टि से पक्षपात युक्त समझना भी इसके प्रति अन्याय होगा। महाराणा प्रताप ने

स्वतंत्रता की रक्षा के लिए युद्ध किया था, जिसमें उनकी तरफ हकीम सूर जैसे मुसलमान योद्धा भी थे। इसी प्रकार बादशाह अकबर की सेना में अब्दुर्रहीम खानखाना जैसे हिन्दू-प्रेमी और अनेक राजपूत राजा लड़े थे। मेरी यह रचना सं० १९८४ में ही समाप्त हो गई थी, किन्तु कई बाधाओं के कारण पूरे सात वर्ष बाद इसे मुद्रित करा सका हूँ।" उल्लेखनीय है कि 'प्रताप-चरित्र' का प्रकाशन सं० १९३४ ई० में ही हो चुका था। कलकत्ता से १९५१ ई० मे उसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ।

"प्रताप-चरित्र" काव्य

केसरीसिंह बारहठ ने पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर ही लिख दिया है कि इसकी राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है। असल मे राजस्थान में जो काव्य लिखे गए वे डिंगल या पिंगल में मिलते है। डिंगल राजस्थान की प्राचीन भाषा है और पिंगल ब्रजभाषा का पुराना रूप है। चारण और भाटो ने अक्सर इन दोनो भाषाओ का प्रयोग किया है। कवि पृथ्वीराज के काव्यो मे भी दोनो भाषाओ का नमूना मिलता है। केसरीसिंह बारहठ स्वयं श्रेष्ठ चारण कवि हैं।

'प्रताप-चरित्र' की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमे राणा प्रताप के जीवन की झाँकी ज्यादा विस्तार से सामने आई है। कवि ने जहाँ सभी ऐतिहासिक घटनाओ का वर्णन किया है, वही राणा प्रताप के हल्दीघाटी युद्ध तथा अन्य युद्धो मे वीरगति को प्राप्त होनेवाले वीरो के नामो का उल्लेख किया है, जिनमें मुसलमान वीर भी हैं। कवि ने किम्बदन्तियो का भी उल्लेख किया है। राणा के पुत्र अमर सिंह के पुत्र करण सिंह के जन्म पर पितामह प्रताप की खुशी का उल्लेख हुआ है और अमर की पत्नी तथा उसकी ननद अर्थात् राणा प्रताप की पुत्री का वार्तालाप 'ननद-भावज' प्रसंग मे दिखलाया है।

राणा प्रताप की दिन-दिन बढ़ती साहसिकता और बहादुरी पर सम्राट अकबर की नींद हराम हो गई—देखिए—

अकबर सुनि-सुनि खबर यह, खिन-खिन ह्वै मन खीन।
कहहु खुदा कैसे करौं? अब पातल आधीन ॥ १ ॥

('प्रताप-चरित्र,' पृ० २४)

राजा मानसिंह और राणा प्रताप के वार्तालाप का एक अंश यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें प्रताप अपनी प्रतिज्ञा का बखान करते हैं—

प्यारी है स्वतंत्रता सबै ही जीव धारिन कों,
छोरि कर याको मैं तो मन बहलाऊँ ना।

ह्वै के परतंत्र तीन लोक को न राज चाहौं,
काहू के डराए हू तैं दिल दहलाऊँ ना।
देवन के देव एकलिंग हैं हमारे नाथ,
ताके अतिरिक्त सीस काहू पै नमाऊँ ना।
हार जाऊँ समर, उजार जाऊँ देस, देह—
डारि जाऊँ तोऊ जमींदार कहलाऊँ ना ॥ ६ ॥ (वही, पृ० ३४)

जैसे पं० श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी' में राजा मानसिंह को भीलों ने बन्दी बना लिया था—वैसे ही 'प्रताप-चरित्र' में भी इस प्रसंग का वर्णन है। यह प्रसंग कविराज श्यामलदास के 'वीर-विनोद' के चौथे प्रकरण मे पृ० १५१ पर मिलता है। महाराणा प्रताप मानसिंह को मुक्त करा देते हैं। उनकी इस सदाशयता का वर्णन कवि ने 'महाराणा की वीरोचित उदारता' शीर्षक प्रसंग में किया है। इसी प्रकार जब राणा के पुत्र अमर सिंह द्वारा रहीम खानखाना की वेगम एक युद्ध में बन्दी हो जाती है तो राणा प्रताप अमर को यह उपदेश देकर कि स्त्री जाति का अपमान वीरों का काम नहीं है, वेगम को ससम्मान नवाव खानखाना के हरम में पहुँचा देते हैं। इस घटना का उल्लेख भी 'वीर-विनोद' के चौथे प्रकरण मे पृ० १५५ पर हुआ है। इसी घटना पर हिन्दी के छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने 'महाराणा का महत्व' काव्य लिखा है तथा श्यामनारायण की 'हल्दीघाटी' में भी इसका वर्णन हुआ है।

केसरीसिंह वारहठ ने 'प्रताप चरित्र' मे जो नई सूचनायें दी हैं—वे इस प्रकार हैं—महाराणा प्रताप के पौत्र (भँवर कर्णसिंह) का जन्म—

सोरह सौ चालीस महँ, पातल पुन्य प्रभाव।
जनम्यो अमर कुँमार के, भँवर करन सदभाव ॥ १ ॥
(वही, पृ० १५६)

राजस्थान मे राजा का पुत्र कँवर, पौत्र भँवर तथा प्रपौत्र तँवर कहलाता है। इसीलिए कँवर अमर के पुत्र को 'भँवर करन' कहा गया है। 'वीर-विनोद' में भँवर कर्णसिंह के जन्म का उल्लेख चौथे प्रकरण में पृ० १६० पर हुआ है, जिसमें लिखा गया है कि महाराणा प्रताप को पौत्र-रत्न की प्राप्ति सं० १६४० मे हुई।

महाराणा प्रताप की सेना में मुसलमान पठान वीर थे, जिन्होंने मुगल सेना के विरुद्ध युद्ध किया। 'प्रताप-चरित्र' में ऐसे ही एक पठान वीर शाहजादा हकीम सूर की वीरता का वर्णन है, जिसने प्रताप के लिए युद्ध मे प्राणों की आहुति दी। देखिए—

आयो शरनागत यहाँ, मुगलन तें दुख मान ।
खूब लर्‌यो भट खलन तें, सूर हकीम पठान ॥ १ ॥
(वही, पृ० १०७)

इस काव्य में वन विलाव द्वारा राणा की बच्ची के हाथ से रोटी ले भागने की बात तो है, पर उससे दुःखी होकर राणा ने अकबर को सन्धि-पत्र नहीं लिखा। कवि ने दिखाया है कि अकबर के गुप्तचरों द्वारा भ्रमित होकर राणा के सन्धि-पत्र की बात कही गई। इसीलिए बादशाह ने कवि पृथ्वीराज से इसकी पुष्टि कराई। 'प्रताप-चरित्र' मे कवि पृथ्वीराज के ऐतिहासिक पत्र का ओजस्वी भाषा मे उल्लेख है तथा इस पत्र से राणा को असीम बल की प्राप्ति हुई, इसका भी उल्लेख है। देखिए—

हृदय विदारक खबर इक, यहि ठाँ पहुँचो आन ।
उत्तर सत्यासत्य को, पातल करहु प्रदान ॥ ४ ॥
हमरे अरु पतशाह के, बढ़िगो इहाँ विवाद ।
यातो करिहौं आत्म-बलि, या करिहौं आह्लाद ॥ ५ ॥
तकिहो सेवा तखत की, रखिहो रजवट रेख ।
हिन्दुनपति ! लिखि दीजिये, इन दोउन मह एक ॥ ६ ॥
(वही, पृ० २००)

टॉड के 'राजस्थान' के 'मेवाड़ अध्याय' के पृ० २०६ पर लिखा है—"एक दिन अपनी झोपड़ी मे राणा थकान और बेबसी की दशा में लेटे हुए अपने सरदारो के साथ बातें कर रहे थे। अचानक उनके नेत्रो से आँसू गिरते हुए देख कर सरदारों ने इसका कारण पूछा। उनको उत्तर देते हुए राणा ने कहा—'अब मेरा अन्तिम समय है। लेकिन एक ही कारण है जिससे मेरे प्राण नहीं निकल रहे हैं।' इतना कह कर राणा ने सरदारो की तरफ देखा और फिर कहा—'आप लोग मेरे सामने प्रतिज्ञा करें कि अपने प्राणो के रहते हुए आपलोग मेवाड़ की भूमि पर शत्रुओ को अधिकार न करने देंगे। आपलोगो के मुँह से इस प्रकार का आश्वासन पाकर मैं सदा के लिए आँखें बन्द कर लूँगा। मेरा लड़का अमर सिंह अपने पूर्वजो के गौरव की रक्षा न कर सकेगा, इस बात को मैं जानता हूँ। वह शत्रुओ से अपनी मातृभूमि को सुरक्षित नही रख सकता। अमर सिंह स्वभाव से विलासी है। जो कष्टो का सामना नहीं कर सकता। वह अपने जीवन मे कभी कोई बड़ा काम नही कर सकता।' इतना कहने के बाद राणा का गला भर आया। कुछ रुक कर उन्होने फिर कहना प्रारम्भ किया—'एक दिन इस झोपड़ी मे प्रवेश करने के समय अमर सिंह अपने सिर की पगड़ी उतारना भूल गया था। इसलिए झोपड़ी के दरवाजे पर लगे हुए बाँस से टकरा कर उसकी पगड़ी नीचे गिर गयी। अमर सिंह को यह देख कर

बुरा लगा। उसने दूसरे दिन मुझसे कहा, रहने के लिए ऐसा महल बनवा दीजिए, जिससे इस प्रकार का कोई कष्ट न हो।'

(टॉड लिखित 'राजस्थान का इतिहास', अनुवादक केशवकुमार ठाकुर पृ० २०६)

नई अभिव्यक्ति

इस प्रसग का वर्णन 'प्रताप-चरित्र' मे नई कल्पना और व्यंजना के साथ अभिव्यक्त हुआ है। पेशोला के तट पर राणा प्रताप पर्णकुटि बना कर रहते थे और आजादी का अलख जगाते थे। उनके परिवार को भी कष्ट भोगने पड़ रहे थे। एक दिन रात को राणा प्रताप अपने पुत्र अमर को झोंपड़ी के पास आये। उस समय भयंकर वर्षा हो रही थी और चारो तरफ अन्धकार छाया हुआ था। रात काफी बीत गई थी पर अमर और उसकी पत्नी सो नहीं पाये थे—क्योंकि झोपड़ी में पहाड़ों का पानी बड़े वेग से आ रहा था। कुमार मिट्टी की पाल (दीवार) बनाने की कोशिश करता पर सब व्यर्थ हो जाता। झुंझला कर अमर ने कहा—'समय की क्या गति है कि राजा के भवन मे ऐसी जगह नहीं है जहाँ छप्पर से और डंठलो से पानी न चूता हो।' इसके उत्तर में अमर की पत्नी ने भी ऐसे ही कातर वचन कहे—'सचमुच हम ऐसे राजा हैं कि सिर छिपाने को भी जगह नसीब नहीं तब औरो की क्या गति होगी ?'

पुत्र और पुत्रवधू के इस वार्तालाप को सुनकर राणा के मन में भारी क्लेश हुआ और उन्हें दोनो के विलासी जीवन पर क्षोभ हुआ। देखिए कवि का वर्णन—

अकस्मात आए अधिप, कुटि जहँ राजकुमार।
जागत दुःख से दम्पति, यहुँ जागत सिरदार ॥ ५ ॥
गिरन खाल तें जल गिरत, परन शाल महँ पूर।
बाँधत पाली कुमर वधु, तऊ वहि जावत धूर ॥ ६ ॥
कुमर कही हे समय की, कैसी गति कठोर।
भूपति हू कों भौन में, मिले न निरचू ठोर ॥ ७ ॥
कुमरानी मुख तें कह्यो, कातर बचन करीब।
ऐसे हम नजि हैं अधिप, वजि हैं कौन गरीब ॥ ८ ॥
कुमर कही हम का करें, मानत नहिं महारान।
सरब काल स्वाधीनता. समुझत प्रान समान ॥ ९ ॥
सुनि लीनी पातल सरब, अधिक कुपे अधिराज।
प्रसर्यो दिव परभात महँ, सब ही जुर्यो समाज । १० ॥

(वही, पृ० १७६-१७७)

सचमुच यह कचोटनेवाली बात है कि राणा प्रताप देश की जिस स्वाधीनता को अपना सर्वस्व समझते थे और उसके लिए कष्टभरा जीवन बिता रहे थे, उससे उनका पुत्र और पुत्रवधू ही परेशान थे। यह कितनी दारुण और हृदय-विदारक बात है। राणा ने दूसरे ही दिन सम्पूर्ण परिवार और सरदारों के सामने स्वाधीनता के लिए कष्ट भोगने की बात कही और सबों ने एक स्वर में देश के लिए कष्ट सहने, मर मिटने की प्रतिज्ञा की।

कवि ने अन्त में पृ० २३६ पर राणा प्रताप के वंश और सन्तानों का उल्लेख किया है—

महाराना परताप के, इक दस भए विवाह।
सत्रह सुत और द्वे सुता, ताके योग्य सराह॥ १॥

कवि ने सभी रानियों, पुत्रों और पुत्रियों के नाम गिनाये हैं। कवि केसरीसिंह बारहठ ने टॉड के 'राजस्थान' और 'वीर-विनोद' से तथ्यों का हवाला दिया है और अपनी बात को पुष्ट किया है। कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाले इस काव्य की छपाई और रूप-सज्जा नयनाभिराम है। पुस्तक में कई सुन्दर चित्र हैं।

कवि केसरीसिंह बारहठ ने 'प्रताप-चरित्र' के अतिरिक्त 'राजसिंह चरित्र', 'दुर्गादास चरित्र', 'जसवन्तसिंह चरित्र' और 'रूठी राणी' नामक ग्रन्थ भी लिखे हैं। आप बहुश्रुत विद्वान, इतिहास-प्रेमी एवं आशुकवि थे। राजस्थान में इनके समान दूसरा चारण कवि नहीं मिलता। वीर-रस की कविता करने में आप निपुण थे। इन्हें घनाक्षरी छन्द अधिक पसन्द था। इनकी अभिव्यंजना की शैली अनूठी है। भाव की सच्चाई, कल्पना की मौलिकता और सुपुरुषोचित उक्ति इनकी कविता के विशेष गुण हैं। ऐसे कवि की काव्य कृति 'प्रताप-चरित्र' का प्रकाशन (द्वितीय संस्करण) महानगर कलकत्ता से हुआ, जो बड़े गौरव की बात है। कवि केसरीसिंह बारहठ का जन्म मेवाड़ के सोन्याणा ग्राम में सं० १९२७ की आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को हुआ था।

बंगला-साहित्य में 'राजस्थान' पर अन्य काव्य कृतियाँ

रंगलाल वन्द्योपाध्याय से अनुप्रेरित होकर जिन्होंने राजपूत आख्यायिकाओं को लेकर काव्य रचना की उनमें उल्लेख योग्य हैं हरिपाल निवासी वनवारीलाल राय। इनके काव्य-ग्रन्थ 'जयावती' का प्रकाशन १८६५ ई० में हुआ। इस पर 'पद्मिनी उपाख्यान' का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। काव्य की नायिका जयावती चित्तौड़ अधिपति रत्नसेन की कन्या है और नायक जयपाल मुल्तान का युवराज है। इस कहानी में भी सुल्तान अलाउद्दीन प्रतिनायक है, किन्तु काव्य विषादान्त न होकर सुखान्त रहा है। कवि ने कई नये छन्दों का प्रयोग किया है, यहाँ तक कि संस्कृत छन्दों का भी। उदाहरण-स्वरूप इन्द्रवज्रा छन्द को यहाँ उद्धृत किया जा सकता है—

पाठान भेसे अति कोप-नीरे।
अशलील भाषे कय हिन्दू वीरे॥
काहार दर्पे दिस गालि नाना।
तोदेर आच्छे बल भालो जाना॥

इसी प्रकार रामकुमार नन्दी ने 'वीरांगना पत्रोत्तर काव्य' १८७३ ई० में, प्रसन्न कुमार नाग ने 'राजपूतागना काव्य' ढाका से १८७५ ई० में एवं यादवानन्द राय ने 'वीर सुन्दरी' काव्य १८६८ ई० में लिखा। ये सभी काव्य-ग्रन्थ राजपूत गाथाओं से सम्बन्धित हैं और टॉड के 'राजस्थान' पर आधारित हैं।

खड्ग परिणये

महर्षि देवेन्द्रनाथ की चतुर्थ कन्या एवं विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बड़ी बहन स्वर्ण कुमारी देवी (१८५५ ई० से १९३२ ई०) बंगला-साहित्य की श्रेष्ठ लेखिका है। आपने उपन्यास, नाटक और कविताओं की रचना की। स्वर्ण कुमारी देवी का काव्य 'खड्ग परिणये' टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ पर आधारित है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन 'भारती' पत्रिका के १८८० ई० के अंक में प्रकाशित हुआ। काव्य की भूमिका में कवयित्री ने महात्मा टॉड का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है।

'खड्ग परिणये' काव्य की कहानी मेवाड़ के राणा रत्नसेन और अम्बर के राजा पृथ्वीराज की कन्या के विवाह वर्णन से सम्बन्धित है। कहा जाता है कि गुप्त रूप से पृथ्वीराज की कन्या और रत्नसेन ने गंधर्व-विवाह कर लिया था। इसकी सूचना राजा पृथ्वीराज को नहीं थी। इस कारण विवाह योग्य होने पर उन्होंने कन्या का विवाह

सम्बन्ध बूंदी के हाडावंशीय राजा सूरजमल के साथ तय कर दिया। राजपूत वाला ने लज्जावश किसी से अपने पूर्व विवाह की बात नहीं कहो। फलतः विवाह मे कोई रुकावट उपस्थित नही हुई। सूरजमल के इस आचरण से उनको आघात लगा। राणा सूरजमल के इस अपमान का वदला लेने के लिए तरह-तरह के मनसूबे बनाने लगे। उल्लेखनीय है कि सूरजमल और राणा रत्नसेन मे आत्मिक सम्बन्ध था। सूरजमल की बहन से राणा का विवाह हुआ था। इस प्रकार वे सूरजमल के बहनोई थे।

राणा ने बासन्ती मृगया याने अहेरिया के अवसर पर अपमान का बदला निकालना चाहा। वे अपने सरदारों और सामन्तो के साथ शिकार खेलने जगल की ओर चले। बूंदी के राजा सूरजमल भी उनके साथ थे। बूंदी के हाडा लोग मेवाड़ के पूरब के पार्श्व की पहाड़ियो मे रहते थे। यद्यपि प्रकट मे उनका राज्य मेवाड़ के अन्तर्भुक्त नही था, परन्तु वे मेवाड़ के राणाओ की पूजा करते थे। किन्तु राणा रत्नसिंह की कुबुद्धि से बूंदी के साथ मेवाड़ का जो बैरभाव हुआ, उससे दोनो राज्यो की मित्रता का बन्धन कुछ दिन के लिए ढीला पड़ गया।

शिकार खेलते-खेलते राणा एक घोर वन मे पहुँचे। उनके साथी पीछे रह गए। केवल सूरजमल साथ था। मौका देखकर राणा ने सूरजमल पर तलवार का वार किया! सूरजमल को चोट लगी, वह घोड़े से गिरा, पर मरा नही। थोड़ी ही देर मे दुपट्टे से उसने घाव को कस कर बाँधा और आततायी रत्नसेन को तीक्ष्ण दृष्टि से चारो ओर देखने लगा। राणा भाग खड़े हुए। तब सूरजमल ने दुःख और क्रोध से अत्यन्त पीड़ित होकर कहा—"अरे कापुरुष! तुम भाग सकते हो, पर तुम्हारे इस आचरण से मेवाड़ के श्वेत यश पर सदा के लिए कलंक का टीका लग गया।" राणा ने समझा था कि सूरजमल मर गया है, पर उसे जीवित जानकर उन्होंने पुनः आक्रमण किया, किन्तु नियति का खेल कुछ और ही था और उस कुबुद्धि का फल उन्हे तत्काल मिल गया और उनका प्राणान्त हो गया।

राणा संग्राम सिंह के बाद १५३० ई० मे राणा रत्नसेन मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे थे और उन्होने कुल पाँच वर्ष राज्य किया था। यद्यपि धीरता, वीरता और अन्य गुणो मे वे अपने पिता संग्राम सिंह के समान थे, पर उक्त कुबुद्धि की घटना ने उनका शीघ्र ही अन्त कर दिया।

इसी आख्यान का वर्णन स्वर्ण कुमारी देवी ने 'खड्ग परिणये' काव्य मे किया है। इस काव्य की कथा टॉड के 'राजस्थान' से संग्रहीत है—देखिए—

"Rutna (1530 A D.), who possessed all the arrogance and martial virtue of his race. Like his father (Rana Sanga), he determined to make the field his capital, and commanded that the gates

of Cheetore never should be closed, boasting that its portals were Delhi and Mandoo.' Had he been spared to temper by experience the exuberance of youthful impetuosity, he would have well seconded the resolution of his father, and the league against the enemies of his country and faith But he was not destined to pass the age always dangerous to the turbulent and impatient Rajpoot, ever counting strife if it would not find him.

He had married by stealth the daughter of Prithi Raj of Amber, probably before the death of his elder brothers made him heir to Cheetore. Unfortunately, it was kept but too secret; for the Hara prince of Boondi, (Surajmal) in ignorance of the fact, demanded and obtained her to wife; and carried her to his capital.

x x x

The maiden of Amber saw no necessity for disclosing her secret, or refusing the brave Hara, of whom fame spoke loudly, when Rutna delayed to redeem his proxy. The unintentional offence sank deep into the heart of the Rana, and though he was closely connected with the Hara, having married his sister, he brooded on the means of revenge, in the attainment of which he sacrified his own life as well as that of his rival. (Ibid, Page 247-8).

टॉड ने इस घटना की नायिका का कोई नामोल्लेख नही किया है, पर कवयित्री ने उसका नाम अलका बताया है। काव्य-ग्रन्थ में दूसरा एक काल्पनिक चरित्र है चपला। चपला की कहानी में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अलका के साथ रत्नसेन ने गुप्त रीति से विवाह किया और फिर भी उसे अपने घर नही लाया। इसका कारण कवयित्री ने दिखाने की चेष्टा की है, लेकिन तर्क गले नही उतरता।

प्यारीशंकर दासगुप्त ने 'महाराणा प्रताप सिंह' काव्य-ग्रन्थ का प्रणयन १६०० ई० में किया। आठ सर्गो में यह काव्य-ग्रन्थ विभाजित है तथा इसमे प्रताप के जीवन की प्रमुख घटनाओ का विवरण है। काव्य के आरम्भ मे कवि ने कहा है—

केनो आज दासभूमे वीरत्व वाखान,
विजन कानने केन तूरीर निनाद,
जार रक्ते वीर हृदि ना हबे स्पन्दित।

कवि को देश की गुलामी पर क्षोभ है और वह देशवासियो को जगाने के लिए कहता है कि आज पराधीन देश मे वीरो के बखान का क्या प्रयोजन है? अरण्य-रोदन की क्या आवश्यकता है? जब तक देशवासियो की धमनियो मे प्रवाहित होने वाला रक्त

पराधीनता की ग्लानि से न उत्तप्त हो उठे तब तक वीरगाथाओं का कोई मूल्य नहीं। इसी अवधारणा को हृदय में संजोकर कवि ने भारतीय समाज को गुलामी की जंजीरें तोड़ने के लिए जगाया है।

आगे कवि का दुःख देखिए—

हाय ए भारते केया गुणेर करये सेवा
पेत्रा गाय वीर कीर्ति के जाने गाइते
नतुवा विदेशवासी वीर मोरा भालोवासी
भारत-गौरव वीरे नाहि श्रद्धा चिते।

राजमंगल

कविवर नवीनचन्द्र की अनुप्रेरणा से कवि राजेन्द्र नारायण मुखोपाध्याय ने टॉड के 'राजस्थान' की कथाओं को लेकर १९१२ ई० में 'राजमंगल' नामक वृहद काव्य-ग्रन्थ की रचना पूर्ण की। राजेन्द्रनारायण 'निर्माल्य' पत्रिका के सम्पादक थे और अंग्रेजी, बंगला तथा संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। एक बार उनकी उस युग के प्रसिद्ध कवि नवीनचन्द्र से बातचीत हो रही थी। उल्लेखनीय है कि हेमचन्द्र और नवीनचन्द्र बंगला के आधुनिक युग के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। नवीनचन्द्र सेन ने राजेन्द्रनारायण को महात्मा टॉड के ग्रन्थ का अध्ययन कर देशवासियों को जगाने के लिए राजपूत वीर चरित्रों का बखान करने का परामर्श दिया। फलतः कवि राजेन्द्रनारायण इस कार्य में जुट गए और दस वर्षों के अथक परिश्रम के पश्चात 'राजमंगल' का प्रकाशन हुआ।

'राजमंगल' एक विशाल काव्य-ग्रन्थ है, जो पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो खण्डों में विभाजित हैं। राजस्थान के कतिपय वीर चरित्रों के उपाख्यानों को लेकर पूर्वार्द्ध रचित हुआ है। इन वीर श्रेष्ठ राजपूतों में प्रमुख हैं बप्पारावल, हम्मीर, चण्डराज, पृथ्वीराज, संग्रामसिंह, प्रतापसिंह, राजसिंह आदि। 'राजमंगल' के उत्तरार्द्ध को 'सतीक्षेत्र' के नाम से अभिहित किया गया है, जिसमें रानी पद्मिनी, धात्री पन्ना, सरोजिनी, कृष्णकुमारी और जोधाबाई की वीर कहानियाँ हैं। 'टॉडेर राजस्थान उ बांगला साहित्य' के लेखक डॉ० वरुण कुमार चक्रवर्ती का कहना है कि 'राजमंगल' टॉड के 'राजस्थान' का पद्यानुवाद नहीं है, केवल विवरणात्मक काव्य है।

कविवर नवीनचन्द्र ने इस काव्य ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध के विषय में अपना मंतव्य राजेन्द्रनारायण को लिखे एक पत्र में इस प्रकार व्यक्त किया है—

'राजस्थान' का अवलम्बन कर मैंने तुमको एक काव्य की रचना करने का अनुरोध किया था, किन्तु तुम इतने बड़े महाकाव्यमय ग्रन्थ की रचना

करोगे, इसका मुझे जरा भी अन्दाज नहीं था। अगर तुम इस काव्य कृति को पूर्ण कर पाओगे तो वंग-साहित्याकाश में उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति देदिप्यमान हो जाओगे और बंगला-साहित्य भी गौरवान्वित होगा। तुम्हारी काव्य प्रतिभा से संतुष्ट होकर मुझे ऐसा कहने में जरा भी संदेह नहीं होता है।'

राष्ट्रगुरु सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'राजमंगल' की उच्च कण्ठ से प्रशसा की है। आपने कहा है कि बंगला-साहित्य में इस प्रकार का राजनैतिक काव्य नहीं है। सचमुच यह नूतन उद्योग है। स्वाधीनता की लड़ाई में ऐसे वीर काव्यों की नितान्त आवश्यकता और उपयोगिता है। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख नेता थे और अंग्रेजी भाषा में प्रसिद्ध समाचार-पत्र 'बेंगाली' का दक्षतापूर्ण सम्पादन करते थे। आपने 'द बेंगाली' के १० अगस्त, १९०१ के अंक मे अपने विचार इन शब्दो में प्रकट किए हैं—

"Rajmongal—such is the title of a big poem in Bengali being a reproduction if we may so call it, of the scenes and episodes described by the Lieutinant colonel James Tod in his famous 'Rajasthan' in verse It is a bold conception and large undertaking and if successful will enrich the Bengali Literature to a very considerable extent. Babu Rajendra Narayan Mukherjee, Editor of the "Nirmalya" a very well conducted and well got up Bengali periodical, started and maintained under the kind patronage of Maharaja Bahadur Surja Kanto Acharjee, is the young poet who has undertaken the herculean task of issuing a poetical edition of Todd's Rajasthan."

असल में कवि राजेन्द्रनारायण ने 'राजमंगल' काव्य का पूर्वार्द्ध लिख कर उसे अपने पत्र 'निर्माल्य' मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित करना शुरू कर दिया था और 'राजमगल' की इतनी ख्याति हुई थी कि साहित्य तथा राजनैतिक क्षेत्रो मे इसकी धूम मच गई। यही कारण है कि कवि नवीनचन्द्र और राष्ट्रगुरु सुरेन्द्रनाथ ने इसकी प्रशसा मे अपने उद्‌गार व्यक्त किए और कवि को रचना पूर्ण करने का उत्साह दिलाया। राजेन्द्रनारायण ने पूरे एक दशक तक लगातार लगन और परिश्रम से इस महत्वपूर्ण गौरव कार्य को १९१२ ई० मे पूर्ण किया और तब 'राजमंगल' अपनी पूर्णता को प्राप्त हो सका। इसका एक कारण यह भी था कि माइकेल मधुसूदन दत्त के बगला-साहित्य मे प्रवेश करने के बाद महाकाव्य लिखने की परम्परा चल पड़ी थी, जिसमे मधुसूदन, हेमचन्द्र और नवीनचन्द्र का योगदान था। इस कड़ी को राजेन्द्रनारायण ने 'राजमंगल' से तथा विपिनबिहारी ने 'सप्तकाण्ड राजस्थान' से आगे बढ़ाकर गतिशील किया।

विपिनविहारी का 'सचित्र सप्तकाण्डे राजस्थान' काव्य

सचित्र सप्तकाण्डे राजस्थान

कवि विपिनविहारी नंदी ने राजेन्द्र नारायण के पूर्व १९११ ई० मे 'सचित्र सप्तकाण्डे राजस्थान" महाकाव्य का प्रणयन कर उसे चटगाँव के पटिया ग्राम से प्रकाशित किया। बंगला-साहित्य मे राजस्थान की कथावस्तु को लेकर रचित होने वाला यह ही एकमात्र महाकाव्य है। ग्रन्थ 'रामायण' की भाँति सात काण्डों मे विभक्त है। सात काण्ड राजस्थान के सात राज्यो, जिनमें मेवाड़, अम्बर (जयपुर), मारवाड़, वीकानेर, जैसलमेर, बूँदी कोटा हैं, को लेकर लिखा गया है। रचनाकार ने 'रामायण-महाभारत' की भाँति इस महाकाव्य को गौरव प्रदान किया है।

कवि विपिनविहारी नन्दी ने ग्रन्थ की भूमिका में श्रद्धा और भक्ति से महर्षि वाल्मीकि एवं वेदव्यास के 'रामायण-महाभारत' का स्मरण किया है। इन पौराणिक ग्रन्थों मे भारतीय संस्कृति, इतिहास, धर्म और समाजशास्त्र का विवेचन हुआ है। भारत के ये दोनों महाकाव्य अपनी तेजस्विता के लिए विश्व-साहित्य में वरेण्य हैं। भारत के हिन्दू धार्मिक अनुष्ठानों, श्राद्धकर्मों और आपत-विपत में इन पवित्र ग्रन्थों का पारायण कर शान्ति पाते हैं। इतना ही क्यों जीवन की शेष यात्रा में भी इन ग्रन्थों का पाठ होता है। आनन्द-प्रमोद के अवसरों पर रामलीला और रासलीला से जनता में आह्लाद और मनोरंजन का स्फुरण होता है। ऐसा सौभाग्य विश्व के अन्य किसी ग्रन्थ को प्राप्त नहीं है। इसी कारण वाल्मीकि और व्यास पूजित और चर्चित है। युगों से इन कवियों की अमर-वाणी ने चिरंतन चिन्मय प्रकाश को भारत की धरती पर विकीर्ण किया है और आज भी जनमानस इन कृतियों में अवगाहन कर अपने को धन्य मानता है और मानसिक शान्ति पाता है। वस्तुतः जिस काव्य में जातीय चरित्र का प्रस्फुटन नहीं होता है और मानवीय धर्म विवेचन नहीं होता है, वह श्रेष्ठ काव्य की संज्ञा नहीं पा सकता। चूंकि "रामायण" और "महाभारत" में ये दोनों तत्व विस्तृत फलक पर चित्रित हुए हैं। इसी कारण इनकी मर्यादा और शाश्वतता है।

महाकवि कालिदास, भवभूति, सूर, तुलसी, आधुनिक कवि माइकेल मधुसूदन, हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र आदि 'रामायण-महाभारत' की परिधि को अतिक्रमित नहीं कर सके। कहा यह जा सकता है कि इन कवियों की रचना-प्रक्रिया उसी सीमा रेखा मे रही। एक लम्बे काल-खण्ड तक राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, विभीषण, हनुमान, कृष्ण, युधिष्ठिर, भीम, द्रोण, भीष्म, कर्ण, सावित्री, दमयन्ती, कुन्ती, अहिल्या, द्रौपदी आदि चरित्रों को ही कवि गाते रहे और युगानुरूप उनका चरित्र-चित्रण करते रहे।

"रामायण-महाभारत" का काल स्वर्णकाल माना जाता है। उसके बाद हिन्दुत्व का अधःपतन होता है। अब हमें देखना होगा कि रामायण-महाभारत का समानधर्मी कोई दूसरा ग्रन्थ है या नहीं। रामायण-महाभारत के युग को हजारों वर्ष हो गए। विचार करना होगा कि इन महाग्रन्थों के चरित्र नायकों के वंशधरों के बारे में भी कहीं कुछ मिलता है या नहीं। कुरुक्षेत्र-युद्ध के पश्चात वीर-वह्नि शमित हो गई थी। संघर्ष में शक्ति का क्षय स्वाभाविक है, किन्तु जब पश्चिमोत्तर भारत की ओर से विदेशी आक्रान्ताओं का देश मे प्रवेश हुआ तो वह राख के नीचे दबी अग्नि पुनः धधक कर प्रज्ज्वलित हो गई और उसका साक्ष्य है 'राजस्थान'।

"राजस्थान" का शाब्दिक अर्थ है राजा की वासभूमि या राजा का स्थान। विशाल भारत के भूखण्ड मे केवल एक अंश या क्षेत्र विशेष का नाम ही है 'राजस्थान', जिसे अंग्रेजों ने 'राजपूताना' नाम दिया। (अब पुन: वह प्रदेश 'राजस्थान' के नाम से जाना जाता है)। राजस्थान की चौहद्दी इस भाँति है—इसके उत्तर मे शतद्रु नदी, दक्षिण में विंध्याचल, पूर्व में बुन्देलखण्ड और पश्चिम मे सिन्धु नदी। मेवाड़, मारवाड़, अम्बर, जैसलमेर, कोटा, बूँदी और बीकानेर राज्यों मे राजस्थान बंटा है। मेवाड़ और अम्बर मे सूर्यवंशी, मारवाड़ और बीकानेर में चन्द्रवंशी, जैसलमेर मे यदुवंशी एवं बूँदी-कोटा में 'अग्निकुल सम्भूत' चौहान वंशीय शासन करते हैं। कहा जाता है कि परशुराम के क्षत्रीय वंश को नष्ट किए जाने के उपरान्त देवताओ ने देश-धर्म की रक्षा के लिए मन्त्रबल से 'अग्निकुण्ड' से परमार, सोलंकी, परिहार और चौहान नामक चार क्षत्रियों की सृष्टि की। इनके वंशधर अग्निकुल के नाम से प्रसिद्ध हैं। राजस्थान के सातों राज्यों के राजवंश राजपूत नाम से परिचित हैं। 'राजपूत' शब्द 'राजपुत्र' का ही अपभ्रंश रूप है। राजस्थान के इन सात राज्यों के राजवंशों की कोई डेढ़ हजार वर्षों की कीर्तिगाथा को जिस सुविशाल ग्रन्थ मे चित्रित किया गया है, उसका नाम है टॉड का 'राजस्थान'।

प्रश्न उठ सकता है इस ग्रन्थ के रचनाकार कौन हैं? किस महामना के अथक परिश्रम से हमें यह ग्रन्थ मिला है? ऐसे बहुचर्चित ग्रन्थ के लेखक हैं स्वनामधन्य महामति कर्नल जेम्स टॉड। टॉड ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पोलिटिकल एजेन्ट होकर इंगलैण्ड से

भारत आये थे। भिन्न धर्मी, भिन्न जाति, भिन्न देश के होकर भी टॉड ने अद्‌भुत अध्यवसाय, अजस्र श्रम और विदग्ध पाण्डित्य से खोज-पड़ताल कर राजपूत जाति के जिस विशाल इतिवृत्त को पुस्तकाकार रूप दिया है, उसकी कल्पना मात्र से ही स्तम्भित हो जाना पड़ता है। वस्तुतः जिनका हृदय विशाल नहीं होता वे दूसरे के महत्व को स्वीकार नहीं करते। अगर महात्मा टॉड भारतवर्ष में नहीं आते और राजपूत वीरों की वीरगाथाओं से अभिहित नहीं होते तो सम्भव है हम राजस्थान का नाम तक सुन पाते, इसमें सन्देह है। उसी टॉड महोदय के 'राजस्थान' को आज बंगाल के नर-नारी ही नही, समग्र भारत के लोग श्रद्धा से पाठ करते हैं और एक अकथनीय आनन्द से उल्लसित होते है। ऐसे श्रद्धेय व्यक्ति के प्रति मैं अपना नमन प्रेषित करता हूँ।

टॉड! तुम धन्य हो, तुम्हारा परिश्रम धन्य है और धन्य है तुम्हारी सदाशयता। तुमने अंग्रेज जाति को धन्य किया है। अंग्रेज गुण की प्रशंसा करते हैं, इसके तुम निदर्शन हो।

'राजस्थान' ग्रन्थ एक ही साथ काव्य, इतिहास और उपन्यास है। इसमे काव्य का रस है, इतिहास का इतिवृत्त है और औपन्यासिक कहानियो का संयोजन है। 'राजस्थान' मे उन वीरो का चित्रांकन किया गया है जो 'रामायण' और 'महाभारत' के चरित्र-नायको के वंशधर हैं।

ऐसे 'राजस्थान' से कतिपय चरित्रों को लेकर बंगला के साहित्यकार पिछले कई वर्षों से ग्रन्थो की रचना कर रहे हैं, यह उनकी भक्ति और प्रीति का द्योतक है। महाकाव्य ही समग्र राष्ट्रीयता को व्यंजित कर सकता है। अतः मैंने इस महाकाव्य की रचना की है।

प्रश्न किया जा सकता है महामति टॉड का 'राजस्थान' है, उसका गद्यानुवाद है तव फिर पद्य मे राजस्थान की क्या आवश्यकता है? जो ऐसा कहते हैं वे कृत्तिवास और काशीराम दास के 'रामायण' और 'महाभारत' को नजरअन्दाज करते हैं। वास्तविकता यह है कि दूसरी भाषा में कोई कितना ही पारदर्शी क्यों न हो, जब मातृभाषा में तुतली जुबान सुनता है तो उसका मानस एक अद्‌भुत आनन्द से आप्लावित होकर नाचने लगता है। गद्य से पद्य की शक्ति असीम है, इसे सभी स्वीकार करेंगे। ताल, लय और रिद्म की काकली पर जब कविता थिरकती है तो हृदय-तंत्री के तार स्वयमेव बज उठते हैं और मन-मयूर नाचने लगता है। अगर कृत्तिवास और काशीराम बंगला भाषा में 'रामायण-महा-

भारत' नहीं रचते तो लोगों के लिए जैसे वेद-उपनिषद स्वप्न की वस्तु है, वैसे ही 'रामायण' और 'महाभारत' भी रह जाते। (सूर-तुलसी ने कृष्ण और राम का चरित्र इसीलिए तो भाषा में गाया है, जिसे झोंपड़ी से लेकर महलों तक में आनन्द से गाया जाता है।) यह सत्य है कि मेरे ऐसे मूढ़ से ऐसी आशा दुराशा है, फिर भी एक बात तो है कि राजस्थान के वीरों का चरित्र स्वभावतः इतना सुन्दर, इतना अद्भुत और इतना मनोमुग्धकारी है कि उनका पाठ करते समय पाठक लेखक की त्रुटियों की ओर दृगपात नहीं करेगा। केवल इसी आशा और भरोसे पर मैंने इस दुस्साहस का बीड़ा उठाया है।

'राजस्थान' में हिन्दू, मुसलमान और अंग्रेज इन तीन जातियों का इतिवृत्त है। 'राजस्थान' के अध्येता इन तीनों जातियों के क्रिया-कलापों से परिचित होते हैं। मैंने इतिहास की यथासाध्य रक्षा की है। अपनी ओर से कोई क्षेपक या पच्चीकारी नहीं की है, केवल इधर-उधर की बिखरी कहानी को एक माला में पिरोया है। इस माला के दाने या फूल आपको कितना मुग्ध कर सकेंगे यह आप पर निर्भर है।

मेरे लिए यह गौरव की बात है कि मेरा यह महाकाव्य उस समय प्रकाशित हो रहा है जब देश में पंचम जार्ज के राज्यारोहण का जश्न मनाया जा रहा है।

युवक ही देश की आशा हैं। जिस जाति और देश के युवकों में उत्साह और उद्यम नहीं है, उस देश की कभी उन्नति नहीं हो सकती। मेरी यह कृति देश के युवकों में नया उद्दीपन भरेगी, ऐसी मुझे आशा है।

कवि विपिनविहारी की १ दिसम्बर १९११ को लिखी ग्रन्थ की भूमिका का विशेष महत्व है। इसलिए हमने यहाँ उनकी बातों को विस्तार से उद्धृत किया है। ग्रन्थकार ने इस महाकाव्य को, गंगा की पूजा गंगाजल से करके, महात्मा टॉड को उत्सर्ग किया है—

भेसे जेते काल-स्त्रोते रत्न समुज्ज्वल,
वहू यत्ने करे रक्षा भाँविया जे जन,
सेई राजस्थान जार कीर्ति-हिमाचल,
महत्वेरपूत शिखा, साधनार धन,
विचरण करि आर सुरम्य कानने,
कविता कुसुम एई करेछि चयन,
उद्दार हृदये 'टॉडेर' चरणे,

अंजलि भरिया हर्षे करिन् अर्पण,
हे देव, दीनेर अर्घ्य करहो ग्रहण—
गंगा-जले गंगा पूजा करे भक्तगण ।

कवि ने 'सप्तकाण्डे राजस्थान' महाकाव्य के आरम्भ मे वीणापाणि सरस्वती की वन्दना की है और ग्रन्थ के नामकरण का उल्लेख किया है । द्रष्टव्य है—

सेई राजस्थान कोन् रत्नेर खनि,
देखाउ माँ वीणा-पाणि आलोक-वरणि,
प्रणमि चरण-पद्मे, छन्द-वन्ध गाने
सुनाओ से पुण्यकथा भारत-संताने ।

× + ×

वह राजस्थान किस रतन की खान है,
दिखाओ माँ ! वीणापाणि आलोक वरणि ।
करता हूँ प्रणति छन्द-वन्ध गान से,
सुनाओ वह पुण्य-कथा भारत-संतान से ॥

× × ×

मारवार, वीकानेर, मिवार, अम्वर
कोटा, वूँदी, यशलमीर राज्य मनोहर,
आछे जार वक्ष जूड़े सेई राजस्थान,
शौर्य वीर्य ऐश्वर्येर विराट श्मशान ।
सेई राज्य सप्तकेर पूण्य इतिहास,
'सप्तकाण्डे राजस्थान' नामेते प्रकाश ।

('सप्तकाण्डे राजस्थान' पृ० १)

मगलाचरण और नामकरण के पश्चात कवि ने राजस्थान की भौगोलिक स्थिति का विवरण दिया है और वताया है कि किन-किन प्रदेशो मे राजपूतों की कौन-कौन सी जातियो का आधिपत्य है तथा उनका क्या महत्व है ।

मेवाड़ काण्ड

'मिवार काण्ड' (मेवाड़ काण्ड) मे विपिनविहारी ने अपने पयार छन्द में भगवान रामचन्द्र के वंशधरों की कथा का आरम्भ कर लव-कुश वंशों की परम्परा का उल्लेख

किया है। मेवाड़ राज्य के पूर्व पुरुषों में शिलादित्य, गुह, बप्पा रावल की यशोगाथा का विस्तार से वर्णन किया है। हारित ऋषि से बप्पा को वर प्राप्ति और उनकी विजय पताका का उल्लेख है। मेवाड़ राज्य की स्थापना और उसकी वंश परम्परा में पैदा हुए सभी वीरों की प्रशस्ति का गायन है। चूंकि बंगला-साहित्य के रचनाकारों ने अधिकांश उपाख्यान 'मेवाड़ अंश' से लिए हैं और हमने भी उन पर काफी विस्तार से इस पुस्तक में चर्चा की है। इसलिए इस काण्ड पर हम अधिक चर्चा कर पुस्तक का कलेवर नहीं बढ़ाना चाहते। यहाँ इस बात का उल्लेख शायद अप्रासंगिक नहीं होगा कि मूलतः मेवाड़ के कारण ही सम्पूर्ण राजस्थान गौरवान्वित हुआ और भारतवर्ष का मस्तक ऊँचा हुआ। टॉड ने भी जिस मनोयोग से मेवाड़ के इतिहास पर लेखनी चलाई है, उस अनुपात से 'राजस्थान' ग्रन्थ में अन्य राज्यों का विवरण नहीं है। टॉड के 'राजस्थान' में मेवाड़ के पश्चात मारवाड़ का वृतान्त है और अम्बर अर्थात् जयपुर राज्य का।

'सप्तकाण्डे राजस्थान' महाकाव्य में बीच-बीच में चित्र देकर कथा को प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की गई है। सम्भवतः इसी कारण कवि ने इसका नामकरण किया है—'सचित्र सप्तकाण्डे राजस्थान।' प्रत्येक काण्ड की समाप्ति पर छन्द बदलकर काव्यशास्त्र में वर्णित महाकाव्य की शर्तों को कवि ने पूर्ण किया है। मंगलाचरण, ऋतु वर्णन, रस-परिपाक से महाकाव्य की पूर्णता स्वयं पुष्ट हो जाती है। हाँ, इतना जरूर है कि इस महाकाव्य में धीरोदात्त चरित्र-नायकों और धीर नायिकाओं की भरमार है। समग्र रूप से इतना जरूर कहा जा सकता है कि वीर राजपूत ही इस काव्य के नायक हैं और राजपूत रमणी ही मुख्यतः नायिका हैं। प्रति-नायकों में यवन और फिरंगियों को लिया जा सकता है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के उद्देश्य की पूर्ति इस बात से सिद्ध होती है कि कवि देश-प्रेम को भारतीय युवकों में प्रेरित करना चाहता है, जिससे पराधीनता की बेड़ियाँ खण्ड-खण्ड हो जायें और भारत अपने अतीत उज्ज्वल गौरव को प्राप्त कर सके। अपने इस उद्देश्य में रचनाकार काफी हद तक सफल हुआ है।

यहाँ हम एक बात का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं कि एक विदेशी उदारमना अंग्रेज ने आंग्ल-भाषा में 'राजस्थान' ऐसे बृहद ग्रन्थ की रचना की और बंगला के साहित्यकारों ने सर्वप्रथम उसे अपनी प्रखर तूलिका और प्रबुद्ध लेखनी से उजागर किया। हिन्दी में ही नहीं, यहाँ तक कि राजस्थानी भाषा में भी न तो इस महाकाव्य के पूर्व कोई कृति रची गई है और न अब तक कोई रचना प्रकाश में आई है। यह बात और है कि खास-खास प्रसंगों पर हिन्दी और राजस्थानी

में वीरतापूर्ण काव्य रचे गए हैं, किन्तु समग्र राजस्थान को एक काव्य कृति में वर्णित करने का एकमात्र श्रेय वंगला भाषी कवि विपिनविहारी नन्दी को ही है। जैसे टॉड के प्रति श्रद्धा से मस्तक अवनत हो जाता है, वैसे ही कवि विपिन बिहारी के प्रति भी हृदय आभार से दब जाता है, और कवि का अभिनन्दन करने की बलवती इच्छा होती है। देश की भावनात्मक एकता के परिप्रेक्ष्य में ऐसे ग्रन्थों का अत्यधिक मूल्य है। विशेषकर आज जहाँ क्षेत्रवाद का भूत माथे पर सवार होकर देश की अखण्डता को चुनौती दे रहा है, उस प्रसंग में विपिन बाबू का महान यज्ञ स्तुत्य है। हमने कहीं-कहीं बंगला कविता का भावार्थ देने की धृष्टता की है। वस्तुतः संस्कृत से जन्मी बंगला और हिन्दी में इतना साम्य है कि अर्थ बताने की जरूरत ही नहीं होती। केवल लिपि की कठिनाई के कारण बंगला भाषा का आस्वादन आम भारतीय नहीं कर सकता। बंगला की कविता या गद्य जब देवनागरी अक्षरों में लिखा जाता है तो अर्थ स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है। यूँ ऊकार बहुला बंगला भाषा में उच्चारण भेद अवश्य ही अपना वैशिष्ट्य रखता है, पर इसे भी पारायण कर आसानी से समझा जा सकता है। हमने यथासाध्य उच्चारण को दृष्टि में रखकर इसका सरलीकरण करने का प्रयास किया है।

अम्बर काण्ड

इस काण्ड मे कछवाहा या कुशवाहा वंश की उत्पत्ति, दूलह राय आदि का वर्णन है। भगवानदास और राजा मानसिंह के विषय मे कई घटनाओं का वर्णन है। कवि ने अपने काव्य में राजस्थान में प्रचलित कई उक्तियों का भी उल्लेख किया है—

'सब ही भूम गोपाल की
जिसमें आटक कहाँ
जिसके मन में अटक है
सोई आटक रहा।"

कवि के अनुवाद को देखिए—

'ए विश्व ब्रह्माण्ड एक विधिर सृजन,
आटकउ (अटक) ताहार माझे आछे सुशोभन।
मनेते आटक जार आछे विद्यमान,
आटक जाइते तार करे बाधा दान।'

('सप्तकाण्डे राजस्थान' पृ० १८६)

मारवाड़ (जोधपुर) काण्ड

इसमे राठौरो की उत्पत्ति से लेकर सभी राजाओ का वर्णन है। इसी काण्ड मे कर्मादेवी का वृतान्त भी जोड़ दिया गया है, जिसका विवाह जैसलमेर के पूंगल राजकुमार साधू से हुआ था। मारवाड़ के विषय मे भी टॉड ने काफी लम्बा इतिहास लिखा है तथा बंगला-साहित्य में मारवाड़ की उपकथाओ को मनोयोग के साथ चित्रित किया गया है। हमने यथास्थान इन पर चर्चा की है। कवि विपिनविहारी ने मेवाड़ के पश्चात मारवाड़ के इतिवृत्त को बड़े काण्ड मे रचा है। राठौरो की प्रशस्ति मे कवि ने कहा है—

'अश्व गुम्फ रण-सज्जा असि शिरस्त्राण,
हाराये पत्तने पंच, राठौर पठान।' (वही, पृ० २७६)

कहावत भी है—'घोड़ा, जोड़, पागड़ी, मोछा खड्ग मारवाड़।'

राजा यशवन्त सिंह और वीर दुर्गादास के बारे मे कवि ने व्याज स्तुति मे कई लम्बे पदो की रचना की है। कवि की ओजभरी भाषा हृदयग्राही बन गई है। दुर्गादास को महिमा का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

जननि सुत ऐसा जने, जैसा दुर्गादास।
बाँध मुडासो राखियो, विन खम्भा आकाश॥

वीकानेर काण्ड

इस काण्ड मे कवि ने सिख जाति का विवरण देकर, राजा बीका का वर्णन किया है, जिन्होने बीकानेर राज्य की स्थापना की। तत्पश्चात नूनकरण, कल्याण सिंह, राजा जयसिंह, राजा गजसिंह तथा राजा सूरजसिंह का वर्णन किया है।

कवि विपिनविहारी नन्दी ने राजा बीका का वर्णन करते हुए लिखा है—

चन्द्रवंश-कथा करेछो श्रवण
मारवारे, वीकानीरे सुनहो एखन।
× + ×
जोधराउ नामे छिलो श्रेष्ठ नरपति
चतुर्दश पुत्र तार छिलो गुणधर,
विका नामे षष्ट पुत्र वीरत्वे प्रखर,
स्थापिते नूतन राज्ये करिया मनन,
मून्दर छाड़िया करे उत्तरे गमन। (वही, पृ० २९९)

इतिहासकारों का कथन है कि १४८९ ई० में बीका ने मून्दर का परित्याग किया था ।

स्थापिलेन विकानीर विका महावल,
जागिलो विदार मने वासना प्रबल । (वही, पृ० ३००)

राजा बीका ने ही १४८९ ई० में बीकानेर की स्थापना की थी ।

जैसलमेर काण्ड

इस काण्ड मे यदुवंश के इतिहास का वर्णन है । यदुवंश के लोग ही जैसलमेर के शासक बताये जाते हैं । सुबाहू के पुत्र राजा रिझा, राजा गज, राजा शालिवाहन, रावल यशल, रावल लक्ष्मणसेन, रावल जगत सिंह, रावल मूलराज आदि का कवि ने लम्बा-चौड़ा वर्णन किया है ।

राजा गज के बारे में एक बात जैसलमेर में प्रसिद्ध है कि जब उन्होंने किला बनवाया तब समाचार मिला कि विदेशी यवनों ने आक्रमण कर दिया है । उस समय यदुपति (कृष्ण) का, जो इस वंश के श्रेष्ठ पुरुष रहे हैं, स्मरण किया गया—

रूमीपति खुरसानपति, हय गय पाखड पाय ।
चिन्ता तेरे चित लगी, सुनियो यदुपतिराय ।।

कवि ने इसे इस प्रकार रखा है—

रूमपत खोरापानयत, हय, गय, पाथुर पाय,
चिन्ता तेरा चित लगे शुन यदुपत राय । (वही, पृ० ३१२)

भट्टी इतिहासवेत्ताओं ने लिखा है कि राजा गज ने यदुपति की जय का डंका बजाकर रण के लिए कूच किया और विजयी रहे ।

कवि इस काण्ड के आरम्भ में कहता है—

चन्द्र सूर्य वंश-कथा करेछो श्रवण,
किंचित सुनहो यदुवंश विवरण ।
जेई वंशकीर्ति महाभारत सागरे
धरेना, धरिबो कि ए गोस्पद भितरे ? (वही, पृ० ३०९)

सच है व्यास के महाभारत में जब इतनी विशाल कथा का पूर्णता से विवरण नही हो सका, तो इस गोपद से बने क्षुद्र ग्रन्थ 'सप्तकाण्डे राजस्थान' मे कहाँ से हो सकेगा ?

रावल यशल ने ११६५ ई० में जैसलमेर की स्थापना की थी । कहा जाता है

कि ऐशल ऋषि की आज्ञा पाकर रावल यशल ने त्रिकूट पर्वत पर जैसलमेर का किला बनवाया था। कवि ने कहा है—

> ऐशलेर आज्ञा पेये त्रिकुट पर्वते जेये
> गढ़िलो त्रिकोण दुर्ग वीर।
> छाडिया लोदुर्व्वापुर आसिलो यादवशूर,
> सेई देश ख्यात 'यशल्मीर'। (वही, पृ० ३२२)

वूँदी काण्ड

राजस्थान में हाड़ौती प्रदेश दो राज्यों में विभक्त है एक वूँदी और दूसरा कोटा। वूंदी और कोटा पहले एक ही राज्य के अन्तर्गत थे। तीन-चार सौ वर्ष पूर्व इसके दो भाग हो गए हैं। चम्बल नदी इन दोनों राज्यों के बीच से होकर गुजरती है। हाड़ा वंशीय राजपूत इस प्रदेश के निवासी हैं। कवि विपिनबिहारी नन्दी ने इसी ऐतिहासिक तथ्य को दर्शाने के लिए अग्निकुल की उत्पत्ति का वर्णन किया है—

> चन्द्र सूर्य आर यदुवंश-विवरण
> गत पंच काण्डे सब करेछि वर्णन।
> वूंदी और कोटा कांडे अग्नि-कुल-कथा,
> श्रवण करहो, होवे मंगल सर्वथा। (वही, पृ० ३३७)

राजस्थान के ३६ राजवंशों में अग्निकुल की श्रेष्ठता मानी जाती है और चौहान राजपूतों की शाखाओं में हाड़ा नाम की शाखा का विशेष महत्व है—

> छयत्रिस राजवंशे पूर्ण राजस्थान,
> अग्निकुल तार माझे रयेछे प्रधान। (वही, पृ० ३३७)

इस काण्ड में राजा वीसलदेव, रामदेवया, राव नापूजी, राव हामूजी, सुरजन, भोज, रतन, गोपीनाथ, चतुरसाल, राव बाह, राव नारायणदास आदि की कथाओं का वर्णन है।

राव रतन सिंह ने जहांगीर की मदद की थी। इस सम्बन्ध में एक भाट कवि ने लिखा है—

> सरवर फूटा जल वहा, अब क्या करो यतन्न ?
> जाता घर जहाँगीर का, राखा राज रतन्न।

कवि विपिनविहारी ने इसे इस भाँति रखा है—

> सागरेर कूल भेंगे सम्राटेर घर,
> भेसे जेते रक्षा करे रत्न वीरवर। (वही, पृ० ३५४)

कोटा काण्ड

कोटा का हाड़ा राजवंश बूंदी राज्य के वंशधरों की छोटी शाखा माना जाता है। शाहजहाँ के समय मे बुरहानपुर के समर मे बूंदी के राव राजा रत्नसिंह के दूसरे पुत्र माधो सिंह ने अपने प्रबल पराक्रम से बादशाह को प्रसन्न किया था और पुरस्कार स्वरूप कोटा प्रदेश और उसके अधीन गाँव-नगर उसे मिले थे। तबसे कोटा और बूंदी अलग राज्य हो गए। कवि ने इस काण्ड मे कोटा राज्य का अलग होना और कोटिया भील की कथा का विवरण दिया है। कोटिया भील का इस प्रदेश पर पहले अधिकार था। पश्चात माधो सिंह ने इस राज्य की स्थापना की।

कवि ने लिखा है—

> रतन नामेते छिलो बूँदीर भूपति
> मधुसिंह पुत्र तार वीर्यवान अति।
> बुरहानपुरे साजिहान-पक्ष ह्ये,
> जूझिलेन पिता-पुत्र समरे निर्भये।
> दिलीश्वर साजिहान मने पेये प्रीति,
> पिता पुत्रे पुरस्कार दिलो यथारीति।
> कोटा राजा मधुसिंह करिलो अर्पण,
> हारावती दुई भाग हइलो तखन। (वही, पृ० ३६८)

इस काण्ड मे राव भीमसिंह, राव दुर्जनशाल, पृथ्वीसिंह, छत्रशाल आदि का वर्णन है। जालिम सिंह के वृत्तान्त पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार राजस्थान के सात राज्यो के सात काण्ड लिखकर कवि ने अपने महा-काव्य को पूर्ण किया। वे चाहते थे कि उनके 'सप्तकाण्डे राजस्थान' का 'रामायण-महाभारत' की तरह पाठ किया जायगा और देशवासी वीर तथा देशभक्त बनेंगे।

कवि विपिनबिहारी नन्दी ने 'सप्तकाण्डे राजस्थान' के अतिरिक्त 'अर्घ', 'चन्द्रधर' और 'नारी' इत्यादि काव्य लिखे। आलोच्य काव्य 'सप्तकाण्डे राजस्थान' मे भी आपने अपनी मौलिक प्रतिभा का निदर्शन प्रस्तुत किया है। यह सम्पूर्ण काव्य बगला के पयार छन्द मे रचित है तथा बीच-बीच मे त्रिपदी छन्द का भी प्रयोग हुआ है। उल्लेखनीय है कि 'सप्तकाण्डे राजस्थान' का प्रथम प्रकाशन चटगाँव (अब बगलादेश मे) से १९११ ई० में हुआ तथा इसका द्वितीय संस्करण एक लम्बे अन्तराल के बाद स्वतन्त्र भारत में कलकत्ता से १९८० ई० मे हुआ। द्वितीय संस्करण की भूमिका विश्व हिन्दू परिषद (प० बंगाल) के अध्यक्ष तथा रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग के प्राध्यापक डॉ० ध्यानेशनारायण चक्रवर्त्ती ने लिखी है।

रवीन्द्रनाथ की 'राजस्थान' पर काव्य रचनाएँ

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ

बंगला-साहित्य के सभी रथी-महारथी साहित्यकारों ने राजस्थान पर अपनी लेखनी चलाई है और वीरपूजा की है। इसी परम्परा में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने भी अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाये हैं। वैसे रवीन्द्रनाथ ने कविता और इतिहास सम्बन्धी लेखों मे यत्र-तत्र अपने स्फुट विचार राजस्थान पर व्यक्त किए हैं पर उनके काव्य-ग्रन्थ 'कथा उ काहिनी' में टॉड के 'राजस्थान' की कथाओं पर ६ कविताएँ विशेष रूप से मिलती हैं। ये कविताएँ हैं—'राजविचार', 'नकलगढ़', 'होरिखेला', 'विवाह', 'पण-रक्षा' और 'मानी' जिनकी रचना विश्वकवि ने १८९९ ई० (१३०६ बंगाब्द) में की थी। 'रवीन्द्र रचनावली' के सप्तम खण्ड में 'कथा उ काहिनी' काव्यकृति संकलित है। 'रवीन्द्र रचनावली' का प्रकाशन रवीन्द्र शताब्दी के अवसर पर विश्वभारती द्वारा १९६३ ई० में हुआ है।

'नकलगढ़' के माध्यम से कवि ने यह दिखाने की कोशिश की है कि मातृभूमि का प्रतीक चाहे मिट्टी का ही क्यों न हो वरेण्य एवं पूजनीय है। उसके सम्मान की रक्षा में प्राणोत्सर्ग भी करना पड़े तो पुण्य का कार्य है। उल्लेखनीय है कि विश्वकवि ने आज से ८९ वर्ष पूर्व जो देशभक्ति की पीयूष धारा प्रवाहित की थी, वह धारा लगता है जैसे सूख-सी गई है। उन्हीं के द्वारा रचित 'जन-गण-मन' राष्ट्रगीत को आज कानून की वैसाखी के सहारे भारतीय जनता से गवाने और सम्मान करने की गुहार लगाई जा रही है। कितनी विडम्बना है कि राष्ट्र-गान, राष्ट्र-ध्वज और राष्ट्र-प्रतीक के प्रति सम्मान प्रदर्शन के लिए कानून का सहारा लेना पड़ता है ?

'नकलगढ़' की कहानी

अलाउद्दीन द्वारा चित्तौड़ को श्मशान बना दिए जाने के पश्चात मेवाड़ की राजनैतिक शक्ति काफी दुर्बल हो गई थी। उसके प्रदेश स्वतन्त्र हो गए थे और वहाँ स्वतन्त्र शासक राज्य-शासन करते थे। बूंदी राज्य भी उन्हीं में से एक था, जिसकी स्थापना रावदेवा ने की थी। कालान्तर में जब चित्तौड़ के राणा पुनः शक्तिशाली हुए तो

उन्हें स्वतन्त्र बूंदी राज्य आँख में किरकिरी की भाँति लगने लगा। पहले यह विवाद रावदेवा के पुत्र हालू के साथ हुआ पश्चात नापाजी के पुत्र हामाजी के साथ। चित्तौड़ के राणा ने बूंदी के अधीश्वर हाभाजी को कहला भेजा कि बूँदी राज्य जिस क्षेत्र में है, वह इलाका उनका है। अतः हामा को वश्यता स्वीकार कर नियमित कर देकर राणा की सेवा में चित्तौड़ मे उपस्थित होना पड़ेगा। हामा ने प्रत्युत्तर मे संदेश भेजा कि वे होली-दिवाली राणा के सम्मुख उपस्थित होकर उनकी मान-मर्यादा का सम्मान कर सकते है, क्योकि मेवाड़ देश का अग्रणी राज्य है, किन्तु वश्यता स्वीकार करने की बात बेतुकी और बेमानी है—कारण कि बूंदी राज्य की स्थापना हमारे पुरखो ने तलवार के बल पर की थी।

इस चुनौती भरे उत्तर से राणा तिलमिला उठे और एक बड़ी सेना लेकर बूँदी पर आक्रमण करने के उद्देश्य से निमोरिया नामक स्थान मे आ पहुँचे। हामा को इसकी सूचना मिली। शीघ्र ही उन्होने पाँच सौ हाडा वीरो को एकत्र किया और अचानक राणा की सेना पर हमला बोल दिया। अप्रस्तुत अवस्था मे हाड़ा वीरों के आक्रमण को राणा की सेना हतबुद्धि होकर देखती रही। घमासान युद्ध हुआ और विजयश्री हामा के हाथ लगी। जीत के नगाड़े बजाकर हामा बूँदी लौट गए। इस खण्ड-युद्ध मे अगणित सिसोदिया वीरों को प्राण गंवाने पड़े।

राणा परास्त होकर चित्तौड़ लौट आए। अपमान की घूँट वे पी न सके और आवेश मे प्रतिज्ञा कर बैठे कि जब तक बूँदी का किला नही जीत लूँगा—अन्न-जल ग्रहण नही करूँगा। राणा की क्रोध में की गई इस कठोर प्रतिज्ञा से चित्तौड़ मे बेचैनी छा गई। मन्त्रियो ने लाख समझाया-बुझाया पर राणा अपनी जिद्द पर अड़े रहे। अन्त मे निर्णय हुआ कि बूँदी का एक नकली किला बनाया जाय और उस पर राणा आक्रमण कर उसे जीतें तथा अन्न-जल ग्रहण करें। इससे अशतः प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी और बाद में बूँदी पर आक्रमण कर उसे जीता जायगा। राणा राजी हो गए।

प्रस्ताव के अनुसार मिट्टी से बूँदी के नकली किले का निर्माण किया गया। शिल्पियों ने अविकल रूप से उसे बूँदी के किले का स्वरूप प्रदान किया। चित्तौड़ के महाराणा के यहाँ पाथर हाड़ा या पठार हाड़ा जाति की सेना का एक दल था। कुम्भा भैरसी उस दल का प्रधान था। वह हिरण का शिकार कर जब लौट रहा था तो उसने बूदी के कृत्रिम दुर्ग को देखा और कौतूहल से पूछा कि दुर्ग बनाने का क्या अभिप्राय है। जब उसे यह विदित हुआ कि राणा इसको ध्वंस कर जल ग्रहण करेंगे तो उसकी अस्मिता चैतन्य हो उठी। वह मातृभूमि के प्रतीक रूप के अपमान से उद्वेलित हो उठा। उसने कहा—'जब तक हाड़ा वंश का एक भी राजपूत जिन्दा है, कोई हमारी मातृ-भूमि की ओर अपमान की नजर तक नहीं डाल सकता है।'

पूर्व योजनानुसार जब राणा अपनी सेना लेकर बूंदी के नकली किले पर हमला करने आये और शौकियाना फायर हुआ तो किले के भीतर से असली फायर की गोलियाँ कौंध उठीं। राणा ने इस आश्चर्यजनक घटना की खोज करने के लिए किले के भीतर दूत भेजा। कुम्भा भैरसो ने कहा—'राणाजी से जाकर कह दो कि हाड़ा जाति निर्वंश नहीं हुई है कि उसकी मातृभूमि पर कोई कलंक का टीका लगा सके।' हाड़ा जाति के वीर कुम्भा ने राणा का सम्मान किया और फिर वह दुर्ग के सामने अर्गला बनकर खड़ा हो गया। शीघ्र ही प्रबल समर शुरू हुआ और उस युद्ध मे देश के प्रतीक किले के लिए कुम्भा सहित अन्य हाड़ा वीर लड़ते-लड़ते किले के सामने शहीद हो गए। यह गौरवपूर्ण कहानी इतनी प्रभावोत्पादक है कि विश्वकवि ने इस पर अपनी प्रशस्तिपूर्ण कविता रच डाली—'नकलगढ़'। हिन्दी मे भी 'नकली किला' कहानी काफी प्रसिद्ध है।

'नकलगढ़' कविता

रवीन्द्रनाथ ने १३०६ बंगाब्द (१८९९ ई०) में 'नकलगढ़' कविता की रचना की। कवि ने लिखा है कि मेवाड़ के राणा लाखा ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक वे बूंदी के किले को धूल नही चटा देंगे तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे—

'जलस्पर्श करबो ना आर
चित्तौर-राणार पण,
'बूँदिर केल्ला माटिर ऊपरे
थाकबे जतक्षण।'

× × ×

कुम्भ छिलो राणार भृत्य
हारावंशी वीर—
हरिण मेरे आसछे फिरे
स्कन्धे धनु तीर।'

('नकलगढ', कथा उ काहिनी, पृ० ७३-७४)

मेवाड़ में राणा का भृत्य हाड़ावंशी वीर कुम्भा था। उसे जब पता चला कि राणा उसकी मातृभूमि के नकली किले को भग्न करने आ रहे हैं तो उसने ललकार लगाई—

'दूरे रहो' कहे कुम्भ—
गर्जे जेन—बाज।

बूंदिर नामे करबे खेला
सह्बोना से अवहेला—
नकलगढ़ेर माटिर ढेला
राखबो आमि आज। (वही, पृ० ७५)

राणा की सेना ने घेर कर उस वीर का शिरच्छेदन कर दिया, पर कुम्भा के रक्त से नकली बूंदी का किला धन्य हो उठा—

राणार सेना घिरि तारे
मुण्ड काटे तरवारे—
खेलाघरेर सिंहद्वारे
पड़लो भूमि-'पर
रक्ते ताहार धन्य होलो
नकल बूंदीगढ़। (वही, पृ० ७५)

मैथिलीशरण की 'नकली किला' कविता

परवर्ती काल मे हिन्दी के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने रवीन्द्र के 'नकलगढ़' की उपकथा को लेकर 'नकली किला' कविता की रचना की और पुनः हिन्दी में एकांकी नाटक लिखा गया। मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' कविता उनके 'रंग में भंग' नामक प्रबन्ध-काव्य में संकलित है, जिसका प्रकाशन संवत १९६६ (१९०९ ई०) मे हुआ।

मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में देखिए—

आज भी चित्तौर का,
सुन नाम कुछ जादू भरा।
चमक जाती चंचला-सी
चित्त में करके त्वरा।
जिस समय लाखो नृपति,
सिंहासन स्थित थे वहाँ।
उस समय की यह विकट,
घटना प्रकट देखो यहाँ।
(रंग में भंग, 'नकली किला', पृ० १)

बूंदी निवासी हाड़ा कुम्भा ने जब अपनी मातृभूमि के नकली किले को देखा तो उसके हृदय मे वीरोचित भाव जग गए और उसके हृदय में जन्मभूमि की अवमानना असह्य हो उठी।

वीर कुम्भ न सह सका,
यह मातृभूमि-तिरस्क्रिया।
क्षत्रियोचित धर्म्मने,
उसको विमोहित कर दिया।
यद्यपि कृत्रिम, किन्तु वह
भव-भूमि ही तो थी अहो!
स्वाभिमानी जन उसे,
फिर भूलता कैसे कहो?

\+ × ×

तोड़ने दूँ क्या इसे,
नकली किला मैं मान के।
पूजते हैं भक्त क्या,
प्रभु-मूर्ति को जड़ जान के?

और कुम्भा ने नकली बूंदी के किले पर प्राणोत्सर्ग कर दिया—

कुम्भ के इस कृत्य से,
कृतकृत्य बूंदी हो गयी।
उष्ण शोणित-धार से,
धरणी वहाँ की धो गयी। (वही, पृ० २-३)

नकली किले की आन के लिए कुम्भा मर मिटा। असली किलो की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले वीरों की रोमांचकारी कहानियों से टॉड का 'राजस्थान' भरा पड़ा है। इन्ही उपकथाओ को उपजीव्य बनाकर बंगला-साहित्य के साहित्य-मनीषियों ने साहित्य की विविध विधाओ पर अपनी लेखनी चलाई और पश्चात हिन्दी और राजस्थानी साहित्य मे भी टॉड का 'राजस्थान' चर्चित हो गया और साहित्यिक-कृतियाँ रची गईं।

'राज-विचार'

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ से अछूते प्रसंगो को लेकर कविताओं की रचना की है। सम्भव है ऐसा समर्थ कवि किसी उपाख्यान को लेकर कोई प्रबन्ध काव्य या खण्ड-काव्य की रचना कर सकता था; किन्तु कदाचित् उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि उनके पूर्व चर्चित उपकथाओं पर बगला भाषा के अन्य रचनाकारों ने कई काव्यो, नाटकों और उपन्यासों की रचना कर डाली थी। फिर भी उन्होंने जो कविताएँ लिखी हैं, वे अपने आप मे एक-एक खण्ड-काव्य के समान हैं। इन कविताओं के अध्ययन से पाठक अनायास ही महसूस करता है कि रवीन्द्र राजस्थान के वीरों के त्याग से जबरदस्त रूप से प्रभावित थे। उनकी अभिव्यक्ति इस कथन का पुष्ट प्रमाण है। यहाँ उनकी एक दूसरी छोटी सी कविता 'राज-विचार' प्रस्तुत है, जिसमें राजस्थान के राजा रतनराव के चरित्र पर तथा उसके शासन पर सुन्दर प्रकाश डाल्ती है।

'राज-विचार' की कहानी

'राज-विचार' की कथा मात्र इतनी सी है—राजा का पुत्र युवराज एक दिन रात को कुत्सित भावनाओं के साथ एक ब्राह्मण के घर में प्रवेश करता है। वह उस घर में चोरो की भाँति घुसता है, जिसमें ब्राह्मण की सुन्दर युवा पत्नी सोई थी। ब्राह्मण जग जाता है और उसे पकड़ लेता है। दूसरे दिन राजा के सामने इस कुकृत्यकर्मी चोर की खबर पहुँचती है। राजा ऐसे अपराधी के लिए मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था करता है, किन्तु तभी राजा का दूत दौड़ा हुआ आता है और कहता है कि 'चोर' कोई साधारण नहीं है, 'युवराज' है। चाटुकार दूत ने युवराज को रात मे ब्राह्मण द्वारा वन्दी बनाये जाने पर अपनी स्वामी-भक्ति का परिचय दिया। उसने ब्राह्मण को बन्दी बना लिया और राजा से राज-विचार की याचना की। प्रजापालक राजा इससे कुपित होता है और विप्र की 'मुक्ति' का आदेश देता है। यह है न्याय परायणता! ऐसी घटनाएँ राजस्थान के इतिहास मे अनेक हैं, जिनको पढ़ने से राजस्थान के सामन्ती शासकों के सुशासन का पता लगता है।

विप्र कहता है—'मेरी भार्या (रमणी) जिस घर मे थी, चोर ने शीलहरण के लिए उसी घर में प्रवेश किया। मेरा पौरुष इसे बरदास्त नहीं कर सका और मैंने चोर को पकड़ कर मूँज की रस्सियों से बाँध दिया। अब राजा चोर को क्या सजा देंगे? उत्तर था—'मृत्यु-दण्ड'।

> विप्र कहे 'रमणी मोर आछिलो जेई घरे
> निशीथे सेथा पशिलो चोर धर्मनाशन्तरे।

वेंधेछि तारे, एखन कहो चोरे की दिवो साजा।'
'मृत्यु' शुधु कहिला तारे रतनराउ राजा।
(रवीन्द्र रचनावली, सप्त खण्ड, कथा उ काहिनी, 'राज-विचार', पृ० ६२)

राजदूत दौड़ा हुआ राजा के पास आकर कहता है चोर युवराज है। वह ब्राह्मण को पकड़ कर राज-विचार के लिए लाया है। राजा उसकी मुक्ति का आदेश देता है—

छूटिया आसि कहिलो दूत, 'चोर से युवराज—
विप्र तारे धरेछे राते, काटिलो प्राते आज।
ब्राह्मणेर एनेछि धरे, की तारे दिवो साजा?'
'मुक्ति-दाउ' कहिला शुधु रतन राव राजा। (वही, पृ० ६३)

'राज-विचार' कविता भी 'कथा उ काहिनी' काव्य-ग्रन्थ मे संकलित है, जिसकी सिलाईदह में कवि ने १३०६ बंगाब्द अर्थात् १८९९ ई० में रचना की थी। अब यहाँ उनकी तीसरी 'विवाह' कविता प्रस्तुत है।

'विवाह' कविता

मरण-त्यौहार या मृत्यु को त्यौहार के रूप में मनानेवाले राजस्थान के वीरों के जीवन में युद्ध उनके जीवन का एक अनिवार्य अंग माना जाता है। युद्ध का नगाड़ा कभी भी बज सकता है और उस समय वीर-प्रसविनी मरुधरा का वीर हीला-हवाला नहीं करता, वह युद्ध में कूद पड़ता है, कर्त्तव्य का पालन करता है। ऐसे कई प्रसंग उपस्थित हुए हैं जब एक तरफ विवाह की शहनाई बज रही है और दूसरी तरफ युद्ध की भेरी बज उठती है। उस समय भेरी-नाद को सुन कर वीर और वीरांगनाएँ हाथ में तलवार लेकर मरण-त्यौहार में सम्मिलित होते हैं और हँसते-हँसते शत्रु से लड़ते हुए स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं और वीरगति को प्राप्त होते हैं। राजस्थान की वीर नारियाँ भी पति के युद्ध मे परलोक सिधारने पर अपने कर्त्तव्य का पालन करती हैं। रक्त की स्याही से लिखे गए राजस्थान के इतिहास से विश्वकवि ने ऐसी ही एक रोमांचकारी उपकथा पर अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया है 'विवाह' कविता में।

टॉड के राजस्थान में कथा

मारवाड़ के मिथरी के सामंत के पुत्र की एक घटना बड़ी अद्भुत और रोंगटे खड़े करनेवाली है। टॉड ने 'राजस्थान' के 'मारवाड़ का इतिहास' खण्ड में लिखा है

कि १७५० ई० मे अभय सिंह की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र रामसिंह जोधपुर के सिंहासन पर बैठा। उस समय उसकी उम्र बीस वर्ष की थी। रामसिंह बख्तसिंह का भतीजा था। अभय सिंह और बख्त सिंह जोधपुर के राजा अजित सिंह के पुत्र थे। रामसिंह के अभिषेक के समय नागौर का शासक बख्त सिंह जोधपुर नहीं आया। चाचा होने के कारण उसे ही रामसिंह के मस्तक पर तिलक करना था। असल मे बख्त सिंह जोधपुर का शासक बनना चाहता था। यही कारण है कि चाचा और भतीजे मे विद्वेष की आग सुलगने लगी और युद्ध छिड़ गया। बख्त सिंह और रामसिंह की सेनाओ मे जब मैरता के मैदान में युद्ध हो रहा था तो रामसिंह का पक्ष कमजोर पड़ने लगा। रामसिंह ने मिथरी के सामंत से सहायता माँगी। मिथरी के सामंत ने रामसिंह की पूरी मदद की और मैरता के युद्ध में वह स्वयं तथा उसका पुत्र मारा गया। इसी मिथरी के सामंत के पुत्र की यह कहानी है। मैरता के मैदान मे होनेवाले इस युद्ध के बहुत पहले मिथरी के सामंत के लड़के के साथ जयपुर राज्य के निरूपमा के सामत की लड़की से विवाह की बात पक्की हो चुकी थी। अतः मिथरी के सामंत के लड़के की बारात विवाह के लिए निरूपमा गई हुई थी। जिस समय विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ उसी समय मियरी के सामंत के पुत्र को पता चला कि शत्रुओ की सेना रामसिंह की सेना को परास्त कर रही है। सामंत पुत्र ने विवाह के गठजोड़ को खोल कर घोड़े पर, वर-वेश में सवार होकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। उसने मैरता के युद्ध में अपनी वीरता दिखाई और वीरगति को प्राप्त हुआ। इधर नव वधू ने भी अपने पति का अनुगमन किया। जब उसकी डोली मियरी पहुँची तो सामंत-कुमार को अन्त्येष्ठि का कार्य हो रहा था। नववधू ने अपने मृत पति के शव को गोद मे ले लिया और आग की लपटो मे विवाह-मण्डप में खुले गठजोड़ को पुनः सदा-सर्वदा के लिए अमरत्व प्रदान कर दिया। मारवाड़ के कवियो ने मियरी के उत्तराधिकारी सामंत-पुत्र की वीरता पर अनेक काव्य रचे हैं और उसके शौर्य-पराक्रम का वर्णन किया है। इसी कथानक को लेकर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने अपनी मार्मिक 'विवाह' कविता की रचना की है।

रवीन्द्रनाथ ने 'विवाह' कविता का आरम्भ वर-कन्या के पाणिग्रहण-संस्कार-उत्सव से किया है—

> प्रहर खानेक रात होयेछे शुधु,
> घन घन वेजे उठे शाँख।
> वर-कन्या जेन छविर मतो,
> आँचल-बाँधा दाँड़िये आँखि नत,
> जानला खुले पुरांगना जत,
> देखछे चेये घोमटा करि फाक।

वर्षा राते मेघेर गुरु गुरु—
तारि संगे वाजे वियेर शाँख। (कथा उ काहिनी, 'विवाह', पृ० ८०)

वर-कन्या का विवाह संस्कार हो गया—गठजोड़ से बंधे वर-वधू एक दूसरे को तिरछी आँखो से देख रहे हैं। राजपूत स्त्रियाँ भी घूंघट की आड़ से इस सुन्दर दृश्य को देख रही हैं और नव-दम्पति को आशीर्वाद दे रही हैं। विवाह-मण्डप के बाहर आकाश मे वर्षा के मेघो की गड़गड़ाहट सुन पड़ रही है और उसके साथ ही विवाह का शंख बज रहा है। (बगाल मे विवाह आदि शुभ कार्यों पर शंख वजते हैं और राजस्थान मे शहनाई, नगाड़े और भेर वजती हैं।) इसी समय बाहर युद्ध की भेरी का शब्द सुनाई दिया। राजा रामसिंह का दूत विवाह-मण्डप में आया और उसने मियरो के राजकुमार को, जो दुल्हा वना हुआ था, आकर कहा—"विद्रोहियों के साथ रामसिंह महाराज युद्ध कर रहे हैं—उन्होने मर्तिया राजपूतो को युद्ध मे बुलाया है—

टोपर परा मेत्रिराजकुमारे
कहे तखन मारवारेर दूत,
'युद्ध बाधे विद्रोहीदेर सने.
रामसिंह राना चलेन रणे,—
तोमरा एसो ताँरि निमंत्रणे
जे जे आछो मर्तिया राजपूत।' (वही, पृ० ८०)

बगाल मे वर को एक प्रकार का मुकुट पहना कर दुल्हा बनाया जाता है, जिसे 'टोपर' कहते हैं। राजस्थान में पगड़ी, किलगी और सेहरा बाँध कर दुल्हे को राजा के रूप में सजाया जाता है। यहाँ भी कवि ने मेत्रिराजकुमार (मियरी के सामंत-पुत्र) को टोपर पहने हुए दर्शाया है। दुल्हे ने युद्ध की बात सुनते ही गठजोड़ की गाँठ को खोल दिया और अपनी नवपरिणिता दुल्हन की ओर देखा और कहा—'प्रिये मेरे लिए मृत्यु-समर का निमंत्रण आया है—इस वक्त न तो हुलुध्वनि (उल्लूक-ध्वनि मे वंगाल मे मांगलिक गीत गाने की प्रथा है) की जरूरत है और न शंख बजाने की। अपनी प्रिया से विदा होकर दुल्हाराजा अपने वर-वेश में ही घोड़े पर सवार होकर युद्ध के लिए द्रुतगति से चल पड़ा।

बाँधा आँचल खुले फेले वर
मुखेर पाने चाहे परस्पर
कहे, 'प्रिये, निलेम अवसर,
एसेछे उई मृत्युसभार डाक।'

वृथा एखन उठे हुलुध्वनि
वृथा एखन बेजे उठे शाँख।
बरेर वेशे टोपर परि शिरे
घोड़ाय चढ़ि छूटे राजकुमार (वही, पृ० ८१)

बेचारी कन्या (वधू) सिर झुका कर अन्तःपुर में गई। शादी की रौशनी-बत्तियाँ बुझा दी गईं। अन्तःपुर में कन्या की माँ ने रोते हुए बेटी से वधू-वेश को त्यागने के लिए कहा, किन्तु वीर पुत्री ने माँ से कहा—'माँ यह अवसर रोने-धोने का नही है। मुझे वधू के वेश मे ही मेत्रिपुर (मिथरी) जाने की अनुमति दो।' अन्ततः दुल्हन डोली मे सवार होकर पति-गृह के लिए प्रस्थान करती है—पुरोहित ने धान और दूर्वा उसके माथे पर रख कर आशीर्वाद दिया और माता-पिता ने भी विदा दी।

माता केँदे कहेन, 'वधू वेश
खूलिया फेल हाय रे हतभागी !'
शान्त मुखे कन्या कहे माये,
'केँदोना मा, धरि तोमार पाये,
वधू सज्जा थाक मा, आमार गाये
मेत्रिपुरे जाइबो तार लागि।' (वही, पृ० ८१)

दुल्हन को डोली अंगरक्षको के साथ शहनाई बजाती हुई दूसरे दिन रात में मेत्रिपुर पहुँची। उस समय मेत्रिपुर के लोग अपने होनेवाले राजा की अन्त्येष्टि की तैयारी कर रहे थे। उन्होने मंगलवाद्यो की ध्वनि सुनी और दुल्हन की डोली देखी, तो चिल्ला उठे—'शहनाई बन्द करो, डोली को जमीन पर उतारो, मेत्रिपति आज युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए है—उनकी चिता सजाई जा रही है—इस दुःख की बेला मे मंगल वाद्यों की क्या जरूरत है?'

निशीथ राते आकाश आलो करि
के एलो रे मेत्रिपुर द्वारे !
'थामाउ वांशी' कहे, 'थामाउ वांशी—
चतुर्दोला नामाउ रे दास-दासी
मिलेछि आज मेत्रिपुरवासी
मेत्रिपतिर चिता रचिवारे।
मेत्रिराजा युद्धे हत आजि
दुःखमये कारा एलो द्वारे (वही, पृ० ८२)

चार कहारो को सजी पालकी से वधू ने उत्तर दिया—'और जोर से शहनाई बजाओ, नगाड़े बजाओ। अब मेरा लग्न-मुहूर्त नहीं टलेगा और गठ-जोड़ भी नहीं खुलेगा, जोर-जोर से विवाह के शेष मन्त्रों का उच्चारण करो—आज मेरी शादी है।'

'बाजाउ बाँशी, उरे बाजाउ बाँशी'
चतुर्दोला होते वधू बोले,
'एबार लग्न आर होवे ना पार,
आँचल गाँठ खुलवे ना तो आर—
शेषेर मंत्र उच्चारो एईबार
श्मशान-सभाय दीप्त चितानले।' (वही, पृ० ८३)

और नव-वधू पालकी से धीर-गम्भीर गति से उतर पड़ी। वह प्रसन्न मुख चिता के पास गई, जिस पर उसका पति मेत्रिपति सोया था—उसके गले में मोतियों की वरमाला शोभित थी। वधू ने अपनी ओढ़नी के पल्लू से गठजोड़ कर लिया और मृत पति के शव को गोद मे लेकर बैठ गई। योगासन मे उस सती नारी की मूर्ति अपूर्व आभा से दीप्त हो गई। नगर वधुओं की वहाँ कतार लग गई, जो मंगल-गीत गा रही थी—पुरोहित स्वस्त्ययन पाठ कर रहा था और भाट धन्य-धन्य की ध्वनि से आकाश गुंजा रहे थे। श्मशान में जयध्वनि गूंज उठी और नारियों की मांगलिक हुलूल ध्वनि—(उल्लू की ध्वनि)

वरेर वेशे मोतिर माला गले
मेत्रिपति चितार ऊपरे शुये।
दोला होते नामलो आसि नारी,
आँचल वाँधि रक्तवासे ताँरि
शियर-ऊपर वेसे राजकुमारी
वरेर माथा कोलेर ऊपर थूये
निशीथ-राते मिलन-सज्जा-परा
मेत्रिपति चितार ऊपरे शुये।

× × ×

घन घन बाजलो हुलुध्वनि
दले दले आसे पुरागना
कय पुरोहित 'धन्य सुचरिता',

गाहिछे भाट 'धन्य मृत्युजिता',
धू धू करे जले ऊठलो चिता
कन्या बसे आछेन योगासना।
जय ध्वनि ऊठे श्मशान-माझे,
हुलुध्वनि करे पुराँगना। (वही, पृ० ८३)

विश्वकवि ने बड़ी ही तन्मयता से वीरांगना वधू और उसके वीर पति की यशोगाथा का बखान किया है। रवीन्द्रनाथ ने इस 'विवाह' कविता की रचना १९ कार्तिक, १३०६ बंगाब्द (१८९९ ई०) मे की थी।

'पणरक्षा' कविता

अब यहाँ प्रस्तुत है रवीन्द्रनाथ की 'पणरक्षा' कविता, जिसमे कवि ने एक राजपूत के प्रण को दिखाया है। टॉड के 'राजस्थान' के 'मारवाड़ का इतिहास' अध्याय मे लिखा गया है कि १७५३ ई० में बख्त सिंह की मृत्यु के बाद उसका बेटा विजय सिंह बीस वर्ष की अवस्था मे मारवाड़ के सिंहासन पर बैठा। उन दिनों दिल्ली का मुगल बादशाह नाममात्र के लिए बादशाह रह गया था। बख्त सिंह की मृत्यु के बाद भी रामसिंह की शत्रुता समाप्त नहीं हुई थी। अतः अब रामसिंह और विजय सिंह परस्पर एक दूसरे के विरोधी हो गए। रामसिंह अपने खोये जोधपुर के सिंहासन को प्राप्त करने के लिए संघर्ष मे जुट गया और विजय सिंह से कई स्थानों पर मुकाबला हुआ। रामसिंह को अपना मनसूबा पूरा होता नहीं दीखा तो उसने मराठों का सहारा लिया। पश्चात् मराठों से विजय सिंह की सन्धि हो गई और रामसिंह अकेला पड़ गया तथा जयपुर में उसकी मृत्यु हो गई। पुनः मराठों से सन्धि भंग हुई और तुंगा के मैदान में मराठों को पराजित कर विजय सिंह की राठौड़ सेना ने अजमेर को अपने अधिकार में कर लिया और वहाँ का शासन दुमराज को सौंप दिया। फिर भी राठौड़ों और मराठों का युद्ध खत्म नही हुआ। १७९१ ई० में पाटन और मेरता के युद्ध-क्षेत्रों मे दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। इस बार राठौड़ सेना को पराजय का मुख देखना पड़ा और अजमेर लौटाना पड़ा। अजमेर के शासक दुमराज ने जब सुना कि मराठा सेना अजमेर के किले पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने आ रही है तो उसे बड़ा दु.ख हुआ। उसने प्रण किया था कि जीतेजी वह अजमेर के किले पर किसी का अधिकार नही होने देगा, किन्तु मारवाड़ के राजा विजय सिंह ने मराठों से सन्धि कर अजमेर का किला उन्हें दे दिया था। दुमराज ने इसे स्वीकार नहीं किया और किले के फाटक पर अपनी टेक रखने के लिए शहीद हो गया। कवि रवीन्द्रनाथ ने इसी कथा को उपजीव्य बना कर 'पणरक्षा' कविता की रचना अग्रहायण १३०६ बंगाब्द (१८९९ ई०) में की।

अजमेर दुर्ग के स्वामी दुमराज को जब पता चला कि फ्रांसीसी सेनापति डिबोइनी की सहायता से माधवजी सिंधिया की मराठा सेना ने राठौड़ों को परास्त कर दिया है तथा अब वे अजमेर पर अधिकार करने आ रहे हैं। उसने अजमेर के गढ़ से युद्ध का नगाड़ा बजाया। दोपहर का समय था और राजपूत अपने घरों में ज्वार की रोटियाँ सेक रहे थे। युद्ध के नगाड़े की आवाज सुनकर सब अपने घरों से बाहर आ गए। उन्होंने दुर्ग की प्राचीर पर से देखा कि मराठा सेना के अश्वों के खुरों से दूर धूल उड़ती दिखाई दे रही है। दुमराज ने गर्जना की और राठौड़ राजपूत अपने हथियारों को लेकर डट गए—

'माराठा दस्यू आसिछे रे उई,
करो करो सबे साज'
आजमीरगढ़े कहिला हाँकिया
दुर्गेश दुमराज
वेला दूपहरे जे जार घरे सेंकिछे जोवारि रुटि,
दुर्गतोरणे नाकाड़ा बाजिते वाहिरे आसिलो छुटि।
(कथा उ काहिनी, 'पणरक्षा', पृ० ८६)

तभी मारवाड़ का दूत वहाँ आ पहुँचा और उसने मारवाड़ के राजा विजय सिंह का आदेश-पत्र दिखाया, जिसमें अजमेरगढ़ मराठों को सुपुर्द करने का आदेश था। उसने कहा—'अब युद्ध बेकार है। मराठा वीर सिंधिया और फिरंगी सेनापति डिबोइनी सेना सहित अजमेर आ रहे हैं। अतः आदर सहित उन्हें अजमेरगढ़ सौंप दिया जाना चाहिए।'

माडोयार होते दूत आसि बोले
'वृथा ए सैन्य साज,
हेरो ए प्रभुर आदेशपत्र
दुर्गेश दुमराज!
सिंदे आसिछे, संगे तांहार फिरिंगि सेनापति—
सादरे तादेर छाड़िबे दुर्ग आज्ञा तोमार प्रति।' (वही, पृ० ८७)

दूत ने कहा विजयश्री राजा विजय सिंह से रूठ गई है और उन्हें बिना संग्राम के अजमेरगढ़ मराठों को देना पड़ा है। 'प्रभु का आदेश है' यह वाक्य दुर्गेश दुमराज के लिए धर्मसंकट बन गया। उसने जीते जी गढ़ को दुश्मन को न सुपुर्द करने की प्रतिज्ञा की थी। अब वह अपनी प्रतिज्ञा को कैसे तोड़े? वह हत् बुद्धि हो गया। राजपूत वीरों ने भी दूत की बात सुन कर हथियार रख दिए। यद्यपि उन्हें भी राजा विजय सिंह की

इस सन्धि-शर्त पर क्षोभ और गुस्सा था। पर वे करते भी क्या ? जब राजा ने ही घुटने टेक दिए तो सिपाही क्या करें ? दुर्ग-स्वामी दुमराज अनुशोचन करता है कि जब राजा ने मुझे अजमेरगढ़ का स्वामी बनाया था तो मैंने प्रण किया था—'प्रभु के दुर्ग को किसी हालत में शत्रु के हवाले नहीं करूँगा'—क्या प्रभु के आदेश से व्रत भंग करना पड़ेगा ?

'आजमीरगढ़ दिला जबे मोरे
पण करिलाम मने,
प्रभुर दुर्ग शत्रुर करे
छाड़िबो ना ए जीवने।
प्रभुर आदेशे से सत्य हाय, भाँगिते होबे कि आज !'
एतेक भाविया फेले निश्वास दुर्गेश दुमराज। (वही, पृ० ८७)

वीर दुमराज प्रणरक्षा के लिए दुर्ग के फाटक पर सो गया और प्राण-शून्य हो गया। जब मराठा सेनापति ने आकर दुर्ग का फाटक खोलने के लिए दुर्गेश को हाँक लगाई तो कोई प्रत्युत्तर सुनाई नहीं दिया—कौन उत्तर देता ? दुर्ग का स्वामी तो प्राण-पखेरूहीन होकर वहाँ पड़ा था—

माराठी सैन्य धूला उड़ाइया
थामिलो दुर्ग द्वारे।
'दुयारेर काछे के उई शयान,
उठो उठो, खोलो द्वार !'
नाहि शोने केह—प्राणहीन देह
साड़ा नाहि दिलो आर।
प्रभुर कर्मे वीरेर धर्म
विरोध मिटाते आज
दुर्गद्वारे त्यजियाछे प्राण
दुर्गेश दुमराज। (वही, पृ० ८८)

'होरिखेला' कविता

राजस्थान में कई ऐसी वीर नारियाँ हुई हैं, जिन्होने अपनी वीरता, धीरता और चातुर्य से खोये हुए राज्यों को पुनः प्राप्त किया। हम्मीर को उसकी पत्नी के यत्न से चित्तौड़ का राज्य पुनः प्राप्त हुआ। वीर ताराबाई के प्रण से उसके पिता का गया हुआ

राज्य पुनः प्राप्त हुआ। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं। ऐसी ही एक कहानी रवीन्द्रनाथ की 'होरिखेला' कविता में है। टॉड के राजस्थान के दूसरे खण्ड में 'बूंदी राज्य के इतिहास' के दूसरे अध्याय में पृष्ठ ३७३ पर लिखा है—

Kotah was seized by two Pathans, Dhakur and Kesar Khan. Bhonung, who became mad from exessive use of wine and opium, was banished to Boondi, and his wife, at the head of his household vassals retired to Keytoon, around which the Haras held three hundred and sixty villages. Bhonung, in exile, repented of his excesses, he announced his amendment and his wish to return to his wife and kin The intrepid Rajpootni rejoiced at his restoration and laid a plan for the recovery of Kotah, in which she destined him to take part.. she invited herself with all the youthful damsels of Keytoon, to play the Holi with Pathans of Kotah The libertine Pathans received the invitation with joy, happy to find the queen of Keytoon evince so much amity.

(Annals and Antiquities of Rajasthan, vol II, Annals of Boondi, ch. II, Page 373-74)

कोटा पर पठानो ने अधिकार कर लिया था और वहाँ के राजा भोनग सिंह को भाग कर बूंदी मे शरण लेनी पड़ी थी। भोनंग अत्यधिक मद्यपान करता था और अफीम खाता था। उसके इस आचरण के कारण उसको बूंदी से निकाल दिया गया। उसकी रानी अपने परिवार और सरदारों के साथ केतून नगर चली गई। केतून के आस-पास मे तीन सौ साठ ग्राम हाड़ा लोगों के थे। निर्वासित होने के बाद कुछ दिनो में भोनग सिंह की आदतों मे सुधार हुआ। इससे रानी प्रसन्न हुई और कोटा का राज्य पुनः प्राप्त करने के लिए उसने पति को तैयार किया। वह पठानों की शक्ति को समझती थी और व्यर्थ के रक्तपात से बचना चाहती थी। इसलिए उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। फागुन के महीने मे पठानों के साथ उसने केतुन के बहुत-से युवकवीरो को होली खेलने के लिए आमंत्रित किया। उसने कोटा के पठान सरदार केसर खाँ के पास होली खेलने का निमंत्रण भेजा। केसर खाँ इससे बहुत प्रसन्न हुआ। दोनो ओर से होली खेलने की तैयारी होने लगी। रानी ने बड़ी युक्ति से तीन सौ वीर राजपूत युवको को घाघरा और ओढ़नी पहना कर स्त्री वेश मे तैयार किया और होली खेलने गई। अबीर-गुलाल और पिचकारी लेकर छद्मवेश युवतियों का दल होली खेलने के स्थान पर पहुँचा। इस दल में भोनंग सिंह भी था। भोनंग सिंह रानी के वेश मे था। अबीर-गुलाल फेंकने की रस्म शुरू हुई। रानी वेशधारी भोनंग सिंह ने सरदार केसर खाँ के पास आते ही अपने हाथ का अबीर का कांसे का पात्र केसर खाँ के मुंह पर दे मारा। यह युद्ध का

संकेत था। तभी स्त्री वेशधारी युवकों ने अपनी कमर से तलवारें निकाल लीं और घाघरा-ओढ़नी फेंक कर युद्ध में जुट गए। हाड़ा वंश के तीन सौ वीरों ने पठानों का संहार करना शुरू कर दिया। इस अप्रत्याशित आक्रमण में केसर खाँ अपने बहुत से शूर-वीर पठानों के साथ मारा गया और इस तरह राजा भोनंग सिंह को कोटा का राज्य फिर से प्राप्त हो गया। इस कारगुज़ारी में उसकी रानी की योजना सफल हुई। 'होरि-खेला' कविता का यही सार है जो टॉड के 'राजस्थान' में लिपिबद्ध है।

राजा भूनाग (भोनंग) की रानी ने फागुन महीने में राजपूतनियों के साथ होली खेलने के लिए पठान सरदार केसर खाँ को केतून से पत्र दिया। पठानों से युद्ध में परास्त होने और कोटा नगर छोड़ने के बाद ऐसा किया गया—

पत्र दिलो पाठान केसर खाँरे
केतुन होते भूनाग राजार रानी
'लड़ाई करि आश मिटेछे मियां ?
वसंत जाय चोखेर ऊपर दिया,
एसो तोमरा पाठान सैन्य निया—
होरि खेल्वो आमरा राजपूतानी।'

(कथा उ काहिनी, 'होरिखेला', पृ० ७५-७६)

रानी का पत्र मिलते ही केसर खाँ को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उसने अपनी मूंछ और दाढ़ी को सजाया-सँवारा। अच्छी-भली रंगीन पगड़ी माथे पर धारण की। आँखों में सुरमा लगाया। हाथ में अतर-फुलेल की गन्ध से युक्त रूमाल लिया और हजार-हजार बार मियाँ ने अपनी दाढ़ी को मेंहदी के रंग से झाड़ा-पोंछा।

पत्र पड़ि केसर उठे हासि
मनेर सुखे गोंफे दिलो चाड़ा।
रंगीन देखे पागड़ि पोरे माथे
सूर्मा आँकि दिलो आँखिर पारे
गंधभरा रूमाल निलो हाते—
सहस्रवार दाड़ि दिलो झाड़ा.... (वही, पृ० ७६)

फागुन के महीने में बसंत की बयार चल रही थी। आम्र-कुंजों में मौंजर की सौंधी सुगन्ध आ रही थी—कोयल कूकने लगी थी आम के वृक्षों में। भ्रमर गुनगुनाने लगे थे। केतुनपुर में पठान सेना दलबद्ध होकर होली खेलने आई थी। केतुनपुर के राजा के उपवन में फाग-मेला का आयोजन था। जगह-जगह फाग के ढफ-ढोल-मृदंग

वज रहे थे। बंशी का मादक सुर वज रहा था। साँझ के झुटपटे में रानी की एक सौ सखियाँ सज-सँवर कर होली खेलने आई थी।

फागुन मासे दक्षिण होते हावा
बकुल वने माताल होये एलो।
बोल धरेछे आमेर वने-वने
भ्रमरगुलो के कार कथा शोने,....

× + ×

केतुनपुरे राजार उपवने
तखन सवे झिकमिकि वेला।
पाठानेरा दांड़ाय वने आसि
मूलताने ते तान धरेछे बांशि—
एलो तखन एक-शो रानीर दासी
राजपूतानी करते होरिखेला। (वही, पृ० ७६)

सूर्य रक्त वर्ण हो गया था—सन्ध्या का समय था। राजपूतनियों का घाघरा और ओढ़नी वसंत की मादक हवा में उड़ रहे थे। उनके एक हाथ में गुलाल की थाली थी और दूसरे में गुलाब-केसर-युक्त इत्र-फुलेल था। कटि प्रदेश में पिचकारी झूल रही थी। राजपूतनियाँ नृत्य की भावभंगिमा में घूमर नाच करती हुई अबीर उड़ा रही थी—इत्र की फुहार फेंक रही थीं। ऐसे मदन-उत्सव में केसर खाँ उन्मत्त होकर नृत्य करती राजपूतनियों के पास आकर कहता—'बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में शायद जिन्दगी इसी आनन्द-उपभोग के लिए खुदा मियां ने बख्शी थी। आज स्वर्गीय आनन्द (जन्नत की खुशी) मयस्सर हो रहा है।' रानी की दासियाँ पठान की बातें सुन कर मन ही मन खुश थीं और अट्टहास कर रही थीं। और होली खेला शुरू हो गया। राजपूतनियों ने इत्र में मादक नशीले द्रव्य का व्यवहार किया था, जिससे पठान आहिस्ता-आहिस्ता अर्द्ध मूर्च्छनावस्था को प्राप्त होने लगे। केसर खाँ सोचता है—यह अब कैसा बेसुरा राग अलापा जा रहा है। आँखें क्यों जलन का अनुभव कर रही हैं? पठान सरदार कहता है—'ताज्जुब है राजपूतनियों के शरीर में कहीं कोमलता नहीं दीख पड़ रही है—उनके युगल बाहु भी मृणाल की डंटल के समान कोमल नहीं हैं। कंठ स्वर में भी सुरीलापन नहीं है—लगता है जैसे मंजरीहीन मरुभूमि की लताएँ राजपूतनियों के रूप में रूखी-सूखी जान पड़ती हैं। तभी ईमन-भूपाली राग में बंशी बज उठी। द्रुत छन्द के सुरों के बजते ही कुंतल-केशों में मुकामाला धारण किए, हाथ में सोने का कड़ा पहने एक दासी के साथ फाग की गुलाल थाली में सजा कर रानी आई। केसर खाँ रानी को

देखते ही कहता है—'प्रिये ! तुम्हारी प्रतीक्षा मे प्राण गले को आ रहे थे—आँखें बिछाये इन्तजार कर रहा था।' रानी का उत्तर था—'मेरी भी वैसी ही मनोदशा थी।' एक सौ सखियों के अट्टहास के साथ ही रानी ने कांसे की थाली को केसर खाँ के ललाट पर दे मारा। केसर खाँ के माथे से रक्तधारा फूट पड़ी और एक आँख तत्काल नष्ट हो गई। यह युद्ध का संकेत था—वज्र स्वर में युद्ध का नक्कारा बज उठा। छद्मवेशी राजपूतनियों की कमर से झनझनाकर तलवारें निकल पड़ीं। हवा वेग से चलने लगी। घाघरा-ओढ़नी खिसक गए और राजपूत वीर अपने रौद्र रूप में नारी वेश छोड़ कर प्रकट हो गए। हाड़ावंशी वीरो ने पठानो को चारो तरफ से घेर लिया। लगा जैसे फूलो की माला से एक सौ फणधारी सर्प निकल पडे। जिस रास्ते से पठान फाग खेलने आये थे—उस रास्ते फिर जीवित नही लौट सके। केसर खाँ और उसके सभी साथियों की वहां जीवित समाधि बन गई। यह समाधि आज भी केतुन वन मे विद्यमान है—

शुरू होलो होरिर मातामाति
उड़तेछे फाग रांगा संध्याकाशे।

× × +

चोखे केनो लागछे नाको नेशा
मने मने भावछे केसर खाँ।

× + ×

पाठान कहे 'राजपूतानीर देहे
कोथाउ किछु नाई कि कोमलता!
बाहुयुगल नय मृणालेर मतो
कंठस्वरे वज्र लज्जाहत—

+ × ×

दासीर हाथे दिए फागेर थाला
रानी वने एलेन हेनकाले।

× × +

पाठान पतिर ललाटे सहसा
मारेन रानी कासार थालाखाना
रक्तधारा गड़िये पड़े वेगे
पाठान-पतिर चक्षु होलो काना।

+ + +

बातास चेये ओढ़ना गेलो उड़े,
पड़लो खसे घाघरा छिलो जतो।
मंत्रे जेन कोथा होते के रे
बाहिर होलो नारी-सज्जा छेड़
एक शत वीर घिरलो पाठानेरे
+ + +
जे पथ दिए पाठान एसे छिलो
से पथ दिए फिरलो नाको तारा।
केतुनपुरे बकुल-बागाने
केसर खांयेर खेला होलो सारा। (वही, पृ० ७७-७६)

'होरिखेला' कविता 'कथा उ काहिनी' काव्य-पुस्तक मे संकलित है, कवि ने इसकी रचना ६ कार्तिक, १३०६ बगाब्द (१८६६ ई०) में की थी।

'मानी' कविता

रवीन्द्रनाथ ने 'मानी' कविता में जहाँ एक वीर राजपूत के उदात्त चरित्र का वर्णन किया है वही उन्होंने सम्राट औरगजेब के चरित्र को भी नए धरातल पर उपस्थित किया है। इस कविता पर हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रभाव दीख पड़ता है। इतिहास में औरंगजेब को निर्दयी, अत्याचारी और कट्टर मुसलमान के रूप में प्रस्तुत किया गया है, किन्तु "मानी" कविता में उसकी उदार-सहिष्णु मूर्ति लोगों को आश्चर्य में डाल देती है। 'मानी' कविता 'कथा उ काहिनी' पुस्तक मे है, जिसकी रचना कवि ने १ कार्तिक १३०६ बगाब्द (१८६६ ई०) में की थी।

कथासार

रवीन्द्रनाथ को 'मानी' कविता में राजस्थान के सिरोहीपति सुरतान की वीरता-पूर्ण कहानी का वर्णन है, जिसने बन्दी दशा में भी बादशाह औरगजेब के सामने अपना सिर नहीं भुकाया। सुरतान की साहसिकता, वीरता और स्पष्टवादिता से औरंगजेब को भी प्रसन्नता हुई और उसने सुरतान को 'अचलगढ़' लौटा कर उसे स्वतन्त्र कर दिया। क्रूर औरंगजेब के इस मानसिक परिवर्तन में मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह की विशेष भूमिका थी। राजा यशवन्त सिंह के प्रमुख सरदार नाहर खाँ (पूर्व नाम ठाकुर दास) ने बड़ी बहादुरी और दिलेरी से सिरोहीपति सुरतान को बन्दी बनाया

था। चूँकि सुरतान औरंगजेब के शासन मे अपने वीर कार्यो से एक बड़ी बाधा बन गया था। इसलिए औरंगजेब की आज्ञा से सिरोहीपति बन्दी बनाया गया था। सुरतान को जब बन्दी बनाया गया तो राजा यशवन्त सिंह तथा नाहर खाँ ने उसे आश्वस्त किया था कि उसके सम्मान पर जरा भी आँच नही आयेगी। जब औरंगजेब को उस वीर बांकुरे के गिरफ्तार होने का समाचार मिला तो उसने उसे दरबार मे हाजिर करने के लिए राजा यशवन्त सिंह से अनुरोध किया। यशवन्त सिंह ने बादशाह से सुरतान की सम्मान रक्षा का वचन लेने के बाद ही उसे दरबार मे उपस्थित किया। यह कहानी टॉड के 'राजस्थान' के 'मारवाड़ का इतिहास' अध्याय मे वर्णित है और विश्वकवि ने उसी कहानी के आधार पर 'मानी' कविता की रचना की है। 'मानी' कविता इस प्रकार शुरू होती है—

आरंगजेब भारत जबे करिते छिलो खान खान
मारवारपति कहिला आसि, 'करह प्रभु अवधान,
गोपन राते 'अचलगढ़े' नहर जारे एनेछे धरे
बंदी तिनि आमार घरे सिरोहीपति सूरतान।
कि अभिलाप तांहार 'परे आदेश मोरे करो दान।'

(कथा उ काहिनी, 'मानी' पृ० ५६)

जब भारत मे बादशाह औरंगजेब का शासन था तब मारवाडपति यशवन्त सिंह ने सम्राट से आकर कहा—'अन्धेरी रात मे अचलगढ़ से नाहर खाँ ने सिरोहीपति सुरतान को बड़ी कठिनाई से बन्दी बनाया है। वे मेरे घर मे बन्दी हैं। अब आप आज्ञा करें कि आगे क्या किया जाय?' औरंगजेब को सुरतान के बन्दी होने पर सुखद आश्चर्य हुआ। उसके आतंक से बादशाह खुद आतंकित था। वह पहाडी उपत्यकाओं मे अपने वीरोचित कारनामे किया करता था और बादशाह के प्रशासन के लिए चुनौती बन गया था। बादशाह ने कहा—'मैं उसे देखना चाहता हूँ, राजा साहब! आप उसे दूत भेज कर बुलाइए।" राजा यशवन्त सिंह ने तब बादशाह से हाथ जोड़कर कहा—"सुरतान क्षत्रिय कुल का सिंह है—उसे बड़ी मुश्किल से पिंजड़े में बन्द किया गया है। आप पहले मुझे वचन दें कि उसका असम्मान नहीं होगा, तभी मैं आदरपूर्वक स्वयं उसे लेकर दरबार में उपस्थित होऊँगा।"

शुनिया कहे आरंगजेब 'कि कथा शुनि अद्‌भुत !
एतोदिने कि पड़िलो धरा अशनिभरा विद्युत ?

\+ + +

माड़ोयाराज यशोवन्त कहिला तवे जोड़कर,
'क्षत्रकुल-सिंह-शिशु लयेछे आजि मोर घर—
बादशाह तारे देखिते चान, वचन आगे करून दान
किछुते कोनो असम्मान हांवे न कभू तांर 'पर।
सभाय तवे आपनि तारे आनिवो करि समादर।'

(वही, पृ० ५६-६०)

राजा यशवन्त सिंह की बात को सुनकर औरंगजेब को आश्चर्य हुआ। पहले तो बादशाह असमंजस में पड़ गया फिर उसने कहा—'महाराज यशवन्त सिंह! आपकी बात सुन कर आज आश्चर्य हो रहा है, फिर भी मैं वचन देता हूँ कि 'मानी' वीर का मान नष्ट नहीं होगा, आप निश्चिन्त होकर उसे दरबार में लाइए'—

आरंगजेब कहिला हासि 'केमन कथा कहो आज!
प्रवीण तुमि प्रवल वीर माड़ोयापति महाराज!
तोमार मुखे एमन वाणी, शुनिया मने शरम मानि,
मानिर मान करिवो हानि मानीर शोभे हेन काज?
कहिनु आमि, चिन्ता नाहि, आनह तांर सभामाभ।'

(वही, पृ० ६०)

सिरोहीपति कि दर्पोक्ति

राजा यशवन्त सिंह सिरोहीपति सुरतान को साथ लेकर जब औरंगजेब के दरबार में पहुँचे तो वीर सुरतान का चमकता हुआ ललाट उन्नत था, उसकी आंखें सामने की तरफ निर्भीक थीं। वह ऐसे चल रहा था मानो कोई शेर जंगल में बिना किसी खौफ के मन्थर गति से चलता हो। उसके इस स्वाभिमानी मुख को देखकर दरबारियों में रोश छा गया, वे वज्रस्वर में बोले—'बादशाह को सलाम करो।' तब उस वीर ने राजा यशवन्त सिंह के कंधे पर हाथ रख कर कहा—"मैं गुरु चरण को छोड़ कर किसी के सामने अपना माथा नत नहीं करता हूँ"—

सिरोहिपति सभाय आसे माड़ोयाराजे लये साथ,
उच्चशिर उच्चे राखि समुखे करे आँखिपात।
कहिलो सवे वज्रनादे 'सेलाम करो बादशाहजादे'—
हेलिया यशोवन्त कांधे कहिला धीरे नरनाथ,
'गुरुजनेर चरण छाड़ा करि ने कारे प्रणिपात।' (वही, पृ० ६०-६१)

वीर सुरतान के इन बचनों को सुन कर आँखें लाल करके बादशाह के अनुचरों ने कहा—'हम अभी बता सकते है कि सिर कैसे झुकाया जाता है—झुकने की कौन कहे अभी तुम्हारा मुण्ड भूमि पर आ जाता है।' और दरवार मे एक साथ म्यान से कई तलवारें चमक उठीं। तब भी स्वाभिमानी वीर सिरोहीपति धीर-गम्भीर बना रहा, उसके माथे पर जरा भी सिकन नहीं आई, उसने हँस कर कहा—'भगवान मेरी मति कभी ऐसी न करे कि मैं भय से किसी के सामने अपना माथा नत कर दूँ। मैं भय और डर नाम की वस्तु नहीं जानता।' इतना कह कर सिरोही का वीर राजा अपनी तलवार की मूठ पर पूरा भार देकर खड़ा हो गया।

> कहिला रोषे रक्त-आँखि वादशाहेर अनुचर,
> शिखाते पारि केमने माथा, लुटिया पड़े भूमि 'पर।'
> हासिया कहे सिरोहिपति, 'एमन जेन ना होय मति,
> भयेते कारे करिबो नति, जानि ने कभू भय-डर।'
> एतेक वलि दाड़ालो राजा कृपाण 'पर करि भर। (वही, पृ० ६१)

औरंगजेब की वीर-प्रशंसा

बादशाह औरंगजेब राजा सुरतान की बहादुरी पर मुग्ध हो गया और सिंहासन से उठ कर उसने वीर श्रेष्ठ को अपने पास बैठा लिया और प्रसन्न होकर कहा—'हे वीर! भारत मे किस देश पर तुम्हारी आशा है?' राजा सुरतान ने कहा—'अचलगढ़', यही गढ़ देश का सचमुच 'अचलगढ़' है।' सभासद सुनकर हँस पड़ते है, पर बादशाह औरगजेब खुशी-खुशी कहता है—'अचल होकर 'अचलगढ' मे निवास करो, अर्थात तुम स्वतन्त्र रूप से अपने गढ़ मे रहो।'

> वादशाह धरि सुरतानेरे बसाये निलो निज पाश
> कहिला 'वीर, भारत-माझे की देश-'पर तव आश?'
> कहिला राजा, 'अचलगढ़ देशेर सेरा जगत 'पर।'
> सभार माझे परस्पर
> नीरवे उठे परिहास।
> वादशाह कहे, 'अचल हये अचलगढ़े करो वास।' (वही, पृ० ६१)

कुछ इतिहास ग्रन्थो में ऐसा भी लिखा मिलता है कि सिरोही के राजा सुरतान को औरंगजेब के दरबार में ऐसे खिड़की नुमा छोटे रास्ते मे ले जाया गया, जिससे स्वयं ही उसे माथा झुका कर प्रवेश करना पड़े। उस खिड़की के समान दरवाजे की ऊँचाई

बहुत कम थी, किन्तु स्वाभिमानी सुरतान ने जब उसमे प्रवेश किया तो प्रथम अपने दोनों पैरो को अन्दर किया और फिर वह अपने शरीर सहित भीतर प्रविष्ट हुआ। इस प्रकार प्रवेश से उसका माथा झुका नही।

इसमें सन्देह नहीं कि सिरोहीपति वीर और स्वाभिमानी था पर चारण और भाटों ने अतिरंजना कर ऐसे प्रसंगों को रोचक बना दिया है और टॉड साहब ने भी उन्हें ज्यों का त्यों अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में समाविष्ट कर लिया है। असल में 'पृथ्वीराज रासो' आदि में भी ऐसे ही किम्वदन्तीपूर्ण किस्से हैं और उन्हें भी टॉड ने अपने इतिहास ग्रन्थ में ग्रहण कर लिया है। राजस्थान की कुछ ऐसी मनघढ़न्त कहानियों के कारण ही 'राजस्थान' की ऐतिहासिकता पर बाद के आलोचकों ने अंगुली उठाई है। अस्तु, जो भी हो विश्वकवि ने अपनी 'मानी' कविता में वीर बांकुरे सुरतान (सिरोहीपति) का सुन्दर बखान किया है।

'नहर' शब्द का रोचक प्रसंग

रवीन्द्रनाथ के 'कथा उ काहिनी' काव्य-ग्रन्थ की सभी ऐतिहासिक कविताएँ बंगला भाषा के पाठ्यक्रम मे संकलित है। कुछ कविताएँ किशोर विद्यार्थियों के लिए हैं और कुछ उच्च श्रेणी की कक्षाओं के लिए हैं। उक्त 'मानी' कविता में पाठ-भेद या प्रेस की अशुद्धि का हवाला देकर शिक्षक सम्प्रदाय मे 'नहर' शब्द पर बड़ा मतमतान्तर है। विश्वकवि की यह खूबी रही है उन्होंने ऐतिहासिक कविताओं में इतिहास का पूरा अध्ययन कर काव्य रचना की है। 'कथा उ काहिनी' में राजस्थान, बौद्ध, सिख तथा भक्त-कवियों पर कविताएँ हैं। इन कविताओं की रचना करने के पूर्व कवि ने टॉड के 'राजस्थान', 'नेपाली बौद्ध-साहित्य', 'सिख-इतिहास एव हिन्दी के 'भक्तमाल' का अध्ययन किया था। जब तक इन इतिहास ग्रन्थो को बारीकी से नहीं पढा या देखा जायगा तब तक कविता की गहराई मे साधारण पाठक के लिए उतरना दुष्कर कार्य है। यही कारण है कि शिक्षक कक्षाओ में 'नहर' को 'नफर' शब्द बताकर पढाते है। बगला में 'नहर' का व्यक्तिवाचक कोई अर्थ नही होता, हाँ 'नफर' शब्द से सेवक, नौकर या अनुचर का भाव लिया जाता है। इसलिए 'नहर जारे एनेछे धरे बन्दी तिनि आमार घरे।' को पढ़ाते हैं—'नफर जारे एनेछे धरे....।' सच बात तो यह है सिरोहीपति सुरतान कोई साधारण वीर नही था और ऐसे अप्रतिम योद्धा को बन्दी बनाना कोई साधारण सेवक या नौकर का काम नहीं है। लोहे को लोहा ही काट सकता है, शेर को कोई शेर ही बन्दी बना सकता

है। नहर अर्थात् नाहर खाँ भी बड़ा वीर था। उसका पूर्व नाम मुकुन्ददास था और शेर से लड़ने के कारण उसे बादशाह औरंगजेब ने 'नाहर खाँ' (शेरपति) की उपाधि से विभूषित किया था। राजस्थानी भाषा में 'नाहर' शेर को कहा जाता है, हिन्दी में भी इसका यही अर्थ है।

उप-कुलपति का मन्तव्य

इस रोचक प्रसंग पर मेरी रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय के पूर्व उप-कुलपति डॉ० देवीपद भट्टाचार्य से बातचीत हुई। डॉ० भट्टाचार्य और मैं 'चैतन्य लाइब्रेरी' (१८८८-१९८८ ई०) के शताब्दी-समारोह में २२ मई, १९८८ ई० को आयोजित 'रवीन्द्र जयन्ती' के अवसर पर भाषण करने गए थे। मैंने जब रवीन्द्र की 'नकलगढ़' कविता को प्रस्तुत कर अपने भाषण मे 'राष्ट्रीय प्रतीक' का महत्व दर्शाया तो समारोह के उपरान्त डॉ० देवीपद भट्टाचार्य ने 'नहर' को 'नफर' पढ़ाने की दिलचस्प कथा सुनाई। उन्होने कहा कि इस सन्देह को दूर करने के लिए मुझे आनन्द-बाजार पत्रिका गोष्ठी के 'आनन्द मेला' बंगला पत्र में एक लेख प्रकाशित कर स्पष्टीकरण करना पड़ा। डॉ० देवीपद भट्टाचार्य का लेख 'नहर जारे एनेछे धरे' शीर्षक से 'आनन्द मेला' के १३ जुलाई, १९८३ ई० के अंक मे पृष्ठ ४९ पर प्रकाशित हुआ है। लेख मे लिखा गया है—"एखन गोल वेधेछे 'नहर' शब्दटि के निये। कोनो-कोनो स्कूले नाकि बोला होयेछे 'नहर' छापार भूल, आसले होवे नफर' अर्थात् भृत्य। किन्तु ना छापार भूल नय, शब्दटि 'नहर' ई। अभिधाने देखा जाय 'नहर' शब्देर अर्थ 'खाल विशेष'। किन्तु 'खाल' (जल-नहर) गिये तो आर उरंगजेबेर विरोधी राजा सूरतान के बन्दी करे आनते पारे ना। अतएव जे बईटी थेके रवीन्द्रनाथ तांर कविताटिर उपादान संग्रह करेछिलेन सेई टॉड साहेबेर 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' नामक ग्रन्थेर 'माड़-वार' अध्याय देखते होलो, एवं 'नहर' शब्देर रहस्यभेद सम्भव होलो।'

असल में बंगला में ही नही हिन्दी में भी ऐसे प्रसंग मिलते है—'जैसे यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं। सीस उतारे भुंई धरे, तब पैठे घर माहिं। अरबी मे 'खाला' मौसी को कहते हैं और कुछ लोग अर्थ लगाते हैं 'खाल' याने चमड़े का घर नही है। असल मे टॉड साहब अंग्रेज थे और उन्होने बहुत से स्थानों और व्यक्तियो के नाम की हिज्जे (उच्चारण) अपनी भाषा के उच्चारण के अनुरूप की है, उससे बड़ी गड़बड़ी हुई है। टॉड के 'राजस्थान' के हिन्दी अनुवादों मे भी इसे सुधारने की कोशिश नहीं की गई है। जितने अनुवाद हुए हैं सभी हिन्दी प्रदेशों से। राजस्थान का इतिहास और राजस्थानी भाषा के सम्यक ज्ञान-अभाव के कारण शुद्ध रूप सामने नहीं आया है।

इधर राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० रघुवीर सिंह के प्रधान सम्पादकत्व मे श्री देवीलाल पालीवाल द्वारा 'टॉड कृत 'राजस्थान' (१९६३ ई०) हिन्दी मे प्रकाशित हुआ है, उसमें स्थान और व्यक्तियों के नामों को तथा घटनाओ को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है।

'नाहर खाँ' की उपाधि

टॉड के 'राजस्थान' के दूसरे खण्ड के 'मारवाड़ राज्य का इतिहास' के छठे अध्याय में पृष्ठ ४२ पर लिखा है—

The anecdote connected with his nome de querre of Nahur (Tiger) Khan exemplifies his personal, as the other does his mental, intrepidity, The real name of this individual. the head of the Koompawut clan, was Mokundas. He had personally incurred the displeasure of the emperor, by a reply which was deemed disrespectful to a massage sent by the royal ahdy. for which the tyrant condemned him to enter a tiger's den, and contend for his life unarmed. Without a sign of fear, he entered the arena, where the savage beast was pacing and thus contemptuously accosted him: "Oh tiger of the Meah, face the tiger of Jeswunt"; exhibiting to the King of the forest a pair of eyes, which anger and opium had rendored little less inflamed than his own. The animal, startled by so unaccustomed a salutation, for a moment looked at his visitor, put down his head, turned round and stalked from him. "You see", exclaimed the Rathore, "that he dare not face me, and it is contrary to the creed of a true Rajpoot to attack an anemy who dares not confront him" Even the tyrent, who beheld the scene, was surprised into admiration, presented him with gifts,...From this singular encounter he bore the name of Nahur Khan, 'the tiget lord'.

(Tod's Rajasthan, vol. II, Annals of Marwar, ch. VI, Page 42)

शेर से लड़ाई : टॉड का कथन

जो सामन्त और सरदार औरंगजेब के विरुद्ध यशवन्त सिंह की सदा सहायता किया करते थे उनमें राठौड़ों की शाखा के कम्पावत वंश का शूरवीर सरदार नाहर खाँ प्रमुख था। उसका वास्तविक नाम मुकुन्ददास था। मुगल बादशाह औरंगजेब ने उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर उसे 'नाहर खाँ' यानी 'शेरपति' की उपाधि प्रदान की थी। वह मारू याने मारवाड़ का प्रसिद्ध वीर था उसने कई बार संकटपूर्ण घड़ियों मे मारवाड़

के राजा यशवन्त सिंह की प्राणरक्षा की थी। औरंगजेब इतना क्रूर और ईर्ष्यालु था कि वह अपने शासन मे किसी के पराक्रम और वीरता को सहन करने का आदी नही था। जब बादशाह ने राठौड़ वीर मुकुन्ददास राव की बहादुरी के कारनामे सुने तो एक शाही अहदीदी की मार्फत उसने उसके पास पैगाम भिजवाया। मुकुन्ददास ने वीरतापूर्ण भाषा मे इसका उत्तर दिया। इससे कुपित होकर औरंगजेब ने मुकुन्ददास को कठोर दण्ड देने के लिए उसे शेर के पिंजड़े मे बिना हथियार और नंगे बदन घुसने की आज्ञा दी। इस कठोर आदेश को सुन कर वह वीर जरा भी विचलित नही हुआ। हँसते हुए वह पिंजड़े मे शेर के पास पहुँचा। उसने देखा जंगल का शेर भयानक गर्जन करते हुए पिंजड़े मे इधर-उधर घूम रहा है। आँखें लाल करके बड़ी भयंकर आवाज में मुकुन्ददास ने शेर को ललकारा—"अरे मियाँ (बादशाह) के शेर! आ यशवन्त सिंह के शेर का सामना कर!"

उस समय राठौड़ सरदार मुकुन्ददास की आँखों से आग की लपटें निकल रही थीं। उसकी ऐसी भयंकर गर्जना सुनकर शेर चौकन्ना हो गया और उसकी दहाड़ कुछ देर के लिए बन्द हो गई, पुनः अपनी पूँछ फुला कर विकराल गर्जना करता हुआ शेर अपने प्रतिद्वन्द्वी मुकुन्ददास को देखने लगा। उस समय प्रतीत हो रहा था जैसे अग्नि के दहकते हुए चार अंगारे प्रज्ज्वलित हो गए हैं—दो राठौड़ की आँखों के और दो शेर की आँखों के। थोड़ी देर नेत्रों से नेत्र टकराये। फिर जंगल का शेर अपना मुख घुमा कर मुकुन्ददास के सामने से हट गया और पिंजड़े की दूसरी तरफ चला गया। शेर को पीठ दिखा कर भागता हुआ देखकर वीर मुकुन्ददास ने ऊँचे स्वर में कहा—'रण से पीठ दिखा कर भागते हुए शत्रु पर आक्रमण करना क्षत्रिय का धर्म नहीं है, यह राजपूतों की रणनीति के विरुद्ध है।'

नाहर खाँ 'शेरपति'

ऐसी अनोखी घटना अपनी आँखों से देखकर बादशाह औरंगजेब ही नही दर्शक भी भौंचक्के रह गए। आखिर पाषाण हृदय बादशाह का दिल पसीज गया। उसने वीर राठौड़ को पिंजड़े से बाहर आने की आज्ञा दी और मुकुन्ददास की पीठ ठोकी। बादशाह ने उसका नाम रखा 'नाहर खाँ' अर्थात् 'शेरपति'। औरंगजेब के इस खिताब से ही बाद में मुकुन्ददास इतिहास में नाहर खाँ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसी वीर नाहर खाँ (मुकुन्ददास) का बखान टॉड के 'राजस्थान' में है, जिससे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने उपकथा लेकर 'मानी' कविता का प्रणयन किया है। 'मानी'

कविता के 'नहर' शब्द को लेकर इसलिए डॉ० देवीपद भट्टाचार्य को निबन्ध लिखना पड़ा। असल में जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि टॉड साहब ने अंग्रेजी में NAHUR KHAN लिख कर इस गड़बड़ी का सूत्रपात कर दिया। विश्वकवि ने भी उसे 'नाहर' न लिखकर 'नहर' लिख दिया। बंगला भाषा मे 'व' को 'ब' और 'य' को 'ज' के रूप मे उच्चरित किया जाता है जैसे 'जवाहरलाल' नेहरू को जहरलाल नेहरू, 'लक्ष्मी' को 'लक्खी', 'शिव' को 'शिब', 'यथा' को 'जथा' आदि। वैसे नाहर खां की उपकथा से ही नाहर का अर्थ शेर से या सिंह से ध्वनित होता है। टॉड ने लिखा भी है—"....his nome de querre of Nahur (tiger) Khan, 'the tiger lord' लेकिन डॉ० देवीपद भट्टाचार्य ने अपने लेख के उपसंहार मे 'नहर' का अर्थ शेर से लगाने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए उसे उलझनपूर्ण या विवादपूर्ण बना दिया है। वे लिखते है—किन्तु 'नहुर' वा 'नहर' शब्देर अर्थ तो 'व्याघ्र' होउया शक्त, केनोना अभिधाने (शब्दकोश) से रकम नेई। मूल शब्द होलो 'लाहुल' (Lahul) जार अर्थ हिंस्र प्राणी (predetory animal); आरबी थेके फार्सिर मध्य दिए शब्दटि 'हिन्दुस्तानी' ते परिवर्तित हये 'लाहुर। टॉड ताके लेखेन 'नाहुर', रवीन्द्रनाथ करेछेन नहर'।" अर्थात् नहुर' या 'नहर' शब्द से 'व्याघ्र' का अर्थ बोध होना कठिन है, क्योंकि शब्दकोश में ऐसा नहीं है। आपने मूल शब्द 'लाहुल' से हिंस्र प्राणी की अभिव्यक्ति की है और कहा है कि यही शब्द 'हिन्दुस्तानी' में परिवर्तित होकर बदल गया। किन्तु हमारी दृष्टि से ऐसा नहीं है। हिन्दी शब्द-कोशों में 'नाहर' शब्द का स्पष्ट अर्थ दिया गया है—नाहर (हिन्दी पुलिंग), जिसका अर्थ है सिंह, शेर, व्याघ्र, बाघ, टेसू का फूल। हिन्दी में 'नर-नाहर' का कई स्थानों पर प्रयोग हुआ है और राजस्थानी भाषा में तो इसका धड़ल्ले से प्रयोग होता है। 'धरती धोरा री' के राजस्थानी जनकवि कन्हैयालाल सेठिया की 'पातल अर पीथल' कविता में 'नाहर' शब्द का 'शेर' के अर्थ मे कई बार प्रयोग हुआ है—

म्हे आज सुणी है नाहरियो स्याला रै सागै सोवै लो ···

\+ + +

पीथल रा आखर पढ़ता ही राणा री आँख्या लाल हुई,
धिक्कार मनै हूं कायर हूं नाहर की एक दकाल हुई।
(—सेठिया की 'पातल अर पीथल' कविता से)

रवीन्द्रनाथ की मानी' कविता की व्याख्या करने हेतु तथा 'नाहर खाँ' की उप-

कथा को स्पष्ट करने के लिए मैंने भी एक लेख लिखा, जो दैनिक "विश्वमित्र" कलकत्ता के रविवासरीय संस्करण (१२ जून, १९८८ ई०) में "जब हिन्दू सेनापति को औरंगजेब ने 'नाहर खाँ' की उपाधि दी" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।

ठाकुर से टैगोर

अंग्रेजों के इसी उच्चारण भेद के कारण रवीन्द्र के 'ठाकुर' परिवार का नाम 'टैगोर' हो गया। इसकी भी एक दिलचस्प कहानी है। ठाकुर परिवार के पूर्व पुरुष जगन्नाथ कुसारी ने एक मुसलमान लड़की से विवाह कर लिया था। अतः उन्हें जातिच्युत होना पड़ा। रवीन्द्रनाथ के बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ ने भी स्वीकार किया है कि उनके परिवार के पंचानन जब यशोहर (अब बंगलादेश) से कलकत्ता आये और अंग्रेजों के साथ काम करते थे तब उन्हें 'ठाकोर' या 'टैगोर' की उपाधि मिली। सत्येन्द्रनाथ का वक्तव्य हमे इन्दिरा चौधरानी द्वारा लिखित 'पुरातनी पुस्तक' के पृ० १२२ पर लिखित उनके ११ अगस्त १८६८ ई० के पत्र मे मिलता है। जातिच्युत होने के कारण ठाकुर-परिवार को पहले के गोविन्दपुर (आजकल फोर्ट वीलियम का किला) गाँव में मछुओ की बस्ती में रहना पड़ता था। ठाकुर-परिवार के पंचानन बाबू अंग्रेजों के पण्य आदि से लदे जहाजों से माल उतारने-चढ़ाने की ठेकेदारी करते थे। मछुआरे उन्हें ठाकुर (ब्राह्मण) कहते थे और अंग्रेज 'ठाकुर' का उच्चारण 'ठाकोर-टैगोर' करते थे। यह उच्चारण जगन्नाथ बाबू को प्रिय लगा और उन्होंने अपने को 'टैगोर' कहलाने और लिखने में आभिजात्य-बोध-भाव को ग्रहण किया। फुरेल ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'दि टैगोर फेमिली' (The Tagore Family: a memoir By James W Furell, Calcutta 1892) के पृ० २० पर लिखा है—"Panchanana. the fifth in descent from Bolaram, appears to have been the first member of the family who received the title of Tagore, which is the corrupted form of Thakur, they still continue to bear."

रवीन्द्रनाथ की जीवनी के प्रख्यात लेखक श्री प्रभात कुमार मुखोपाध्याय द्वारा लिखित 'रवीन्द्र जीवनी' (१९६० ई०) मे भी टैगोर पदवी धारण करने की कहानी का उल्लेख पृ० १५ पर मिलता है—"उस समय अंग्रेज ठाकुर शब्द को Taguore लिखते थे, जो बाद में Tagore हो गया।"

हमने 'नाहर' को टॉड द्वारा 'नाहुर' लिखने तथा रवीन्द्र द्वारा उसे 'नहर' लिखने के प्रसंग में इस रोचक वृतान्त का उल्लेख किया है। असल में आज भी हमारे

मानस में अंग्रेजियत का यह आभिजात्य संस्कार मौजूद है। प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक श्री सत्यजीत राय अपने को 'रे' लिखने में गौरव-बोध करते हैं और राजनेता श्री सिद्धार्थशंकर राय भी 'रे' के पीछे दीवाने हैं। कई अंग्रेजी-दाँ 'दत्त परिवार' के लोग अपने को 'दत्त' न कहकर 'डट्' कहने में गर्व का अनुभव करते हैं।

खण्डेला-नरेश की शेर से लड़ाई

नाहर खाँ की भाँति टॉड के राजस्थान' ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में 'शेखावाटी का इतिहास' के पांचवें परिच्छेद में पृष्ठ ३१८ पर खण्डेला के राजा द्वारकादास के शेर से लड़ने की रोचक कथा का वर्णन है। खण्डेला शेखावाटी (ढूंढाड़) का एक प्राचीन नगर है। खण्डेला-नरेश गिरधर की मृत्यु के उपरान्त उनके ज्येष्ठ पुत्र राजा द्वारकादास गद्दी पर बैठे। यह घटना तब की है जब राजा द्वारकादास दिल्ली में बादशाह अकबर के दरबार में रहते थे। शेखावत राजपूतों में खण्डेला-नरेश से ईर्ष्या थी। उनके गद्दी पर बैठने के पश्चात मनोहरपुर के अधीश्वर ने, जो शेखावत नूनकरण का वंशज था, उसने राजा द्वारकादास को एक षडयंत्र-जाल में फंसा दिया। बादशाह अकबर इस समय शिकार करके लौटे थे और साथ में एक जीवित शेर को पकड़ कर लाए थे। उन दिनों सिंह से वीरों को लड़ता हुआ देखने की बादशाहों में बड़ी इच्छा रहती थी। अत: जीवित शेर से लड़ने के लिए बादशाह ने अपने दरबार के लोगों से पूछा—'इस शेर के साथ कौन युद्ध कर सकता है?' इस घोषणा को सुनते ही मनोहरपुर के राजा ने बादशाह से कहा—'रायसलोत वंशी खण्डेला-नरेश बड़े शूर-वीर हैं, वे नाहर सिंह के शिष्य हैं और शेर से लड़ने के अभ्यस्त हैं।'

मनोहरपुर के राजा ने द्वारकादास का उपहास कराने के लिए बादशाह से यह बात कही थी, लेकिन बादशाह ने उसे गम्भीरता देकर राजा द्वारकादास को सिंह से युद्ध करने के लिए आज्ञा दी। द्वारकादास भली प्रकार इस बात को समझते थे कि बादशाह को मनोहरपुर के राजा ने, जो इस प्रकार की बात कही है, उसके दो अभिप्राय हैं। एक तो यह कि बादशाह के आदेश देने पर मैं सिंह के साथ युद्ध करने से इन्कार करूँगा तो उससे मेरा उपहास होगा। दूसरा अभिप्राय उसका यह हो सकता है कि यदि मैंने इन्कार नहीं किया, तो सिंह के द्वारा मेरा प्राण नाश होगा। बादशाह का आदेश सुन कर खण्डेला-नरेश जरा भी भयभीत नहीं हुए और उन्होंने शेर के साथ युद्ध करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अस्तु, दूसरे दिन खण्डेला-नरेश शेर से लड़ेंगे—इसकी घोषणा नगाड़ा बजवाकर दिल्ली में करवा दी गई।

दर्शकों से रंगभूमि खचाखच भर गई। राजा द्वारकादास 'भगवान नृसिंह' के उपासक थे। खण्डेला शहर (सीकर) में 'नृसिंहावतार' विष्णु का मन्दिर

पहाड़ के ऊपर स्थित है। यह बड़ा ही प्राचीन मन्दिर है और आज भी लोग बड़ी श्रद्धा से मन्दिर में जाकर 'नृहसिंहजी' की पूजा-अर्चना करते हैं। खण्डेला-नरेश द्वारकादास ने नित्य की भाँति दिल्ली की यमुना नदी मे स्नान किया, पूजा की और पीताम्बरी पहने हुए पूजा की थाली लेकर सीधे रंगभूमि मे पहुँच गए। वहाँ बादशाह को उनकी बड़ी प्रतीक्षा थी। बादशाह की आज्ञा होते ही शेर के पिंजरे का दरवाजा खोल दिया गया। द्वारकादास शान्त भाव से शेर के पिंजड़े की तरफ बढने लगे। उनके शत्रु निश्चिन्त थे कि निहत्थे राजा जब पूजा-नैवेद्य की थाली लेकर शेर के पिंजड़े में जायेंगे तो पशुराज उन्हें भक्षण कर लेगा। राजा द्वारकादास ने अपने आराध्य 'नृसिंह' का स्मरण करते हुए शेर के पिंजड़े में प्रवेश किया। उन्होंने आगे बढ़ कर सबसे पहले पशुराज के मस्तक पर रोली-चन्दन का टीका किया और पुनः उसके गले में फूलमाला पहनाई। नैवेद्य-अक्षत अर्पण किया। दर्शकों ने आश्चर्य से देखा। राजा साहब ध्यानमग्न होकर पशुराज की पूजा कर रहे हैं और शेर अपनी जीभ से राजा के मुख-कमल को चाट रहा है। ऐसे विस्मयकारी दृश्य को देखकर बादशाह अकबर आश्चर्य मे डूब गया। वस्तुतः 'नृसिंह' देवता के प्रति ऐसी अगाढ़ भक्ति और श्रद्धा का यह अपूर्व दृश्य था।

अकबर को समझ मे नही आया कि ऐसा क्यो हुआ? वह विश्वास पूर्वक सोचने लगा कि द्वारकादास मे कोई दैवी शक्ति है। उसने राजा को बुलाकर अपने पास बैठाया और कहा—'राजा साहब, आपकी वीरता, साहस और भक्ति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आप जो चाहें मुझसे माँग सकते हैं, मैं वही आपको दूँगा।'

निष्काम राजा को क्या चाहिए था? वे अपने छोटे से राज्य से सन्तुष्ट थे। उन्होने बादशाह अकबर से कहा—'जहाँपनाह! मैं इस विपत्ति से मेरे इष्ट भगवान नृहसिंह की कृपा से बच गया। भविष्य में आप किसी को भी इस प्रकार की विपद में न डालें, यही मेरी आपसे प्रार्थना है।'

खण्डेला-नरेश की इस कथा का वर्णन 'खण्डेला का इतिहास' के लेखक श्री सूर्यनारायण शर्मा ने पुस्तक के पृ० ६० पर किया है तथा गीता प्रेस, गोरखपुर के 'कल्याण' मासिक मे भी नृसिंह-भक्त खण्डेला-नरेश द्वारकादास की कथा वर्णित है।

हिन्दू-मुस्लिम मित्रता का नमूना

कहा जाता है कि खण्डेला के राजा द्वारकादास अपने समय के अत्यन्त शूरवीर खानजहान लोदी के द्वारा मारे गए थे। कुछ इतिहास ग्रन्थो के द्वारा ऐसा भी पता चलता है कि वे दोनो एक-दूसरे के द्वारा मारे गए थे। घटना का विवरण इस प्रकार

है—'द्वारकादास और खानजहाँन लोदी में परस्पर मित्रता थी। कुछ कारणों से दिल्ली का बादशाह अकबर खानजहाँन से चिढ़ गया और उसने खण्डेला के राजा को खानजहांन पर आक्रमण करने और उसके मृत शरीर को दरबार में लाने का आदेश दिया। बादशाह की इस आज्ञा को सुन कर द्वारकादास बड़े असमंजस में पड़ गये। खानजहांन उनका मित्र था। तब भला वे उस पर कैसे आक्रमण कर सकते थे? अन्त में खण्डेला के राजा द्वारकादास ने खानजहाँन लोदी को सन्देश भेजा कि बादशाह ने आपके विरुद्ध अत्यन्त अनुचित कार्य मुझे सौंपा है। मैं बड़े असमंजस में हूँ। आप या तो बादशाह अकबर के सामने आकर आत्मसमर्पण करें अथवा भाग जायें। जब खानजहांन को अपने मित्र द्वारकादास का यह सन्देश मिला तो उसने न आत्मसमर्पण करना चाहा और न भाग जाने का विचार किया। वह शूरवीर था। बल्कि इन दोनो बातो की अपेक्षा मित्र के हाथो मारे जाने पर उसने अपनी श्रेष्ठता समझी। 'फरिश्ता' ने अपने इतिहास ग्रन्थ में इस घटना का वर्णन करते हुए दोनों वीरों की प्रशंसा की है। युद्ध क्षेत्र मे खण्डेला-नरेश द्वारकादास और वीर खानजहांन एक-दूसरे से लड़े और दोनो ही एक-दूसरे की तलवार से मारे गए।'

इस घटना का वर्णन टॉड के 'राजस्थान' के दूसरे भाग मे पृ० ३१९ पर इस प्रकार है—

Dwarcadas was slain by the greatest hero of the age in which he lived, the celebrated Khan Jehan Lodi, who according to the legends of the Shekhawuts, also fell by the hand of their lord; and they throw an air of romance upon the transaction, which would grace the annals of chivalry in any age or country. Khan Jehan and the chieftain of Khundaila were sworn friends, and when nothing but the life of the gallant Lodi would satisfy the king (Akbar), Dwarca gave timely notice to his friend of the hateful task imposed upon him, advising either submission or flight His fate, which forms one of the most interesting episodes in Ferishta's history, involved that of the Shekhawut chief. (Tod's Rajasthan, vol II, Annals of Amber, ch. V, Page 319)

इस प्रकार खण्डेला के राजा द्वारकादास ने जो शेखावत वंश के वीर पुरुष थे, शेर से लड़कर जहाँ अपनी वीरता की स्थापना की, वहीं उन्होंने मित्रता का निर्वाह करने के लिए अपने प्राणो का विसर्जन किया। इसीलिए टॉड ने लिखा है 'ऐसे वीरता के उदाहरण संसार मे विरल हैं।'

राजस्थानी-साहित्य पर रवीन्द्रनाथ के विचार

१६६१ ई० में बीकानेर से 'वीर-रस-रा दूहा' का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादक हैं पं० नरोत्तम स्वामी। राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध विद्वान श्री अगरचन्द नाहटा ने इसकी भूमिका लिखी है, जिसमें राजस्थानी-साहित्य पर रवीन्द्रनाथ के विचारों का बखान हुआ है।

१८ फरवरी १६३६ को राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता द्वारा आयोजित एक सभा में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सभापति-पद से भाषण करते हुए कहा था—

'भक्ति-रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया ही जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हरएक प्रान्त में साधारण या उच्च कोटि का साहित्य निर्मित हुआ है, लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है, उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया जाता और उसका कारण है कि राजस्थानी कवियों ने कठिन सत्य के बीच में रहकर युद्ध के नगाड़ों के बीच अपनी कविताएँ बनाई थीं। प्रकृति का ताण्डव रूप उनके सामने था। क्या आज कोई कवि केवल अपनी भावुकता के बल पर फिर वह काव्य निर्माण कर सकता है? राजस्थानी भाषा के साहित्य में जो एक प्रकार का भाव है, जो उद्वेग है, वह राजस्थान का खास अपना है वह केवल राजस्थान के लिए ही नहीं, सारे भारतवर्ष के लिए गौरव की वस्तु है। राजस्थान का यह साहित्य कवियों के अन्तराल से निकला है। अतः यह प्रकृति के बहुत नजदीक है। ऐसा संग्रह बहुत ही महत्वपूर्ण होगा और यह उचित होगा कि आप संसार के कल्याणार्थ इसका सुन्दर रूप से सम्पादन करा कर इसे प्रकाशित करें। मुझे क्षितिमोहन सेन महाशय से हिन्दी काव्य का आभास मिला था, पर आज जो मैंने पाया है, वह बिल्कुल नवीन वस्तु है। मुझे उसे आज तक सुनने का मौका नहीं मिला था, लेकिन आज मुझे साहित्य का एक नवीन मार्ग मिला है। मैं सुना करता था कि चारण कवि युद्ध के समय उत्तेजनावर्द्धक कविताएँ सुना-सुना कर लोगों को प्रोत्साहित करते थे। पर आज मैंने उन कविताओं का रसास्वादन किया और मुझे इस साहित्य में बहुत जोर मालूम पड़ रहा है। इसका सम्पादन और प्रकाशन देश के लिए बहुत आवश्यक है।' ('वीररस-रा दूहा' सम्पादक, नरोत्तम स्वामी, पृ० ३)

इसी भावना से उद्‌बुद्ध होकर राजस्थान रिसर्च सोसाइटी ने राजस्थानी-साहित्य के कई अलभ्य ग्रन्थों का प्रकाशन किया तथा साहित्य गवेषणा में आर्थिक सहयोग दिया।

शायद इसी भावना से प्रेरित होकर रवीन्द्रनाथ ने 'राजपूताना' कविता की रचना की—जो यहाँ प्रस्तुत है।

'राजपूताना' कविता

रवीन्द्रनाथ ने २२ ज्येष्ठ १३४५, बंगाब्द (१९३८ ई०) में 'राजपूताना' कविता की रचना की। 'राजपूताना' कविता 'नवजातक' काव्य (रवीन्द्र-रचनावली, चतुर्विंश खण्ड) में संकलित है। कवि ने इस कविता में राजस्थान के प्राचीन गौरवमय इतिहास को उत्कीर्ण कर उसकी वर्तमान स्थिति पर दुःख व्यक्त किया है। कवि कहता है कि राजपूताना मृत्यु से युद्ध करनेवाला वीर रहा है। उसका अतीत उज्ज्वल है, जिसने अपने रक्त से इतिहास की रचना की है। उसका जयस्तम्भ (विजयस्तम्भ) इसका साक्ष्य है—

एई छवि राजपूतानार,
ए देखि मृत्युर पृष्ठे बेंचे थाकिबार
दुर्विपह वोझा।
हतबुद्धि अतीतेर एई जेन खोंजा
पथभ्रष्ट वर्तमाने अर्थ आपनार,
शून्येते हारानो अधिकार।
ऐ तार गिरिदुर्गे अवरुद्ध निरर्थ भ्रकुटि,
ए तार जयस्तम्भ तोले क्रुद्ध मूठि
विरुद्ध भाग्येर पाने।

(नवजातक, 'राजपूताना' पृ० १७)

बार-बार मृत्यु ने राजस्थान को अपना ग्रास बनाने की चेष्टा की, किन्तु वह मृत्युञ्जयी रहा। उसके भग्नावशेष आज भी उसकी वीरता, धीरता और साहस के निदर्शन हैं—

मृत्युते करेछे ग्रास तबू उ से मरिते ना जाने,
भोग करे असम्मान अकालेर हाथे
दिने राते,

असाढ़ अन्तरे
ग्लानि अनुभव नाहि करे,
आपनारि चाटुवाक्ये आपनारे भूलाय आश्वासे— (वही, पृ० १७)

मरुधरा के भग्नस्तूप और गढ आज भी उसके अतीत इतिहास की गाथा को वखान रहे हैं—

भग्नस्तूपे थाके तार नामहीन प्रच्छन्न महिमा,
जेगे थाके कल्पनार भिते
इतिवृत्तहारा तार इतिहास उदार इंगिते। (वही, पृ० १७)

शताब्दियों से राजस्थान ने जीवन-मृत्यु की आँख-मिचौनी का खेल खेला है। उन दिनों युद्ध के नगाड़ों की जो जयध्वनि सुन पड़ती थी, उसकी प्रतिध्वनि आज भी गुंजरित है—

जीवनमृत्युर द्वन्द्व-माझे
से दिन ये दुन्दुभि मन्द्रियाछिलो तार प्रतिध्वनि बाजे
प्राणेर कुहरे गुमरिया। निर्भय दुर्दान्त खेला, (वही, पृ० १९)

कवि रवीन्द्रनाथ को इस बात का क्षोभ है कि राजस्थान ने मृत्यु से युद्ध कर आखिर क्या पाया? क्यों नहीं उसने शंकर के तीसरे नेत्र से सम्मान ग्रहण किया?

ताई भाबि हे राजपूताना,
केनो तुमि मानिलेना यथाकाले प्रययेर माना,
लभिलेना विनष्टेर शेष स्वर्गलोक,
जनतार चोख
दीप्तिहीन
कौतुकेर दृष्टिपाते पले पले करे जे मलिन।
शकरेर तृतीय नयन हाते
सम्मान निले ना केनो युगान्तेर वह्निर आलोते।
(वही, पृ० १९)

रवीन्द्रनाथ ने अपनी 'राजपूताना' लम्बी कविता में जिस प्रांजल भाषा में अपने हृदयोद्गारों को उद्भावित किया है, वे उनके राजपूताना से अतिशय लगाव के सूचक हैं।

'वीर-रस रा दूहा'

"वीर-रस रा दूहा" की प्रस्तावना मे कर्नल जेम्स टॉड के कथन के बारे मे लिखा गया है—

'There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopylae and scarcely a city that has not produced its Leonidas" अर्थात् राजस्थान में ऐसा कोई भी छोटा राज्य नहीं है, जहाँ यूरप की थर्मोपोली घाटी न हो तथा कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जिसने यूरोप के महाबली लियोनिदास सरीखे रणबांकुरों को पैदा नहीं किया हो।' लगता है महामना टॉड सम्भवतः यह लिखना भूल गए कि थर्मोपोली जैसे रणक्षेत्र तैयार करनेवाले वीर-रस के कवियों से भी राजस्थान का छोटे-से-छोटा गाँव खाली नहीं रहा है। यहाँ के वीरव्रती तथा भावुक-हृदय चारण, भाट, ढाढ़ी, ढोली, ढोलिनों की कविताएँ कालिदास, भवभूति, भारवि, शेक्सपियर और मिल्टन से कम काव्यानन्द देने वाली नही हैं। ये कविताएँ जैसे स्वयं वीर-रस में डुबकी लगाकर वीरत्व की साक्षात् प्रतिमूर्ति बन गई हैं। राजस्थान भारत की वीरबाहु ही नहीं भारत का सरल भावुक हृदय भी रहा है, जिसके साहित्य में अवगाहन करने से एक ओर शृङ्गार के अद्भुत नमूने मिलेंगे तो दूसरी ओर बाजुओं को फड़कानेवाली कविता मिलेगी। और ऐसा क्यो न हो, जहाँ की माताएँ अपने नवजात शिशु को जन्मते ही घूटी में वीरता का अमृत पिला देती हैं।

एक राजस्थानी माता कहती है—

> इला न देणी आपणी, रण-खेता भिड़ जाय।
> पूत खिलावे पालणै, मरण-बड़ाई माय॥

(वीर-रस रा दूहा, पृ० २)

माता नवजात शिशु को झूले मे भुला रही है। मरने की महिमा की शिक्षा वह तभी से देना आरम्भ करती है। माता लोरी देती हुई कहती है कि हे पुत्र! मर जाना, प्राण दे देना, पर अपनी मातृभूमि को दूसरे के हाथों न जाने देना। जो बालक लोरियो में ही इस प्रकार 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' और 'स्वतंत्रता' का पाठ पढ़ता है तो निश्चित रूप से वह जाति और देश विदेशी दासता मे कैसे रह सकता है? डॉ० कन्हैयालाल सहल ने 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद' ग्रन्थ मे जो भूमिका लिखी है—'वीर-रस रा दूहा' मे उसे इस प्रकार उद्धृत किया गया है—'अंग्रेज कवि ब्राउनिंग ने अपनी कविता मे एक जगह कहा है कि जीवन

भर मैं संघर्ष करता रहा हूँ, किन्तु मेरी अन्यतम इच्छा है कि 'हे मृत्यु ! जब कभी तुम आओ, चुपके-चुपके मेरा प्राणान्त न कर डालना। प्रत्यक्ष होकर मुझसे युद्ध करना, मैं तो जीवन भर जूझता ही रहा हूँ, यह जीवन का एक अन्तिम युद्ध और सही।' मृत्यु से लोहा लेने की इस वीर भावना की साहित्यालोचको द्वारा बड़ी प्रशसा की जाती है और वस्तुतः यह सराहनीय भी है, पर ब्राउनिंग को यदि यह ज्ञात होता कि भारतवर्ष में राजस्थान जैसा कोई एक ऐसा अद्वितीय प्रान्त है, जहाँ मृत्यु को त्यौहार के रूप में मनाया जाता है, धारातीर्थ (असिधारा) में स्नान करना जहाँ परम और पवित्र कर्तव्य समझा जाता है, तो निश्चित ही कवि ब्राउनिंग की वाणी प्रफुल्लित होकर प्रशंसा के बहुमुखी उद्‌गारों से फूट पड़ती। राजस्थान का यह मरण-त्यौहार एकदम नवीन है। यह कोरी कल्पना नहीं है, यह एक ऐसी वास्तविकता है, जिसपर सहस्त्रों सुन्दर भावनाएँ न्यौछावर की जा सकती हैं। देखिए राजस्थानी साहित्य मे मरण-त्यौहार—

आज घरे सासू कहै, हरख अचानक काय।
वहू बलेवा हूलसे, पूत मरैवा जाय॥
(वीर-रस रा दूहा, पृ० १५)

अर्थात् सास कहती है कि आज घर में यह अकस्मात हर्ष कैसा ? तब उसे मालूम हुआ कि पुत्र धारातीर्थ में याने युद्ध में रक्त स्नान करने जा रहा है और पुत्रवधू सती होने को हुलस रही है। तभी तो राजस्थान को वीरों और वीरांगनाओं की भूमि, आन-बान पर मर मिटने वाली सतियों की भूमि, त्याग और बलिदान की पावन भूमि कहा गया है।

देश की बलिवेदी पर जब पुत्र अपने प्राणो को न्यौछावर कर देता था, तब वीर-प्रसविनी माता को पुत्र जन्म से भी अधिक हर्ष का अनुभव होता था—

सुत मरियो हित देस-रे, हरस्यो बन्धु समाज।
मा नहं हरखी जलम दे, जितरी हरखी आज॥ (वही, पृ० १५)

रवीन्द्रनाथ ने अपने काव्य द्वारा मृत्यु को गौरवान्वित किया है। जीवन की पूर्णता के रूप मे उन्होंने जैसे मृत्यु का चित्रण किया है, वह उनकी बड़ी देन समझी जाती है, किन्तु फिर भी उनकी भावना दर्शन-शास्त्र के दायरे में ही रही। गुरुदेव ने बतलाया था कि मृत्यु किसी भी प्रकार से डरने की वस्तु नहीं, वह तो जीवन के अनन्त प्रवाह मे एक विश्राम मात्र है, माता के एक स्तन से हटकर दूसरे स्तन से लग जाना है। मृत्यु के

इस सत्य ज्ञान का जैसे मूर्तिमन्त रूप राजस्थानी साहित्य में मिलता है उससे केवल राजस्थान ही नहीं समूचा भारतवर्ष गौरव से मस्तक ऊँचा कर सकता है। राजस्थान के इन लाडले सपूतों ने मृत्यु के साथ जैसा खिलवाड़ किया है उससे स्वयं मृत्यु भी भयभीत हो गई होगी!

विश्वकवि की आर्यावर्त कविता यहाँ उद्धृत है—

'कायरों की मृत्यु सांस-सांस पर होती है,
कापता है मरण पराक्रमी की छाया से।' (आर्यावर्त, रवीन्द्रनाथ)

पति युद्ध मे मारा जाता है। पति को अपने हाथो यमराज को सौंपने वाली वीर नारी उसे अकेला कैसे-कैसे जाने दे सकती है। पति के बिना वियोग मे वह अकेली कैसे जियेगी? वह अपने को भी मृत्यु को सौंपती है। मृत्यु के मुख मे जाते समय अर्थात् सती होते समय वह अधीर नहीं होती है। वह खुशी-खुशी पति का सहगमन करती है। पति ढोल-बाजे बजाते हुए उसे ब्याहने आया था और ढोल-नगारे बजाती हुई वह पति के साथ सती होती है। किन्तु चिता-रोहण के पूर्व वह अपने पिता को एक सन्देशा कहला भेजती है—

पंथी! एक संदेसड़ो बाबल ने कहियाह।
जायां थाल न बज्जिया, टामक टहटहियाह॥ (वही, पृ० ८)

हे पथिक! मेरे पिता को एक संदेशा कह देना कि जन्म के समय तो मेरे लिए थाली भी नहीं बजाई गई पर आज मेरे लिए बड़े-बड़े नगाड़े बज रहे हैं। आज मैंने तुम्हारे नाम को भी समुज्ज्वल बना दिया है। कन्या को हीन समझ कर उसके जन्म के समय थाल नहीं बजता, यह हमारे देश में आम रिवाज है। ऐसी कुप्रथा पर इस राजस्थानी कविता में कितना तीव्र कटाक्ष है।

शायद ऐसे ही कवित्तों और दोहों को सुनकर विश्वकवि ने राजस्थान रिसर्च सोसाइटी के जलसे में सदारत करते हुए कहा था—'राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है, उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया जाता है।'

महाकवि सूर्यमल की 'वीर सतसई'

'वीर-रस रा दूहा' के समान ही राजस्थानी भाषा मे सूर्यमल की 'वीर-सतसई' है। कविराजा सूर्यमल मिश्रण राजस्थान के चारणो की मिश्रण शाखा के एक प्रतिष्ठित कुल में वि० सं० १८७२ मे बूंदी में पैदा हुए थे। इनके दादा वदन कवि और पिता चण्डीदान की बूंदी दरबार मे प्रसिद्ध कवियो के रूप में गणना थी। कवि सूर्यमल ने ६ विवाह किए थे और शराब का अत्यधिक सेवन करते थे। इन्हें कोई सन्तान नही थी। अतः इन्होने मुरारिदान को गोद लिया था। इनका देहान्त सं० १९२० मे बूंदी मे हुआ। सूर्यमल ने बहुत सी फुटकर कविताएँ लिखी और चार ग्रन्थ रचे, जिनके नाम हैं—'वंशभास्कर', 'वीर सतसई' (अपूर्ण), 'वलवंत विलास' एव 'छंदो मयूख'। 'वंशभास्कर' इनकी सर्वश्रेष्ठ और सर्व-प्रिय रचना है। बूंदी नरेश की आज्ञा से इन्होने सं० १८९७ में इस ग्रन्थ की रचना की, जिसमें बूंदी के अतिरिक्त अन्य रियासतो के इतिहास का वर्णन भी पद्यबद्ध भाषा में है। 'वंशभास्कर' की टीका कवि कृष्णसिंह बारहट ने लिखी है। सात खण्डो में यह ग्रन्थ ४,३६८ पृष्ठों में छपकर जोधपुर से प्रकाशित हुआ है। १९०९ ई० मे मलसीसर के ठाकुर भूरसिंह शेखावत ने 'महाराणा यश-प्रकाश' मे 'वंशभास्कर' के पदो का सकलन किया है। 'महाराणा यश-प्रकाश' का प्रकाशन बम्बई के वेंकटेश्वर (स्टीम) प्रेस से हुआ है। 'वंशभास्कर' की भाषा डिंगल मिश्रित पिंगल है। यह ग्रन्थ राजस्थान का पद्यात्मक इतिहास है, जिसका ऐतिहासिक मूल्य सर्वाधिक है। इसमे वर्णित घटनाएँ और विवरण बहुत अशो मे प्रामाणिक माने जाते हैं।

वीर सतसई

सूर्यमल की दूसरी प्रसिद्ध काव्य-कृति है 'वीर सतसई' जो अपूर्ण है, किन्तु अपनी अपूर्णता में भी यह राजस्थान की डिंगल भाषा की कालजयी रचना है। इसके दोहे आज भी लोगो की जुबान पर हैं, जिन्हें सुनने से वीरता और शौर्य मूर्तिमान होकर आँखो के सामने खड़े हो जाते हैं और श्रोता मातृभूमि के लिए प्राण न्यौछावर करने के लिए सद्य प्रस्तुत हो जाता है। 'वीर सतसई' का एक-एक दोहा वीरता के रस मे आकण्ठ डूबा हुआ है।

१८५७ की क्रान्ति : बंगला-राजस्थानी कवियों का चिन्तन

यह एक आश्चर्य में डालनेवाली बात है कि जब बंगला भाषा मे १८५७ ई० की प्रथम स्वातन्त्र्य-क्रान्ति की वीरता का बंगाल में रंगलाल बन्द्योपाध्याय गुणगान कर रहे

थे और आजादी की लड़ाई को साहित्य की समिधा से प्रज्वलित कर रहे थे, उसी समय अर्थात (१८५७ ई०) में राजस्थान मे वीर-रसावतार सूर्यमल स्वातन्त्र संग्राम को अंग्रेजों के उपनिवेशवाद के विरुद्ध 'वीर सतसई' की रचना कर क्रान्तिकारियों मे जोश भर रहे थे। टॉड साहब जब बूंदी में आये थे, तो कवि सूर्यमल आरम्भिक रचना-प्रक्रिया में जुटे थे और जब उनका 'राजस्थान' ग्रन्थ लन्दन से प्रकाशित होकर बंगाल में आया तो रंगलाल ने 'राजस्थान' से उपकथा लेकर वीर-रस का परिपाक किया। उनके काव्यों ('पद्मिनी उपाख्यान', 'कर्मदेवी' और 'शूर-सुन्दरी') से आजादी की लड़ाई को बल मिला।

सूर्यमल की वीर सतसई के आरम्भ के दोहे १८५७ ई० की क्रान्ति के निदर्शन हैं—देखिए—

वीकम बरसां वीतियो, गण चौ चन्द गुणीस।
विसहर तिथि गुरु जेठ वदि, समय पलट्टी सीस ॥ ४ ॥
('वीर सतसई' पृ० ४)

अर्थात् विक्रम संवत का उन्नीस सौ चौदहवाँ वर्ष (१९५६ ई०) समाप्त होने पर अर्थात् १८५७ ई० में ज्येष्ठ कृष्णा पञ्चमी गुरुवार को समय ने पलटा खाया। कहने का तात्पर्य उस समय जो महान राजनीतिक परिवर्तन हो रहे थे वे इतने नजदीक मालूम पड़ते थे मानो समय का परिवर्तन (क्रान्ति) सिर पर हो रहा है।

सन ५७ की क्रान्ति के समय स्वतन्त्रता के लिए जो लड़ाई हो रही थी, उसकी लहर सारे देश में फैल रही थी और देशी राजा-रजवाड़े उदासीन थे। उन्हें अंग्रेजो के विरुद्ध कवि ललकारता है—

इकडंकी गिण एकरी, भूले कुल साभाव।
सूरां आलस ऐस में, अकल गुमाई आव ॥ ५ ॥ (वही, पृ० ५)

अर्थात् यह समय ऐसा था जब शूर-वीर अपने कुल-स्वभाव को भूल गए थे और आलस्य-भोग मे निमग्न थे।

कवि की ललकार को सुनकर राजपूत स्वतन्त्रता की लड़ाई में प्रवृत्त हुए और अपने वीर-धर्म का स्मरण करने लगे—

इण वेला रजपूत वे, राजस गुण रंजाट।
सुमिरण लगा वीर सव, वीरां रो कुलव्राट ॥ ६ ॥ (वही पृ० ५)

अपूर्णता का राज

कहा जाता है कि जब गोठड़ा के महाराज भीमसिंह बूँदी से युद्ध करने पर उताव हो गए और समझाने-बुझाने पर भी युद्ध से विरत नही हुए तो कवि सूर्यमल ने उनसे कहा—'देखो, वीरतापूर्वक लड़ना, युद्ध में पीठ मत दिखाना। यदि वीर के समान युद्ध

में लड़कर काम आये तो मैं तुम्हारा नाम अमर कर दूँगा।" और कवि ने 'वीर सतसई' की रचना शुरू की। वे कुल तीन सौ दोहो की रचना कर पाए थे कि भीमसिंह युद्ध से पीठ फेर कर भाग छूटा और कवि ने भी अपनी अमर रचना को अपूर्ण छोड़ दिया।

कवि सूर्यमल ने ५७ की क्रान्ति के समय कई राजपूत वीरो को क्रान्ति मे भाग लेने के लिए पत्र लिखे थे। इन पत्रो का विवरण 'वीर सतसई' के पृ० ७४ से ८४ तक के पृष्ठों में है। इसलिए गोठड़ा के महाराज वाली बात हमे पूरी तरह जच नहीं रही है। १८५७ को क्रान्ति का अंग्रेजो ने दमन कर दिया तो कवि ने भी ३०० दोहो के बाद 'वीर सतसई' को अपूर्ण छोड़ दिया, पर इनमें जो वीर-रस का परिपाक हुआ, उससे स्वतन्त्रता की लड़ाई की आग बुझी नही, अपितु भयंकर रूप से धधक उठी। स्वातन्त्र-संग्राम की जो लड़ाई १८५७ ई० मे शुरू हुई, उसकी यात्रा के पड़ाव हैं १९०५ का बगभग, १९२० और ३० का असहयोग आन्दोलन और १९४२ की क्रान्ति। अन्त मे १५ अगस्त १९४७ को देश आजाद हुआ, पर विभाजन के साथ।

पं० मोतीलाल मेनारिया ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' ग्रन्थ के पृ० २४० पर लिखा है—'वंशभास्कर' से सूर्यमल के ऐतिहासिक ज्ञान, उनके पांडित्य और उनकी अद्भुत वर्णन-शक्ति का पता लगता है। परन्तु इनकी असाधारण काव्य-शक्ति के अमर स्मारक 'वीर सतसई' के दोहे हैं। इन दोहों में किसी व्यक्ति विशेष का वर्णन नहीं है। वीरभाव की उपासना और उसकी पुष्टि इनका मुख्य मंतव्य है। इनमें सूर्यमल का हृदय बोलता सा प्रतीत होता है। इसकी भाषा सहज और प्राणवान है।'

कलकत्ता से 'वीर सतसई'

वीर-रसावतार महाकवि सूर्यमल मिश्रण कृत 'वीर सतसई' का प्रकाशन वि० सं० २००५ में बंगाल-हिन्दी मण्डल द्वारा बिरला-बन्धुओं की प्रेरणा से हुआ। इसका सम्पादन डॉ० कन्हैयालाल सहल (पिलानी) ने किया। सहयोगियों मे हैं प्रो० पतराम गौड़ और ठाकुर ईश्वरदान आशिया। इसकी भूमिका डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने लिखी है। डॉ० चाटुर्ज्या ने प्राक्कथन के पृ० ५ पर लिखा है—राजस्थान-माता की मूर्ति यदि बनाई जाय तो उसके एक हाथ में तलवार और दूसरे में वीणा देना ठीक होगा। राजस्थान अपने वीरों की शूरता से जितना गौरवान्वित है, अपने साहित्य से भी उससे कम गौरवान्वित नहीं। भारतीय भाषा साहित्य के उद्यान का एक विस्तीर्ण भाग राजस्थान की डिंगल तथा पिंगल भाषाओं के

काव्यों और फुटकर कविताओं के वनस्पति महीरूहों और पुष्पमयी लताओं से सजा हुआ है।×××इस साहित्य के गौरव के कारण कुछ स्थानीय देशभक्त चाहेंगे कि राजस्थानी भाषा तथा उसका साहित्य पुनः स्थापित हो जाय, राजस्थानी भी स्वतंत्र प्रांतिक साहित्यिक भाषा के रूप में अपनी मर्यादा पर प्रतिष्ठित की जाय। इस भाषा में सूर्यमल मिश्रण जैसे कवि के अस्तित्व के कारण यह कोई अनहोनी बात भी नहीं प्रतीत होगी।'

वस्तुतः राजस्थान के वीर-साहित्य में महाकवि सूर्यमल की 'वीर सतसई' का महत्वपूर्ण स्थान है। वीर रसात्मक दोहे राजस्थानी साहित्य में दुरसा आढ़ा, बांकीदास, ईसरदास, आशानन्द आदि के प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। 'वीर सतसई' की भूमिका में सम्पादक की ओर से पृ० १२१ पर लिखा गया है—'वीर सतसई' में मुक्तक काव्य की परम्परा के अनुरूप वीरभावना की प्रधानता है, यह वस्तु-प्रधान नहीं, भाव-प्रधान है। तीन सौ दोहों में सतसईकार ने जो वीरत्व के रूप की प्रतिष्ठा की है, वह कवि-कर्म की चिर प्रशस्ति है। कवि का 'वंशभास्कर' यदि एक विस्तृत अरण्य है, तो 'वीर सतसई' एक सुरम्य वनस्थली। वंशभास्कर पाठक को आतंकित करता है, तो सतसई उसे संतुष्ट करती है।' सूर्यमल की दोनो रचनाओं में प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक-काव्य की भव्यता विशेष श्लाघनीय है।

'राजस्थान' के अमर इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड जब बूंदी के नाबालिग राव-राजा रामसिंह के अभिभावक बनकर आये, उस समय बूंदी में चारण-जाति का बालरवि (सूर्यमल) अपनी प्रतिभा की स्वर्ण-रश्मियाँ बिखेर रहा था। जागरण का मंत्र फूंकने वाली उसकी वाणी से लोग अभी परिचित नहीं हो पाए थे। बाद मे वह बाल रवि बूंदी के प्रसिद्ध पाँच रत्नों में प्रसिद्ध हुआ। धारावाहिक रूप से जो साहित्यिक परम्परा अपभ्रंश के काल से हजार वर्ष तक चली आई, उसे कवि सूर्यमल ने ईसा की बीसवी शती के द्वितियार्द्ध तक पहुँचा दिया। जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने लगभग १२०० ईस्वी में वीर-रस के दोहों का संग्रह किया था, जिनमें यह दोहा प्रसिद्ध है—

भल्ला हुआ वहिणिया जु मरिआ महारउ कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जई भग्गा घर एंतु॥

अर्थात्—हे बहिन! भला हुआ जो हमारा कंत युद्ध में मारा गया। यदि वह युद्ध से भाग कर आ जाता तो मैं अपनी समवयस्काओं के समक्ष लज्जित हो जाती।

इसी परम्परा मे सूर्यमल की 'वीर सतसई' से कुछ दोहे यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं। वैसे हमने 'वीर-रस रा दूहा' के प्रसंग में भी सूर्यमल के दोहो का उल्लेख किया है। सूर्यमल के प्रसिद्ध दोहों की बानगी देखिए—

जे खल भग्गा तो सखी, मोताहल सज थाल।
निज भग्गा तो नाह रो, साथ न सूनो टाल ॥ १५ ।
('वीर सतसई', पृ० १०)

हे सखी! यदि शत्रु भाग गए हो तो मोतियो से थाल सजा कर ला—मैं प्राणनाथ की (वीर की) आरती उतारूँगी और यदि अपने ही लोग भाग गए हो तो पतिदेव का साथ मत बिछुड़ने दे अर्थात् मेरे शीघ्र सती होने की तैयारी कर।

देख सखी होली रमै, फौजां में धव एक।
सागर मंदर सारखौ, डोहै अनड़ अनेक ॥ ५३ ॥
(वही, पृ० ३१)

हे सखी! देख युद्ध मे मेरा पति अकेला खून की होली खेल रहा है। ऐसा मालूम देता है कि वह युद्ध रूपी महासागर मे मदराचल के समान अनेक शत्रुओ को मथ कर विलोड़ित कर रहा है।

नायण आज न माँड पग, काल सुणीजै जंग।
धारां लागीजै घणी, तो दीजै घण रंग ॥ ६१ ॥ (वही, पृ० ३६)

हे नाइन! आज मेरे पैरों में महावर मत लगा, कल युद्ध होगा—युद्ध के नगाड़े बज रहे हैं। यदि पति धारातीर्थ मे स्नान करें याने तलवार से कट मरें या युद्ध मे काम आ जायें तो फिर तुम खूब महावर लगाना—क्योकि तब मैं सती होने के लिए षोडष शृङ्गार करूँगी।

मणिहारो जा री सखी, अब न हवेली आव।
पीय मुवा घर आविया, विधवा किसा बनाव ॥ ८४ ॥
(वही, पृ० ४८)

हे मणिहारिन! तुम चली जाओ, इस मकान मे मत आना। पति युद्ध से परांगमुख होकर घर आ गए हैं—युद्ध मे पीठ दिखाना मृत्यु तुल्य है—तब मुझ जैसी विधवा के लिए चूड़ियो के शृङ्गार का क्या काम ?

यह भाव शेक्सपीयर की इन पंक्तियो में हमे मिलता है—

Cowards die many a time before their deaths'
The valient never taste of death but once—

कायर जीवित ही मरत दिन में वार हजार।
प्रान-पखेरू वीर के उड़त एक ही वार॥
(वियोगीहरि की 'वीर सतसई' से)

रण खेती रजपूत री, वीर न भूलै वाल।
वारह वरसां वाप रौ, लहै वैर लंकाल॥ ११८॥
(वही, पृ० ६६)

युद्ध तो राजपूत की खेती है—इसे वीर वालक तक नहीं भूलता। वह शेर का बच्चा वारह वर्ष वाद भी अपने पिता के वैरी से लड़ता है अथवा १२ वर्ष की उम्र में ही पिता के वैर का बदला लेता है। 'रणखेतो रजपूत री, वीर न भूले बाल' राजस्थान मे आज भी प्रवाद के रूप मे प्रचलित है।

इला न देणी आपणी, हालरियाँ हुलराय।
पूत सिखावै पाल्णै, मरण वड़ाई माय॥ २३४॥
(वही, पृ० ११४)

'मातृभूमि पराधीन न हो' इस भाव को माँ बच्चे को झूला झुलाती हुई ही पाल्ने मे सिखाती है और मृत्यु से आलिंगन करने का पाठ पढ़ाती है। वीर सतसई' का यह दोहा राजस्थान में ही नहीं सम्पूर्ण देश में प्रसिद्ध हुआ है और लोग इसे अपने वीर कथन में उद्‌धृत करते है। जिस देश की माता बच्चे को पाल्ने में ही मातृभूमि पर मर मिटने की घूँटी देती है; वह देश विदेशियों का गुलाम कैसे हो सकता है? यह है राजस्थान के स्वतन्त्रता-वीरों का पौरुष और शौर्य! इस दोहे के अन्तिम चरण को 'रण खेतां भिड़ जाय' भी कहते हैं। इससे व्यंजना द्विगुणित हो जाती है। हमने इस प्रसिद्ध दोहे को 'वीर-रस रा दूहा' के प्रसंग मे पृष्ठ २४२ पर उद्‌धृत किया है।

"अरावली की आत्मा"

कलकत्ता से राजस्थानी और हिन्दी के प्रसिद्ध कवि-साहित्यकार डॉ० मनोहर शर्मा की काव्य-कृति 'अरावली की आत्मा' का प्रकाशन १९४७ ई० मे हुआ। इसके सम्पादक श्री रतनलाल जोशी हैं तथा भूमिका विदर्भ-केसरी श्री ब्रिजलाल ब्रियाणी ने लिखी है। ब्रियाणी जी ने 'अरावली की आत्मा' की भूमिका में पृष्ठ ५ पर लिखा है—'मारवाड़ (राजस्थान) एक ओर जहाँ अपनी वीरता, वलिदान पर गौरव कर सकता है दूसरी ओर अपने साहित्य पर भी। वह इतिहास निर्माता

रहा है और साथ ही साहित्य-निर्माता भी। वास्तव में इतिहास और साहित्य अन्योन्याश्रयी हैं और राजस्थान का साहित्य इस कथन की खरी मिसाल है। उसका साहित्य त्याग और बलिदान का इतिहास है। स्वाभाविक ही उसका साहित्य भी भक्ति और भावना का साहित्य है, वीरता और विरद का साहित्य है। उसके जौहर, उसके साके और उसके प्राणोत्सर्ग एवं विषपान इतिहास की अमर थाती हैं और हैं उसके रासो, उसके पद, उसकी वाणियाँ और उसके दूहे साहित्य की अनमोल निधि। वह अमर-जीवन साहित्य है।'

मनोहरजी के दोहे

अरावली की महिमा का वर्णन कवि मनोहर शर्मा ने इस दोहे में किया है—

> जो उन्नत आड़ावला, परवत पुन्न सरूप।
> राजस्थानी गीत को, गायक एक अनूप॥ १॥
>
> ('अरावली की आत्मा' पृ० १)

ऐ अरावली पर्वत! तू पुण्य स्वरूप है। राजस्थानी गीतों का तू अनुपम गायक है। असल में अरावली का कण-कण वीरता के गीत गाता है। टॉड ने अरावली पर्वत की चोटियों को धर्मोपली कहा है। अरावली पर्वत कहता है कि इस धरती पर जौहर के समान दूसरा व्रत नहीं है—

> कण-कण आड़ावल तणो, गावै गीत सुभाय।
> 'ई' धरती पर दूसरो, जौहर सो व्रत नाँय'॥ ६॥
>
> (वही, पृ० २)

चित्तौड़ का सिंहनाद, जालोर की हुंकार और रणथम्भोर की गर्जना अरावली की तलहटियों में आज भी गूंजती है—

> सिंघनाद चित्तौड़ को, जालोरी हुंकार।
> रणथंभोरी गर्जना, गूँजी बारम्वार॥ १०॥ (वही, पृ० २)

कवि मनोहर ने भारतमाता का मानवीकरण करके कहा है कि भारतमाता के सिर पर हिमालय का मुकुट शोभित है, कटि में उदार विन्ध्याचल पर्वत है और राजस्थान का अरावली पर्वत उसके गले का हार है—

सीस हिमालो मुकुट सो, कटि में विंध उदार।
भारत माता को बण्यो, आड़ावल गल्हार ॥ १५ ॥
(वही, पृ० ३)

डॉ० मनोहर शर्मा ने 'अरावली की आत्मा' मुक्तक काव्य में कई विषयों पर कविताएँ रची हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—कूंजां, भरणी, टीबा, उतराध, रहस्य, पीव, गंगा, मृत्युलोक, गीतलड़ी आदि। आपने मारवाड़ के वीर दुर्गादास, 'पृथ्वीराज रासो' के कवि चन्दवरदाई, कवि पृथ्वीराज की पत्नी लालादे, राणी पद्मिनी, मीरां बाई, कृष्ण कुमारी, चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ आदि पर ओजस्वी कविताएँ लिखी हैं।

'अरावली की आत्मा' के सम्पादकीय वक्तव्य में पृष्ठ ८ पर श्री रतनलाल जोशी ने लिखा है—'इस काव्य-कृति के रचयिता श्री मनोहर शर्मा (जयपुर राज्य, बिसाऊ) राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञ हैं। सम्भवतः राजस्थानी में नए साहित्य का सृजन इन्होंने ही सर्वाधिक किया है।' डॉ० मनोहर शर्मा ने बिसाऊ से "वरदा" (त्रैमासिक शोध-पत्रिका) का प्रकाशन किया और आज भी वे उसका विद्वत्तापूर्ण सम्पादन करते हैं। राजस्थान के अग्रगण्य विद्वानों और कवियों में आपकी गिनती है।

धोरां रो संगीत

डॉ० मनोहर शर्मा के राजस्थानी भाषा में लिखे गए गीतात्मक प्रेमाख्यानों का संकलन 'धोरां रो संगीत' काव्य-पुस्तक का प्रकाशन कलकत्ता के श्री अग्रसेन स्मृति भवन से सं० २०३४ में हुआ। प्रसिद्ध उद्योगपति-साहित्यकार श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने 'धोरां रो संगीत' की भूमिका लिखी है।

'धोरां रो संगीत' में सोहनी-महिवाल, ऊजली, राणकदे, मुंज-मृणाल, मोमल, रूठी राणी, कोड़मदे, चारुमती, मरवण और मीरां पर रचनाएँ हैं। हमने कोडमदे और चारुमती कविताओं का उल्लेख पुस्तक में प्रसंगानुसार किया है। प्रसंग के सन्दर्भ में रचनाओं पर चर्चा करने से रस-भंग नहीं होता और कथा का एक अविच्छिन्न सूत्र बना रहता है। यह हमारी विवशता है कि कई काव्य-कृतियों की चर्चा हमने 'नाटक-अध्याय', 'उपन्यास-अध्याय' तथा 'कहानी-अध्याय' में की है। अस्तु, यहाँ हम 'धोरां रो संगीत' पर प्रकाश डालने से विरत रहते हैं।

'धोरां रो संगीत' काव्य-कृति की भूमिका के उपसंहार में श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने राजस्थानी दोहों का महत्व दर्शा कर लिखा है—'राजस्थान में प्रचलित निम्न दोहा ढोला-मरवण की लोकप्रियता का उदाहरण है—ये दोहे सदियों से जन-मानस में रमे हुए हैं—

सोरठियो दूहो भलो, भली मरवण की बात।
जोबन छायी धण भली, तारां छाई रात॥

दोहा राजस्थान की संस्कृति की जीती-जागती तस्वीर है। सूरजमल मिश्रण की 'वीर सतसई' के दोहे आज भी राजस्थान मे प्रचलित हैं।

'तुलसी-चन्नण' काव्य-कृति

राजस्थानी दोहों का सृजन राजस्थान की माटी पर ही हुआ हो सो बात नहीं। प्रवासी राजस्थानियों ने भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे रहते हुए राजस्थानी भाषा के दोहों का प्रणयन किया है। सम्प्रति कलकत्ता से कवि भगवती प्रसाद चौधरी की 'तुलसी-चन्नण' काव्य-कृति का प्रकाशन रस-कलश प्रकाशन की ओर से ३० मार्च, १९८८ को हुआ है, जिसमें भिन्न-भिन्न विषयो पर २६१ दोहे संकलित हैं। 'तुलसी-चन्नण' की भूमिका तथा टीका राजस्थानी भाषा के कवि-साहित्यकार श्री अम्बू शर्मा ने लिखी है।

यहाँ 'तुलसी-चन्नण' के कुछ दोहे प्रस्तुत है—

चेतकड़ै रा खुर पड़्या, जिण धोरां रै देस।
उण धरती रा शूरमा, धार्‌या हीणा भेष॥ १०॥
('तुलसी-चन्नण' पृ० ६)

राणा प्रताप के घोड़े चेतक ने राजस्थान की धरती पर वीरता का इतिहास लिखा है, दुःख है वहाँ के शूरवीरो ने आज हीनता प्रकट करनेवाला मलिन वेश धारण कर लिया है।

धोरां निपजै पदमणी, धोरां सतियाँ-तेज।
धोरां कँवला फूल है, धोरां जौहर-सेज॥ ११॥
(वही, पृ० ११)

राजस्थान के पूँगलगढ़ की पद्मिनी-स्त्रियाँ यदि सर्वांग सुन्दरता मे विश्वप्रसिद्ध हैं तो उन्ही कोमल-कमल के फूल के समान सुलक्षिणी पद्मिनी-स्त्रियो मे राणी पद्मिनी ने पातिव्रत और देश रक्षार्थ जौहर जैसे सामूहिक अग्नि-त्यौहार-व्रत का हँसते-हँसते पालन किया। ऐसी घटनाएँ विश्व-इतिहास मे अद्वितीय हैं।

पाणी खातर सीस दे, म्हालो करगो नाम।
पाणी की पत राखली, मरुधर बणगो धाम॥ ६६॥
(वही, पृ० ६८)

हल्दीघाटी युद्ध में झालावाड़-पति मानसिंह ने शत्रुओं से घिरे हुए महाराणा प्रताप का ध्वजादिक स्वयं धारण कर मातृभूमि पर उत्सर्ग होकर, राणा प्रताप को युद्ध से सुरक्षित लौटा दिया। इस तरह झाला ने देश की आजादी के लिए अपने सिर का बलिदान देकर हल्दीघाटी को तीर्थस्थल बना दिया।

श्री भगवती प्रसाद चौधरी की 'तुलसी-पन्नग' तृतीय काव्य-कृति है। आपकी अन्य रचनाएँ हैं—'दिशाओं के पार' हिन्दी काव्य-संग्रह तथा 'सुण-स्यांणी' (राजस्थानी भाषा की व्यंग्य रचना)।

हिन्दी, बंगला और राजस्थानी भाषा का साम्य

[illegible] भाषा के [illegible] के बाद प्राकृत आई। [illegible] [illegible] बन गई तो स्वाभाविक है कि कालान्तर के रूप में प्राकृत का विकास हुआ। संस्कृत के नाटकों में [illegible] बोलचाल में प्राकृत के प्रयोग देखे जा सकते हैं। जब प्राकृत का रूप साहित्यिक भाषा बन गई तो कालान्तर के रूप में अपभ्रंश भाषा का विकास हुआ। इसे [illegible] ने 'अवहट्ट' नाम दिया। इसी अपभ्रंश भाषा से आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ। भाषा-विज्ञान के पंडितों ने इसे स्वीकार किया है। डॉक्टर ग्रियर्सन, डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या और धीरेन्द्र वर्मा आदि भाषा वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी और राजस्थानी का तथा अर्द्धमागधी से बंगला भाषा का विकास हुआ। इतना ही नहीं म० हरप्रसाद शास्त्री के नेपाल के पुस्तकालय में किए गए अनुसंधान के बाद 'गाथा' और 'दूहा' से ही हिन्दी और बंगला-साहित्य के इतिहास का आरम्भ हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के प्रथम संस्करण के सामान्य परिचय में पृष्ठ ३ पर लिखा है—'प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी-साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। उस समय जैसे 'गाथा' कहने से प्राकृत का बोध होता था वैसे ही 'दोहा' या 'दूहा' कहने से अपभ्रंश या प्रचलित काव्य भाषा का पद्य समझा जाता था। अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।'

डॉ० सुकुमार सेन ने 'बंगला-साहित्य के इतिहास' में इन्हीं 'गाथा' और 'दोहा' से बंगला भाषा और साहित्य के आरम्भ को दर्शाया है तथा राजस्थानी भाषा में इन 'दोहा' या 'दूहा' से राजस्थानी-साहित्य के आरम्भ को स्वीकारा गया है। श्री मोतीलाल मेनारिया ने 'राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा' शीर्षक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक के पृ० १५ पर लिखा है—'अपभ्रंश के तीन उपभागों का उल्लेख मिलता है—नागर, उपनागर और ब्राचड़। इनमें भी नागर अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत था। इसी नागर अथवा शौरसेनी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा का विकास हुआ, जिसके साहित्यिक रूप का नाम डिंगल है।'

हिन्दी और राजस्थानी पर टॉड के 'राजस्थान' का प्रभाव

बंगला, हिन्दी और राजस्थानी भाषा-साहित्य के सम्पर्क-सूत्र को घनिष्ठतापूर्वक आबद्ध करने में १९वीं शताब्दी के नवजागरण का विशेष महत्व है और इस कार्य में टॉड के 'राजस्थान' की महनीय भूमिका है। इसे समझने के लिए हमें थोड़ा हिन्दी-साहित्य और राजस्थानी-साहित्य पर विचार करना होगा। मजेदार बात यह है कि टॉड ने चारण-भाटों तथा अन्य राजस्थानी भाषा के प्राचीन ग्रन्थों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्राचीन पट्टों का अध्ययन कर 'राजस्थान का इतिहास' लिखा, उसमें जो राजस्थानी भाषा के प्राचीन ग्रन्थ हैं वही हिन्दी भाषा के आदि ग्रन्थ हैं—इनमें खुमान रासो', 'बीसलदेव रासो', 'पृथ्वीराज रासो', 'विजयपाल रासो', 'हम्मीर रासो' आदि मुख्य हैं। 'खुमान रासो' और 'पृथ्वीराज रासो' से प्रचुर सामग्री लेकर टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ लिखा। बाद में इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में ऐतिहासिकता-अनैतिहासिकता का प्रश्न उठा। स्वाभाविक है कि टॉड के 'राजस्थान' पर भी अनैतिहासिकता के आरोप लगे। किन्तु इसे तो स्वीकारना होगा कि १९वीं शताब्दी में जब कोई दूसरा इतिहास ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था तब बंगला साहित्यकारों के लिए राजस्थान का इतिहास जानने का अन्य कोई साधन नहीं था। अतः उसी से उप-कथाएँ लेकर बंगला-साहित्य में रचनाएँ लिखी गईं। हिन्दी और राजस्थानी साहित्य तथा इतिहास के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

हिन्दी-साहित्य का 'वीरगाथा-काल'

हिन्दी-साहित्य के 'आदिकाल' को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीरगाथा-काल' के नाम से पुकारा है। उस समय उनके सामने इतिहास लिखने के लिए कुल बारह पुस्तकें थीं। आपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के प्रथम संस्करण (सं० १९८६) की भूमिका के पृष्ठ ३ पर लिखा है—'आदिकाल' का नाम मैंने 'वीरगाथा-काल' रखा है। उक्त काल के भीतर दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। अपभ्रंश की और देशभाषा (बोलचाल) की।xxx साहित्यिक पुस्तकें केवल चार हैं—विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता और कीर्तिपताका। देशभाषा की आ[illegible] प्रसिद्ध हैं—खुमान रासो, बीसलदेव रासो, [illegible] रासो, जयच[illegible] जस चन्द्रिका, परमाल रासो (आ[illegible]) खुसर[illegible] और विद्यापति पदावली। इन बारह पुस्[illegible] और नामकरण हो सकता है। इनमें से [illegible] शेष सब ग्रन्थ वीरगाथात्मक ही हैं। [illegible]

ही रखा जा सकता [illegible]

उपलब्ध ग्रन्थ वीरगाथात्मक है और 'रासो' शब्द वीरगाथा का पर्यायवाची है। वैसे 'रासो' शीर्षक ग्रन्थो में कुछ शृङ्गार और नीतिपरक भी है, जैसे 'नाल्ह का बीसलदेव रासो'। रासो ग्रन्थ अपभ्रंश, डिंगल, पुरानी राजस्थानी तथा हिन्दी मे मिलते है। इसे संयोग ही कहा जायेगा कि कर्नल जेम्स टॉड ने इन पुस्तको का अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में अध्ययन और मनन किया तथा अन्य प्रचुर सामग्री का संकलन कर 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' ग्रन्थ लिखा। कहने का तात्पर्य है कि राजस्थान से ही यह भाव सामग्री टॉड के 'राजस्थान' मे संकलित होकर बंगाली लेखको के सामने आंग्ल-भाषा मे आई। बंगला के साहित्य-मनीषियो ने 'राजस्थान' का पूरा दोहन किया और पुनः यही कहानियाँ बंगला से हिन्दी और राजस्थानी भाषा मे आई। यह क्रिया पूरे वेग से १९वीं एवं २०वी शताब्दी मे चलती रही। कदाचित् आज भी यह क्रम अनवरत जारी है।

हिन्दी-राजस्थानी

राजस्थान के वीरो और यहाँ के वीर-साहित्य का भारत और उसकी मनीषा को उद्‌बुद्ध करने मे बड़ा योगदान है। राजस्थान के वीरो और स्वतन्त्रता प्रेमियो के इतिहास से देश का इतिहास गौरवान्वित हुआ है। असल में राजस्थान हिन्दी प्रदेश का एक अभिन्न अग है। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्य के निर्माण मे उसकी अहम भूमिका रही है। श्री मोतीलाल मेनारिया ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा १९४८ ई० में प्रकाशित 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' ग्रन्थ के 'निवेदन' मे पृष्ठ एक पर लिखा है—'हिन्दी साहित्य के निर्माण, विकास एवं प्रसार में भारतवर्ष के जिन-जिन प्रान्तों ने भाग लिया है, उनमें राजस्थान का अपना एक विशेष स्थान है। राजस्थानवासियों को इस बात का गर्व है कि उनके कवि-कोविदों ने हिन्दी के प्रायः सभी अंगों पर ग्रन्थ-रचना कर उनके द्वारा हिन्दी के भण्डार को भरा है। राजस्थान में अनेक ऐसे प्रतिभाशाली साहित्यकार हो गए हैं, जिनके ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति और हिन्दी-भाषियों के लिए गौरव की वस्तु माने जाते हैं।'

आपने आगे पृष्ठ ३ पर लिखा है—'हिन्दी के विद्वानों में सबसे अधिक भ्रान्ति राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति के विषय में फैली हुई है। कुछ इसे हिन्दी की जननी और कुछ हिन्दी की विभाषा (बोली) बतलाते हैं। परन्तु ये दोनों ही धारणाएँ भ्रमात्मक हैं। वास्तव में न तो राजस्थानी हिन्दी की जननी है और न हिन्दी की विभाषा। ये दो स्वतंत्र भाषाएँ हैं।'

हिन्दी और राजस्थानी पर टॉड के 'राजस्थान' का प्रभाव

बंगला, हिन्दी और राजस्थानी भाषा-साहित्य के सम्पर्क-सूत्र को घनिष्ठतापूर्वक आबद्ध करने में १९वीं शताब्दी के नवजागरण का विशेष महत्व है और इस कार्य में टॉड के 'राजस्थान' की महनीय भूमिका है। इसे समझने के लिए हमें थोड़ा हिन्दी-साहित्य और राजस्थानी-साहित्य पर विचार करना होगा। मजेदार बात यह है कि टॉड ने चारण-भाटों तथा अन्य राजस्थानी भाषा के प्राचीन ग्रन्थों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्राचीन पट्टों का अध्ययन कर 'राजस्थान का इतिहास' लिखा, उसमें जो राजस्थानी भाषा के प्राचीन ग्रन्थ हैं वही हिन्दी भाषा के आदि ग्रन्थ हैं—इनमें खुमान रासो', 'बीसलदेव रासो', 'पृथ्वीराज रासो', 'विजयपाल रासो', 'हम्मीर रासो' आदि मुख्य हैं। 'खुमान रासो' और 'पृथ्वीराज रासो' से प्रचुर सामग्री लेकर टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ लिखा। बाद में इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में ऐतिहासिकता-अनैतिहासिकता का प्रश्न उठा। स्वाभाविक है कि टॉड के 'राजस्थान' पर भी अनैतिहासिकता के आरोप लगे। किन्तु इसे तो स्वीकारना होगा कि १९वीं शताब्दी में जब कोई दूसरा इतिहास ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था तब बंगला साहित्यकारों के लिए राजस्थान का इतिहास जानने का अन्य कोई साधन नहीं था। अतः उसी से उप-कथाएँ लेकर बंगला-साहित्य में रचनाएँ लिखी गईं। हिन्दी और राजस्थानी साहित्य तथा इतिहास के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

हिन्दी-साहित्य का 'वीरगाथा-काल'

हिन्दी-साहित्य के 'आदिकाल' को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीरगाथा-काल' के नाम से पुकारा है। उस समय उनके सामने इतिहास लिखने के लिए कुल बारह पुस्तकें थीं। आपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के प्रथम संस्करण (सं० १९८६) की भूमिका के पृष्ठ ३ पर लिखा है—'आदिकाल' का नाम मैंने 'वीरगाथा-काल' रखा है। उक्त काल के भीतर दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। अपभ्रंश की और देशभाषा (बोलचाल) की।×××साहित्यिक पुस्तकें केवल चार हैं—विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता और कीर्तिपताका। देशभाषा की आठ पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचन्द प्रकाश, जयमयंक जस चन्द्रिका, परमाल रासो (आल्हा का मूल रूप) खुसरो की पहेलियाँ और विद्यापति पदावली। इन बारह पुस्तकों की दृष्टि से 'आदिकाल' का लक्षण निरूपण और नामकरण हो सकता है। इनमें से अन्तिम दो तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रन्थ वीरगाथात्मक ही हैं।' अतः आदिकाल का नाम वीरगाथा-काल' ही रखा जा सकता है। आचार्य शुक्ल की यह मान्यता है कि 'रासो' शीर्षक से

उपलब्ध ग्रन्थ वीरगाथात्मक हैं और 'रासो' शब्द वीरगाथा का पर्यायवाची है। वैसे 'रासो' शीर्षक ग्रन्थों में कुछ शृङ्गार और नीतिपरक भी हैं, जैसे 'नाल्ह का वीसलदेव रासो'। रासो ग्रन्थ अपभ्रंश, डिंगल, पुरानी राजस्थानी तथा हिन्दी मे मिलते है। इसे संयोग ही कहा जायेगा कि कर्नल जेम्स टॉड ने इन पुस्तकों का अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में अध्ययन और मनन किया तथा अन्य प्रचुर सामग्री का संकलन कर 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' ग्रन्थ लिखा। कहने का तात्पर्य है कि राजस्थान से ही यह भाव सामग्री टॉड के 'राजस्थान' में सकलित होकर बंगाली लेखकों के सामने आंग्ल-भाषा मे आई। बंगला के साहित्य-मनीषियों ने 'राजस्थान' का पूरा दोहन किया और पुनः यही कहानियाँ बंगला से हिन्दी और राजस्थानी भाषा मे आई। यह क्रिया पूरे वेग से १९वी एवं २०वी शताब्दी मे चलती रही। कदाचित् आज भी यह क्रम अनवरत जारी है।

हिन्दी-राजस्थानी

राजस्थान के वीरो और यहाँ के वीर-साहित्य का भारत और उसकी मनीषा को उद्‌बुद्ध करने मे बड़ा योगदान है। राजस्थान के वीरो और स्वतन्त्रता प्रेमियो के इतिहास से देश का इतिहास गौरवान्वित हुआ है। असल मे राजस्थान हिन्दी प्रदेश का एक अभिन्न अंग है। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्य के निर्माण मे उसकी अहम भूमिका रही है। श्री मोतीलाल मेनारिया ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा १९४८ ई० मे प्रकाशित 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' ग्रन्थ के 'निवेदन' मे पृष्ठ एक पर लिखा है—'हिन्दी साहित्य के निर्माण, विकास एवं प्रसार में भारतवर्ष के जिन-जिन प्रान्तों ने भाग लिया है, उनमें राजस्थान का अपना एक विशेष स्थान है। राजस्थानवासियों को इस बात का गर्व है कि उनके कवि-कोविदों ने हिन्दी के प्रायः सभी अंगों पर ग्रन्थ-रचना कर उनके द्वारा हिन्दी के भण्डार को भरा है। राजस्थान में अनेक ऐसे प्रतिभाशाली साहित्यकार हो गए हैं, जिनके ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति और हिन्दी-भाषियों के लिए गौरव की वस्तु माने जाते हैं।'

आपने आगे पृष्ठ ३ पर लिखा है—'हिन्दी के विद्वानों में सबसे अधिक भ्रान्ति राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति के विषय में फैली हुई है। कुछ इसे हिन्दी की जननी और कुछ हिन्दी की विभाषा (बोली) बतलाते हैं। परन्तु ये दोनों ही धारणाएँ भ्रमात्मक हैं। वास्तव में न तो राजस्थानी हिन्दी की जननी है और न हिन्दी की विभाषा। ये दो स्वतंत्र भाषाएँ हैं।'

राष्ट्रभाषा हिन्दी

हिन्दी के बारे में कुछ राजनीतिक कारणों से उसे गलत ढंग से पेश किया जाता है और उस पर 'हिन्दी साम्राज्यवाद' का आरोप लगाया जाता है। इसका बड़ा कारण है कि हिन्दी की ठीक ढंग से परिभाषा नहीं की गई है। वास्तव में हिन्दी कोई एक भाषा नहीं है, अपितु यह कई भाषाओं का एक समुदाय है, जिसमें खड़ीबोली ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, आगिक, मैथिली आदि कई भाषाएँ हैं और राजस्थानी भी उनमें से एक भाषा है। इसलिए हिन्दी साम्राज्यवाद का दोषारोपण निराधार है। हिन्दी क्षेत्र में राजनीतिक दृष्टि से हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार का पूरा क्षेत्र आता है और कमोबेश रूप में हिन्दी सारे देश में बोली और समझी जाती है। हिन्दी के इस प्रसार और प्रचार के कारण ही उसे राष्ट्रभाषा का पद मिला है।

हिन्दी-राजस्थानी वीर-काव्यों की परम्परा

अब यहाँ हम हिन्दी और राजस्थानी के वीर-काव्यो पर विचार करेंगे, जिससे १६वी शताब्दी के नवजागरण के परिप्रेक्ष्य मे बंगला, हिन्दी और राजस्थानी साहित्य को समझा जा सके। वास्तव मे सम्राट हर्षवर्द्धन के काल से ही देशी-भाषाओं का महत्व आरम्भ हो गया था। राजनीतिक दृष्टि से यह काल देश के विघटन का काल है। हर्षवर्द्धन के बाद से देश कई हिस्सों में बंटना शुरू हो गया था तथा विदेशी आक्रमण शुरू हो गए थे। इस समय एक ओर तो युद्ध के नगाड़े बज रहे थे और दूसरी तरफ वीरों को उद्‌बुद्ध करने के लिए साहित्य रचा जा रहा था। यह वीरगाथाओं का साहित्य वीर-रस से आप्लावित था, जिसमें शृङ्गार का भी यत्र-तत्र पुट था। दरबारी कवि युद्ध के समय हाथ में तलवार लेकर युद्ध-विग्रह में जाते और अपने काव्यों में युद्धों का आँखों देखा हाल लिखते। शान्ति के क्षणों में अपने आश्रयदाता के वीर गुणों का बखान करते और शृङ्गार रस से उनका मनोरंजन करते।

जैसा कि हमने कहा है राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से यह समय घोर अशान्ति और विप्लव का था। हर्षवर्द्धन के पश्चात् केन्द्रीय शक्ति के अभाव में सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे राज्यों मे विभक्त हो चुका था। इन्हें संगठित करनेवाली कोई शक्ति नहीं थी। इस समय भारत मे सर्वत्र राजपूतों का ही राज्य था। उत्तरी भारत मे दिल्ली, कन्नोज, अजमेर, धार, कालिंजर के राज्य प्रसिद्ध थे। राजपूतो में पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष था। ठीक इसी समय तुर्कों ने पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण किया। राजपूतो ने बहादुरी से इनका सामना तो किया, परन्तु सम्मिलित एकता के अभाव मे वे उन्हें रोक नही सके। फलत: ११६३ ई० के तराई के मैदान में पृथ्वीराज और गोरी के युद्ध ने इतिहास का नया अध्याय शुरू कर दिया। दिल्ली मे मुसलमानी शासन के गुलाम वंश का शासन हो गया।

शारंगधर का 'हम्मीर रासो'

हिन्दी साहित्य मे 'वीरगाथाकाल' (सं० १०५० से सं० १३७५) के पूर्व अर्थात् रासो ग्रन्थों के पहले अपभ्रंश के अन्तिम काल की जो रचनाएँ मिलती हैं, उनमें हेमचन्द्र का 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन', सोमप्रभ सूरी का 'कुमारपाल

प्रतिबोध', जैनाचार्य मेरुतुग का 'प्रबन्ध चिन्तामणि' एवं 'भोज प्रबन्ध' मिलता है। इस काल-खण्ड में विद्याधर के कुछ पद मिलते हैं, जिनका उल्लेख 'प्राकृत पैंगलम्' में हुआ है। इसी समय शार्ङ्गधर के 'हम्मीर रासो' का विवरण मिलता है। इनका एक आयुर्वेद का ग्रन्थ 'शार्ङ्गधर संहिता' प्रसिद्ध है। इनके लोकभाषा मे लिखे 'हम्मीर रासो' अथवा 'हम्मीर काव्य' की प्रतियाँ नहीं मिलती हैं, किन्तु 'हम्मीर रासो' के कुछ अंश इधर-उधर बिखरे मिलते हैं। 'प्राकृत पैंगलम्' मे भी कुछ अंश मिलते हैं। एक नमूना प्रस्तुत है—

ढोला मारिय ढिल्लि महँ मुच्छिउ मेच्छ सरीर।
पुर जज्जल्ला मंतिवर चलिअ वीर हम्मीर॥
चलिअ वीर हम्मीर पाअभर मेइणि कंपई।
दिगमग णह अंधार धूलि सुररह आच्छाइहि॥

अर्थात्—दिल्ली में ढोल बजाया गया, म्लेच्छो के शरीर मूर्च्छित हुए। आगे मन्त्रिवर जज्जल को लेकर वीर हम्मीर चले। उनके चरणो के भार से धरती कांपती है; दिशाओं और आकाश मे अन्धकार छा गया है।

'हम्मीर रासो' मे दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन की रणथम्भोर के किले पर चढाई का वर्णन है। कहा जाता है कि हम्मीर सं० १३५७ मे अलाउद्दीन की चढाई मे मारा गया। यह रचना भी १४वी शताब्दी मे ही लिखी गई होगी। हम्मीर का सेनापति अथवा मन्त्री निम्न दोहे मे कहता है—

पिंधउ दिढ़ सणाह बाह उप्पर पक्खर दइ।
वंधु समदि रण धसउ हम्मीर बअण लइ॥

अर्थात्—मजबूत कवच पहनकर, घोड़े पर पाखर डाल कर, बन्धुजनो को आश्वासन देकर वीर हम्मीर के वचनो को ग्रहण कर मैं रण मे उतरा हूँ।

डिंगल भाषा का आरम्भ होने के पूर्व राजस्थान के राज दरबारो मे मुख्यतः संस्कृत भाषा का ही प्रचलन था। डिंगल को राजसभाओ मे पहुँचाने मे चारण कवियो का सबसे बड़ा योगदान रहा। असल मे डिंगल साहित्य का सृजन मुख्यरूप से चारण, भाट, मोतीसर, ढाढ़ियो आदि ने किया। अग्रेजी लेखको ने 'बार्ड' के रूप मे इन्ही चारण-भाटो का उल्लेख किया है।

इतिहास का रोमांस

राजा भोज की सभा मे एक-एक श्लोक या छन्द पर लाखो का दान मिलता था। भोज के बाद शास्त्रार्थो की धूम ढीली पड़ गई। नतीजा हुआ कि चारण और

भाटो के भाषा-काव्यो का राजदरबारो में प्रवेश हो गया। वे राजा के पराक्रम, विजय और शत्रु-कन्याहरण आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करके आश्रयदाता को खुश करने लगे। लड़ाई-भिड़ाई के इस काल में वीरगाथात्मक साहित्य ही इस समय मिलता है। यह दो रूपों में है—मुक्तक एवं प्रबन्ध-काव्य के रूप में। यूरोप में भी वीरगाथा साहित्य में वीर-रस और शृङ्गार-रस का वर्णन हुआ है। इसे इतिहास का रोमांस कहते हैं। *किसी रूपवती कन्या के रूप-सौंदर्य का समाचार* सुनते ही दलबल के साथ उसके पिता पर चढ़ाई करना और उसे पराजित कर कन्या को हर कर लाना। ये कार्य वीरो के गौरव और अभिमान समझे जाते थे। पुराणो मे तो ऐसे अनेक उदाहरण है। इन वीरगाथाकाल की रचनाओ मे भी ऐसे प्रसंग मिलते है। राजनीतिक लड़ाइयों के वर्णन में भी कवि किसी रूपवती स्त्री का उल्लेख कर उसे रोचक बना देते थे। जैसे शहाबुद्दीन गोरी के साथ पृथ्वीराज के युद्ध का कारण चित्ररेखा बनी और रणथंभोर के हम्मीर और अलाउद्दीन के युद्ध का कारण मीर की प्रेमिका (सुल्तान की बेगम) बनी। अस्तु, अब हम वीर-रस से पूर्ण वीरगाथात्मक काव्यो पर विचार करेंगे।

दलपत का 'खुमाण रासो'

रासो-ग्रन्थो में सबसे पहले दलपतविजय कृत 'खुमाण रासो' का उल्लेख मिलता है। इतिहासकारो के मतानुसार इसमें चित्तौड़ के द्वितीय खुमाण के युद्धो का वर्णन है। आचार्य शुक्ल ने अपने *'हिन्दी साहित्य के इतिहास'* मे पृ० ३६ पर लिखा है—'सवत् ८१० और १००० के बीच में चित्तौड़ के रावल खुमाण नाम के तीन राजा हुए हैं। कर्नल टॉड ने इनको एक मानकर इनके युद्धो का विस्तार से वर्णन किया है।' टॉड के इतिहास ग्रन्थ 'राजस्थान' मे इन युद्धो का सारांश यह है कि कालभोज (बप्पा) के पश्चात खुमाण गद्दी पर बैठा, जिसका नाम मेवाड़ के इतिहास मे प्रसिद्ध है। इसके शासनकाल मे बगदाद के खलीफा अलमामूँ ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। खुमाण की सहायता के लिए बहुत से राजा आए और चित्तौड़ की रक्षा हुई। खुमाण ने २४ युद्ध किए और वि० सं० ८६९ से ८९३ तक राज्य किया। टॉड ने अपने ग्रन्थ में लिखा है—

"From Bappa's departure for Iran in A.D. 764, to the subversion of Hindu dominion in the *reign* of Samarsi, in A D. 1193, We find recorded an intermediate Islamite invasion This was during the reign of Khoman, between A D 812 and 836, which event forms the chief subject of the Khoman-Rasa, the most ancient

of the poetic chromicles of Mewar."

(Tod's Rajasthan, vol I, chapter IV, Page 196)

टॉड ने 'राजस्थान' के चौथे अध्याय मे बप्पा के ईरान चले जाने के बाद से लेकर चित्तौड के राजा समर सिंह के समय तक का वर्णन किया है। बप्पा रावल और रावल समर सिंह के शासनकाल के बीच चार शताब्दियों का काल खण्ड है। इन चार सौ वर्षों मे मेवाड़ के सिंहासन पर कुल मिलाकर अठारह राजाओं का शासन हुआ। उनके सम्बन्ध मे भट्ट ग्रन्थो मे ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती। कहीं-कहीं थोड़ा विवरण मिलता है। इस काल का टॉड को एक ही ग्रन्थ मिला और वह है 'खुमाण रासो'। असल में भारतवर्ष में इस समय एक ऐसा अंधकारमय युग था, जिसका इतिहास पूरी तरह नहीं मिलता और उसी से न केवल इतिहास ग्रन्थों में अपितु साहित्य की रचनाओं में ऐतिहासिकता और अनैतिहासिकता के कई विवाद खड़े हुए। ये विवाद 'खुमाण रासो' और 'पृथ्वीराज रासो' के सम्बन्ध में सर्वाधिक हैं और इन विवादों से साहित्य के इतिहास भरे पड़े हैं। इस समय जो दलपतविजय का 'खुमाण रासो' मिलता है, वह अपूर्ण है और उसमें महाराणा प्रताप सिंह तक का वर्णन है। असल मे टंकण और मुद्रण के अभाव में जो रचनाएँ केवल कण्ठ से गाई जाती रहीं और उनके आधार पर हस्तलिपियाँ बनीं, उनमें प्रक्षिप्त अंशों का जुड़ जाना और भाषा के मूल रूप में न रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। श्री मेनारिया ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पुस्तक के पृष्ठ ८२ पर लिखा है—'दलपत तपागच्छीय जैन साधु के शिष्य थे। इनका असली नाम दलपत था, पर दीक्षा लेने के बाद दौलतविजय हो गए। हिन्दी के विद्वानो ने इनका काल मेवाड़ के रावल खुमाण द्वितीय (सं० ८७०) का समकालीन होना अनुमान किया है, जो गलत है। वास्तव मे इनका रचनाकाल सं० १७३० और सं० १७६० के मध्य में है।" इस प्रसंग मे श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'खुमाण रासो का रचनाकाल और रचयिता' उल्लेखनीय है, जो नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सं० १९९६ के अंक ४, पृ० ३८७-३९८ पर प्रकाशित हुआ है।

'खुमाण रासो' के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं—

राणी इक दिन राजसी, सह लै चढ्यौ शिकार।
गंग त्रिवेणी गोमती, अनड़ जु बिचै अपार॥

'खुमाण रासो' आठ खण्डों में बिभाजित है। इसका एक अंश इस प्रकार है—

महाराज राज-राजेश्वरी, दलपति सूँ कीजै दया।
धन मौज महिर मातंगिनो, माय करौ मोसूँ मया॥

नल्लसिंह का 'विजयपाल रासो'

नल्लसिंह के नाम से एक रासो काव्य मिलता है, जिसका नाम 'विजयपाल रासो' है। कहा जाता है नल्लसिंह एक भाट था, जो यदुवंशी नरेश विजयपाल के आश्रय में रहता था। विजयपाल करौली राज्य का शासक था। नीचे के पद मे कवि को विजयपाल से मिले पुरस्कारो का उल्लेख है—

भये भट्ट प्रथु यज्ञ तैं, है सिरोहिया अल्ल।
वृत्तेश्वर जदुवंस के, नल्ल पल्ल दल सल्ल॥
वीसा सौ गजराज, बाजि सोल्ह सौ माते।
दिये सात सौ ग्राम, सहर हिंडोन सुदाते॥

नरपति नाल्ह का 'वीसलदेव रासो'

नरपति नाल्ह को कुछ इतिहासकारो ने विग्रहराज चतुर्थ अर्थात बीसलदेव का समकालीन माना है, किन्तु कुछ इसे राजा और कुछ भाट मानते हैं। पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'बीसलदेव रासो' का निर्माणकाल स० १२७२ स्वीकार किया है और शुक्लजी ने निम्न दोहे के आधार पर संवत १२१२ माना है—

बारह सै बहोत्तराँ मझारि। जेठ वदी नवमी बुधवारि।
'नाल्ह' रसायण आरंभई। सारदा तूठी ब्रह्मकुमारी।

'बीसलदेव रासो' छोटा काव्य ग्रन्थ है। इसमे चार खण्ड है। इसमे बीसल्देव के विवाह, उनकी उड़ीसा यात्रा, उनकी राणी के विरह आदि का वर्णन है। इस तरह इस काव्य में वीर-रस की अपेक्षा शृङ्गार-रस का अधिक वर्णन है। इसमे बारहमासा मे वियोग-शृङ्गार का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

श्रावण वरसइ छइ छाड़ीय धार, प्रीय विण खेलई कवण आधार।
सखीय ते खेलइ काजली, चीड़ीय कमेड़ी मंड़िय आस॥
पपीहो पीऊ! पीऊ! करइ, सखी असल सलावइ मौ श्रावण मास।
भादवउ वरसइ छइ मगोहर गंभीर,
जल, थल, महीयल सहू भरया नीर॥

भाषा की दृष्टि से 'बीसल्देव रासो' राजस्थानी रचना है, किन्तु हिन्दी साहित्य मे इसकी विशेष चर्चा है। 'बीसलदेव रासो' एक छोटा सा वर्णनात्मक काव्य है, जिसमें ३१६ छन्द हैं।

चन्द का 'पृथ्वीराज रासो'

चन्दवरदाई हिन्दी साहित्य के प्रथम महाकवि हैं और इनका 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का आदि महाकाव्य है। टॉड ने अपने ग्रन्थ 'राजस्थान' मे 'पृथ्वीराज रासो' से भरपूर सहायता ली है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ की अग्रजा स्वर्णकुमारी देवी ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'दीप निर्वाण' में इससे काफी तथ्य संकलित किए हैं। यह उपन्यास बंगला भाषा में ही नहीं हिन्दी मे भी कई बार अनुदित और चर्चित हुआ। चन्द दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज के सामन्त और राजकवि थे।

'पृथ्वीराज रासो' ढ़ाई हजार पृष्ठो का बड़ा महाकाव्य है, जिसमे ६९ समय (सर्ग या अध्याय) हैं। इस काव्य में आबू के यज्ञकुण्ड से चार क्षत्रियकुलों की उत्पत्ति तथा चौहानो के अजमेर मे राज्यस्थापन से लेकर महाराज पृथ्वीराज के गोरी द्वारा पकड़ जाने तक का सविस्तार वर्णन है। रासो के अनुसार पृथ्वीराज अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर के पुत्र और अर्णोराज के पौत्र थे। दिल्ली के राजा अनगपाल (तोमर) के दो कन्याएँ थीं—सुन्दरी और कमला। सुन्दरी का विवाह कन्नौज के राजा विजयपाल के साथ हुआ और उससे जयचन्द राठौर का जन्म हुआ। दूसरी कन्या का विवाह अजमेर के सोमेश्वर से हुआ, जिनसे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। अनंगपाल ने अपने नाती पृथ्वीराज को गोद लिया और वह दिल्ली का राजा बना। इससे दूसरा नाती जयचन्द नाराज हो गया। जयचन्द की पुत्री संयोगिता का प्रेम पृथ्वीराज के प्रति था और पृथ्वीराज ने उसका अपहरण कर उससे विवाह किया।

पृथ्वीराज और जयचन्द की आपसी फूट के कारण शहाबुद्दीन गोरी का भारत पर आक्रमण हुआ। वह हार गया और पृथ्वीराज ने उसे छोड़ दिया। पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध (११९३ ई०) में पृथ्वीराज की पराजय हुई और उसे पकड़ कर गजनी भेज दिया गया। वहाँ पृथ्वीराज ने शब्दभेदी वाण से शहाबुद्दीन को मारा। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बैर का कारण चित्ररेखा सुन्दरी थी, जिसे गोरी चाहता था, पर वह पठान सरदार हुसैनशाह को चाहती थी। शहाबुद्दीन से तंग आकर चित्ररेखा और हुसैनशाह पृथ्वीराज के पास आ गए। पृथ्वीराज ने शरण दी और गोरी के कहने पर भी उन्हें नहीं लौटाया। फलतः दोनों में युद्ध हुआ। शरणागत की रक्षा करने के लिए यह युद्ध हुआ।

इस महाकाव्य की अनैतिहासिकता पर हिन्दी साहित्य में बड़ा विवाद है। इस लम्बे प्रसंग मे हम नहीं जाना चाहते। चूंकि टॉड ने 'पृथ्वीराज रासो' से अनेक तथ्य लिए हैं। इसलिए वे भी विवादास्पद हैं और उन तथ्यों के आधार पर साहित्य में जो रचनाएँ प्रणीत हुई उनपर भी प्रकारान्तर से अनैतिहासिकता का आरोप हो तो आश्चर्य क्या है।

चन्द कवि के 'पृथ्वीराज रासो' का एक अंश यहाँ प्रस्तुत है—

हिन्दुवान थान उत्तम सुदेस। तहँ उदित द्रुग्ग दिल्ली सुदेस।
संभरिनरेस चहुआन थान। प्रथिराज तहाँ राजंत भान।
संभरिनरेस सोमेस पूत। देवत्त रूप अवतार धूत।
जिहि पकरि साह साहाव लीन। तिहुँ वेर करीय पानीप हीन।
सिंगिनि-सुसद्द गुनि चढ़ि जंजीर। चुक्कइ न सवद् वधंत तीर।
('पृथ्वीराज रासो', पद्मावती समय)

पृथ्वीराज की वहन पृथा के साथ चित्तौड़ के रावल समर सिंह का विवाह हुआ था। समर सिंह ने पृथ्वीराज के साथ कई युद्धों मे उनका साथ दिया था। यह 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'राजप्रशस्ति' मे उल्लिखित है। चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिक बातो का पूरा उल्लेख टॉड के 'राजस्थान' में मिलता है। टॉड साहव ने 'राजस्थान' के प्रथम खण्ड के मेवाड़ राज्य के पाँचवें अध्याय मे लिखा है कि दूसरी शताब्दी में कनकसेन और चौथी शताब्दी में वल्लभी के प्रतिष्ठाता विजय से लेकर १३वी शताब्दी मे समर सिंह तक वश का शृंखलाबद्ध इतिहास हमारे पास नही है। इसलिए यहाँ पर हम जो वर्णन करने जा रहे हैं उसका प्रारम्भ तेरहवी शताब्दी के समर सिंह से होता है—

"Samarsi was born is S. 1206, Though the domestic annals are not silent on his acts, we shall recur chiefly to the bard of Delhi (The work of Chund is a universal history of the period in which he wrote) for his character and action, and history of the period.

x x x

Samarsi, prince of Cheetore, had married the sister of Pirthi Raj, and their personal characters, as well as this tie, bound them to each other throughout all these commotions, untill the last fatal battle on the Caggar."

(Tod's Rajasthan, vol I, ch. V, Page 206-208)

टॉड की प्रशस्ति

टॉड महोदय ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'राजस्थान' मे राजपूत जाति की प्रशस्ति मे उसकी वीरता, उदारता और त्याग का जैसा प्रभावोत्पादक भाषा मे वर्णन किया है। उससे मुग्ध होकर बंगला साहित्यकारों ने उसके इतिहास से अपनी रचनाओं के लिए उपकथाएँ लीं और १९वीं शताब्दी के नवजागरण तथा स्वातन्त्र-संग्राम को पुरजोर बनाया। पश्चात टॉड के 'राजस्थान' का प्रभाव हिन्दी तथा देश की अन्य भाषाओं में देखा गया।

टॉड ने पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन के युद्ध की समाप्ति तथा देशद्रोही जयचन्द की वात समाप्त करने के बाद आगे पृ० २१० पर लिखा है—

"पृथ्वी पर ऐसी कौन सी जाति है जो शौर्य, धैर्य, पराक्रम और जीवन के ऊँचे सिद्धान्तों में राजपूत जाति की वरावरी कर सके ? सैकड़ों वर्ष तक विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों को सहकर और भीषण सर्वनाश को भोगकर राजस्थान ने जिस प्रकार अपने पूर्वजों की सभ्यता को अपने जीवन में सुरक्षित रखा है, उसकी समता विश्व की कोई भी जाति नहीं कर सकती, इस वात को तो मानना ही पड़ेगा। यह बात प्रशंसा के योग्य है कि राजपूत स्वभावतः निडर और स्वाभिमानी होते हैं। अपने सम्मान और गौरव की तथा स्वतंत्रता की रक्षा करने में प्राणों का उत्सर्ग करना उनका जन्मजात स्वभाव वन गया है। वास्तव में एक वीर जाति के लिए इस प्रकार का आदर्श उसके गौरव की वृद्धि करनेवाला होता है। राजपूत शत्रु से युद्ध करते हुए पराजित होकर भागने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन करने में गौरव समझते हैं, उनकी वरावरी संसार की वे जातियाँ नहीं कर सकतीं, जो अवसरवाद का लाभ उठाती हैं। इसका प्रमाण राजस्थान के हजारों वर्षों का इतिहास है। प्रत्येक राजपूत शरण में आये हुए शत्रु की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता है। जीवन के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की श्रेष्ठता कौन स्वीकार करेगा ?"

राजपूत—अंग्रेज जाति की तुलना

टॉड ने राजस्थान की राजपूत जाति और अंग्रेज जाति की तुलना की है और कहा है कि ब्रिटन जब प्राचीन काल में रोमनो के अधीन हुए तो उन्होंने भी ऐसे शौर्य और धैर्य का प्रदर्शन नहीं किया—

How did the Britons at once sink under the Romans, and in vain strive to save their groves, their druids, or the altars of Bal from distruction ! To the Saxons they alike succumbed, they again, to the Danes, and this heterogeneous breed to the Normans. Empire was lost and gained by a single battle, and the laws and religion of the conquered merged in those of the conquerors. Contrast with these the Rajpoots; ···Mewar alone, the sacred bulwark of religion, never compromised her honour for her safety, and still survives her ancient limits; and since the brave Samarsi gave up his life, the

blood of her princes has flowed in copious streams for the maintenance of this honour, religion and independence. (Ibid Page 210)

टॉड के 'राजस्थान' की प्रेरणा

स्वाभाविक है कि १९वीं शताब्दी के पराधीनता के काल में आजादी की लड़ाई को अंग्रेजो के विरुद्ध पुरजोर और बलशाली बनाने के लिए बंगला के रचनाकारो को एक अद्भुत खजाना मिल गया टॉड के 'राजस्थान' में। राजस्थान के वीरो की जिस भाषा में टॉड ने प्रशस्ति गाई है तथा भारतीय अस्मिता को रेखांकित किया है—उसी के कारण टॉड भारत के लोगो के लिए श्रद्धा और आदर के पात्र बन गए। एक अंग्रेज लेखक की ऐसी स्पष्ट लेखनी का प्रभाव भारत के नवोत्थान पर पड़ना स्वाभाविक था और उसका प्रभाव १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम मे ही नहीं परवर्ती काल की आजादी की लड़ाइयो पर पड़ा। इसीलिए हमने बार-बार इस बात को दोहराया है कि टॉड के अकेले इतिहास ग्रन्थ का १९वीं शताब्दी के नवजागरण पर जितना जबरदस्त असर पड़ा शायद ही किसी अन्य ग्रन्थ का पड़ा होगा। इसका सबसे बड़ा सबूत तो यह है कि 'राजस्थान' ने बंगला भाषा मे ही नही भारत की अन्य भाषाओ मे कालजयी रचनाओ के प्रणयन का द्वार उन्मुक्त कर दिया। साहित्य, संस्कृति, कला, धर्म, राजनीति, समाजनीति और आचरण पर पड़नेवाले टॉड के इस प्रभाव को आप क्या कहेगे? नमन करना पड़ता है उस अंग्रेज लेखक टॉड को, जिसने हमें पराधीनता मे भी आजादी का तराना गाने की प्रेरणा और बल दिया।

'आल्हा' काव्य

जिस प्रकार चन्द ने महाराज पृथ्वीराज के यश का बखान किया, उसी प्रकार भट्ट केदार ने कन्नौज के राजा जयचन्द का 'जयचन्द-प्रकाश' मे तथा मधुकर कवि ने 'जयमयंक-जसचंद्रिका' मे गुणगान किया है। ये कवि संवत १२२४ से १२४३ के माने जाते हैं। इस काल मे अर्थात १२३० सवत के लगभग जगनिक ने कालिंजर के राजा परमाल के दरबार मे रह कर महोवे के दो देश प्रसिद्ध वीरो आल्हा और ऊदल (उदय सिंह) के वीर चरित का वीरकाव्य मे वर्णन किया है। यह काव्य 'आल्हा' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें यह वीर-हुँकार द्रष्टव्य है—

> बारह बरिस लै कूकर जीऐं, औ तेरह लै जिऐं सियार।
> बरिस अठारह छत्री जीऐं, आगे जीवन को धिक्कार॥

राजस्थानी भाषा में इस समय प्रचुर साहित्य मिलता है। शिवदास चारण के 'अचलदास खींची री वचनिका' में माड़ू के पातशाह और खीची राजा अचलदास के युद्धो का वर्णन वीर-रस में हुआ है। सं० १५३० मे राजस्थान का लोक-काव्य 'ढोला-

मारू रा दूहा' कल्लोल कवि के द्वारा रचा गया। यह मूलतः प्रेम-गाथात्मक काव्य है। वीरगाथाकाल के उत्तरार्द्ध मे कृष्णदास, नाभादास, सूजाजी, मीराबाई, केशवदास, पृथ्वीराज आदि की रचनाएँ जहाँ राजस्थानी मे मिलती हैं वही हिन्दी में खुसरो और विद्यापति की काव्य-रचनाए मिलती है। विद्यापति ने अपभ्रंश या अवहट्ठ भाषा मे 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' ग्रन्थ लिखे तथा भाषा मे 'विद्यापति पदावली'। हम्मीर की वीरता पर आपका सस्कृत मे 'पुरुष परीक्षा' ग्रन्थ है। कवि विद्यापति ने अपभ्रंश के अन्तिम काल मे कई भाषाओ का प्रयोग किया, किन्तु देशज-भाषा पर उनका बडा अनुराग था—

देसिल बअना सब जन मिट्ठा। तँ तैसन जंपओं अवहट्ठा॥

ढाढ़ी बादर

"ढाढ़ी बादर रो बणायो वीरवांण" (वीरभायण) का प्रकाशन १९६० ई० में जोधपुर स्थित राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान से हुआ है, जिसका सम्पादन श्रीमती राणी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने किया है। इसके प्रधान सम्पादक है पुरातत्वाचार्य जिन विजय मुनि। यह काव्य-कृति राजस्थानी भाषा में है तथा इतिहास प्रसिद्ध राठौड़ वीर वीरमजी से सम्बन्धित है। ढाढ़ी बादर नामक मुस्लिम कवि ने इस ऐतिहासिक काव्य-कृति की रचना की है। बादर अर्थात् बहादुर कवि ने अपने काव्य मे निष्पक्ष रूप से विपक्षियो की वीरता का भी बखान किया है। इस काव्य का रचना काल सं० १४४० के आसपास ठहरता है। 'मुहणोत नैणसी री ख्यात' में 'वीरवांण' का उल्लेख है। 'वीरवांण' में २८५ पद हैं।

'वीरवांण' मे जोधपुर के राजा वीरमजो की रानी के द्वारा मुसलमान जोहियो को राखी भिजवाने का प्रसंग है। युद्ध का कारण था कि वीरमजी ने दरगाह के 'फरास' पेड़ को काट लिया और इससे कुपित होकर दला जोहिया ने वीरमजो की गायो को घेर लिया। कवि कहता है—

दरपत हरीयल पीरदा विच दरगह सोवै।
जोइया देस विदेस में जिण सामो जोवै॥
पीर प्रचाइल प्रकट दुप दालद पोवै।
राम रहिम जु एक हैं कबु दोय न होवै॥
('वीरवांण', पृ० ३६)

कवि पृथ्वीराज

बीकानेर के कवि पृथ्वीराज की वीर-रस की रचनाएँ राजस्थान की डिंगल भाषा में प्रसिद्ध हैं। राठौड़ पृथ्वीराज बीकानेर नरेश राव कल्याणमल के पुत्र और राव

जैतसी के प्रपौत्र थे। इनका जन्म सं० १६०६ में हुआ महाराज राम सिंह इनके भाई थे। ये अकबर के दरबार में रहते थे। कर्नल टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ में कवि पृथ्वीराज की तुलना यूरोप के ट्रूवेडार राजकुमारों से की है, जो अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा वीरता का उत्साह भरते थे तथा युद्ध में तलवार लेकर जाते थे। पृथ्वीराज ऐसे ही वीर कवि थे, जिन्होंने राणा प्रताप को इतिहास प्रसिद्ध वीर-रस का पत्र लिखा था और राणा के सोये शौर्य को पुनः जगाया था।

पृथ्वीराज की प्रसिद्ध रचना है 'वेलि क्रिसन रुकमणी री', जो डिंगल साहित्य का अनूठा काव्य है। पृथ्वीराज ने दो विवाह किए थे। इनकी पहली पत्नी का नाम लालादे था। यह जैसलमेर के रावल हरराज की पुत्री थी। इसका देहान्त हो जाने पर इन्होंने इसी की बहन चांपादे से अपना दूसरा विवाह किया था। कर्नल टॉड ने पृथ्वीराज की पत्नी को शक्तावत वंश की बताया है और इसी का आधार लेकर आधुनिक बंगला-साहित्य के प्रथम काव्य प्रणेता रंगलाल बन्दोपाध्याय ने पृथ्वीराज की पत्नी को राणा प्रताप के भाई शक्ति सिंह की कन्या बताया है। और इसी का शील-हरण करने के लिए सम्राट अकबर ने 'नौरोज' का आयोजन किया था। इस पर हमने पूर्व में विस्तार से चर्चा की है।

कवि की कवयित्री पत्नी

राजस्थानी भाषा और साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान पं० मोतीलाल मेनारिया ने पृथ्वीराज की पत्नी को जैसलमेर के रावल हरराज की कन्या बताया है। आपने 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' पुस्तक के पृष्ठ ५८ पर लिखा है—पृथ्वीराज ने दो विवाह किए थे। इनकी पहली पत्नी लालादे परम लावण्यमयी थी। उसकी अकाल मृत्यु होने के बाद आपने दूसरा विवाह किया। यह जैसलमेर के रावल हरराज की कन्या चांपादे थी। चांपादे भी रूपवती और कवयित्री थी। एक दिन पृथ्वीराज दर्पण में अपना चेहरा देख कर बालों में कंघी कर रहे थे कि उन्हें अपनी दाढ़ी में एक सफेद बाल दीख पड़ा। इसी समय उन्हें अपनी युवा रूपवती पत्नी चांपादे का बिम्ब दिखाई दिया। इससे उनके मन में लज्जा विमिश्रित स्वर फूट पड़ा—

पीथल धोला आविया, बहुली लग्गी खोड़।
कामण मत्तगयंद ज्यों, ऊभी मुक्ख मरोड़॥

अर्थात्—हे पृथ्वीराज ! तुम्हारे सफेद बाल आ गए और बहुत सी खोट लग गई है। (और देखो !) तुम्हारी प्रेमिका मुंह फेर कर मस्त हाथी के समान खड़ी हँस रही है।

पीथल (पृथ्वीराज) को सफेद बालों के आ जाने से खेद है और द्वितिया पत्नी के मत्तगयंद से समान रूपलावण्य से भरपूर होने पर किंचित लज्जा भी है, किन्तु चांपादे ने पति को आश्वस्त करने के लिए दोहे का उत्तर दोहे में ही दिया और कहा कि जैसे फल पकने पर ही मधुर स्वाद देते हैं वैसे ही वीर पुरुष प्रौढ़ होने पर ही आनन्द प्रदान करते हैं—

हल तो धूना धोरियाँ, पंथज गग्धाँ पाव।
नरा, तुरों अरु वन फलाँ, पकाँ पकाँ साव ॥

('वेलि क्रिसन रुकमणी री', पृ० ६)

अर्थात्—हल चलाने और जोतने के लिए अभ्यस्त बैल अच्छे होते हैं और मार्ग चलने के लिए पुराने (वयस्क लोगों के) पाँव। इसी तरह पुरुष, घोड़े और वन के फल पकने पर ही रस देते हैं।

पृथ्वीराज का यह पद, जो उन्होंने राणा प्रताप को लिखा था—डिंगल-साहित्य का ऐतिहासिक दस्तावेज है—

पातल जो पतसाह, बोले मुख हुंता वयण।
मिहर पछम दिस माँह, ऊगे कासप राव उत ॥

इन दोहों पर हमने अलग से चर्चा की है। कहा जाता है कि जब सं० १६५७ में कवि पृथ्वीराज की मृत्यु मथुरा के विश्रान्तघाट पर हुई तो अकबर ने उनके लिए यह दोहा कहा था—

पीथल सूं मजलिस गई, तानसेन सूं राग।
रीझ बोल हँसि बोलवो, गयो बीरबल साथ ॥

पृथ्वीराज उच्चकोटि के कवि एवं योद्धा होने के साथ-साथ भगवत्-भक्त भी थे। भक्तवर नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में इनका गुणगान किया है। पृथ्वीराज राजस्थानी भाषा के अमर कवि हैं।

कवि मान का 'राजविलास'

मान कवि का सम्पर्क मेवाड़ के राजवंश से था। इनका रचनाकाल सं० १७३४ से ४० तक माना जाता है। मान ने मेवाड़ के राणा राजसिंह की प्रशस्ति मे 'राजविलास' वीर-काव्य की रचना की तथा 'विहारी सतसई' की टीका लिखी। 'राजविलास' की प्राचीन प्रति उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित है। इस ग्रन्थ मे अठारह विलास (सर्ग) हैं। इसमें राणा राजसिंह के जन्म से लेकर उनके राज्यारोहण तथा औरंगजेब के साथ उनके युद्धो का वर्णन है। मुख्यतः इन युद्धों का वर्णन ही कवि

का मुख्य उद्देश्य रहा है। इसमें मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र अजीत सिंह को राणा राजसिंह द्वारा संरक्षण देने तथा वीर दुर्गादास की बहादुरी का भी वर्णन है।

राणा राजसिंह की युद्धयात्रा का वर्णन निम्न कवित्त में देखिए—

चढ़े सेन चतुरंग, राण रवि सम राजेसर।
मनो महोदधि पूर, वारि चहु ओर सुविस्तर॥
गय वर गुँजत गुहिर, अंग अभिनव एरावत।
हय वर घन हीसन्त, धरनि खुरतार धसक्कत॥
सल सलिय सेस दल भार सिर, कमठ पीठि उठि कल कलिय।
हल हलिय असुर धर परि हलक, रवनि सहित रिपु रल तलिय॥

('राजविलास', षष्ट विलास)

भूषण

भूषण हिन्दी वीर-काव्य के श्रेष्ठ कवि हैं। 'शिवराज-भूषण' भूषण का प्रवन्ध काव्य है, जिसमें महाराज शिवाजी की वीरता और औरंगजेब के साथ हुए उनके युद्धों का वीर वाणी मे वर्णन है! भूषण ने 'शिवराज भूषण' के अतिरिक्त 'शिवा-बावनी' तथा 'छत्रसाल दशक' काव्य भी लिखे हैं। हिन्दी की रीतिकालीन धारा के कवियों मे भूषण की वीर-रस की काव्य-कृतियो का विशेष महत्व है। वंगला-साहित्य के रचनाकारों ने राणा प्रताप की भांति महाराज शिवाजी की देवभक्ति और उनके स्वातंत्र्य-संग्राम का वर्णन किया है। वंगला में रमेशचन्द्र दत्त का उपन्यास 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' चर्चित है और उसका हिन्दी में अनुवाद हुआ है। भूषण की वानगी देखिए—

तेरो तेज सरजा समत्थ! दिनकर सोहै,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो।
भौंसिलाभुआल! तेरो जस हिमकर सोहै,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकसर सो।

(शिवराज भूषण पृ० १)

भूषण ने अतिशयोक्ति अलंकार और मन मनहरण कवित्त मे शिवाजी की प्रशस्ति गाई है। 'शिवा-बावनी' मे कवि भूषण कहता है—

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद विहद नगारन के,
नदी नद मद गैवरन के टलत है।
(शिवा-बावनी, पृ० १६)

गोरेलाल अथवा लाल कवि ने भी भूषण की भांति 'छत्रप्रकाश' काव्य की रचना की। इस काव्य के नायक महाराज छत्रसाल बुँदेला हैं।

श्रीधर या मुरलीधर का 'जंगनामा' काव्य हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध है। 'जंगनामा' की रचना सं० १७६६ में हुई, जिसमें जहाँदार शाह तथा फर्रुखसियर के बीच हुए तीन युद्धों का वर्णन है। श्रीधर की कविता का एक नमूना देखिए—

सजे पक्खरो भक्खरो लक्ख घोरे।
मनो भान जूके रथी जोर जोरे॥
करै पौन सो पौन की पायदारी।
अरव्वी गरव्वी खुरीलै खँभारी॥ (जंगनामा, पृ० २३)

सूदन कवि ने हिन्दी में 'सुजान चरित्र' काव्य की रचना की, जिसमें भरतपुर के नरेश सूरजमल जाट की विरुदावली है तथा सं० १८०२ से १८१० तक के उनके युद्धों का वर्णन है। यह काव्य सात जंगों में विभाजित है, प्रत्येक जंग एक सर्ग के समान है। सूदन कवि की भाषा में कई भाषाओं का योग है—

हिन्दी—चलकैं सुऊंट कतार। तिनपै अनेक सवार।
(सुजान चरित, पृ० ३७)

पंजाबी—किथ्ये चला पेउ कित्थे उज्जले भिडाऊँ असी।
(वही, पृ० १६८)

राजस्थानी—आव्या तमे आगल न ल्याव्या माटी कागलनै,
डागला नड़ीट्ठ कौ कठामसन लीध्यूँ छै।
(वही, पृ० १६८)

वीरगाथाओं में हठी हम्मीर का चरित्र

हमने आरम्भ मे 'हम्मीर रासो' के बारे मे चर्चा की है और विद्यापति के 'पुरुप परीक्षा' काव्य का उल्लेख किया है। कवि शार्ङ्गधर तथा विद्यापति ने हम्मीर पर काव्य लिखे। यह परम्परा आगे चल कर पुनः वेग से सामने आई और जोधराज, ग्वाल कवि, चन्द्रशेखर रामकुमार वर्मा आदि ने रणथम्भोर के महाराज हम्मीर पर काव्य रचना की। यहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का वक्तव्य प्रासंगिक है। आपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ ६० पर लिखा है—'मोटे हिसाब से 'वीरगाथा काल' महाराज हम्मीर के समय तक ही समझना चाहिए। उसके उपरान्त मुसलमानों का साम्राज्य भारत में स्थिर हो गया और हिन्दू राजाओं को न तो आपस में लड़ने का उतना उत्साह रहा, न मुसलमानों से। जनता की चित्तवृत्ति बदलने लगी और विचारधारा दूसरी ओर चली।' हिन्दी साहित्य मे संवत १०५० से सं० १३७५ तक वीरगाथा काल रहा और १३७५ से सं० १७०० भक्ति-काल। सं० १७०० से १६०० तक का समय रीतिकाल के रूप मे रहा और सं० १६०० से अब तक का काल आधुनिक काल या गद्यकाल समझा जाता है। आचार्य शुक्ल ने आगे वही पृष्ठ ६० पर लिखा है—'इस प्रकार स्थिति के साथ ही साथ भावों और विचारों में भी परिवर्तन हो गया। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि हम्मीर के पीछे किसी वीर-काव्य की रचना नहीं हुई। समय-समय पर इस प्रकार के अनेक काव्य लिखे गए। हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक विशेषता यह भी रही है कि एक विशिष्टकाल में किसी रूप की जो काव्य सरिता वेग से प्रवाहित हुई, वह यद्यपि आगे चलकर मंद गति से बहने लगी, पर ६०० वर्षों के हिन्दी साहित्य के इतिहास में हम उसे कभी सर्वथा सूखी हुई नहीं पाते।'

यही कारण है कि हम्मीर पर वीरगाथा काल मे काव्य रचे गए और उसके पश्चात रीतिकाल मे पुनः यह परम्परा बड़े वेग से सामने आई।

ग्वाल कवि का 'हम्मीर हठ'

ग्वाल कवि रीतिकाल के कवि हैं। आपने ब्रजभाषा में भक्ति और शृङ्गार के रीति-ग्रन्थ लिखे। साथ ही आपने सं० १८८१ मे 'हम्मीर हठ' काव्य लिखा। इस

प्रकार ग्वाल कवि ने हम्मीर के सम्बन्ध मे सुप्त होनेवाली काव्य परम्परा को 'हम्मीर हठ' काव्य लिख कर पुनः जाग्रत कर दिया।

कवि जोधराज का 'हम्मीर रासो'

कवि जोधराज कृत 'हम्मीर रासो' का प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा १९०८ ई० मे हुआ, जिसका सम्पादन बाबू श्यामसुन्दर दास ने किया है। जोधराज गौड़ ब्राह्मण बालकृष्ण के पुत्र थे। इन्होने नीवगढ (वर्तमान नीमराणा-अलवर) के राजा चन्द्रभान चौहान के अनुरोध से 'हम्मीर रासो' नामक एक बड़ा प्रबन्ध काव्य सं० १८७५ मे लिखा, जिसमे रणथम्भोर के प्रसिद्ध वीर महाराज हम्मीरदेव का चरित्र चित्रण वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति मे हुआ है। हम्मीर सम्राट पृथ्वीराज के वंशज थे। हम्मीर ने दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन को कई बार परास्त किया था और अन्त में अलाउद्दीन की चढाई मे ही वे मारे गए थे। उल्लेखनीय है कि राजस्थान के इतिहास में हम्मीर नाम के दो वीर हो गए हैं—एक वीर है हम्मीर, जो मेवाड़ के उदयपुर का राणा बना और दूसरा है रणथम्भौर का हठी वीर हम्मीर। वैसे दोनों के चरित्र में हठीपन है। मेवाड़ के राणा हम्मीर ने हठ करके मालदेव की विधवा कन्या से विवाह किया और इस विवाह से ही उन्हें पुनः चित्तौड़ पर विजय हासिल हुई। दूसरे रणथम्भौर के वीर हम्मीर ने अपने हठ से शरण में आये हुए महिमा मंगोल की रक्षा करने के लिए सुल्तान अलाउद्दीन से भयंकर युद्ध किया। जोधराज ने रणथम्भोर के वीर हम्मीर का वर्णन किया है।

अलाउद्दीन से वैर का कारण

'हम्मीर रासो' की कविता बड़ी ओजस्विनी है। घटनाओ का वर्णन भी विस्तार के साथ हुआ है। काव्य स्वरूप देने के लिए कवि ने कुछ घटनाओ की कल्पना की है। चूंकि रणथम्भौर का हम्मीर भी दिल्ली के चौहान पृथ्वीराज चौहान के वंश का है, इसलिए उसके चरित्र में भी शरणागत के लिए प्राण देने की आन-बान-शान है। जिस प्रकार पृथ्वीराज ने चित्ररेखा और हुसैन शाह को शरण देकर शहाबुद्दीन गोरी से वैर मोल लिया और युद्ध किया उसी प्रकार हम्मीर ने महिमा मंगोल और उसकी प्रेयसी को शरण देकर अलाउद्दीन से युद्ध किया। काव्य को रोचक और रोमासपूर्ण बनाने के लिए कवियों द्वारा ऐसे प्रेम-प्रसंगों

का वर्णन एक प्रकार से काव्य-रूढ़ि या मोटिफ माना जाता है। यूरोप में भी ऐसे कई काव्य हैं और हमारे देश में भी।

हम्मीर काव्यों की परम्परा के पीछे यह मानसिकता शायद ज्यादा काम कर रही थी। क्योंकि हम्मीर-काव्यों में एक साथ ही वीर-रस और शृङ्गार-रस का परिपाक होता है। तभी यह परम्परा भक्ति काल से पूर्व चल कर भी रीतिकाल और आधुनिक काल तक अनवरत बनी रही।

जोधराज के 'हम्मीर रासो' में कुल ६७९ छन्द है। कवि ने हम्मीर के जन्म तथा राज्यारोहण का वर्णन करने के वाद उस घटना का वर्णन किया है, जिससे हम्मीर और दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन के बीच वैर-विरोध का बीजारोपण हुआ। कहा जाता है कि एक समय अलाउद्दीन अपने परिवार के साथ जंगल मे शिकार खेलने गया। बादशाह अलाउद्दीन शिकार के पीछे दूर चला गया और उसके पीछे उसकी वेगमें जलक्रीड़ा का आनन्द लेने लगी। इसी समय भयकर तूफान आ गया और दिशाओं मे अन्धकार छा गया। आँधी-तूफान और अन्धकार में भटक कर अलाउद्दीन की सबसे सुन्दरी वेगम रूप विचित्रा रास्ता भूल कर जंगल के अन्दर चली गई। वहाँ अचानक उसकी भेंट नवाब महिमाशाह से हो गई। वेगम ने उससे अपनी वासना पूर्ण करने का घृणित प्रस्ताव किया। पहले तो महिमाशाह ने अपनी चरित्रनिष्ठा दिखलाई और प्रस्ताव को ठुकराया पर वेगम के पौरुष को चुनौती देने वाले वाक्य जब कान में पड़े, तो वह तैयार हो गया। दोनो की प्रेम-क्रीड़ा के समय ही वहाँ एक शेर आ गया, जिसे महिमाशाह ने एक वाण से ही मार डाला। इसके बाद वेगम को शाही डेरे में पहुँचा दिया गया।

हम्मीर का हठ

कुछ दिन वाद अलाउद्दीन जब अपनी वेगम रूपविचित्रा से एकान्त मे प्रेमालाप कर रहा था कि वहाँ एक चूहा निकल आया। बादशाह को पहले तो थोड़ा भय लगा और फिर वेगम के सामने अपने शौर्य-प्रदर्शन के लिए उसने वाण से चूहे को मार दिया। रूपविचित्रा को महिमाशाह की वीरता और पौरुष का स्मरण हो आया, वह हँस पड़ी। बादशाह ने वेगम से हँसने का कारण बार-बार पूछा। अलाउद्दीन के बहुत आग्रह और विश्वास दिलाने पर उसने सारा वृत्तान्त बता दिया। इस पर बादशाह अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने महिमा को अपने राज्य से निकाल दिया। महिमाशाह कई जगह भटका, पर किसी ने उसे अलाउद्दीन के भय से शरण नहीं दी। अन्त मे जब वह रणथम्भोर पहुँचा और राजा हम्मीर से उसने शरण की याचना की तो वीर चौहान ने क्षत्रिय धर्म का पालन करने के लिए शरणागत की रक्षा का भार अपने कन्धों पर लिया। अलाउद्दीन को जब इस बात का पता लगा तो उसने महिमा को लौटाने के लिए पत्र भेजा, दूत भेजा और जब बार-बार हम्मीर ने शरणागत की रक्षा की बात

कही, तो दिल्ली से बड़ी सेना लेकर अलाउद्दीन ने उस पर आक्रमण किया। भयंकर युद्ध हुआ। हठी वीर हम्मीर ने फिर भी अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा की और लड़ते-लड़ते मारा गया। कुछ इतिहासकारों ने बताया है कि हम्मीर ने आत्महत्या कर ली। कहते हैं कि जब वह विजयी हुआ तो उसकी सेना के निशान-पताकों को रणथम्भोर गढ़ में दिल्लीपति की विजय समझ लिया और रानियों ने जौहर-व्रत का पालन किया। किन्तु जब हम्मीर वहाँ पहुँचा तो सारा खेल खत्म हो गया था, इसलिए उसने अपनी तलवार से ही अपने को मार डाला।

बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने जोधराज की इस काव्य रचना का समय १७८५ संवत बताया है जब कि आचार्य शुक्ल 'हम्मीर रासो' का रचना काल सं० १८७५ मानते हैं।

जोधराज के 'हम्मीर रासो' के कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

पश्चिम सूरज उग्गवै, उलटि गंग वह नीर।
कहो दूत पतिसाहसों, हठ न तजै हम्मीर॥ ३२६॥

× × ×

अनहोनि नहिं होय, होय होनी है सोइय।
रजक मौत हरि हथ्थ, डर सु मानव क्यों कोइय॥
नहीं तजूं शेख कौ प्रण करिव, सरन धरम क्षत्रिय तनों।
मन है विचित्र महिमा तनो, सत्य वचन मुख तें भनों॥ ३२७॥

('हम्मीर रासो', पृ० ६४-६५)

वीर हम्मीर ने अलाउद्दीन के दूत को यह कह कर वापस कर दिया कि चाहे सूरज पूर्व से पश्चिम में उगने लगे, गंगा नदी उल्टी बहने लग जाय पर मैं शरणागत की रक्षा के प्रण को नहीं छोड़ सकता। कदाचित हम्मीर के इसी हठ के कारण निम्न दोहा प्रसिद्ध हो गया—

सिंह-गमन सुपुरुष-वचन, कदलि फलै इक वार।
तिरिया-तेल हम्मीर हठ, चढ़ै न दूजी बार॥

पं० उदयनारायण तिवारी ने 'वीर काव्य' ग्रन्थ के पृ० ४३९ पर जोधराज के हम्मीर-काव्य पर अपना वक्तव्य इस प्रकार दिया है—'हम्मीर रासो का अध्ययन कर लेने पर यह विश्वास हो जाता है कि कवि जोधराज का भाषा पर पूर्ण अधिकार था और उसे भावानुकूल बनाने की कला में वे निष्णात थे।'

चन्द्रशेखर का 'हम्मीर हठ' काव्य

पं० चन्द्रशेखर वाजपेयी का जन्म सं० १८५५ मे मुअज्जमावाद (जिला फतहपुर) में हुआ था। आपके पिता पं० मनिराम वाजपेयी अच्छे कवि थे। पं० चन्द्रशेखर कुछ दिन दरभंगा के राजदरबार में रहे और पश्चात जोधपुर नरेश मानसिंह के दरबार में चले गए। अन्त में पटियाला नरेश कर्म सिंह के यहाँ रहे और वहीं आपने 'हम्मीर हठ' काव्य की रचना की। कहते हैं कि पटियाला नरेश नरेन्द्र सिंह के अनुरोध पर आपने 'हम्मीर हठ' की रचना की थी। वैसे आपने शृङ्गार-रस की पुस्तकें लिखी हैं, पर आपकी कीर्ति 'हम्मीर हठ' के कारण हिन्दी-ससार में हुई।

चन्द्रशेखर वाजपेयी कृत 'हम्मीर हठ' काव्य का सम्पादन पहले हिन्दी के कवि पं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने किया था, किन्तु उनकी मृत्यु हो जाने के बाद सम्पादन का कार्य आचार्य पं० विश्वनाथ मिश्र ने पूरा किया। यह काव्य स० १९९० में बनारस के लहरी बुक डिपो से प्रकाशित हुआ। 'हम्मीर हठ' की काव्य शैली सबल, प्रौढ़ तथा प्रभावोत्पादक है। यहाँ हम चन्द्रशेखर की उस उक्ति को उद्धृत करते हैं, जो हम्मीर ने अलाउद्दीन के दूत को कही थी—

चलै सेस डोलै, मही मेरु हल्लै, महारुद्र का तीसरा नैन खोलै।
चहुँ ओर तोपैं चलैं, वाण छूटैं, झकाझोर समसेर की भार वोलैं।
उठैं रूंड भूमैं परैं मुंड लाटैं, भरे कुंड लोहू वहे वीर डोलैं।
चले प्राण जावैं, कटैं गात सारे, टरै वात ना जौन हम्मीर वोलै॥६२॥
('हम्मीर हठ', पृ० १६-१७)

शेष नाग का सिर डोल जाय, पृथ्वी हिलने लगे, रुद्र का तीसरा नेत्र खुल जाय, तोप-तलवारें चलें, खून की नदी बह जाय पर हम्मीर की बात नहीं टर सकती है, उसका प्रण भंग नही हो सकता है। हम्मीर का इतना स्पष्ट उत्तर सुनकर दिल्लीपति का दूत वापस लौट जाता है और पश्चात अलाउद्दीन और हम्मीर की सेना मे युद्ध होता है। कवि ने युद्ध का सजीव वर्णन किया है।

महेश कृत 'हम्मीर रासो'

बीसवीं सदी के छठे दशक मे भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा महेश कवि का 'हम्मीर रासो' प्रकाशित हुआ, जिसका सम्पादन डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने किया है। डॉ० गुप्त ने अपनी भूमिका मे हम्मीर सम्बन्धी काव्यों का

वर्णन किया है, जिसमे 'प्राकृत पैंगल' मे हम्मीर सम्बन्धी छन्दों का उल्लेख करने के बाद आपने जयचन्द सूरी कृत 'हम्मीर' महाकाव्य तथा विद्यापति कृत 'पुरुष परीक्षा' का हवाला दिया है। ये दोनो ग्रन्थ संस्कृत में हैं और दोनों मे हम्मीर की वीरता का वर्णन है। तत्पश्चात आपने कवि छन्द कृत 'हम्मीर रा कवित्त' तथा 'हम्मीरदेव चउपई' का उल्लेख किया है। ये दोनो कृतियाँ पुरानी राजस्थानी में हैं। 'हम्मीर रा कवित्त' में २१ छप्पय छन्द हैं तथा 'हम्मीर चउपई' में ३२१ चौपाइयाँ हैं। इसकी रचना सं० १५३८ में हुई है। इन रचनाओ के बाद डॉ० गुप्त ने महेश कृत 'हम्मीर रासो' का उल्लेख किया है। यह रचना सं० १७८५ की है।

कवि महेश अपने 'हम्मीर रासो' के उपसंहार में कहता है—

धनि राव हमीर, धनि जननि जिन जाये।
जे जे कहेते वचन, सूर सो ही निरवाहे।
आप काज सब ही मरे, पर कारिज मरत न कोय।
तुम से राव हमीर नर, हुआ न अब को होय ॥ २६७ ॥
(*'हम्मीर रासो'*, पृ० ११३)

सच है 'परहित बस जिनके मन माहिं-तिन कह जग दुर्लभ कछु नाहिं!' तुलसी की यह उक्ति हम्मीर पर खरी उतरती है। हम्मीर का शरणागत के लिये किया गया त्याग ही कवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना। हम्मीर ने एक मुसलमान की रक्षा के लिए दूसरे मुसलमान बादशाह से प्राण-पण लगा कर युद्ध किया। ऐसे वीर को हम साम्प्रदायिक कैसे कह सकते हैं? ऐसे मानव प्रेमी, धर्म-रक्षक की कीर्ति का गान हमेशा सरस्वती पुत्रों ने राष्ट्र की भावनात्मक एकता के लिए अपने सारस्वत कवि-कर्म से किया।

रामकुमार वर्मा का 'वीर हमीर' काव्य

हिन्दी के छायावाद युग में भी हम्मीर पर काव्य लिखा गया। डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा रचित 'वीर हमीर' काव्य सं० १९८० मे प्रकाशित हुआ। कवि की यह आरम्भिक काल की रचना है, जिसके मुख पृष्ठ पर पं० चन्द्रशेखर वाजपेयी का प्रसिद्ध दोहा—'तिरिया तेल, हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार' छपा है। इससे लगता है कि उन्हें इस काव्य के लिखने की प्रेरणा कवि चन्द्रशेखर के 'हम्मीर हठ' से मिली थी, किन्तु उन्होंने पुस्तक की भूमिका मे लिखा है कि श्रीयुत् कुंवर नारायण सिंह के लेख 'हमीर' से उन्हे यह काव्य-कृति लिखने का उत्साह मिला।

डॉ० वर्मा की यह काव्य-कृति खड़ी बोली हिन्दी में है। जब मीर ने राणा हम्मीर की शरण में आकर गिड़गिड़ाते हुए रक्षा की भीख मांगी तो हम्मीर ने उसे आश्वस्त करते हुए वीर वाणी में कहा—

क्यों व्यथित तुम हो रहे हो व्यर्थ ही संताप से ?
लाभ क्या तुमको मिलेगा इस विलाप-कलाप से ?
क्यों हमारे पास आकर तुम मलीन उदास हो ?
क्यों न रक्षा हो सकेगी जब हमारे पास हो ? ॥ २८ ॥

('वीर हमीर', पृ० ६-७)

सत्य पर बलिदान होना ही हमारा कर्म है।
दीन दुखियों को बचाना ही हमारा धर्म है।
दुख नहीं शरणागतों के हेतु यदि तन भी कटे।
है मुझे धिक्कार ! यदि पग तनिक भी पीछे हटे ॥ २६ ॥

(वही, पृ० ६-७)

वस्तुतः इसी शरणागत की रक्षा मे किए गए हठ के कारण रणथम्भौर के राणा हम्मीर का हठ प्रसिद्ध हो गया। इस कथानक पर राजस्थान के प्रसिद्ध गीतकार मेघराज मुकुल ने भी १६४६ ई० में काव्य रचना की है।

भारतीय कृपाण

१६३५ ई० मे बनारस से कवि काशी प्रसाद श्रीवास्तव की काव्य-कृति 'भारतीय कृपाण' का प्रकाशन हुआ। इसमें वीर क्षत्राणी तारा, पोकरण और आहुजा के वीर सरदारों तथा रणथम्भौर के हम्मीर की कृपाण का वर्णन है। इसकी भूमिका में हिन्दी के यशस्वी कवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने लिखा है—'भारतीय कृपाण' मे वीर राजपूतो और वीर नारियो की वीरता का ओजस्वी भाषा मे वर्णन हुआ है। लेखक का यह आद्य उद्योग है, फिर भी इसमे कवि की प्रतिभा का विकास देखा जा सकता है। यद्यपि इन कथानकों पर साहित्य में बहुत लिखा जा चुका है पर कभी-कभी चाँदनी रात में भी दीपक जलाने की आवश्यकता पड़ती है और इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर कवि ने राजपूतों के वीर चरित्रों का राष्ट्रीय दृष्टि से वर्णन किया है। यह कृति हिन्दी के छायावाद युग की है, हालांकि इस समय साहित्य में प्रगतिवाद की पग-ध्वनि सुनाई पड़ रही है।'

मीर को आश्वस्त करते हुए हम्मीर कहता है—

बोले पुनि गम्भीर, वचन नृप सदय मीर से,
रक्षा होगी मीर, न तुम अब हो अधीर से ॥
एक नहीं सौ लाख, यवन-सम्राट डँटे हों ।
चुने चुनाये वीर, विपक्षी वृन्द पड़े हों ॥ १३ ॥
('भारतीय कृपाण' पृ० ८६)

संक्षिप्त करने पर भी हम्मीर का प्रसंग लम्बा हो गया । हमने हम्मीर सम्बन्धी काव्यों की यहाँ झलक मात्र दी है ।

अहो आज का सुनि परत भारत भूमि मंझार....

'भारतेन्दु ग्रन्थावली' के पृष्ठ ७०१ पर सम्पादक की टिप्पणी मे कहा गया है कि 'भारत भिक्षा कविता पर बंगला के हेमचन्द्र बनर्जी की छाया है। इसका प्रकाशन 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' पत्रिका के खण्ड २ संख्या ८-१२ के सन् १८७५ ई० की मई-सितम्बर संख्या मे हुआ था। 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' के पृष्ठ ७६१ पर 'भारत वीरत्व' कविता छपी है। इसका प्रकाशन 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' पत्रिका के अक्टूबर १८७८ ई० मे हुआ था। असल मे यह कविता भारत-अफगान युद्ध छिड़ने पर लिखी गई थी। प्रथम अफगान युद्ध में दोस्त मुहम्मद काबुल का अमीर हुआ था, जिसका पुत्र शेर अली था। पिता की मृत्यु के बाद शेर अली काबुल का अमीर बना। इसके दो भाई थे अजीम और अफजल। इन दोनो ने उपद्रव किए, पर वे शान्त हो गए। सन् १८७८ ई० मे शेर अली ने रूस के राजदूत का स्वागत किया, पर अंग्रेजी एलची (राजदूत) को काबुल तक पहुँचने की आज्ञा नही दी, जिससे अफगान का द्वितीय युद्ध हुआ। उसी समय 'भारत वीरत्व' कविता लिखकर हरिश्चन्द्र ने देशी वीरो को युद्ध में सम्मिलित होने के लिए उत्साह दिलाया। युद्ध मे विजयी होने पर गन्दमक की सन्धि मई, १८७९ ई० मे हुई, पर इसके चार महीने बाद ही अफगानो ने अंग्रेजी एलची सर कैवगनारी को मार डाला और पुनः भारत-अफगान युद्ध हुआ। इस युद्ध में शेर अली तथा उसके दोनो पुत्र याकूब और अयूब पूर्णतया परास्त हुए। अफजल का पुत्र अबुर्रहमान अमीर हुआ और तब शान्ति स्थापित हुई। देशी सेना का एक ब्रिगेड सेनापति मैक्फरसन के अधीन था।

'विजयिनी विजय वैजन्ती' कविता की रचना मिस्र-भारत युद्ध के समय १८८२ ई० मे हुई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इन तीनो को एक साथ सम्मिलित कर दिया। 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' के पृ० ७९९ पर 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' मे तीनो कविताओं की सम्मिलित पंक्तियाँ है, जो इस प्रकार है—

जितन हेतु अफगान चढ़त भारत महरानी।
सुनहु न गगनहिं भेदि होत जं जै धुनि बानि ॥ ३ ॥

× × ×

परिकर कटि कसि उठौ धनुप पै धरि सर साधौ ॥
केसरिया बाना सजि कर रन कंकन बांधौ ॥ १८ ॥

(भा० ग्र०, 'भारत वीरत्व' पृ० ५६२-५६३, ७६३)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'भारत वीरत्व' कविता मे अपने भाव इस प्रकार व्यक्त

चलहु वीर उठि तुरत सब जय-ध्वजहिं उड़ाओ ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रन-रंग जमाओ ।।
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ ।
केसरिया बाना सजि-सजि रन कंकन बाँधौ ।।

(आधुनिक वीर-काव्य, पृ० ८)

इस कविता मे भारतेन्दु ने भारत के प्राचीन गौरव तथा आर्य-संस्कृति का स्मरण दिला कर वीरों को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया है। युद्ध का नेतृत्व करने के लिए नायक की आवश्यकता होती है। इस कार्य को श्री राधाकृष्णदास ने 'महाराणा प्रताप' नाटक की रचना (१८९७ ई०) कर के पूरा किया। राधाकृष्णदास के 'महाराणा प्रताप' नाटक का एक अंश यहाँ उद्धृत है, जिसमें राणा प्रताप की प्रशस्ति गाई गई है—

प्रताप-प्रशस्ति

तजि सोच उठौ सब वीर बाँधि दृढ़ आसा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ।।
दुखमय परबस की रैन अहो सब बीती ।
दिन गये यवनगन जो चित्तौरगढ़ जीती ।।
चलि बेग लगाओ मसि उनके मुख चीती ।
कसि कमर उठौ अब एक होइ करि प्रीती ।।
सब भाजहिंगे लखि इनको तेज विकासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ।। १ ।।

इस प्रकार हिन्दी के आधुनिक काल के आरम्भ में अर्थात् भारतेन्तु-युग में राष्ट्र-चेतना की शुरुआत हुई। यूरोप के दार्शनिक हेगेल ने एक स्थान पर कहा है कि जातीय भावनाओं का प्रदर्शन अधिकतर पराधीन जातियाँ इसी प्रकार की वीर-कविताओं से अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करती हैं। हिन्दी के आधुनिक काल के आरम्भिक काल खण्ड मे ऐसी ही राष्ट्रीय कविताओ का प्रणयन हुआ। अंग्रेजो की पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए जनता व्यग्र थी और कवि राष्ट्रीय कविताओ से देश की जनता को प्रोत्साहित कर रहे थे।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

रत्नाकर जी का जन्म काशी में संवत १९२३ मे हुआ था। आपका 'उद्धव

शतक' काव्य प्रसिद्ध रचना है। आपने महारानी दुर्गावती, महाराणा छत्रसाल, नील-देवी, गुरु गोविन्द सिंह आदि पर वीर-रस की रचनाएँ लिखीं। आपने 'वीराष्टक' में भूषण की भाँति कवित्त रचे है। 'महाराणा प्रताप' के सम्बन्ध में जगन्नाथदास रत्नाकर का एक कवित्त इस प्रकार है—

साजि सेन समर-सपूत राजपूतनि की,
विक्रम अकूत औ अभूत प्रन ठाने हैं।
कहै 'रतनाकर' स्वदेश पूत राखनकों,
गाजि सहबाज के दराज साज भाने हैं।
कुंत करवार सौं प्रचारि करि वार दारि,
केते दिये डारि केते भभरि भगाने हैं।
प्रबल प्रताप-ताप-दाप सौं हवा ह्वै सद्द,
बद्दल समान मुगलद्दल बिलाने हैं॥ १॥

'महारानी दुर्गावती' पर एक कवित्त देखिए—

दोप दुख दारिद सु चूरि दीनता कै दूरि,
भूरि सुख सम्पति सौं पूरि प्रजा पाली है।
कहै 'रतनाकर' स्वतंत्रतानुरक्ति अरु,
देस-भक्ति थापी बाक-सक्ति सौं निराली है॥
पुनि कढ़ि दुर्ग तैं कृपान दुरगावति लै,
दुष्टनि पै रुष्ट ह्वै अपार वार घाली है।
धोखैं रहैं त्रिदेव जिय जोखै यहै,
यह कमला है, कै गिरा है, किधौं काली है॥ ५॥

(आधुनिक वीर-काव्य, पृ० ८)

देश को स्वतन्त्रता के लिए राणा प्रताप ने कष्ट सहे और अकबर की विशाल सेना को मार भगाया। रत्नाकर जी की उपमा देखिए 'प्रताप के ताप-दाप से मुगल सेना बादलों के समान तितर-बितर हो गई।' इसी प्रकार महारानी दुर्गावती ने भी देश की स्वतन्त्रता के लिए भीषण युद्ध किया। उस समय वीरांगना के उस रौद्र रूप को देख कर साक्षात् शंकर को भी भ्रम हो गया कि यह लक्ष्मी है या पार्वती है या महाकाली है।

द्विवेदी युग

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपने 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य में

राष्ट्रीयता के स्वर को गुंजरित किया है। यशोदा (भारतमाता) बालक कृष्ण को प्यार दुलार से खिला रही है और बालक कृष्ण भारत-जननी के उद्धार के लिए संघर्ष करते हैं। उनकी राधा भी प्रेयसी न होकर राष्ट्रीय संग्राम मे हिस्सा लेनेवाली भारतीय ललना बनती हैं। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी इस समय 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से खड़ी बोली हिन्दी का परिमार्जन कर उसे स्वस्थ स्वरूप प्रदान कर रहे थे और राष्ट्रीय भावनाओ तथा समाज-सुधार का उपदेश दे रहे थे। उनकी हिन्दी के प्रति की गई सेवाओ के कारण ही १६०१ ई० से १६२० ई० के समय को 'द्विवेदी-युग' के नाम से पुकारा जाता है। द्विवेदी-युग मे भी हम 'भारतेन्दु-युग' (१८५० ई० से १६०० ई०) के उसी राष्ट्रीय स्वर को और अधिक स्पष्ट रूप में सुन पाते है जो १९वी शताब्दी के नवजागरण काल मे गुंजरित हुआ था। १६०५ ई० के 'बंगभंग' तथा 'स्वदेशी आन्दोलन' ने इसे और तीव्र बना दिया। द्विवेदी-काल के दो सशक्त हस्ताक्षर हैं राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त एवं हरिऔधजी। मैथिली शरण की 'भारत-भारती' (१६१२ ई०) इन्हीं राष्ट्रीय भावनाओ को उजागर करती है। तभी तो विदेशी सरकार ने उसे जब्त कर लिया था, पर 'भारत-भारती' देश के लोगो की जुबान पर चढ़ गई थी और लोग कहते थे—

> हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी ?
> आओ मिल कर विचारें ये समस्यायें सभी।
>
> ('भारत-भारती', मुख पृष्ठ)

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का जन्म सं० १६२२ मे हुआ था। आपने उपन्यास, काव्य तथा निबन्ध लिखे। 'प्रिय प्रवास' आपका सर्वोत्तम महाकाव्य है। इस पर आपको सं० १६५५ में मगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ। आपकी 'रस कलश' रचना मे वीर-रस के कई उदाहरण मिलते हैं। 'कर्मवीर' आपकी प्रसिद्ध रचना है। हरिऔध जी ने 'कल्पलता' काव्य के पृ० २०४ पर राणा प्रताप के बारे मे अपनी कविता में लिखा है कि जो भारतीय जन प्रताप के पौरुष का उत्तराधिकारी न बना, वह इस धरा मे आया ही क्यो ?

> आया क्यों धरा में, क्यों कहाया भारतीय जन ?
> भूत जो भगाया नहीं भारत भूत पापी का।
> पूज-पूज सुरवृन्द कौन सी विभूति पाई ?
> बल जो विलाया नहीं प्रबल प्रतापी का।
> 'हरिऔध' कैसे तो सपूती न कपूती होवो,
> न गया मिटाया जो प्रमाद आपाधापी का।

देश परितापी को तपाया जो न दे दे ताप,
पाया जो न पौरुष 'प्रताप' से प्रतापी का।

('कल्पलता', पृ० २०४)

वियोगी हरि की 'वीर-सतसई'

वियोगी हरि का जन्म स० १९५३ में बुन्देलखण्ड मे हुआ। आपका पूर्व नाम हरिप्रसाद द्विवेदी है। संवत १९७८ में एक ऐसी घटना इनके जीवन मे घटी कि ससार से विरक्त होकर ये संन्यासी हो गए। आप ब्रजभाषा और हिन्दी के प्रसिद्ध कवि है। वैसे आपने ज्यादातर भक्ति, विनय, प्रेम, विरह पर ही ब्रजभाषा में कविताएँ लिखी है, पर वीर-रस पर भी आपकी कई फुटकर रचनाएँ है जैसे शूर-वीर, दया-वीर, सत्य-वीर, युद्ध-वीर आदि।

कवि वियोगी हरि द्वारा रचित **'वीर-सतसई'** का प्रकाशन गाँधी हिन्दी पुस्तक-भण्डार, प्रयाग से संवत १९८४ में हुआ है। आपने इस पुस्तक मे कई पौराणिक और ऐतिहासिक वीरो पर काव्य रचना की है।

'बादल-प्रतिज्ञा' के दोहों में वियोगी हरि ने पद्मिनी के चचेरे भाई वीर बादल के मुख से दृढ़ शब्दो मे प्रतिज्ञा कराई है। वीर बादल भीमसिंह (रतन सिंह) को अलाउद्दीन की कैद से मुक्त कराने के लिए प्रतिज्ञा करता है—

जौ न स्वामि निज उद्धरौं, बद्दल नाम लजाऊँ।
पिऊँ न जल मेवाड़ कौ, जियत न मूँछ रखाऊँ॥ २८॥
इन वाहुन तें वैरि-दल जौ न ठेलि लै जाऊँ।
जीवित मुख न दिखाऊँ मैं, बद्दल नाम लजाऊँ॥ २८॥

('वीर-सतसई', तीसरा शतक, पृ० ३७)

बादल कहता है कि अगर मैं अपने स्वामी (भीमसिंह) का उद्धार न करूँ तो बादल नाम नही धारण करूँ। मेरी प्रतिज्ञा है कि जब तक यह कार्य न करूँ तब तक मेवाड़ का जल ग्रहण न करूँ और जीते जी मूँछ न रखवाऊँ। सचमुच वीर बादल ने जान की बाजी लगा कर यवन सेना का मुकाबला किया और राजा रतन सिंह (भीम सिंह) का उद्धार किया। इसी प्रसंग पर मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने 'पद्मावत' महाकाव्य में लिखा है—

मातु! न जानसि बालक आदी। हौं बादला सिंघ रनबादी॥
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा। सिंघ क जाति रहै किमि छपा॥
तौ लगि गाज, न गाज सिंघेला। सौंह साह सौं जुरौं अकेला॥

को मोहिं सौंह होइ मैमंता । फारौं सूँढ़, उखारौं दंता ॥
जुरौं स्वामि संकरे जस ढारा । पेलौं जस, दुरजोधन मारा ॥
अंगद कोपि पाँव जस राखा । टेकौं कटक छतीसौं लाखा ॥
हनुवँत सरिस जंघ बर जोरौं । दहौं समुद्र, स्वामि बंदि छोरौं ।

(पद्मावत)

बादल युद्ध यात्रा के पूर्व अपनी माता से कहता है कि हे माता ! मैं स्वामी (राजा रतन सिंह) को मुक्त करने के लिए अंगद और हनुमान के समान पराक्रम दिखाऊँगा ।

इसी प्रकार 'प्रताप-प्रतिज्ञा' के दोहों मे वियोगी हरि ने राणा प्रताप की प्रतिज्ञा को इन शब्दो में व्यक्त किया है—

मूँछ न तौलौं ऐंठिहौं, हौं प्रताप भुज-हीन ।
करि पायो जौ लौं न मैं गढ़ चित्तौर स्वाधीन ॥ ३० ॥
महल नाहिं पगु धारि हौं, रहिहौं कुटी छवाय ।
हौं प्रताप जौ लौं न ध्वज दई फेरि फहराय ॥ ३१ ॥

('वीर-सतसई' तीसरा शतक, पृ० ३८)

स्वाधीनता का अलख जगाने के लिए वीर प्रताप को ऐसी ही प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी । उनका प्रण था कि जब तक वे चित्तौड़ का उद्धार नही कर लेंगे तब तक राजसी जीवन का त्याग करेंगे और अरावली की पहाड़ियो मे कुटी बना कर रहेगे । पुनः मेवाड़ मे स्वतन्त्रता की ध्वज फहराने की उनकी कठोर प्रतिज्ञा थी ।

'चूड़ावत का प्रेमोपहार' के दोहो मे कवि ने हाडा राणी के त्याग का वर्णन इन शब्दो मे किया है—

प्रान-प्रिया कौ सीसु लै, परम प्रेम-उपहारु ।
चल्यौ हुलसि रण-मत्त ह्वै चूड़ावत सरदार ॥ ६७ ॥
पायौ प्रनय-प्रमान मैं निज प्यारी-सुठिसीस ।
चूड़ावत ! उर धारि सो ह्वैहौ समर-गिरीस ॥ ६८ ॥

('वीर-सतसई', चौथा शतक, पृ० ६१)

चूड़ावत सरदार ने 'शीनाणी' के रूप मे हाड़ारानी के कटे शीश को गले मे धारण कर लिया और रूपनगर की राजकुमारी के रक्षार्थ औरगजेब की सेना मे लड़ने के लिए हर्षित होकर प्रस्थान किया ।

इसी प्रकार कवि ने टॉड के 'राजस्थान' से प्रेरणा ग्रहण कर अपनी काव्य-कृति की रचना की है। यहाँ प्रस्तुत हैं उनके राजस्थान पर विचार। 'राजस्थान' शीर्षक इस रचना में वियोगी हरि ने कहा है—

मिली हमैं थर्मोपिली ठौर-ठौर चहुँपास।
लेखिय राजस्थान में लाखनु ल्यूनीडास ॥ ५१ ॥
('वीर-सतसई', तीसरा शतक, पृ० ४१)

टॉड के इस कथन का कि राजस्थान में कोई छोटा सा भी राज्य ऐसा नहीं है जिसमें थर्मोपली जैसी यूरोप की युद्धघाटी न हो और कदाचित् ऐसा कोई नगर नहीं है, जहाँ लियोनिदास जैसे वीर पुरुष न हुए हों। कवि ने इसे स्पष्ट करने के लिए पाद टीका में पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के 'राजपूताने का इतिहास' के प्रथम खण्ड के पृ० ३५५ से उस वृतान्त का उल्लेख किया है, जिसमें फारस के बादशाह जर्कसीज की सेना का थर्मोपली में वीर लियोनिदास ने मुकाबला किया था।

'हल्दीघाटी' शीर्षक रचना मे कवि ने अपने भावों को इन शब्दों मे व्यक्त किया है और राणा प्रताप की वीरकीर्ति का बखान किया है, जिसने अरावली की इतिहास प्रसिद्ध 'हल्दीघाटी' में अकबर की सेना के साथ घोर युद्ध किया और मातृभूमि की स्वाधीनता की रक्षा की थी—

अहो सुभट-सोनित-सन्यौ, दृढ़व्रत हल्दीघाट।
अजहूँ हठी प्रताप की जोहत ठाड़ो बाट ॥ ५६ ॥
साँचेहुँ, हल्दीघाट ! तुव छाती कुलिस-प्रचंड।
बिछुरत वीर प्रताप के भई न जो सत खंड ॥ ६० ॥
('वीर-सतसई', तीसरा शतक, पृ० ४२)

कवि को दु:ख है कि राणा प्रताप के बिछुड़ने से हल्दीघाटी की धरती सैकड़ों टुकड़ों मे क्यों नहीं खण्डित हो गई। अवश्य ही उसका हृदय कठोर है, फिर भी वहाँ की माटी वीर प्रताप की आज भी बाट जोहती है।

उल्लेखनीय है कि वियोगी हरि ने भक्ति सम्बन्धी काव्य रचना ही मुख्य रूप से की है, पर उनके वीर-रस के दोहे उनकी 'वीर-सतसई' मे सैकड़ों की संख्या में हैं। अन्त में पद्मिनी पर उनके 'पद्मिनी-जौहर' पर रचे दोहों का उदाहरण प्रस्तुत कर हम अपनी बात समाप्त करेंगे। देखिए—

वह चित्तौर की पद्मिनी, किमी पैहै सुल्तान।
कब सिंहिनि-अधरान कौ कियौ स्वान मधुपान ॥ ४६ ॥

भई भस्म जहँ पद्मिनी, आरज-धर्म समोय।
यज्ञ-अग्निहुँ ते अधिक, पावन पावकु सोय॥ ४८॥

('वीर-सतसई', चौथा शतक, पृ० ५८)

कवि कहता है कि सुलतान (अलाउद्दीन) तुम भला पद्मिनी को कैसे पा सकते हो? क्या कभी सिंघणी के अधरो का स्वानो (कुत्तो) ने मधुपान किया है?

वियोगी हरि ने पद्मिनी की राख को यज्ञ की राख से भी अधिक गौरव प्रदान किया है। सचमुच ऐसी सती पद्मिनी पर देश को नाज है।

मैथिलीशरण गुप्त का 'विकट भट' काव्य

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (१८८७-१९६४ ई०) का जन्म सं० १९४३ में चिरगाँव (झाँसी) में हुआ था। गुप्त जी भारत की प्राचीन संस्कृति के अमर गायक हैं। आप हिन्दी में राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रख्यात हैं। 'साकेत' आपका महाकाव्य है। आपने 'यशोधरा', 'द्वापर', 'जयद्रथ वध' आदि अनेक काव्य लिखे हैं। हमने कई स्थानों पर आपकी रचनाओं का प्रसंगानुसार उल्लेख किया है। सच पूछा जाय तो गुप्त जी द्विवेदी-युग से लेकर स्वतंत्र भारत के 'नई कविता' के काल-खण्ड तक छाये हुए हैं। जहाँ आपने अंग्रेजी दासता के विरुद्ध १९१२ ई० में 'भारत-भारती' की रचना की, वहीं १९६२ ई० में चीनी-आक्रमण के समय देश को जगाने के लिए वीर-रस की कविता लिखी। आपने टॉड के 'राजस्थान' तथा डिंगल के चारणों की गाथाओं के आधार पर दो काव्य-पुस्तकें लिखीं—'पत्रावली' (सन् १९२३ ई०) तथा 'विकट भट' (१९२९ ई०)। 'पत्रावली' में ऐतिहासिक आधार पर लिखित कुछ पद्यात्मक पत्र हैं तथा 'विकट भट' में जोधपुर के राजपूत सरदार की तीन पीढ़ियों तक चलने वाली बात की टेक की अद्भुत पराक्रमपूर्ण कथा है। 'पत्रावली' की कविता पर हमने 'नाटक अध्याय' में चर्चा की है।

'विकट भट'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने चारण गाथाओं को अवलम्ब बनाकर 'विकट भट' काव्य की रचना की। इस काव्य कृति की प्रथमावृत्ति सं० १९८५ में साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) से हुई, जिसमें जोधपुर के पोकरण वाले सरदार देवीसिंह की एक अद्भुत कहानी है। बताया जाता है कि सरदार देवी सिंह का जोधपुर के राजा विजय सिंह के साथ यह वीरता का पराक्रम तीन पीढ़ी तक चलता रहा। देवीसिंह के पुत्र और पौत्र ने अपने वंश की टेक को अद्भुत पराक्रम से निभाया और वंश परम्परा की रक्षा की। टॉड के 'राजस्थान' में भी चारणों की इस कथा का विस्तार से वर्णन है। टॉड के 'राजस्थान' के दूसरे खण्ड में 'मेवाड़ राज्य का इतिहास' में हम पाते हैं कि देवी सिंह ने पोकरण में जब अपना पूरा अधिकार जमा लिया तो उसकी आँख जोधपुर के राज्य पर लगी। वह अपने पिता के अधिकार को प्राप्त करने के लिए जोधपुर के सिंहासन को शक्ति से पाना चाहता था। उस समय जोधपुर के राजा विजय सिंह की

सुन कर वार वार वात वही उनकी
वृद्ध वीर ठाकुर को क्रोध कुछ आ गया
लाली दौड़ आई सौम्य, शान्त, गौर गात्र में,
वदन गम्भीर हुआ, किन्तु रहे मौन वे।
बोले फिर भूप—'देवी सिंह जी, कहा नहीं ?
यदि तुम रूठ जाओ मुझसे तो क्या करो ?'
'पृथ्वीनाथ, मैं रूठ जाऊँ' कहा वीर ने—
'जोधपुर की तो फिर वात क्या, वह तो
रहता है मेरी कटारी की पर्तली में ही,
मैं तो नवकोटी मारवाड़ को उलट दूँ'
कहते हुए यों ढ़ाल सामने जो रक्खी थी,
वायें हाथ से उन्होंने उलटी पटक दी !
सन्नाटा सभा में हुआ, सव चुपचाप थे,
सिर को हिलाते हुए सन्न रहे राजा भी !

('विकट भट' काव्य, पृ० २-३)

सरदार देवी सिंह से जोधपुर का राजा यूं ही शंकित था और अब तो उसे सरदार से भय होने लगा। उसने देवी सिंह को पराभूत करने के लिए षड़यन्त्र रचा। दूसरे दिन दरबार में आने के लिए पोकरण के सरदार पालकी मे आये। राज-प्रासाद की मुख्य ड्यौढ़ी (सिंह पौर) पार हुईं तब देवी सिंह अपने हाथो के बल पालकी से उतरे, तभी कोई पालकी (पीनस) से उनकी खड्ग को उठा कर चम्पत हो गया। भौचक्के से सरदार ने इधर-उधर नजर दौड़ाई, पर कोई दिखाई नहीं दिया। फिर उन्होने जब अपनी नजर ऊपर की तो देखा महल को छत पर राजा विजय सिंह खड़े है। सरदार ने राजा से इस अपमान का कारण पूछा। प्रत्युत्तर मे राजा ने कहा—'इसे जिन्दा ही पकड़ लो।' लेकिन अभी भी सरदार के हाथ मे पालकी का डण्डा था। उनके हाथ में डण्डा रहते हुए किस को हिम्मत थी कि उस वीर को कोई पकड़ ले। अतः दूर से लाव की रस्सियो का जाल फेंका गया और उस शेर को वांधा गया। राजाज्ञा से सोने के कटोरे में अफीम और विष घोटा गया और मिट्टी के पात्र में पोकरण के ठाकुर को पीने के लिये दिया गया। उस वीर सरदार ने मिट्टी के पात्र में विष दिए जाने पर अपना घोर अपमान समझा। क्रोधित शेर ने अपने शरीर को एक झटका दिया, बन्धन टूट गए किन्तु इस भयंकर जोश में ठाकुर का सिर संगमरमर की भीत के पत्थर से जा टकराया।

खून का फव्वारा छूट पड़ा और कुछ देर बाद पोकरण का शेर धरती पर प्राण शून्य हो गया।

मैथिली शरण जी के शब्दों में जोधपुर के राजा के इस कायरता पूर्ण षड़यन्त्र को देखिए—

दूसरे दिन देवी सिंह दरबार में
जाने के लिए जो सिंहपौर पार करके,
चौक में, करों के बल पीनस से उतरे,
एक जन पीछे से उठा खड्ग उनका
भाग गया, लौट कर देखा जो उन्होंने तो
ढाल ही दिखाई पड़ी, चौंक उठे तब वे।
चारों ओर दृष्टि डाली, द्वार सब बन्द थे,
पीनस के डंडे पर रक्खे हुए हाथ वे
क्षण भर सोचा किये इस अभिसंधि को।
देखा सिर ऊँचा कर ऊपर को अन्त में—
सामने विजय सिंह छत पर थे खड़े।
'मेरे साथ ऐसा व्यवहार ? भला, अब क्या
इच्छा है ?' उन्होंने कहा भूपति को देख के।
आज्ञा हुई 'शीघ्र इसे जीता ही पकड़ लो।'

('विकट भट' काव्य, पृ० ३)

टॉड के 'राजस्थान' के दूसरे खण्ड के १३वें अध्याय के पृष्ठ १०० पर ठाकुर देवीसिंह को विषपान कराने की घटना का वर्णन इस प्रकार है—

The last hour of Devi Sing was marked with a distinguished peculiarity. Being of the royal line of Maroo they would not spill his blood, but sent him his death-warrant in a jar of opium. On receiving it, and his prince's command to make his own departure from life, "what ?" said the noble spirit, as they presented the jar, "shall Devi Sing take his umul (opiate) out of an earthen vessel ? Let his gold cup be brought, and it shall be welcome." This last vain distinction being denied, he dashed out his brains against the walls of his prison. Before he thus enfranchised his proud spirit, some ungenerous mind, repeating his own vount, demanded,

"where was then the sheath of the dagger which held the fortunes of Marwar?" "In Subbula's girdle at Pokurna", was the laconic reply of the undaunted Chondawut"

(Tod's Rajasthan, Vol. II, Annals of Marwar, Page 100)

'विकट भट' काव्य मे भी पोकरण के देवी सिंह को विषपान कराने की घटना का वर्णन टॉड के इतिहास ग्रन्थ से लिया गया है। पोकरण का सरदार देवी सिंह राजा अजित सिंह का वेटा था। कुछ ग्रन्थकारो ने उसे अजित सिंह का नही महासिंह का वेटा वताया है। जो भी हो, देवी सिंह का जोधपुर के राजघराने से खून का रिश्ता था, इसीलिए उसकी नजर जोधपुर के सिंहासन पर थी और राजा विजय सिंह इस कांटे को सदा के लिए खतम कर देना चाहता था। चूंकि गोली या तलवार से पोकरण के सरदार को मारना आसान काम नही था। इसलिए विष के साथ अफीम को घोल कर उसे पीने को दिया गया।

देवी सिंह के मरने के पूर्व जब वहाँ उपस्थित एक व्यक्ति ने उससे पूछा था—'आपकी वह कटार कहाँ है जिसकी पर्तली में आप मारवाड़ (जोधपुर) के सिंहासन को रखते थे?'

देवी सिंह ने स्वाभिमान के साथ उत्तर मे कहा था—'मेरी वह कटार (तलवार) इस समय पोकरण में मेरे वेटे सवल सिंह की कमर में बंधी है।'

मैथिली शरण जी से सुनिए—

'हाँ, अब अमल आवे' आज्ञा हुई नृप की,
सोने के कटोरे में अफीम घुलने लगी,
देवी सिंह को भी वह ठीकरे में मिट्टी के
भेजी गई, देखते ही मानो सरदार से
अब न सहा गया, रहा गया न मौन भी—
'अधम, अधर्मी, अकृतज्ञ, अनाचारी रे,
ऐसा अपमान!' कोड़ा खा के भला घोड़ा ज्यों-
तड़पे, त्यों ठाकुर ने एक झटका दिया,
टूट गये बन्धन तड़ाक, किन्तु वेग था,
संभला न मस्तक, भड़ाक हुआ भीत में
शोणित की लालिमा को चिह्न सम छोड़ के
ठाकुर का जीवन-दिनेश अस्त हो गया! (वही, पृ० ४)

पिता की हत्या का समाचार सुनकर देवी सिंह के पुत्र सबल सिंह ने प्रतिज्ञा की कि अगर मैं पिता के हत्यारे के सामने नत होऊँ तो ठकुरानी का पैदा किया हुआ नहीं। उसने पोकरण के वीरों को इकट्ठा किया और एक सेना लेकर जोधपुर पर चढाई कर दी। भयंकर लड़ाई हुई और सबल सिंह वीरता दिखा कर स्वर्ग सिधार गया। इसके बाद सबल सिंह के पुत्र अर्थात् देवी सिंह के पौत्र सवाई सिंह को दरबार में हाजिर होने का हुक्म हुआ। पोकरण की सेना के वीर पहले ही रणक्षेत्र में काम आ चुके थे। बालक सवाई सिंह उस समय केवल बारह वर्ष का था। युद्ध की उसमें असीम ललक थी। वह अकेला ही वीर वेश मे दरबार मे आया।

सबल सिंह की वीरता का नमूना 'विकट भट' मे देखिए—

> प्राण-मोह छोड़ उन मुट्ठी भर वीरों की—
> टुकड़ी ने झंझा के समान, जोधपुर के
> घोर दल-बादल को छिन्न-भिन्न करके
> और भली-भाँति उड़ा के धूल उसकी
> रण में सबल सिंह-युक्त गति वीरों की—
> पाई और मानो स्वर्ग लेकर ही शान्ति ली !
>
> × × ×
>
> सबल पिता का पुत्र, पौत्र देवी सिंह का
> बालक सवाई सिंह बारह बरस का
> लड़ने को उद्यत था, किन्तु था अकेला ही
> सेना हत हो चुकी थी पहले ही। राजा का
> हुक्म हुआ—'जोधपुर हाजिर करो उसे।' (वही, पृ० ५)

कहा जाता है कि जोधपुर के राजा ने अपने प्रतिद्वन्द्वी सामन्तो को हत्या करके समाप्त किया था। इन प्रतिद्वन्द्वियो मे तीन चम्पावत सरदार थे—आहुए के सामन्त जैत सिंह, पोकरण के देवी सिंह और हरसोलाव के सामन्त। मैथिली शरण गुप्त ने 'विकट भट' में पोकरण के सरदार देवी सिंह तथा आहुए के सरदार जैतसिंह की हत्याओ का वर्णन किया है। राजा विजय सिंह के इस कुकृत्य मे उसके धाभाई (धायी से पैदा हुआ) जग्गू का बड़ा हाथ था।

वीर बालक सवाई सिंह जब दरबार मे जाने के लिए उद्यत हुआ तो उसकी माँ को बड़ी चिन्ता हुई। उसे पक्का विश्वास था कि श्वसुर और पति के मारे जाने के बाद उसका कुल-दीपक भी नहीं बचेगा। माता को आश्वस्त करते हुए वीर बालक ने कहा—

'देखूंगा कृतघ्न और क्रूर उस राजा के
सींग पूंछ हैं या नहीं, क्योंकि पशुओं से भी
नीच तथा मूढ़ महा मानता हूँ मैं उसे।' (वही, पृ० ६)

बालक सवाई सिंह को निर्भीक देख कर कुछ लोग सोच करने लगे और कुछ हर्षित हुए उसकी वीर मुद्रा देख कर। राजा विजय सिंह ने बालक सवाई सिंह से पूछा—

'बालक बुलाया तुम्हें मैंने है क्यों, सुनो,
जोधपुर रहता था पर्तली में जिसकी
देवी सिंह वाली सो कटारी कहो मुझसे
अब भी तुम्हारे पास है या नहीं।'

राजा के पूछने के साथ ही सवाई सिंह ने निर्भय होकर कहा—

'कटारी ? धरा कांपी सदा जिससे ?
बिजली की बेटी वह ? भौंह महाकाल की ?
शत्रु के चबाने को कराल डाढ़ यम की ?
चम्पावत ठाकुरों की 'पत' वह लोक में ?
पूछते हैं आप क्या उसी की बात है ?'

× × ×

'तो सुनिये, दादा ने कटारी वह मेरे पिता
के लिए छोड़ी और मेरे पिता सौंप गये मुझको।
पर्तली के साथ वह मेरे इस पार्श्व में
अब भी है पृथ्वीनाथ, एक जोधपुर क्या ?
कितने ही दुर्ग पड़े रहते हैं सर्वदा
क्षात्र-कीर्ति-कोषवाली पर्तली में उसकी।
सच्ची बात कहने से आप रूठ जायेंगे,
किन्तु जब पूछते हैं कैसे कहूँ झूठ मैं ?
होता जो न जोधपुर पर्तली में उसकी
कहिये तो कैसे वह प्राप्त होता आपको ?''

(वही, पृ० १३-१४)

जयशंकर प्रसाद का 'महाराणा का महत्व' काव्य

जयशंकर प्रसाद

प्रसाद जी (१८८६-१९३७ ई०) का जन्म काशी मे सं० १९४६ में हुआ था। श्री जयशंकर प्रसाद 'छायावाद' के कवित्रय मे विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपने काव्य, नाटक, उपन्यास और कहानियाँ लिखी। मुख्य रूप से आप कवि और नाटककार के रूप मे हिन्दी के रवीन्द्र कहे जाते हैं। आपका 'कामायनी' महाकाव्य हिन्दी की अमर काव्य कृति है। प्रसाद जी ने ऐतिहासिक नाटको के द्वारा भारत के अतीत के गौरवमय इतिहास को नए सन्दर्भो मे प्रस्तुत किया है। आपने राजस्थान के चारण और भाटों तथा टॉड के 'राजस्थान' से आधार लेकर 'महाराणा का महत्व' काव्य की रचना की, जिसका प्रकाशन प्रयाग के भारती-भंडार से हुआ है। इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। तीसरा सस्करण सं० २००५ मे प्रकाशित हुआ। अब हम कवि जयशंकर प्रसाद के खण्ड-काव्य 'महाराणा का महत्व' पर चर्चा करेंगे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृ० ६४६ पर लिखा है—'प्रसाद जी पहले ब्रजभाषा में कविताएँ लिखा करते थे, जिनका संग्रह 'चित्राधार' में हुआ है। संवत १९७० से वे खड़ी बोली की ओर आए और उनके 'कानन-कुसुम', 'महाराणा का महत्व', करुणालय' और 'प्रेम पथिक' काव्य प्रकाशित हुए। 'कानन-कुसुम' मे तो प्रायः उसी ढग की कविताएँ है, जिस ढंग की द्विवेदीकाल मे निकला करती थी। 'महाराणा का महत्व' और 'प्रेम-पथिक' (सं० १९७०) अतुकान्त रचना है, जिसका मार्ग प० श्रीधर पाठक ('एकान्तवासी योगी', 'श्रान्त पथिक', 'ऊजड़ ग्राम') पहले ही दिखा चुके थे। भारतेन्दुकाल मे ही पं० अम्बिकादत्त व्यास ने बगला की देखादेखी कुछ अतुकान्त पद्य आजमाए थे। पीछे प० श्रीधर पाठक ने 'सांध्य अटन' नाम की कविता खड़ी बोली के अतुकान्त (यथा चरण के बीच में पूर्णविराम वाले) पद्यो मे बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत की थी।' उल्लेखनीय है कि विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी ब्रजबुली (विद्यापति के अनुकरण) में आरम्भिक रचनाएँ लिखी थीं। इन कविताओं का संकलन 'भानुसिंहेर पदावली' में बखूबी देखा जा सकता है। इस पदावली की रचनाओं पर विद्यापति पदावली और उसकी भाषा का पूरा प्रभाव है। 'भानुसिंह' का शाब्दिक अर्थ है—रवि+इन्द्र=रवीन्द्र (रवि अर्थात् भानु=सूर्य, सिंह=इन्द्र)।

'महाराणा का महत्त्व' काव्य

हिन्दी के यशस्वी कवि-नाटककार श्री जयशंकर प्रसाद ने १६१४ ई० में 'महाराणा का महत्व' शीर्षक ऐतिहासिक काव्य की रचना की। यह काव्य-कृति 'इन्दु' पत्रिका के कला ५, खण्ड १, किरण ६ के अंक में जून १६१४ ई० में प्रकाशित हुई। इसमे महाराणा प्रताप के उदात्त चरित्र का कवि ने एक विशेष छन्द मे वर्णन किया है। 'महाराणा का महत्व' के प्रथम संस्करण में प्रकाशित 'कथन' शीर्षक आमुख मे कहा गया है—'इसके लेखक को भिन्न तुकान्त कविता लिखने की जब रुचि हुई तो उसी समय यह प्रश्न मन में उपस्थित हुआ कि इसके लिए कोई खास छन्द होना आवश्यक है। क्योंकि तुकान्त-विहीन कविता में वर्ण-विन्यास का प्रवाह और श्रुति के अनुकूल गति का होना आवश्यक है। नहीं तो पद्य और गद्य में भेद ही क्या है? अतः लेखक ने भिन्न तुकान्त कविता के लिए कई तरह के छन्दों से काम लिया है। उनमें से २१ मात्रा का छन्द, जो अरिल्ल नाम से प्रसिद्ध था, वही विरति के हेरफेर से प्रचलित किया हुआ अधिकाश कविता में व्यवहृत है।'

आज के अतुकान्त या ब्लैंक वर्स मे कविता लिखने वाले कवि इन बातो पर प्रायः कम ही ध्यान देते हैं। कई कवि तो गद्य-कविता का नाम देकर रचना करते है। प्रसाद जी ने जिस छन्द में 'महाराणा का महत्व' काव्य की रचना की है, वह गीति-रूपक के लिए बड़ा मौजू छन्द है। प्रसाद जी ने १६१३ ई० मे 'करुणालय' नामक एक गीति-रूपक या 'ऑपेरा' 'इन्दु' में प्रकाशित किया था। यू इस छन्द मे प्रसाद जी की पहली कविता 'भरत' मानी जाती है। उल्लेखनीय है कि उन्हीं दिनों बंगला साहित्य के नाट्यकार श्री द्विजेन्द्रलाल राय के 'तारा' गीति-रूपक को पं० रूपनारायण पाण्डेय ने इसी छन्द में अनुदित किया था। 'तारा' या 'ताराबाई' गीति-काव्य पर हमने 'नाटक अध्याय' में विस्तार से विचार किया है।

कवि जयशकर 'प्रसाद' ने टॉड के 'राजस्थान' तथा अन्य चारण-भाटो की कवितावलि से तथ्य संग्रह करके 'महाराणा का महत्व' काव्य की रचना की है, जिसमे अकबर के दरबारी कवि तथा सेनापति रहीम खानखाना के साथ घटी एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन किया गया है। इससे महाराणा प्रताप का चरित्र महिमामण्डित होता है। कहा जाता है कि एक बार सम्राट अकबर ने राणा प्रताप को बन्दी बनाने के लिए रहीम खाँ को सेनापति बनाकर भेजा। नवाब रहीम के साथ उस अभियान में उनकी परम सुन्दरी बेगम भी थी। 'महाराणा का महत्व'' कविता मे नाटकीय ढग से बेगम की दासी का स्वर इस प्रकार फूटता है—

'क्यों जी कितनी दूर अभी वह दुर्ग है ?'
शिविका में से मधुर शब्द यह सुन पड़ा।
दासी ने उन सैनिक लोगों से यही
—यथा प्रतिध्वनि दुहराती है शब्द को—
प्रश्न किया जो साथ-साथ चल रहे।

('महाराना का महल', पृ० १)

रहीम खाँ की सेना जिस समय मेवाड़ के उस मरु प्रदेश से गुजर रही थी उस समय भीषण गर्मी थी। रास्ता पहाड़ी था और झाड़-झंकाड़ थे। असल में बेगम को प्यास लगी थी और प्यास से उसके कण्ठ सूख रहे थे। इसी कारण उसकी दासी ने प्रश्न किया—"क्यों जी कितनी दूर अभी वह दुर्ग है ?' यद्यपि बेगम की शिविका के साथ सौ सैनिक थे, जो अस्त्रों से लैस सुभट थे, पर उन्हें उस बीहड़ जंगल में रुकने का साहस नहीं हो रहा था। उन्हें भय था कि पता नहीं कब राणा प्रताप का छापामार याने गुरिल्ला आक्रमण हो जाय। सेनापति नवाब का भी आदेश था कि इस विकट मार्ग में कहीं पर भी क्षणमात्र के लिए मत रुकना—रुकोगे तो अरावली का शेर प्रताप तुम्हें पर दबोचेगा।

देव दिवाकर भी असह्य थे हो रहे
यह छोटा-सा झुण्ड सहन कर ताप को,
बढ़ता ही जाता है अपने मार्ग में।
शिविका को घेरे थे वे सैनिक सभी
जो गिनती में शत थे, प्रण में वीर थे।
मुगल चमूपति के अनुचर थे साथ में
रक्षा करते थे स्वामी के 'हरम' की।
दासी ने भी वही प्रश्न जब फिर किया
'क्यों जी कितनी दूर अभी वह दुर्ग है ?'

सैनिक ने मद भरके तब उत्तर दिया—

'अभी यहाँ से दूर निरापद स्थान है,
यह नवाब साहब की आज्ञा है कड़ी—
मत रुकना तुम क्षण भर भी इस मार्ग में
'क्योंकि महाराणा की वि[illegible]-भूमि है

यहाँ मार्ग में कहीं, मिलेगी क्षति तुम्हें
यदि ठहरोगे, रुकता हूँ इससे नहीं।'

('महाराणा का महत्व', कृ० ३-४)

लेकिन मरुभूमि की गर्मी से बेगम परेशान थी और प्यास से व्याकुल थी। उसके कण्ठ सूख रहे थे। अतः बेगम की दासी ने दोबारा शिविका के कहारों से कहा—

दासी ने फिर कहा—'जरा ठहरो यहीं
क्योंकि प्यास ऐसी बेगम को है लगी,
चक्कर-सा मालूम हो रहा है उन्हें।'
सैनिक ने फिर दूर दिखा संकेत से
कहा कि वह जो झुरमुट-सा है दीखता
वृक्षों का, उस जगह मिलेगा जल, उसी
घाटी तक बस चलो—चलो, कुछ दूर है।'

('महाराणा का महत्व' पृ० ४)

सचमुच आगे बढ़ने पर पेड़ों के झुण्ड के बीच एक छोटी-सी नदी बहती हुई मिली। बेगम ही नहीं शिविकाधारी, सैनिक तथा अनुचर प्यास से परेशान थे। उन्हें नदी जैसे आश्वासन-सा देती मिली। पानी भी नदी का साफ और स्वच्छ था। नवाब के 'हरम' की सुरक्षा करनेवाले थोड़ी देर वहाँ जल पीकर विश्राम भी नहीं कर पाये थे कि उन्हें घोड़ों की टाप सुनाई दी और पलक झपकते ही 'लू' के समान राजपूतों की एक टोली वहाँ आ गई। आखिर वही हुआ, जहाँ भय था, वहीं रात हो गई। रक्षकों के प्राण सूखने लगे। उन राजपूत सैनिकों का सेनानायक एक युवक था, यह और कोई नहीं प्रताप का पुत्र अमर था। उसके हाथ में धनुष बाण था और थी तलवार। उस नाम्न-केसरी की लाल-लाल आँखों को देखकर तथा हुंकार सुनकर यवन सेना घबड़ा गई। कुमार अमर ने आगे बढ़ कर गर्जना की—

कहा युवक ने आगे बढ़कर जोर से
'शस्त्र हमें जो दे देगा वह प्राण को
पावेगा प्रतिफल में, होगा मुक्त भी।'
यवन-चमूनायक भी कुछ कादर न था,
कहा—'मरूँगा करते ही कर्तव्य को—
वीर शस्त्र को देकर भीख न माँगते।' (वही, पृष्ठ ५-६)

अन्त में जो होना था सो हुआ। दोनो ओर से घमासान युद्ध शुरू हो गया। यवन ने वेग से भाला चलाया, पर राजपूत बिजली की फुर्ती के साथ उसके सिर पर चढ़ बैठा। राजकुमार के घोड़े के सामने के दोनों पैर यवन की छाती पर तब तक लग चुके थे और कुमार की तलवार उसके मस्तक को काटने के लिए उन्नत थी। लेकिन यवन वीर भी कुछ कम नही था। उसने भी अपनी तलवार खीच ली। दोनो वीरो का द्वन्द्व होने लगा। यवन ने तीक्ष्ण वार से कुमार पर हमला किया, किन्तु उस केसरी-नन्दन ने उसे निष्फल कर दिया और दूने जोश से आगे बढ कर यवन का सिर धड़ से अलग कर दिया।

> किन्तु यवन का तीक्ष्ण वार अति प्रबल था
> जिसे रोकना 'राजपूत' का काम था,
> रुधिर-फुहार पूर्ण यवन-कर कट गया
> असि जिसमें था, वेग-सहित वह गिर पड़ा
> पुच्छल तारा सदृश्य, केतु-आकार का।
> अभी देर भी हुई नहीं शिर रुण्ड से
> अलग जा पड़ा यवन-वीर का भूमि में। (वही, पृष्ठ ६-७)

सेनापति के धराशाई होने से बाकी सैनिको ने आत्म-समर्पण कर दिया और विजय की खुशी में राजपूत सैनिको ने शिविका को घेर लिया। अब बेगम और उसके रक्षक अमर सिंह के वन्दी थे। राजपूत उन्हें वन्दी बनाकर अपने शिविर की ओर लौट गए।

> बचे हुए सब यवन वहीं अनुगत हुए
> घेर लिया शिविका को क्षत्रिय सैन्य ने।
> 'जय कुमार श्री अमर सिंह !' के नाद से
> कानन घोषित हुआ, पवन भी त्रस्त हो
> करने लगा प्रतिध्वनि उस जय शब्द की
> राजपूत वन्दीगण को लेकर चले। (वही, पृष्ठ ७)

राणा प्रताप एक पहाड़ी झरने के पास जीवन-मरण की समस्या को सुलझाने के लिए ऊँचे शिलाखण्ड पर बैठे थे। वे जन्मभूमि चित्तौड़ की ओर करुणापूर्ण नेत्रों से देख रहे थे। हल्दीघाटी की लड़ाई के बाद उनकी जन्मभूमि यवनों के दासत्व में चली गई थी। कवि जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' के

'मनु' की भाँति वीर प्रताप को सोच की मुद्रा में दिखाया है और लिखा है—

> कहो कौन है ? आर्य्यजाति के तेज सा ?
> देशभक्त, जननी का सच्चापुत्र है,
> भारतवासी ! नाम बताना पड़ेगा
> मसि मुख में ले अहो लेखनी क्या लिखे !
> उस पवित्र प्रातः स्मरणीय सुनाम को
> नहीं, नहीं होगी पवित्र यह लेखनी
> लिख कर स्वर्णाक्षर में नाम 'प्रताप' का।
> तुम अपने 'प्रताप' को विस्मृत हो गये
> अरे ! कृतघ्न बनो मत उसको भूल के
> यह महत्वमय नाम स्मरण करते रहो। (वही, पृ० ६)

उस आजादी के वीर प्रताप के प्रति ऐसी थी कविवर प्रसाद की श्रद्धा-भक्ति। तभी तो छायावाद के यशस्वी कवि प्रसाद जी ने 'महाराणा का महत्व' एक विशेष छन्द में लिखा। जब महाराणा इस चिन्तन की मुद्रा मे बैठे थे तभी सालुम्व्रापति कृष्ण सिंह ने उन्हें अभिवादन कर कहा—

> 'राजन् ! समाचार है सुखमय देश का
> अभी यवन का एक वृन्द वन्दी हुआ
> राजकुँवर ने भेजा है उनको यहाँ
> दुर्ग द्वार पर वे वन्दी हैं और भी,
> सुनिये, उसमें है नवाब-पत्नी यहाँ।' (वही, पृ० १०)

यह सुनते ही प्रताप क्रोधित हो गए। उन्होने कहा—'उसे किसने बन्दी बनाया—क्षत्रिय स्त्री जाति को कभी कष्ट नहीं देते, फिर ऐसा कैसे हुआ ?' कृष्ण सिंह ने कहा—'प्रभु, वह स्त्री शत्रु की पत्नी है, दिल्लीपति के सेनापति रहीम खाँ की बेगम है। उसका बन्दी होना क्या सैनिक दृष्टि से या कूटनीति से ठीक नहीं है ?' तब वीर पुंगव प्रताप ने तमक कर कहा—

> कहा तमक कर तब प्रताप ने—'क्या कहा
> अनुचित बल से लेना काम सुकर्म है !
> इस अबला के बल से होंगे सबल क्या ?

रण में टूटे ढाल तुम्हारी जो कभी
तो बचने के लिये शत्रु के सामने
पीठ करोगे ? नहीं, कभी ऐसा नहीं,
दृढ़-प्रतिज्ञ यह हृदय, तुम्हारी ढाल बन
तुम्हें बचावेगा ।

× × ×

सालुम्बाधिपते ! क्या अब होगा यही
क्षुद्रकर्म इस धर्मभूमि मेवाड़ में ?
और 'अमर' ने ही नायक होकर स्वयं
किया अधम इस लज्जाकर दुष्कर्म को !
बस बस, ऐसे समाचार न सुनाइये
शीघ्र उसे उसके स्वामी के पास अब
भेज दीजिये, बिना एक भी दुख दिये ।
सैनिक लोगों से मेरा संदेश यह
कहिये कभी न कोई क्षत्रिय आज से
अबला को दुख दें, चाहे हो शत्रु की ।
शत्रु हमारे यवन—उन्हीं से युद्ध है
यवनीगण से नहीं हमारा द्वेष है ।
सिंह क्षुधित हो तब भी तो करता नहीं
मृगया, डर से दबी शृगाली-वृन्द की ।

('महाराणा का महत्व', काव्य, पृ० ११-१२)

रहीम खाँ को जब उसकी प्यारी बेगम सकुशल मिल गई तो श्रद्धा से राणा प्रताप के प्रति उसका मन नत हो गया । वह राणा की वीरता, उदारता, धर्मपरायणता का गुणगान करने लगा—

जन्मभूमि के लिये, प्रजा सुख के लिये,
इतना आत्मोत्सर्ग भला किसने किया ?
दुग्ध-फेन-निभ शय्या को यों छोड़ कर

सूखे पत्ते कौन चबाता है कहो—
मातृभूमि की भक्ति, देशहित-कामना,
किसको उत्तेजित करती है, वे कहाँ ? (वही, पृ० १५)

प्रताप की रहीम खाँ से प्रशंसा सुनकर बेगम ने कहा—ऐसे वीर से सम्राट अकबर युद्ध करें, कदापि उचित नहीं। आप अपने सम्राट मित्र को समझाइए और दोनों में संधि कराइए।' नवाब ने कहा—'तुम भोली हो, वह वीर प्रताप टूट जायगा, पर झुकेगा नहीं। कई बार संधि के प्रस्ताव भेजे गए, पर वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है—देश की आजादी का वह पुजारी है।''

अस्तु, रहीम खाँ आखिर पराजित होकर अकबर के दरबार में पहुँचा तो बादशाह ने पूछा—'कहिए, यहाँ आगरा की जलवायु से आपका स्वास्थ्य ठीक हुआ या नहीं ?' तब रहीम ने कहा—'शाहंशाह ! मेरा स्वास्थ्य तो यहाँ और भी खराब हो गया। हकीम ने मुझे कश्मीर जाने को कहा है।' तब अकबर ने पूछा—'तुम्हारा यहाँ स्वास्थ्य क्यों खराब हुआ ?' इसपर खानखाना ने कहा—'बस हुजूर, मुझसे वही न कहलवाइये, जिसे आपसे कहना मैं नहीं चाहता।'' अकबर ने कहा—'सत्य को निर्भय कहो।'

कहा खानखाना ने झुक कर जिस दिवस
मुझे बनाकर सैनप भेजा आपने
वीरभूमि-मेवाड़-विजय के हेतु, हाँ—
उस दिन सचमुच मुझे असीम प्रसन्नता
हुई, कि मैं भी देखूँगा उस वीर को,
जो अब तक होकर अबाध्य सम्राट का
करता है सामना बड़े उत्साह से।
सचमुच शाहंशाह एक ही शत्रु वह
मिला आपको है कुछ ऊँचे भाग्य से,
पर्वत की कन्दरा महल है, बाग है—
जंगल ही, आहार-घास, फल-फूल हैं,
सच्चा हृदय सहायक, उसके साथ है।

× × ×

राजकुँवर ने बेगम को बन्दी किया
फिर भी सादर उसे भेज कर पास में
मेरे, मुझको कैसा है लज्जित किया।

मनोवेदना से मैं व्याकुल हो उठा,
इसीलिये यह रोग हुआ है असल में।
इससे छुटकारे का एक उपाय है—
आज्ञा हो तो मैं भी कुछ विनती करूँ।'

अकबर ने अपने मित्र रहीम खानखाना से कहा—'मुझे सारी बात का पता है। कहो, तुमको जो कुछ निवेदन करना है।'

कहा खानखाना ने—'राणा ने कभी—
किया नहीं आक्रमण आपके राज्य पर
अपने छोटे राज्य मात्र से तुष्ट है,
+ + +
ऐसे सज्जन व्यक्ति से
आप क्यों न अपना महत्व दिखाइये।
सच कहिये, क्या ऐसे उन्नत हृदय को
दुख देना है अच्छा ईश्वर-नीति में? (वही, पृष्ठ २३-२४)

रहीम खाँ ने आगे कहा—'शाहंशाह! अगर दो महान वीरों की संधि-शान्ति का मंगलघोष हो जायेगा तो भारत के नर-नारी आपके यश को गावेंगे।'

तब अकबर कहता है—

अकबर ने फिर कहा—'बात यह ठीक है,
अब न लड़ाई राणा से उपयुक्त है।
भेजो आज्ञापत्र शीघ्र उस सैन्य को,
सब जल्दी ही चले आयें अजमेर में।'

हर्षातिरेक से उत्फुल्लित होकर कवि रहीम ने तब कहा—

कहा खानखाना ने—'हे उन्नत-हृदय—
भारत के सम्राट! दयामय आपकी
सुयशलता की बीज उर्वरा-भूमि में
शान्ति-वारि से सिंचित हो, फलवती हो।
अब न काम है जाने का काश्मीर को
इन चरणों की सेवा ही भू-स्वर्ग है।' (वही, पृ० २४)

हिन्दी-साहित्य में राष्ट्रीय कविताएँ

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

महाकवि 'निराला' (१८९६-१९६१ ई०) का जन्म सन् १८९६ में बंगाल के मेदिनीपुर जिला के महिषादल राज्य मे हुआ था। आप हिन्दी के छायावाद युग के प्रसिद्ध कवि है। आपने काव्य, उपन्यास तथा निबन्ध लिखे है। निराला की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति-पूजा', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'नए पत्ते' आदि।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की प्रसिद्ध ऐतिहासिक रचना है 'महाराज शिवाजी का पत्र।' इस रचना मे निराला ने शिवाजी की वीरता का यशोगान किया है और जयपुर के राजा जयसिंह से शिवाजी को मित्रवत् व्यवहार करने की सलाह दी है। यह एक इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि राजा जयसिंह और महाराज शिवाजी में औरंगजेब की कूटनीति और कट्टरपन के विरुद्ध एक अभिसन्धि हुई थी। अत: कवि कहता है—'शेर शेर का शिकार नही करता, शिवाजी मराठा शेर है और राजा जयसिंह राजपूती शेर।' अत: निराला जयसिंह को भी अपनी पूर्व मर्यादा का स्मरण दिलाते है—

शेर कभी मारता नहीं शेर,
केसरी
अन्य वन्य पशुओं का ही शिकार करता है।
सिंहों के साथ ही चाहते हो गृह-कलह ?—
जयसिंह
अगर हो शानदार,
जानदार है यदि अश्व वेगवान्
वाहुओं में वहता है
क्षत्रियों का खून यदि, ...

× × ×

आ रही है याद यदि अपनी मरजाद की,
चाहते हो यदि कुछ प्रतिकार,
तुम रहते तलवार के म्यान में,

आओ वीर, स्वागत है,
सादर बुलाता हूँ।
हैं जो बहादुर समर के
वे मर के भी
माता को बचायेंगे।
शत्रुओं के खून से
धो सके यदि एक भी तुम माँ का दाग,
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे ?—
('आधुनिक वीर-काव्य' पृ० ६६)

इस प्रकार महाप्राण निराला ने वीरश्रेष्ठ शिवाजी को जगाया और राजा जय सिंह को भी मातृभूमि पर मर मिटने के लिए उत्साहित किया। आपने शिवाजी को मारवाड़ के राजा जशवन्त सिंह से मिलकर औरंगजेब से लड़ने का सत् परामर्श दिया। देखिए—कवि शिवाजी से कहता है—

यदि तुम मिल जाओ महाराज जसवन्त सिंह से,
हृदय से कलुष धो डालो यदि,
एकता के सूत्र में
यदि तुम गुथों फिर महाराज राजसिंह से,
निश्चय है,
हिन्दुओं की लुप्त कीर्ति
फिर से जग जायगी,
आएगी महाराज
भारत की गई ज्योति,
प्राची के भाल पर
स्वर्ण सूर्योदय होगा
तिमिर-आवरण
फट जायगा मिहिर से
भीति-उत्पात सब रात के दूर होंगे। (वही, पृ० ६९)

निराला जी ने 'महाराज शिवाजी का पत्र' कविता में मराठा और राजपूत

शक्तियों को यवनों का मुकाबला करने की सलाह दी। उस समय राजा जयसिंह और जसवन्त सिंह औरंगजेब के साथ थे और शिवाजी अकेले मुगल सम्राट औरंगजेब का मुकाबला कर रहे थे। राजस्थान में मेवाड़ के राणा राजसिंह औरंगजेब से वीरतापूर्वक लड़ रहे थे। अतः कवि ने हिन्दू शक्ति को संगठित होकर स्वाधीनता की रक्षा के लिए प्रेरित किया। रमेशचन्द्र दत्त के 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' उपन्यास मे तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के पोषक भूदेव मुखोपाध्याय के उपन्यास 'अंगूरीय विनिमय' मे हमने इस प्रसंग पर 'उपन्यास अध्याय' मे विस्तार से आलोचना की है।

जयशंकर प्रसाद के 'महाराणा का महत्व' काव्य के पश्चात १९१५ ई० में श्री गोकुलचन्द्र शर्मा का 'प्रणवीर प्रताप' काव्य प्रकाशित हुआ। 'प्रणवीर प्रताप' का कवि स्वतन्त्रता के मूल्य को पहचानता है और इसीलिए कहता है—

दे शीश भी स्वातंत्र्य रक्षा सुजन करते हैं सभी,
है व्यर्थ शिर जो दासता से उठ न सकता हो कभी।

('प्रणवीर प्रताप', पृ० ४२)

श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय ने १९१७ ई० मे 'मेवाड़ गाथा' की रचना की। इस काव्य मे आपने प्रतापी प्रताप की वीरता का बखान किया है। इसी समय लाला भगवानदीन की काव्य-कृति 'वीर पंचरत्न' प्रकाश मे आई। यह लालाजी की सुन्दर वीर-रसपूर्ण रचना है। इसके अतिरिक्त आपने वीर 'क्षत्राणी' और 'वीर बालक' नामक दो और काव्य-ग्रन्थ लिखे। लालाजी की अन्य चर्चित कृति है 'आल्हा-ऊदल'। ठाकुर केसरीसिंह बारहठ के काव्य 'प्रताप-चरित्र' (१९२७ ई०), पं० श्यामनारायण पाण्डेय के 'हल्दीघाटी' (१९३९ ई०) तथा 'जौहर' (१९४४ ई०) काव्यों, प्रो० सुधीन्द्र के 'जौहर' (१९४३ ई०) काव्य, डॉ० रामकुमार वर्मा के 'चित्तौड की चिता' (१९२७ ई०) काव्य, पं० रामकरण द्विवेदी 'अज्ञात' के 'राखी' (१९३६ ई०) काव्य, ठाकुर सुकदेव सिंह सौरभ के 'सती हाड़ीरानी' (१९४८ ई०) काव्य, कवि काशी प्रसाद श्रीवास्तव के 'भारतीय कृपाण' (१९३५ ई०) पर हमने पुस्तक के अन्य पृष्ठों पर विचार किया है।

हिन्दी के छायावाद युग मे भले ही कवि वैयक्तिक स्वच्छन्दता, प्रकृति-प्रेम, रहस्यवाद आदि के तत्वों को खोज रहा था, फिर भी उसके काव्य मे राष्ट्रीय चेतना थी, जिसको दर्शाने के लिए हमने यहाँ कतिपय कवियों तथा उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है। १९२० ई० असहयोग आन्दोलन के पहले से ही गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', माखनलाल चतुर्वेदी, माधव शुक्ल, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, हरदयालु सिंह, रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' आदि कवि राष्ट्रीय काव्यधारा मे अपना महत्वपूर्ण योग

दे रहे थे। श्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने राणा प्रताप और वीर केसरी शिवाजी को देश की स्वाधीनता का प्रतीक माना और काव्य रचना की। देखिए—

जहाँ प्रताप शिवाजी जूझे, धन्य धन्य यह देश।
हम भी धन्य रक्त का उनके, है हम में यदि लेश॥
('राष्ट्रीय गीत', पृ० १०)

श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल' या 'सनेही' खड़ी बोली हिन्दी के आदिकालीन कवियों की श्रेणी में आते हैं। गयाप्रसाद शुक्ल कवि के दो रूप हैं। एक में वे प्रकृति के द्रष्टा, मानवीय प्रवृत्तियों के सूक्ष्म विवेचक और सौन्दर्यानुभूति के गायक हैं और दूसरे में 'त्रिशूल' रूप में राष्ट्रीय विचारधारा के प्रबल समर्थक, पोषक और प्रचारक हैं—

वीर प्रताप, शिवा के पद का निज हृदयों में ध्यान करो,
हे भारत के लाल, पूर्वजों की, कृति पर अभिमान करो।
स्वतंत्रता के लिए मरे जो उनका चिर सम्मान करो,
है 'त्रिशूल' अनुकूल समय यह अब अपना बलिदान करो।
('महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ', पृ० ८६)

१९२० ई० के गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में कवि 'त्रिशूल' की ये पंक्तियाँ लोगों को अंग्रेजी दासता से मुक्त कराने का आह्वान कर रही थीं।

इसी समय माधव शुक्ल अपनी नाट्य-कृतियों एवं कविताओं से देश की जनता को ललकार कर कह रहे थे—

पूरन करो यज्ञ माता का, ज्यों प्रताप अभिमानी बाँका,
ज्यों शिव-सूर्य हिन्दू गुरुता का, जैसे तिलक महान।
चाहती है माता बलिदान, जवानो! उठो, हिन्द सन्तान।
('जागृत भारत', पृ० ५५)

राष्ट्रीय कवि माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य में काव्य की उस धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें राष्ट्रीय चेतना और जन-जन की वाणी का प्रवाह है। आपने 'सिपाही' 'सिपाहिनी' कविता में 'जौहर' के महत्व को दर्शाया है—

चूड़ियाँ बहुत हुईं कलाइयों पर प्यारे, भुजदण्ड सजा दो,
तीर कमानों से सिंगार दो, जरा जिरह बखतर पहना दो।

+ + +

माना 'जौहर' भी होता था, मरने के त्यौहारों वाला,
और पतन के अगम सिंधु से, तरने के त्यौहारों वाला।

\+ + +

'जौहर' से बढ़कर, घोड़े पर चढ़ कर, जौहर दिखलाने दो,
चूड़ियाँ हों सुहागिनी, यौवन ! यौवन अवनी पर आने दो।

('आधुनिक वीर-काव्य', पृ० ६०)

हिन्दी के अन्य राष्ट्रीय कवियों मे प्रमुख है—रूपनारायण पाण्डेय, सत्यनारायण कविरत्न, शम्भुदयाल श्रीवास्तव, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गिरिजादत्त शुक्ल 'गरीश', जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी', उदय शंकर भट्ट, गोपाल सिंह नेपाली, सोहनलाल द्विवेदी, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', रामधारी सिंह 'दिनकर', जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, हरिकृष्ण 'प्रेमी', कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह, भरत व्यास, डॉ० मनोहर शर्मा, ठाकुर रणवीर सिंह शक्तावत, कन्हैयालाल सेठिया, मेघराज मुकुल', कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान आदि।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने स्वतन्त्रता की लड़ाई को तेज करने के लिए कई कविताएँ लिखी। ये कविताएँ 'कुंकुम' काव्य-सग्रह मे संकलित है। कवि को आत्म-गौरव जगाने के लिए उलटी माला फेरनी पड़ रही है—देश के शौर्य को जगाने के लिए। कवि 'नवीन' कहते है—

आज खड्ग की धार कुण्ठिता है, खाली तूणीर हुआ,
विजय पताका झुकी हुई है, लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ।

\+ + +

एक सहस्र वर्ष की माला में हूँ उलटी फेर रहा,
उन गत युग के गुम्फित मनकों को मैं फिर-फिर हेर रहा।

('आधुनिक वीर-काव्य', पृ० ७४-७५)

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी के प्रमुख कवियो मे गिने जाते है। आपने महाकाव्य, खण्ड-काव्य तथा इतिहास ग्रन्थ लिखे है। 'कुरुक्षेत्र' आपका महाकाव्य है तथा 'रश्मिरथि' खण्ड-काव्य। 'रेणुका' में आपकी राष्ट्रीय कविताओं का संकलन है। 'संस्कृति के चार अध्याय' दिनकरजी का इतिहास ग्रन्थ है। आपने अपनी प्रसिद्ध कविता 'हिमालय के प्रति' मे देश की जनता को पुराने गौरव की स्मृति दिलाकर जगाने का भगीरथ प्रयत्न किया है—

कह हृदय खोल चित्तौर ! यहाँ कितने दिन ज्वाल वसन्त हुआ !
पूछे, सिकता कण से हिमपति तेरा वह राजस्थान कहाँ,
वन-वन स्वतंत्रता-दीप लिये फिरनेवाला बलवान कहाँ ?

('रेणुका', पृ० ६)

स्वतन्त्रता के बाद 'दिनकर' ने १९६२ के चीनी आक्रमण के समय 'परशुराम की प्रतीक्षा' काव्य की रचना की, जिसमें अपने देश के वीर-पराक्रमी पुरुषों का स्मरण कर देश की तेजस्विता को जगाया—

झकझोरो, झकझोरो महान सुप्तों को, टेरो, टेरो चाणक्य चन्द्रगुप्तों को।
विक्रमी तेज, असिकी उद्दाम प्रभा को, राणा प्रताप, गोविन्द, शिवा सरजा को।

('परशुराम की प्रतीक्षा', तृतीय खण्ड)

कवि सोहनलाल द्विवेदी की कविताएँ अधिकतर राष्ट्रीय भावनाओं से भरी हुई है। आपकी रचनाओं में 'भैरवी', 'कुणाल', 'वासवदत्ता' और 'उर्वशी' विशेष उल्लेखनीय हैं। 'भैरवी' में 'हल्दीघाटी' और 'राणा प्रताप के प्रति' कविताएँ संकलित हैं। देशभक्ति पर मर मिटने के लिए कवि देश की जनता का आह्वान करता है—

गाओ माँ फिर एक बार तुम वे मरने के मीठे गान।
हम मतवाले हों स्वदेश के, चरणों में हँस-हँस बलिदान॥

× × ×

कल हुआ तुम्हारा राजतिलक बन गये आज ही वैरागी
उत्फुल्ल मधु मदिर सरसिज में यह कैसी तरुण-अरुण आगी ?
क्या कहा कि—,
'तब तक तुम न कभी, वैभव सिंचित श्रृङ्गार करो'
क्या कहा, कि—,
जब तक तुम न विगत—गौरव स्वदेश उद्धार करो !'

× × ×

जागो प्रताप, हल्दीघाटी में वैरी भेरी बजा रहे !
मेरे प्रताप, तुम फूट पड़ो, मेरे आँसु की धारों से,
मेरे प्रताप तुम बिखर पड़ो, मेरे उत्पीड़न भारों से,
मेरे प्रताप, तुम बिखर पड़ो, मेरे बलि के उपहारों से;

('भैरवी' पृ० ३३, ३६)

श्री भरत व्यास ने अपने राष्ट्रीय गीतों से देश के लोगो मे स्वदेशाभिमान के भाव भरे तथा देश की अस्मिता को जगाया। आपने फिल्मो मे भी राष्ट्रीय गीत लिखे, जो अत्यधिक प्रचारित हुए। 'मरुधरा' मे आपके राष्ट्रीय गीतो का संकलन है, कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

हल्दीघाटी की गलियों में, टूट पड़े थे हम प्रताप बन,
हम जननी के चिर पहिचाने, हम हैं सिंहों की संताने।

('मरुधरा', पृ० ४८)

आओ बच्चो तुम्हें दिखायें झांकी हिन्दुस्तान की।
इस मिट्टी से तिलक करो ये धरती है वलिदान की॥
ये है अपना राजपूताना नाज़ इसे तलवारों पै।
इसने सारा जीवन काटा बरछी तीर कटारों पै॥
ये प्रताप का वतन पला है आजादी के नारों पै।
कूद पड़ी थी जहाँ हजारों पद्मिनियाँ अंगारों पै॥
बोल रही है कण-कण पर कुर्बानी राजस्थान की।
देखो मुल्क मराठों का जहाँ शिवाजी डोला था।
मुगलों की ताकत को जिसने तलवारों पर तोला था॥
हर पर्वत पर आग लगी थी हर पर्वत एक शोला था।
बोली हर-हर महादेव को बच्चा-बच्चा बोला था॥
यहाँ शिवाजी ने रखी थी लाज अपनी शान की।

('जागृति' फिल्म,)

हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की राष्ट्रीय कविताएँ सबसे अधिक प्रचारित हुईं। आपकी 'झाँसी की रानी' कविता का विद्यार्थियो मे अत्यधिक प्रचार हुआ। सुभद्राजी की कविताएँ 'मुकुल' में संकलित हैं। हिन्दी की इस कवयित्री ने १९३० ई० के कालखण्ड में राष्ट्रीय कविताएँ लिखी थी, जो आज भी प्रासंगिक हैं। सुभद्राजी की कहानियाँ 'बिखरे मोती' मे संकलित है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'मुकुल' और 'बिखरे मोती' को सेकसरिया पुरस्कार से पुरस्कृत किया है। वीर योद्धा तो रक्त से होली खेल कर वसन्तोत्सव मनाते हैं—वे देश-मातृका पर मर मिटते हैं। इसी भाव को कवयित्री ने इन शब्दो में व्यक्त किया है—

हल्दीघाटी के शिलाखण्ड ऐ दुर्ग सिंहगढ़ के प्रचंड,
राणा, नाना का कर घमंड, दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत।
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

('मुकुल', पृ० १२७)

सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' कविता का हमने आरम्भ में ही उल्लेख किया है।

१९३० के काल-खण्ड में ही श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' अपनी कविताओं तथा नाटकों से देशभक्ति का प्रचार कर रहे थे। आपने राणा प्रताप की सिर न झुकाने की आन पर लिखा है—

सूर्य झुका, झुक गये कलाधर, झुके गगन के तारे,
अखिल विश्व के शीश झुके पर झुके न प्रताप तुम प्यारे।

('महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ', पृ० ४९)

श्री देवराज दिनेश ने 'हल्दीघाटी की साँझ' कविता में प्रताप के शौर्य का बखान किया है—

हल्दीघाटी की साँझ गुंजाती चली शब्द यह बार-बार।
ओ नीला घोड़ा रा सवार, ओ नीला घोड़ा रा सवार॥
उस नीले घोड़े का सवार, राणा प्रताप योद्धा मानी।
हल्दीघाटी के महा समर का प्रबल प्रतापी सेनानी॥
उसकी हुँकारों से नभ हिलता था, धरती शर्माती थी।
उसकी बाँहों की छाया में मानवता थकन मिटाती थी॥

('हल्दीघाटी चतु शती समारोह', १९७६, पृ० १२३)

निष्कर्ष : स्थापना

निष्कर्ष

हमने पिछले दो अध्यायो यथा 'इतिहास का गवाक्ष' एवं 'बंगला काव्यो में राजस्थान' मे बंगला, हिन्दी और राजस्थानी साहित्य पर टॉड के 'राजस्थान' के प्रभाव का अध्ययन किया है। अध्ययन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि महामना कर्नल जेम्स टॉड के ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' का प्रभाव आधुनिक भारतीय भाषाओ मे १६वी शताब्दी में जिस व्यापक स्तर पर आरम्भ हुआ, उसका सिलसिला स्वतन्त्रता प्राप्ति तक ही नही अपितु अद्यतन देखा जा रहा है। क्योंकि 'राजस्थान' से जिन उपकथाओ को लेकर साहित्य मे जो रचनाएँ प्रणीत हुई थी, वे आज भी देश के विभिन्न विश्वविद्यालयो मे प्राथमिक स्तर से लेकर स्नातकोत्तर कक्षाओ तक के पाठ्य-क्रम की विषय-वस्तु बनी हुई हैं। साथ ही उन रचनाओं का आज भी भारतीय जन-मानस रस-भोग करता है। राजस्थान के वीर-चरित्रों से भारतीय मनीषा सुन्दर भविष्य के लिए ऊर्जा ग्रहण करती है। अतीत के गौरवमय इतिहास-चरित्रो से अपने को गौरवान्वित अनुभव करती है। यह कोई साधारण उपलब्धि नही है।

१८५७ की आजादी की क्रान्ति से बंगाल के चारण कवि रंगलाल के 'पद्मिनी उपाख्यान' मे 'स्वाधीनता हीनताय के बाँचिते चाय हे—के बाँचिते चाय' का जिस गम्भीर वीर-मुद्रा में उद्घोष हुआ, उसकी अनुगूंज स्वातन्त्र्य-संग्राम में अनवरत होती रही। रंगलाल के बाद बंगला के साहित्यकारो द्वारा 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर बंग-भारती का भण्डार भरा जाने लगा और बंगला-साहित्य वीर-रचनाओ से लबालब भर गया। साहित्य के वाङ्मय मे यह एक बड़ा धमाका था। जाहिर है उसकी प्रतिध्वनि देश के विभिन्न क्षेत्रो के साहित्य मे हुई—अर्थात् बंगला की अमर कृतियो का धड़ल्ले से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, मराठी, तमिळ, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ आदि भाषाओ मे अनुवाद होने लगा। इसकी थोड़ी बानगी हमने पाठको के समक्ष रखी है। माइकेल के दुखान्त नाटक 'कृष्णकुमारी' और बंकिम के उपन्यास 'राजसिंह' का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में हुआ। डी० एल० राय के नाटक देशज भाषाओ मे अनुदित ही नही, मंचित भी हुए। इस प्रक्रिया से देश के प्रान्तो की विभिन्न भाषाओ मे अनायास बंगला साहित्यकारो के साथ टॉड का 'राजस्थान' और मरुभूमि के वीर-चरित्र चर्चित हो गए। पश्चात् 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओ मे मौलिक ग्रन्थ लिखे गए। इसकी हमने पिछले दो अध्यायो मे झाँकी मात्र दी है। '....चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा।' के अनुसार हमारे पास इतनी शक्ति और सामर्थ्य नही थी कि हम उसकी विस्तार से जानकारी देते। वैसे यूँ ही पुस्तक का

[illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] एक [illegible] है, जो [illegible] है। [illegible] [illegible] है और [illegible] कहते हैं—[illegible] कहते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] होकर [illegible] ऊँचे स्वर से कहता रहा कि धर्म का आचरण करने से अर्थ और काम की प्राप्ति हो सकती है, किन्तु कोई भी मेरी बात सुन नहीं रहा है—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥
(भारत सावित्री खण्ड, महाभारत से)

आज तो इस वस्तु का निरूपण करने की जरूरत है। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है, [illegible] है। लेकिन बिना [illegible] का मूल्य स्वीकार हुए कोई [illegible] के [illegible] में [illegible] भी तो नहीं कर सकता। इसलिए [illegible] हुए हर एक [illegible] करार दिया जा सकता है, पर जिन काव्यमयी राजस्थान के वीरों की रचनाओं के दर्जनों संस्करण प्रकाशित हुए और लाखों-करोड़ों पाठकों ने जिन्हें पढ़ा, उसे आप क्या कहेंगे? श्यामनारायण पाण्डेय के 'जौहर' और 'हल्दीघाटी' की कविता युवकों और बालों की जुबान पर चढ़ गई, उसे क्या कहा जायगा? 'धरती धोरां री' के अमर गायक सेठिया की राजस्थानी कविता 'पाथल अर पीथल' १९५२ की क्रान्ति में आदर से पढ़ी जाने लगी, मुकुल की 'सेनाणी' के हजारों रेकार्ड बिक गए। रवीन्द्र को १९१३ ई० में नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद उनकी 'गीतांजलि' के अतिरिक्त अन्य रचनाएँ भी भारतीय जन-मानस में आदरपूर्वक पढ़ी जाने लगीं। रवीन्द्र के 'कथा उ काहिनी' की राजस्थान सम्बन्धी कविताएँ बंगला भाषा में प्रवाद बन गईं—'जे पथ दिए पाठान एसे छिलो, से पथ दिए फिरलो ना को तारा' और 'रक्ते ताहार धन्य होलो—मरुर बूंदीगढ़'।

रंगलाल चर्चित नहीं होते तो 'पद्मिनी उपाख्यान' के पश्चात् इतनी अच्छी उनके दो और काव्य 'कर्मदेवी' और 'शूर सुन्दरी' प्रकाश में नहीं आते। सच बात यह है कि माइकेल मधुसूदन दत्त को रंगलाल का अनुसरण कर नाट्यकृति लिखने का उनके मित्रों ने सत् परामर्श दिया। उनको कहा गया कि वे टॉड के 'राजस्थान' से उपकथा लेकर किसी सुन्दर रचना का प्रणयन करें। टॉड का 'राजस्थान' बंगाल में इतना प्रचलित हो गया कि विपिन बिहारी नन्दी को 'सप्तकाण्डे राजस्थान' लिखना पड़ा। 'राजमंगल' ने अपने काव्य-ग्रन्थ को अलग जताने के लिए कवि ने उसके साथ में संशोधन कर उसका शीर्षक दे दिया—'सचित्र सप्तकाण्डे राजस्थान'। यह कितने आश्चर्य की बात है कि हिन्दी और राजस्थानी में जब राजस्थान पर कोई महाकाव्य नहीं लिखा गया, उससे पूर्व अर्थात् १९११ ई० में चटगाँव से विपिन बिहारी का 'सचित्र सप्तकाण्डे राजस्थान' महाकाव्य प्रकाशित हो गया।

बंगला भाषा के काव्यों एवं इतिहासमूलक पुस्तकों के साथ हमने संक्षिप्त रूप से हिन्दी-राजस्थानी रचनाओं का यथासाध्य परिचय दिया है। इसमे हमें पूरा सन्तोष नही है। क्योंकि हिन्दी-राजस्थानी पुस्तकों का पुस्तकालयों में मिलना कष्ट-साध्य काम है। जो रचनाएँ मिली हैं—उनमे सन्-संवत की कमी खटकी है। हमने कोशिश कर सामग्री जुटाने की चेष्टा की है।

हमारा यह शोध-कार्य प्रथम और अन्तिम नही है। हमने बंगला-हिन्दी क्षेत्र का सम्बन्ध-सेतु बनाने के लिए आड़-टेढे बाँसों की बंसपट्टियाँ लगा कर एक पुलिया बनाई है—आगे के शोध-कर्त्ता इसे अपने प्रभूत-ज्ञान-सम्भूत-सीमेंट से पुख्ता कर 'सेतुबन्ध' का रूप दे सकते हैं। हम तुलसी के कथन को उद्धृत कर अपनी दीनता जाहिर कर रहे है—

कवि न होऊँ नहिं वचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा।
कवित विवेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥
(रामचरित मानस, बालकाण्ड)

हमारे ऐसे अकिंचन के पास भी कुछ नहीं है। इसीलिए अपनी बात हमे उधार की बैसाखी के सहारे से कहनी पड़ती है।

स्थापना

हमने इस अध्ययन में यह स्थापित करने की धृष्टता की है कि आधुनिक बंगला-साहित्य टॉड के 'राजस्थान' से अनेक दृष्टियो से समृद्ध हुआ है। राजस्थान के वीर चरित्रो से आजादी की लड़ाई को त्याग-बलिदान की अजस्र प्रेरणा मिली है। हमने अपनी स्थापना बंगला के इतिहासकारो, आलोचकों, समीक्षकों तथा रचनाकारो की भूमिका को साक्ष्य रूप मे प्रमाण के लिए उपस्थित किया है और तब अपनी बात को पुष्ट किया है। स्वामी विवेकानन्द को पुनः स्मरण करते हुए गौरव-बोध होता है—'बांगलार आधुनिक जातीय भाव समूहेर दुई-तृतियांश एई बईखानी (टॉडेर राजस्थान) होइते गृहीत।'

स्वामीजी के इस कथन के बाद कहने को कुछ शेष नही रह जाता है। रंगलाल की १८५८ ई० मे लिखी गई काव्य-कृति 'पद्मिनी उपाख्यान' को बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० सुकुमार सेन ने आधुनिक बंगला-साहित्य की प्रथम काव्य-कृति से संज्ञायित किया है। हमने अपनी स्थापना को साहित्य-मर्मज्ञो का हवाला देकर सम्पुष्ट किया है। इसी भाँति माइकेल का 'कृष्णकुमारी' नाटक बंगला भाषा का प्रथम दुखान्त,

नाटक है और बंकिम का 'राजसिंह' उपन्यास बंगला-साहित्य का प्रथम प्रामाणिक ऐतिहासिक उपन्यास है। ये रचनाएँ १६वी शताब्दी की अमर कृतियाँ है। जब बंगला-साहित्य मे ऐसी अमर रचनाएँ प्रणीत हो रही थी तब भारत की अन्य भाषाओ में आधुनिकता के दर्शन नही हुए थे। हिन्दी तो १६वी शती मे रीतिकालीन कलेवर से और ब्रजभाषा की पदावली से मुक्त नही हो पाई थी। भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग के इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिए हमने एक उद्धरण दिया है—'स्वाधीनता हीनताय के वाँचिते चाय···· और उसका हिन्दी मे अनुवाद प्रस्तुत किया है—

'पराधीन ह्वै कौन चहै जीवौ जग माहीं।
को पहिरे दासत्व शृङ्खला निज पग माहीं॥
एक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम।
भल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहुं ते उत्तम॥

वस्तुत: राजनीतिक आजादी मिलने के बाद अभी हमे सामाजिक-आर्थिक मोर्चे पर लड़ाई लड़नी पड़ रही है। इसी लड़ाई के लिए कवि 'दिनकर' ने 'समर शेष है' कविता मे देशवासियों को युद्ध के लिए ललकारा है—

ढीली करो धनुष की डोरी, तरकस का कस खोलो,
किसने कहा, युद्ध की वेला गयी, शान्ति से बोलो ?

कवि ने कहा है राजनीतिक आजादी मिलने के उपरान्त स्वतन्त्रता की लड़ाई समाप्त नही हुई है। अभी हमें राजनीतिक स्वतन्त्रता को स्थाई बनाने के लिए सामाजिक-आर्थिक आजादी की जंग लड़नी है। इसलिए युद्ध के वेश का परित्याग कतई उचित नही। क्योंकि कवि को आजादी के बाद का जो नजारा मिला और देश के नेताओ को जब सत्ता-भोग मे लिप्त देखा तो कहना पड़ा—

फूलों की रंगीन लहर पर ओ इतराने वाले!
ओ रेशमी नगर के वासी! ओ छवि के मतवाले!
सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है,
दिल्ली में रोशनी, शेष भारत में अंधियाला है।

× × ×

वह संसार जहाँ पर पहुची अब तक नहीं किरण है,
जहाँ क्षितिज है शून्य, अभी तक अंबर तिमिर वरण है।
देख जहाँ का दृश्य आज भी अंतस्तल हिलता है,
माँ को लज्जा-वसन और शिशु को न क्षीर मिलता है।

पूछ रहा है जहाँ चकित हो जन-जन देख अकाज,
सात वर्ष हो गये, राह में अटका कहाँ स्वराज ?

आजादी के सात वर्षों में ही देश की स्थिति से कवि का मोहभंग हो गया और वह अनुशोचन करने लगा और आवेश में बोल उठा—

अटका कहाँ स्वराज ? बोल दिल्ली ! तू क्या कहती है।
तू रानी बन गयी, वेदना जनता क्यों सहती है ?
सबके भाग्य दबा रखे हैं, किसने अपने कर में ?
उतरी थी जो विभा, हुई वन्दिनी, बता किस घर में ?
समर शेष है, वह प्रकाश बंदी-गृह से छूटेगा,
और नहीं तो तुझ पर पापिनि ! महावज्र टूटेगा।

गाँधी का सुराज देश में कहाँ आया ? कहाँ सामाजिक-आर्थिक विषमता दूर हुई ? कवि आगे गर्जन करता है—

समर शेष है, इस स्वराज्य को सत्य बनाना होगा।
जिसका है यह न्यास, उसे सत्वर पहुँचाना होगा।
धारा के मग में अनेक पर्वत जो खड़े हुए हैं,
गंगा का पथ रोक इन्द्र के गज जो अड़े हुए हैं।
कह दो उनसे, झुके अगर तो जग में यश पायेंगे,
अड़े रहे तो ऐरावत पत्तों से बह जायेंगे।
('दिनकर' के 'परशुराम की प्रतीक्षा' काव्य से)

टॉड के 'राजस्थान' के वीर-चरित्रों की स्वातंत्र्य-संग्राम मे महत्वपूर्ण भूमिका रही और आज भी यह उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी आजादी के पूर्व थी। इस मानसिकता की प्रेरणा जुटाने मे अगर हमारा अध्ययन कुछ सहायक होता है तो हमारा श्रम सार्थक होगा अन्यथा पुन: 'समर शेष है' के कवि दिनकर की वाणी मे कहना पड़ता है—

समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।

★

बंगला-साहित्य में राजस्थान

(प्रथम खण्ड)

अनुक्रमणिका

ग्रन्थ

★

ग्रन्थकार

अनुक्रमणिका : ग्रन्थ

प

ब

श

स

अनुक्रमणिका : ग्रन्थकार

ख

ग

म

ल

व

श

स

ह